वेदव्यास कृत

सप्ताह पाठ : ज्ञानयज्ञ

श्रीमद् भागवत महापुराण

अर्थात् सुखसागर

(भगवान के २४ अवतारों की कथा)

—सरल हिन्दी में—

श्रीमद् भागवत ही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें भक्ति-ज्ञान एवं वैराग्य की पवित्र मंदाकिनी प्रवाहित हो रही है। श्रीमद् भागवत की कथा जीव का उद्धार करने वाली तथा मोक्ष प्रदान करने वाली है। सम्पूर्ण वेदान्तों के सार रूप श्रीमद् भागवत के रस के अमृत से तृप्त हुए पुरुष की अन्यत्र प्रीति नहीं होती है। श्रीमद् भागवत को जो भक्तजन पढ़कर शुद्ध मन से विचरता है वह मनुष्य भवसागर से पार उतर कर परमधाम को जाता है।

अनुवाद — **पं० ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी**

मूल्य : ₹0200.00

卐

रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार

श्रीमद् भागवत में—

राजा परीक्षित श्रोता हैं, जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य के स्वामी और काफी बड़े भू-भाग पर अधिपत्य वाले सम्राट हैं।

दूसरी ओर वक्ता शुकदेवजी हैं, जो बिल्कुल अवधूत हैं, जिनके पास लंगोटी भी नहीं है।

दोनों दो दिशाओं के चरमोत्कर्ष हैं। जिनके श्रोता और वक्ता के रूप में ऐश्वर्य और त्याग का अद्भुत समन्वय है।

卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐 卐

ईश्वर की भक्ति से, ज्ञानमयी कथाओं के श्रवण से, विभिन्न यज्ञों के करने से और वैराग्य के क्षणों में मनुष्य जिस धर्म के स्वरूप को देखता है उसका रंग 'लाल' होता है। अतः समस्त पुराणों में अग्रणी ज्ञान-यज्ञ स्वरूप श्रीमद् भागवत पुराण की 'लाल रंग' में छपी इस सम्पूर्ण कथा को पढ़ने से तथा श्रद्धापूर्वक पूजन करने से पाठक के मन में धर्म के प्रति अपार श्रद्धा का संचार होता है। धर्म की ओर उन्मुख मनुष्य भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के रंग में रंगकर संतोष को प्राप्त कर मोक्ष का अधिकारी बनता है। जो इस जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है।

प्रकाशक : रणधीर प्रकाशन रेलवे रोड, आरती होटल के पीछे, हरिद्वार-249401 दूरभाष : (01334) 6297
मूल्य : एक सौ पचास रुपये अनुवादक —पं० ज्वाला प्रसाद चतुर्वेदी मुद्रक : राजा ऑफसेट प्रिंटर्स, विकास मार्ग, दिल्ली-९२

विषय-सूची

प्रथम स्कन्ध प्रारम्भ

द्वितीय स्कन्ध प्रारम्भ

तृतीय स्कन्ध प्रारम्भ

चतुर्थ स्कन्ध प्रारम्भ

पाँचवां स्कन्ध प्रारम्भ

छठवां स्कन्ध प्रारम्भ

सातवां स्कन्ध प्रारम्भ

आठवां स्कन्ध प्रारम्भ

नौवां स्कन्ध प्रारम्भ

दसवां स्कन्ध प्रारम्भ

ग्यारहवां स्कन्ध प्रारम्भ

बारहवां स्कन्ध प्रारम्भ

आरतियाँ

श्रीमन्नारायण संकीर्तन

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण, लक्ष्मीनारायण नारायण. श्री-श्री
विष्णु पुराण भागवत गीता, वाल्मीकजी की रामायण. श्री-श्री
चारिहुं वेद पुराण अष्टदश, वेद व्यासजी की पारायण. श्री-श्री
शिव सनकादिक अरु ब्रह्मादिक, सुमिर सुमिर भये पारायण. श्री-श्री
श्यामल गात पीताम्बर सोहे, विप्रचरण उर धारायण. श्री-श्री
नारायण के चरण कमल पर, कोटि कामछवि वारायण. श्री-श्री
शंख चक्र गदा पद्म विराजै, गल कोस्तुभ मणि धारायण. श्री-श्री
खम्भ फाड़ हिरणाकुश मारे, भक्त प्रहलाद उबारायण. श्री-श्री
कश्यप ऋषि से बामन होके, दण्डकमण्डलु धारायण. श्री-श्री
बलि से याच तीन पद पृथ्वी, रूप त्रिविक्रम धारायण. श्री-श्री
गज और ग्राह लड़े जल भीतर, लड़त लड़त गज हारायण. श्री-श्री
जौ भर सूंड रही जल बाहिर, तब हरि नाम उच्चारायण. श्री-श्री
गज की टेर सुनी करुणानिधि, आप पधारे नारायण. श्री-श्री
जल डूबत गजराज उबारे, श्री चक्र सुदर्शन धारायण. श्री-श्री
सरयू के तीर अयोध्या नगरी, श्री रामचन्द्र अवतारायण. श्री-श्री
क्रीट मुकुट मकराकृति कुण्डल, अद्भुत शोभा धारायण. श्री-श्री
राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न, चार रूप तनु धारायण. श्री-श्री
सरयू के नीरे तीरे तुरंग नचावे, धनुषबाण कर धारायण. श्री-श्री
कोमल गात पीताम्बर सोहे, उर वैजयन्ती धारायण. श्री-श्री
बकसर जाय ताड़का मारी, मुनि के यज्ञ किये पारायण. श्री-श्री
स्पर्शत चरण शिला भई सुन्दरी, बैठ विमान पधारायण. श्री-श्री
जाय जनकपुर धनुष को तोड्यो, राजा जनक प्रण सारायण. श्री-श्री
जनक स्वयम्बर पावन कीन्हों, वरमाला हरि धारायण. श्री-श्री
राम सियाजी की परत भाँवरी, देव सुमन वर्षारायण. श्री-श्री
सीता ब्याह अवधपुर आये, घर घर मंगलाचारायण. श्री-श्री
मात कौसल्या करत आरती, त्रिभुवन जय जय कारायण. श्री-श्री
माता पिता की आज्ञा पाई, चित्रकूट पग धारायण. श्री-श्री

चौदह वर्ष वास वन कीन्हो, सुर नर मुनि हितकारायण. श्री-श्री
दण्डकवन प्रभु पावन कीन्हो, ऋषि मुनि त्रास निवारायण. श्री-श्री
ऋषि मुनि को प्रभु दर्शन देकर, पंचवटी पग धारायण. श्री-श्री
भोजपत्रकी कुटी बनाई, मृग मारीच उधारायण. श्री-श्री
योगी को रूप धरयो रावण ने, सीता हर लेजारायण. श्री-श्री
ऋषि मुनि को प्रभु दर्शन देकर, शबरी के पग धारायण. श्री-श्री
पंपा जाय बालि शर मारयो, सुग्रीव को शोक निवारायण. श्री-श्री
सागर ऊपर शिला तिराई, कपिदल पार उतारायण. श्री-श्री
रावण के दश मस्तक छेदे, राज विभीषण धारायण. श्री-श्री
रामरूप होय रावण मारयो, भक्त विभीषण तारायण. श्री-श्री
राक्षस वंश विनाश कियो है, पृथ्वी भार उतारायण. श्री-श्री
लंका जीत अवधपुर आये, राज्यतिलक प्रभु धारायण. श्री-श्री
यमुना के नीरे तीरे मथुरानगरी, श्रीकृष्णाचन्द्र अवतारायण. श्री-श्री
मथुरा में हरि जन्म लियो है, गोकुल में पग धारायण. श्री-श्री
बालपने हरि पूतना मारी, जननी की गति पारायण. श्री-श्री
बालपने मुख माटि खाई, तीन लोक दर्शारायण. श्री-श्री
माता यशोदा ऊखल बाँधे, यमला-अर्जुन तारायण. श्री-श्री
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, श्रवणन कुण्डल धारायण. श्री-श्री
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावे, मुख पर मुरली धारायण. श्री-श्री
पैठ पाताल कालिय नाग नाथ्यो, फणफण नृत्यत नारायण. श्री-श्री
वृन्दावन में रास रच्यो है, सहस्त्र गोपी एक नारायण. श्री-श्री
इन्द्र ने कोप कियो ब्रज ऊपर, बरसत मूसल धारायण. श्री-श्री
डूबत ही ब्रज राख लियो है, नख पर गिरिवर धारायण. श्री-श्री
मात पिता की बन्दी छुड़ाई, मामा कंस को मारायण. श्री-श्री
कृष्ण रूप होय कंस पछाड्यो, उग्रसेन कुल तारायण. श्री-श्री
उग्रसेन को राजतिलक दियो, द्वार वेत कर धारायण. श्री-श्री
द्रुपदसुता की लज्जा राखी, दुष्ट दुःशासन हारायण. श्री-श्री
दुर्योधन के मेवा त्यागे, शाक विदुर घर पारायण. श्री-श्री
शबरी के बेर सुदामा के तन्दुल, रुचिरुचि भोग लगारायाण. श्री-श्री

अजामील सुत होत पुकारे, नाम लेत अघ तारायण. श्री-श्री
अजामील गज गणिका तारे, ऐसे पतित उद्धारायण, श्री-श्री
जो नारायण नाम लेत है, पाप होत सब छारायण. श्री-श्री
जो कोई भक्ति करै भाधव की, माता पिता कुल तारायण. श्री-श्री
कूर्म होय ब्रह्मा वरदीन्हो, श्रीरंग रूप को धारायण. श्री-श्री
श्री शेषाचलपर आप विराजे, श्री बेंकटेश अवतारायण. श्री-श्री
जड़चेतन का अंतरयामी, अखिल जगत हित कारायण. श्री-श्री
प्रथम पुत्र ब्रह्मा को सिरजे, वेद मंत्र उच्चारायण. श्री-श्री
हयग्रीव होय वेद फिर लाये, ब्रह्मा कष्ट निवारायण. श्री-श्री
दैत्य को मार भूमि को लाये, वराहरूप को धारायण. श्री-श्री
परमपद छोड़ क्षिरानिधि आये, सुर नर-मुनि हित-कारायण. श्री-श्री
सागर मथकर रत्न निकाले, देवन कारज सारायण. श्री-श्री
बद्रिकाश्रम में ध्यान लगाये, अष्टाक्षर उच्चारायण. श्री-श्री
श्री शेषाचल पर खड़े दरश दे, मनवांछित फल पारायण. श्री-श्री
श्रीकाँची में वरदराज विराजे, ब्रह्मा कारज सारायण. श्री-श्री
वक्षस्थलश्री लक्ष्मी विराजे, जय जय श्री हरिनारायण. श्री-श्री
वेद शास्तर भारत रामायण, सब गावत श्रीनारायण. श्री-श्री
कलियुग में प्रभु प्रगट भये हैं, रामानुज अवतारायण. श्री-श्री
पुष्कर में प्रभु आप विराजे, श्री वेंकटेश-प्रभु नारायण. श्री-श्री
महाभारत में चरम मंत्र को, जगत हेतु उच्चारायण. श्री-श्री
दिव्य गुणों का अन्त नहीं है, शेष पावे नहीं पारायण. श्री-श्री
जहाँ-जहाँ भीड़ पड़ी भक्तों में, तहाँ-तहाँ कारज सारायण. श्री-श्री
नित्य प्रेम से गान सुनावे, कुटुम्ब सहित उद्धारायण. श्री-श्री
श्रीश्री चरणों का दास गाय यश, जगत हेतु उद्धारायण. श्री-श्री
माधवदास आस रघुवर की, भव सागर भये पारायण. श्री-श्री

चला लक्ष्मीः चलाः प्राणाः चलं जीवित् मन्दिरम्।
चलाचलेस्मिन् संसारे, धर्म एकोहि निश्चलः। १।
करारविन्दे न पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तं।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं, बाल मुकुन्दं शिरसा नमामि।।

श्रीभगवद् अवतार चौबीसी

दोहा

सनक सनंदन सनातन, चौथे सनत्कुमार, ब्रह्मचर्य धारण किया, हुआ प्रथम अवतार।
वराहरूप धरके प्रभु, हिरण्याक्ष को मार, पृथ्वी लाये दाढ़ पे, हुवा द्वितीय अवतार।
नारदमुनि के रूप में भक्ति करी प्रचार, ब्रह्मचर्य व्रत में रहे, हुवा तृतीय अवतार।
नर नारायण रूप धर, उत्तराखंड मंझार, अटल तपस्या कर रहे, हुवा चतुर्थ अवतार।
कपिल रूप में आपने, करा साँख्य विस्तार, माता की मुक्ति करी, है पंचम अवतार।
दत्तात्रेय के रूप में, नृप, यदु को उद्धार, चौबीस गुरु वर्णन किये, ले षष्टम अवतार।
स्वयज्ञ होय त्रैलोक्य की पीड़ा हरी अपार, हरि नाम तबसे हुआ, है सप्तम अवतार।
ऋषभ रूप धरके प्रभु, परमहंस ब्रत धार, बन अग्नि में तन तज्यो, है अष्टम अवतार।
हयग्रीव हो स्वांस से, कीन्हे वेद तैयार, वेद-वाणी प्रगट करी, हुवा नवम अवतार।
पृथु रूप में पृथ्वी को, वश में की करतार, सकल वस्तु दोहन करी, हुआ दशम अवतार।
मच्छ रूप को धार के, शंखासुर को मार, सत्यब्रत को ज्ञान दे, एकादश अवतार।
कच्छप हो प्रभु पीठपे, मन्दराचल को धार, हुवा समुद्र मंथन तभी, है द्वादश अवतार।
धनवन्तरी के रूप में, अमृत घट कर धार, क्षीर समुद्र प्रगटे हरि, त्रयोदश अवतार।
मोहनी रूप धारण किया, देवों के हितकार, अमृत दिया पिलाय के, चतुर्दशा अवतार।
नृसिंहरूप धरि भक्तहित, हिरणाकुश को मार, राज दिया प्रहलाद को पंचादश अवतार।
वामन हो बलिराज का, गर्व किया संहार, तीन लोक दिये इन्द्र को, है षोडश अवतार।
हंस रूप प्रगटे स्वयं ब्रह्मा के हितकार, ब्रह्मचर्य, तप, धर्म, कह सप्तदशा अवतार।
परशुराम हो क्षत्रिको मारा इक्कीस बार, कुरुक्षेत्र तीरथ किया, अष्टादश अवतार।
व्यासरूप में वेद का ग्रहण किया तब सार, पुराण अठारह है रचे, उन्नीसा अवतार।
रामचन्द्र रावण हन्यों, खलदल कर संहार, रहे धर्म मर्याद पे, हुवा विंश अवतार।
कृष्ण रूप में धर्म रख, हरा सकल भूभार, अर्जुन को गीता कही, एकविंश अवतार।
बलभद्र ने मार्‍यो द्विविद, खेंची यमुना धार, तीरथ व्रत सबही किये, द्विविंश अवतार।
बुद्ध होय मोहित किये, देव शत्रु संहार, करा खंड पाखंड को, त्रयोविंश अवतार।
कल्कि रूप में धर्म हित, लेंगे प्रभु अवतार, दुष्ट नृपति मारे हरि, चतुर्विंश अवतार।
भगवद् अवतारावली, पठन करे चित धार, सुख सम्पत्ती पावै सदा, उतरे भवसे पार।

मैं हरि का, हरि मेरे रक्षक, यह भरोस नहिं जाय कभी।
जो हरि करिहैं सो मेरे हित, यह निश्चय नहिं जाय कभी।।

☆ ★ ☆

S. S. BRIJBASI & SONS
59, MIRZA STREET BOMBAY-3

25 RADHAKRISHNA N·3

S. S. BRIJBASI & SONS
32/1, FATEHPURI DELHI-6.

श्रीमद् भागवत महापुराण का महात्म्य

एक समय की बात है कि नैमिषारण्य क्षेत्र में शौनकादि ऋषि श्री सूत जी से हरि चर्चा करने के लिए एकत्र हुए। शौनकादि ऋषि बोले- हे सूत जी! आप कृपा करके कोई ऐसा उपाय बतलाइए जिसके करने से मनुष्य आवागमन से छुटकारा पाकर मोक्ष को प्राप्त कर सके। शौनक जी के इस प्रकार के लोक हितकारी वचनों को सुनकर सूतजी कहने लगे- हे ऋषि! आज तुमने मनुष्य मात्र के उद्धार की बड़ी अच्छी बात पूछी है। कलयुग में श्रीमद् भागवत की कथा ही मोक्ष को देने वाली है जिसका वर्णन शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से किया था और राजा परीक्षित उसके श्रवण मात्र से मोक्ष को प्राप्त हुए थे।

जिस समय श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित को श्रीमद् भागवत की कथा सुनाने को बैठे, उस समय देवता अमृत का घड़ा लेकर आए और शुकदेव जी से कहने लगे- भगवन्! ये अमृत पिलाकर राजा

परीक्षित को अमर कर दीजिए और श्रीमद् भागवत की कथा लोगों को सुनाइए। देवताओं के वचन सुनकर शुकदेवजी कहने लगे कि अमृत काँच के समान है और श्रीमद् भागवत की कथा मणी के समान है। यह कथा देवताओं को भी दुर्लभ है क्योंकि इसे सात दिन श्रवण करने से ही मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। यह कथा ब्रह्माजी ने नारद जी को सुनाई थी परन्तु सप्ताह का विधान सनत्कुमारजी ने नारद जी को बतलाया था। वही प्रसंग मैं आप लोगों से कहता हूं।

एक समय सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार ऋषि सत्संग के हेतु बद्रिकाश्रम आए उस समय वहाँ उन्होंने नारद जी को आते देखा। वह ऋषि नारद से बोले- हे नारद! तुम उदास दिखाई दे रहे हो इसका क्या कारण है? नारद जी कहने लगे- हे प्रभु! मैं मृत्यु लोक का विचरण करके आया हूं वहां मैंने सबको राग, शोक तथा धन आदि से दुःखी देखा, अधर्मी बढ़ रहे हैं, धर्मधारी बहुत दुःखी हैं। जब मैं भ्रमण करता हुआ मथुरा में जमुना तट पर आया तो वहाँ मैंने देखा कि एक सुन्दर युवा स्त्री बहुत दुःखी बैठी हुई है। अनेकों स्त्रियाँ उसे घेर कर बैठी हैं और दो वृद्ध पुरुष वहाँ मूर्छित पड़े हुए हैं। मैंने उस स्त्री से जाकर पूछा कि तुम सब कौन हो? और किस कारण दुःखी हो? वह स्त्री रोकर कहने लगी—

ये अचेत पड़े हुए दोनों मेरे पुत्र हैं इनका नाम ज्ञान

और वैराग्य है। मैं इनकी माता भक्ति हूं और पास में बैठी हुई ये स्त्रियां गंगा आदि पवित्र नदियां हैं जो मेरी सेवा करने को साथ रहती हैं। मैं द्रविड़ देश में उत्पन्न होकर कर्नाटक में बड़ी हुई, युवावस्था में दक्षिण में रही तथा महाराष्ट्र और गुजरात में आते-आते वृद्ध हो गई। अब मैं यहां आकर पुनः युवा हो गई हूं परन्तु मेरे ये पुत्र वृद्ध तथा अचेत पड़े हुए हैं। मैं इन्हीं के दुख से इतनी दुःखी हो रहीं हूं क्योंकि माता युवा और पुत्र वृद्ध, यह तो संसार में उल्टा काम है।

नारद जी ने भक्ति से कहा कि इस समय कलयुग के प्रभाव से जप-तप तथा धर्म-कर्म नष्ट हो गए हैं। दुष्ट बुद्धि के प्रभाव से सब स्वार्थी हो गए हैं। ज्ञान और वैराग्य में अब कोई श्रद्धा नहीं रखता इसी कारण तुम्हारे पुत्रों की ये दशा हुई है। परन्तु यह ब्रज है यहां भगवान सदैव वास करते हैं। इस कारण यहां भक्त भी हैं जो तुम्हारा सम्मान करते हैं। इसी कारण तुम यहां आकर वृद्ध से तरुण हो गई हो। अब अपने हृदय की चिन्ता त्यागो। इस क्षेत्र के निवासी कलयुग में भक्ति का त्याग नहीं करेंगे।

नारद जी के वचनों को सुन भक्ति बोली कि राजा परीक्षित तो बहुत बलवान थे उन्होंने इस दुष्ट कलियुग का संहार क्यों नहीं किया? इतनी सुनकर नारद जी बोले- हे भक्ति सुनो! जब गौरूप पृथ्वी और वृषभ रूप धर्म को, कलियुग मारता हुआ आ रहा था तो उसे

देखकर क्रोधित हो राजा ने कलियुग को ललकारा तो कलियुग राजा परीक्षित की शरण में आ गया। शरणागत को मारना पाप समझकर राजा ने उसे नहीं मारा। दूसरी बात यह है कि कलियुग में बुराइयां होते हुए भी एक बात सबसे अच्छी है कि अन्य युगों में जप तप समाधियों द्वारा भी जो फल प्राप्त नहीं होता वह कलियुग में भक्ति से भगवान का नाम लेने से ही प्राप्त हो जाता है; परन्तु कलियुग के प्रभाव से पंडित आदि लोभी होकर भक्ति का प्रचार न कर अपने स्वार्थ से कथा कीर्तन का धन्धा बनाकर बैठे हैं इसी कारण सब दुख भोग रहे हैं। इसी कारण किसी पर विश्वास न करने से जप, तप, यज्ञ तथा तीर्थों का सार समाप्त हो गया। जब सब लोग भक्ति पूर्वक भगवान का स्मरण करेंगे तब सब दुख दूर हो जाएंगे।

नारद जी के वचनों को सुन भक्ति बोली- आपका दर्शन ही सब सुख का देने वाला है, आप हमारे पुत्रों को स्वस्थ करने की कृपा कीजिए।

नारद जी कहने लगे- भगवान श्री कृष्ण के चरण कमलों का ध्यान करने से तुम्हारा सब दुख दूर हो जाएगा। तुम भगवान को बहुत प्रिय हो। तुम्हारे कारण तो भगवान नीच जनों के भी अनुकूल ही उन्हें दर्शन देते हैं। सतयुग में ज्ञान और वैराग्य से मुक्ति प्राप्त होती थी परन्तु कलियुग में भक्ति ही मुक्ति को देने वाली है। जब भगवान ने तुम्हें बनाया था और

तुमने उनसे आज्ञा मांगी थी कि मैं क्या करूं, तो भगवान ने भक्तों को युद्ध करने की आज्ञा दी थी। तुम्हारे स्वीकार करने पर भगवान ने तुम्हें ज्ञान वैराग्य नाम के सेवक और मुक्ति सेविका के रूप में प्रदान की थी।

तुम्हारा निवास स्थान तो बैकुण्ठ है परन्तु भक्तों का पोषण करने के लिए तुम ज्ञान वैराग्य और मुक्ति के सहित पृथ्वी पर रहती हो। कलियुग में मुक्ति तुम्हारा साथ छोड़कर बैकुण्ठ को चली गई अब तुम्हारे याद करने पर वह तुम्हारे सामने उपस्थित होती है, ज्ञान और वैराग्य के साथ तुम पृथ्वी पर रह रही हो। जब दुराचारियों ने तुम्हें त्याग दिया तभी तुम्हारे यह दोनों पुत्र ज्ञान, वैराग्य वृद्ध और अचेत हो गए और तुम दुर्बल हुईं। अब मैं तुम्हारा घर-घर में सबके हृदय में स्थापन करूंगा जिससे तुम पुष्ट हो जाओगी। नारद जी का उपदेश सुन भक्ति पुष्ट हो गई और नारद जी से विनय पूर्वक बोली- आपने मुझे पुष्ट कर दिया अब मेरे पुत्रों को सचेत करने की कृपा कीजिए।

नारद जी जब उन्हें हाथ से स्पर्श कर उठाने लगे परन्तु तब वह नहीं उठे तो नारद जी ने उनके कान पर मुख रखकर जोर से आवाज दी। तब भी न उठने पर वेद वेदान्त के शब्दों से जगाया, तब वह सचेत हुए और बल पूर्वक उठाने से उठकर खड़े होकर फिर गिर पड़े।

यह देखकर नारद जी विस्मित हो भगवान विष्णु का

का स्मरण करने लगे। उस समय आकाशवाणी हुई कि हे मुनिवर! साहस के साथ परिश्रम करो। जब तुम्हें सन्त जन मिलेंगे और उपदेश करेंगे तब ज्ञान वैराग्य मुक्ति सहित पुष्ट होंगे। आकाशवाणी सुनकर नारद जी भक्ति को धीरज बंधाकर सन्तजनों की खोज में निकले। बहुत खोजने पर भी उन्हें ऐसे सन्त न मिले जो इच्छा पूर्ण कर सकें। तब नारद बद्रिकाश्रम गए, वहीं पर कोटिभानु सम प्रकाशित सनकादि ऋषियों ने नारद जी को दर्शन दिया। तब नारद जी उनसे विनय पूर्वक कहने लगे- आप सर्व शक्तिमान तथा सर्वज्ञ हैं कृपा करके ऐसा उपाय बतलावें जिससे भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को सुख प्राप्त हो और उनका स्थापन हो सके। नारद जी के वचनों को सुनकर सनत्कुमार कहने लगे- हे नारद! तुम सर्व हितकारी हो। इस कारण तुम यह काम अवश्य कर सकते हो। मैं तुम्हें उपाय बतलाता हूं। जिस श्रीमद् भागवत को शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को सुनाया था अब उसी भागवत के सुनने से भक्ति ज्ञान और वैराग्य को शक्ति प्राप्त होगी। कलियुग में सर्व दुखों का नाश करने वाली श्रीमद् भागवत कथा ही है।

नारद जी कहने लगे कि जब वेद वेदान्त के द्वारा ज्ञान वैराग्य पुष्ट नहीं हो सके तो श्रीमद् भागवत में ऐसी क्या विशेषता है? इतना सुनकर सनत्कुमार कहने लगे कि जब व्यास जी मोहित हुए थे तब तुमने उन्हें ब्रह्माजी

द्वारा सुनी हुई चतुःश्लोकी भागवत सुनाई जिससे उनका मोह दूर हुआ था और व्यास जी ने वेद वेदान्त शास्त्र और गीता आदि का सार लेकर श्रीमद् भागवत की रचना की थी। इस कारण श्रीमद् भागवत सबसे उत्तम है और उसी के द्वारा भक्ति ज्ञान और वैराग्य अवश्य सचेत हो जायेंगे आप ऐसा ही करें।

सनत्कुमार बोले- गंगा के तट पर हरिद्वार के निकट भागवत कहना उचित है। वहीं भक्ति, वैराग्य और ज्ञान को बुला लीजिए। मुनियों की आज्ञा पाकर नारद जी आनन्दित हो मुनियों सहित नियत स्थान पर पधारे। श्रीमद् भागवत रूपी अमृत कथा को पान करने के लिए ऋषि, मुनि, तीर्थ, नदी, भक्तजन आदि पधारे। नारद जी ने इस ज्ञान यज्ञ की दीक्षा ले सनत्कुमार को आसन दे ज्ञान यज्ञ आरम्भ किया सनत्कुमार जी ने शुकदेव-परीक्षित सम्वाद रूपी श्रीमद् भागवत के बारह स्कन्धों के अठारह सहस्त्र श्लोक सबको सुनाये। देवता विमान पर बैठकर अम्बर से फूलों की वर्षा करने लगे। यह श्रीमद् भागवत कथा सात दिन में पूर्ण रूप से सुनी जाती है। अन्य युगों में जो फल जप-तप-यज्ञों द्वारा प्राप्त होता था कलियुग में वह फल श्रीमद् भागवत की सात दिन की कथा से प्राप्त होता है। श्रीमद् भागवत में सब दुख, सब पापों को दूर कर सबप्रकार के सुखों को प्रदान करने वाली शक्ति है। जो श्रीमद् भागवत को श्रवण करता है भक्ति उसके

हृदय में निवास करती है। धनी तथा निर्धन सब इसका एक समान लाभ प्राप्त कर सकते हैं। जहाँ भक्ति होती है वहाँ भगवान भी होते हैं। श्रीमद् भागवत की कथा सब प्रकार के दुखों को दूर कर सुखों का संचार करने वाली तथा मुक्ति की देने वाली है।

जब श्रीमद् भागवत की कथा आरम्भ हुई उस समय सबके हृदय शुद्ध हो गए स्वयं भगवान ने सबके हृदय में आकर प्रवेश किया। उस समय नारद जी बोले- हे मुनीश्वरों! सप्ताह यज्ञ से कौन-कौन से लोग पवित्र होते हैं यह बताइए। इतना सुनकर सनत्कुमार कहने लगे- हे नारद! पाखंडी, घमंडी, पापी, दुराचारी, माता, पिता के दोषी, कामी, क्रोधी सभी प्रकार के पापी जब श्रीमद् भागवत को सुनकर पवित्र हो जाया करते हैं। मैं एक पुरातन इतिहास वर्णन करता हूं, सो सुनो। तुंगभद्रा नदी के तट पर सर्वोत्तम नगर में आत्मदेव नाम का एक विद्वान ब्राह्मण रहता था उसकी पत्नी का नाम धुंधली था जो कलह करने वाली तथा दुष्ट स्वभाव की थी। उनके कोई संतान नहीं थी। आत्मदेव इस कारण रात दिन दुखी रहता था। एक दिन वह इसी दुख में घर त्याग कर वन को चला गया। प्यास से दुखी होकर एक तालाब पर जल पीने के लिए बैठ गया। वहाँ एक संन्यासी ने भी आ कर जल पान किया। आत्मदेव दुखी होकर उसके चरणों पर गिरकर विनय करने लगा कि हे प्रभु! मेरे कोई संतान नहीं है, इस कारण मुझे

समाज में अपमानित होना पड़ता है, मैं बहुत दुखी हूं मेरे ऊपर आप कृपा करें। संन्यासी ने ध्यान लगाकर कहा—पुत्र तो तुम्हारे भाग्य में है नहीं। यह सुन आत्मदेव आत्म-हत्या को तैयार हो गया। यह देख संन्थासी को दया आई और उसने एक फल देकर कहा कि इसे अपनी पत्नी को खिला देना। जिससे उसके सन्तान हो जाएगी। इतना कह संन्यासी चला गया। वह ब्राह्मण फल लेकर प्रसन्न होता हुआ अपने घर आया और अपनी पत्नी धुंधली को फल देकर कहने लगा कि यह मुझे एक संन्यासी से प्राप्त हुआ है इसके खाने से पुत्र सुख होगा। फल देकर आत्मदेव कहीं बाहर चला गया। उसकी पत्नी ने फल ले तो लिया परन्तु खाया नहीं। वह अपनी सहेली से कहने लगी गर्भ धारण करने की परेशानियों से तो मेरा बाँझ रहना ही अच्छा है यह सोच कर उसने फल नहीं खाया और गाय को खिला दिया और अपने पति से कह दिया कि मैंने खा लिया।

कुछ दिन में उसकी बहन आई तो उसने उसे सब हाल सुनाया। बहन कहने लगी कि मेरे जो पुत्र होगा मैं तुम्हें दे दूंगी बदले में तुम मुझे कुछ धन दे देना। मैं तुम्हारे बालक का पोषण भी कर जाया करूंगी। कुछ दिन बाद उसकी बहन के पुत्र उत्पन्न हुआ वह उसने धुंधली को दिया। धुंधली ने अपने पति से कहा कि मेरे पुत्र उत्पन्न हुआ है। यह सुनकर आत्मदेव प्रसन्न हुआ

तो उसकी पत्नी कहने लगी- मेरे दूध की कमी है मेरी बहन का पुत्र मर चुका है उसे बुला लें। वह दूध पिलाकर पालन पोषण करेगी। ब्राह्मण ने यह बात मान ली। धुंधली ने अपनी बहन को बुला लिया और वह उस पुत्र का पालन पोषण करने लगी। पुत्र का नाम संस्कार करके उसका नाम धुंधकारी रखा गया।

धुंधकारी बड़े दुष्ट स्वभाव का था। वह वेश्यागामी हुआ। उसने सब धन वेश्याओं को दे दिया। यह देख आत्मदेव बहुत दुखी हुआ और आत्मघात को तैयार हुआ। गौकर्ण ने उन्हें समझाया कि मोह त्याग भगवान का भजन करो श्रीमद् भागवत के दसवें स्कन्ध का पाठ करो जिससे आपका परलोक बने। यह सुनकर आत्मदेव वन को चला गया और भक्ति पूर्वक भागवत के दसवें स्कन्ध का पाठ करने लगा और भगवान को प्राप्त हुआ।

सूतजी कहने लगे, हे ऋषियों! पिता की मृत्यु के बाद धुंधकारी ने अपनी माता को बहुत कष्ट दिया। मार पीट कर सब धन छीन लिया जिससे दुखी हो वह एक कुएँ में गिरकर मर गई।

धुंधकारी अपने घर में पांच वेश्याओं को लाकर रहने लगा। जब सब धन समाप्त हो गया तो वह चोरी करके बहुत धन ले आया। एक दिन वेश्याओं ने सलाह करके धुंधकारी को रस्सियों से बांधकर उसके मुंह पर आग के अंगारे रखकर उसे जलाकर मार डाला

और घर में गड्ढा खोदकर गाड़ दिया और सब धन लेकर भाग गईं।

धुंधकारी इस प्रकार मृत्यु को प्राप्त हो एक बड़ा प्रेत हुआ जो क्षुधा प्यास से दुःखी होकर वायु भक्षण कर विचरता रहता था।

जब गौकर्ण एक दिन सो रहे थे कि आधी रात के समय उन्हें एक भयंकर आकृति का प्रेत दिखाई दिया। जब आवाज देने पर भी वह नहीं बोला तो गौकर्ण ने पानी को मंत्र पढ़ कर उस पर जल के छींटे मारे तब उस प्रेत की आवाज निकली और बोला- मैं तुम्हारा भाई धुंधकारी हूं, मुझे वेश्याओं ने रस्सियों से बांध कर जलाकर मारा इस कारण मैं बहुत भयंकर प्रेत हो गया हूं। मैं बहुत दुखी हूं, मुझे इस योनि से बचाओ। ये सुनकर गौकर्ण विस्मित हो कहने लगे कि मैंने गया में तुम्हारे पिण्ड दिए थे तब भी मुक्ति नहीं हुई। अब धीरज धरो, तुम्हारी मुक्ति का उपाय करूंगा। गौकर्ण ने सूर्य की प्रार्थना की। तब सूर्य नारायण ने कहा कि इसे प्रेत योनि से मुक्ति करने के लिए श्रीमद् भागवत का सप्ताह यज्ञ करो।

गौकर्ण ने सूर्य के वचनों को मानकर सप्ताह यज्ञ आरम्भ किया। उसमें बहुत नर नारी आए। धुंधकारी सात गाँठ के बांस में आकर बैठ गया। पहले दिन पाठ के अन्त में बांस की एक गाँठ फट गई। दूसरे दिन दूसरी गाँठ। इसी प्रकार सातवें दिन सप्ताह की समाप्ति

पर सातवीं गाँठ बांस की फट गई और उसमें से भगवान श्री कृष्ण का रूप धारण किये हुए वह धुंधकारी प्रकट होकर गौकर्ण को प्रणाम कर कहने लगा कि तुम्हारी कृपा से मैं आज प्रेत योनि से मुक्त हो गया। उस समय भगवान का पार्षद विमान लेकर आया और उसमें धुंधकारी को बिठाया।

गौकर्ण ने पार्षद से कहा कि यहां तो भागवत की कथा सुनने वाले बहुत नर नारी थे; विमान अकेले धुंधकारी को क्यों लेने आया? पार्षद बोले कि सबने श्रीमद् भागवत को भक्ति पूर्वक नहीं सुना। धुंधकारी ने भक्ति पूर्वक ध्यान लगाकर सुना इस कारण यह भगवान को प्राप्त हुआ।

गौकर्ण ने जब दूसरी बार सावन मास में श्रीमद् भागवत यज्ञ किया। सब नारियों तथा पुरुषों ने प्रेम से कथामृत पान किया इस कारण भगवान द्वारा अनेकों विमान वहां आये और सब नर नारी श्रीमद् भागवत के श्रवण करने से श्रीकृष्ण के रूप को धारण करके भगवान को प्राप्त हो गए।

सप्ताह पाठ की विधि

आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, क्वार, कार्तिक तथा अगहन इन छः महीनों में जब शुभ मुर्हूत हो सप्ताह यज्ञ करावे तो अति उत्तम है। स्थान घर, वन या तीर्थ कहीं भी हो परन्तु इतना ध्यान रखे कि अधिक संख्या में

आदमी वहां एकत्र हो सकें। स्थान शुद्ध साफ होना चाहिए। उसे मंडप बनाकर कदली खम्भों तथा बंदनवार से सजाना चाहिए। वेदिका की उत्तर दिशा में सात लीक बनाकर विरक्त ब्राह्मणों को बिठलाना चाहिए। इससे प्रथम जहां तक हो सके सभी लोगों को यज्ञ में आमन्त्रित करना चाहिए। सबको उचित आसन् देना चाहिए। वक्ता को सुन्दर और ऊंचे आसन पर उत्तर की ओर मुंह करके तथा श्रोता को पूर्व की ओर मुंह करके बैठाना चाहिए। वक्ता विद्वान विरक्त ब्राह्मण हो उसकी सहायता को दूसरा पंडित भी बिठावें जो विद्वान और दृष्टान्त देने वाला हो। सब सुनने वालों को दीक्षा लेना आवश्यक है। वक्ता को उचित है कि एक दिन पहले क्षौर कर्म करावें। गणेश और पितर आदि का पूजन तथा तर्पण करे। मंडप में भगवान की मूर्ति विराजमान कर षोडष प्रकार से पूजन करे। पूजन कर वस्त्र आदि भेंट दे आसन पर बैठ कर भागवत का पूजन कर बाद में कथा आरम्भ करे। श्रोताओं को चाहिए कि वह प्रेम और भक्ति के साथ श्रवण करें। कथा सूर्योदय से साढ़े तीन पहर सुनाने के पश्चात दो घड़ी विश्राम करना चाहिए। श्रोताओं को एक बार दुग्ध चावलों का आहार करना चाहिए।

भागवत सप्ताह की कथा का विधान इस प्रकार है कि दीक्षा लेने वाला ही कथा श्रवण करने का अधिकारी है। कथा सुनने वाले को ७ दिन ब्रह्मचर्य

व्रत पालते हुए पृथ्वी पर शयन करना चाहिए। किसी की न तो निंदा करे। न अपवित्रों से भाषण करे। कथा सुनकर उद्यापन करे। इतना कहकर सनत्कुमार ने नारद को कथा सुनाना आरम्भ किया।

— ० —

श्रीमद् भागवत महापुराण

★ प्रथम स्कन्ध प्रारम्भ ★

सूत शौनकादिक सम्वाद

श्रीमद् भागवत की रचना करते समय सर्व प्रथम व्यास जी ने परब्रह्म की विनय की है। उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय करने वाले, स्वयं वेदों को प्रकाशित करने वाले परम पिता परमात्मा को हम नमस्कार करके श्रीमद् भागवत में परम हंसों के कल्याणकारी परम तत्व का वर्णन करते हैं। श्रीमद् भागवत के पठन पाठन से भगवान प्रसन्न हो अन्तःकरण में निवास करते हैं। श्रीमद् भागवत कल्प वृक्ष रूपी वेद का फल है जिसे शुकदेवजी ने मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए पृथ्वी पर अपने मुख से प्रकट किया है। विद्वान चतुरजनों से प्रार्थना है कि इसका हर हृदय में संचार करें।

एक समय शौनकादि अठ्ठासी हजार ऋषि नैमिष क्षेत्र में भगवान को प्राप्त करने की कामना से सहस्त्र वर्ष का यज्ञ कर रहे थे। उस सयय सूत जी वहाँ पधारे। ऋषियों ने सम्मान पूर्वक सूतजी को उच्चासन पर बिठाया और विनय पूर्वक कहने लगे- आपने सब पुराणों तथा शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके शिष्यों को

शिक्षा दी है। आप कृपा करके भगवान श्रीकृष्ण के लीला अवतार की कथा सुनायें जो कि सब प्रकारपुराणों तथा शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके शिष्यों को शिक्षा दी है। आप कृपा करके भगवान श्रीकृष्ण के लीला अवतार की कथा सुनायें जो कि सब प्रकार से सुख देने वाली है। हम कलियुग में इसी कथा को सुनने तथा हरिचर्चा को एकत्र हुए हैं अब आपके पधारने से हमारी सब आशायें पूर्ण हो जाएंगी। जब धर्म की रक्षा करने वाले भगवान श्रीकृष्ण परमधाम को चले गए उसके पश्चात धर्म की क्या दशा हुई आप इन सब बातों का वर्णन करें।

सूत जी ने जब इस प्रकार शौनकादि ऋषियों के वचन सुने तो अति प्रसन्न होकर प्रेम पूर्वक बोले- कि तुम्हें धन्य है जो ऐसा प्रश्न किया है हम प्रथम उन शुकदेव जी को प्रणाम करते हैं जो बिना यज्ञोपवीत संस्कार के ही बालक रूप में घर से वन को चले गये और व्यास जी मोहित हो कर उनके पीछे भागे। उस समय उन्होंने वृक्षों में विलीन हो व्यासजी को उपदेश दिया कि यह संसार झूठा है। न कोई किसी का पुत्र है और न माता। इससे व्यास जी का मोह दूर हुआ।

जिन्होंने अमृत रूपी कल्याणकारिणी मोक्ष दायिनी श्रीमद् भागवत कथा सुना कर मनुष्य मात्र का बड़ा कल्याण किया हम उन महात्मा शुकदेव जी को प्रणाम करते हैं।

भगवान के 24 अवतारों का वर्णन

सूतजी कहने लगे कि जब परब्रह्म परमात्मा ने सर्व प्रथम सृष्टि रचने की इच्छा की तो महतत्व अहंकार (पांच महाभूत और ग्यारह इन्द्रियों) से पुरुष रूप धारण किया। जब प्रलय में जल ही जल हो जाता है तब वह भगवान योगनिद्रा से शेष शय्या पर सो जाते हैं। तदनन्तर उनकी नाभि से कमल और कमल से ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं। ब्रह्मा से मरीचि आदि ऋषि तथा उनसे देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि उत्पन्न होते हैं। भगवान के मुख्यतः २४ अवतार माने गए हैं। पहला अवतार 'सनकादि' ऋषियों का हुआ जिन्होंने ५ वर्ष की आयु में ही तप धारण किया। दूसरे अवतार में 'वाराह' जी बनकर पाताल से पृथ्वी को लाए। तीसरा अवतार 'नारदजी' का धारण कर पञ्चतत्व की रचना की। चौथे अवतार 'नारायण' का रूप धारण कर तपस्या का मार्ग प्रशस्त किया। पांचवाँ अवतार 'कपिल' मुनि का धारण कर सांख्य शास्त्र द्वारा परमात्मा का ज्ञान कहा। छठे अवतार ने 'दत्तात्रेय' बनकर प्रह्लाद आदि को आत्मविद्या का ज्ञान दिया। सातवें अवतार में 'यज्ञ' बनकर यज्ञ का मार्ग दिखाया। आठवें अवतार में 'ऋषभ देव' बन परमहंसों का मार्ग प्रशस्त किया। नवें अवतार में 'प्रथुवन' बनकर पृथ्वी का दोहन किया। दसवें 'मत्स्य' का रूप धारण कर वैवस्वत मनु की रक्षा

की। ग्यारहवें अवतार में 'कच्छप' का रूप धारण कर सिन्धु मंथन के समय मंदराचल का भार अपनी पीठ पर धारण किया। बारहवां अवतार 'धनवन्तरि' का धारण कर अमृत पात्र ले सिन्धु से प्रकट हुए। तेरहवें अवतार में 'मोहिनी' रूप धारण कर देवताओं को अमृत पिलाकर दानवों से रक्षा की। चौदहवां अवतार 'नरसिंह' का धारण कर हिरनाकुश को मारकर धर्म की रक्षा की। पन्द्रहवां अवतार 'वामन' तथा सोलहवां 'परशुराम' का धारण कर भूमि का भार उतारा। सत्रहवां अवतार 'व्यास जी' का धारण किया। अठारहवां अवतार 'श्रीराम' तथा उन्नीसवां 'श्रीकृष्ण' का धारण कर भूमि का भार उतारा। इक्कीसवां 'बुद्ध' बाईसवां 'हयग्रीव' तथा तेईसवां 'हंस' अवतार धारण किया। चौबीसवां अवतार कलियुग में 'कल्कि' अवतार के नाम से होगा।

वेद व्यास जी का 'भागवत' बनाना

पाराशर के पुत्र श्री व्यासदेव जी ने कलियुग को आया देखकर, सर्व कल्याण की भावना से वेद को चार भागों में विभक्त किया और उनसे पांचवां वेद इतिहास पुराण बनाया। पैल ऋषि ऋग्वेद के, जैमिनी सामवेद के, वैश्म्पायन यजुर्वेद के तथा सुमन्त मुनि अथर्व वेद के ज्ञाता हुए। मेरे पिता रोम हर्षन इतिहास पुराणों के ज्ञाता हुए। सबने अपने शिष्यों को वेदों

पुराणों की शिक्षा दी जिनसे इनका प्रचार हुआ फिर व्यास जी ने महाभारत बनाया परन्तु उससे भी सन्तुष्ट न होने पर एक दिन विचार मग्न बैठे हुए थे। उस समय नारद जी वीणा बजाते हुए हरिगुण गान करते वहां आए।

व्यास जी को विचार मग्न देखकर नारद जी ने उनके दुःख का कारण पूछा। व्यास जी बोले- मैंने इतिहास, पुराण, महाभारत की रचना की परन्तु मेरा चित्त सुखी नहीं हुआ। आप मेरे दुःख को दूर करने का उपाय बतावें। नारद जी बोले- आपने पुराणों तथा महाभारत में धर्म का निरूपण किया है परन्तु मनुष्य मात्र को सच्चा सुख भगवान की भक्ति के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। मैं पहले एक दासी का पुत्र था महात्माओं की सेवा करता था। महात्मा चतुर्मास मेरे यहां विश्राम करते थे। मैंने उनसे भगवान के साकार अवतार की महिमा सुनी जिससे मेरे हृदय में भगवान की भक्ति उत्पन्न हुई। फिर सन्तों ने मुझे उसका पात्र समझ, भगवान की भक्ति का उपदेश दिया। भगवान की प्रीति होने पर भगवान ने भक्ति से प्रसन्न होकर मुझे बुद्धि दी जिससे मुझे ज्ञान उत्पन्न हुआ। भगवान की भक्ति ही अंतःकरण शुद्ध करने वाली तथा मोक्ष देने वाली है। इस कारण अब तुम दुखी लोगों के दुखों को दूर करने के लिए भगवान की सगुण लीलाओं का वर्णन करो जिससे सबमें भगवान की भक्ति उत्पन्न हो

और सबका कल्याण हो।

नारद जी के पूर्व जन्म की कथा

जब व्यास जी ने नारदजी से हरि भक्ति की महिमा सुनी तो कहने लगे कि जब आपको महात्मागण उपदेश देकर चले गये उसके बाद में आपने जीवन को किस प्रकार व्यतीत किया तथा आपको पूर्व जन्म की बातें किस प्रकार याद रहीं? यह बताने की कृपा करें। नारदजी बोले- जब महात्मा लोग चले गए उसके बाद एक दिन मेरी माता गाय का दोहन करने गई। उस समय वह सांप के काटने से मर गई। मैं उनका बिना मुंह देखे उत्तर दिशा को चला गया। बहुत दूर जाकर एक नदी में स्नान करने पर मेरे हृदय का दुःख दूर हो गया। वहाँ एक पीपल के नीचे ध्यान लगाकर बैठ गया तो भगवान ने दर्शन दिए। जब पुनः भगवान का रूप दिखाई नहीं दिया तो मैंने दुःखी होकर फिर ध्यान को स्थिर किया। तब आकाशवाणी हुई कि मैंने अपना रूप तुम्हें अपने में लगाने को दिखाया था अब तुम संतजनों की सेवा करो। इस शरीर को त्याग कर पार्षद बनोगे, मेरे वरदान से तुम्हें अपनी बातें याद रहेंगी। यह आकाशवाणी सुनकर मैं संतों में विचरण करता रहा और मेरा वह शरीर छूट गया। कल्पान्तर में जब नारायण शयन कर रहे थे तो उनकी सांस के साथ मैं उनके उदर में प्रवेश कर गया। योगनिद्रा से जाग कर

जब भगवान ने मरिचादि ऋषियों को उत्पन्न किया तो मैं उनके प्राणों से उत्पन्न हुआ और संसार में विचरण करने लगा। भगवान की कृपा से मुझे हर स्थान पर जाने की शक्ति प्राप्त है। मैं हर स्थान पर विचरण करता हुआ हरि गुणगान करता हूं। संसार सिन्धु से पार जाने को हरि गुणगान ही एक नौका है। अब मैं जहां भी भगवान को याद करता हूं वहीं मुझको दर्शन देते हैं। हे व्यास जी—भगवान के गुणगान और भक्ति से चित्त शांत होता है, काम, क्रोधादि पास नहीं आते। इस कारण अब तुम भी मन में ऐसा ही निश्चय करो जिससे चित्त को शान्ति प्राप्त हो। नारद जी इस प्रकार व्यास जी से कहकर वीणा बजाते हरिगुण गाते हुये वहां से प्रस्थान कर गये।

परीक्षित के जन्म की कथा

शौनक जी ने पूछा, हे सूत जी! जब नारद जी व्यास जी से बातचीत कर चले गये तो व्यास जी ने क्या किया? सूतजी कहने लगे— ब्रह्म नदी के तट पर आश्रम में शय्या पर विराजमान होकर व्यास जी ने भगवान का ध्यान लगा कर उनका दर्शन किया और इसके बाद उन्होंने श्रीमद् भागवत को बनाया जो कि सब सुख तथा मोक्ष की देने वाली है। व्यास जी ने शुकदेव जी को श्रीमद् भागवत को पढ़ाया। यहां अब पहले परीक्षित के जन्म की कथा का वर्णन करते हैं।

जब भीम ने गदा से दुर्योधन की जांघें तोड़ दीं उसके बाद में अश्वत्थामा ने सोते हुए द्रोपदी के पांचों पुत्रों को मार डाला जिसे सुनकर द्रोपदी बहुत दुःखी हुई और कहने लगी कि जब तक मैं अश्वत्थामा को जीवित या मृतक रूप में नहीं देख लूंगी तब तक मेरे चित्त का दुःख दूर न होगा। द्रोपदी के दुःख को देख भीम अश्वत्थामा के मारने की प्रतिज्ञा कर चले गये और अश्वत्थामा को ढूंढ लिया। अर्जुन भी रथ में सवार हो भीम के साथ थे। श्रीकृष्ण भी अर्जुन के साथ थे। अश्वत्थामा ने भयभीत हो ब्रह्मास्त्र छोड़ा। श्रीकृष्ण के कहने से अर्जुन ने भी ब्रह्मास्त्र छोड़कर अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र को रोका। दोनों ब्रह्मास्त्र टकराने से एक आग प्रज्वलित हुई। नारद और व्यास ने आकर उनको समझाया तो अर्जुन ने अपना ब्रह्मास्त्र वापस लौटा लिया। अश्वत्थामा नहीं लौटा सका पर उसने व्यासजी के कहने से पांडवों पर गिरने से रोक दिया और कहा कि यह ब्रह्मास्त्र अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा के गर्भ पर पड़ेगा। भीम-अर्जुन अश्वत्थामा को द्रोपदी के पास पकड़ लाये फिर द्रोपदी के कहने पर अश्वत्थामा को छोड़ तो दिया परन्तु उसके सिर की मणी को बालों समेत भीम ने तलवार से काट लिया और अश्वत्थामा को अपमानित कर छोड़ दिया।

श्रीकृष्ण द्वारा उत्तरा के गर्भ की रक्षा

सूतजी कहते हैं कि जब पांडव मृतकों को जलांजलि दे चुके तब भगवान श्रीकृष्ण ने उपदेश देकर सबको शान्त किया। उस समय उत्तरा रुदन मचाती हुई बोली कि रक्षा करो, रक्षा करो। भगवान श्रीकृष्ण समझ गये कि अश्वत्थामा का ब्रह्मास्त्र उत्तरा के गर्भ को खंडित करने आ रहा है इसलिये ही उन्होंने अपने सुदर्शन चक्र द्वारा उस गर्भ की रक्षा की। इसके बाद जब श्रीकृष्ण द्वारका जाने का विचार करने लगे तो कुन्ती प्रेम विभोर हो गई और उसने और कुछ समय तक श्रीकृष्ण से रुकने का आग्रह किया जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने स्वीकार कर लिया। कुछ दिन रुकने के पश्चात जब जाने का विचार किया तो युधिष्ठिर ने रोक लिया। उस समय युधिष्ठिर को वैराग्य प्राप्त हुआ और कहने लगे कि मैंने राज्य लोभ से सुहृदयों का संहार कराया है अब मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। मैं राज्य नहीं करूंगा। तब भगवान श्रीकृष्ण युधिष्ठिर को समझाकर भीष्म पितामह के पास ज्ञान शिक्षा के लिये ले गये।

शौनक जी कहने लगे हे सूतजी! जब अश्वत्थामा के छोड़े हुए ब्रह्म अस्त्र से उत्तरा के गर्भ की भगवान श्रीकृष्ण ने रक्षा की तो वह किस प्रकार उत्पन्न हुए तथा उनके जीवन चरित्र के विषय में बतलाइये और उनके मृत्यु का कारण भी बतायें। शौनकादि ऋषियों की

बात सुनकर सूत जी कहने लगे। हे ऋषियों! भगवान श्रीकृष्ण के चरण कमल हृदय में धारण कर उनकी कृपा कटाक्ष से धर्मराज युधिष्ठिर शासन का कार्य चलाने लगे परन्तु उन्हें श्रीकृष्ण जी की याद आती थी और उनका चित्त राज-काज में नहीं लगता था। उस समय अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा गर्भवती थी। जब उसका गर्भ अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र द्वारा खंडित होने लगा तो उत्तरा को दिखाई दिया कि कोई श्यामल शरीर वाला, स्वर्ण मुकुट तथा कुण्डलों से सुशोभित, बिजली के समान चमकते हुये पीत वसन धारण किये हुए, लम्बी भुजाओं वाला, जिसके नेत्र लाल वर्ण के थे तथा अंगूठे के बराबर उसका आकार था, अग्नि के समान प्रज्जवलित गदा धारण किये हुए, गदा को घुमाकर ब्रह्म तेज को नष्ट कर रहा है। जब ब्रह्मास्त्र का तेज नष्ट हो गया तो गर्भ का बालक विचार करने लगा कि यह तेजवान पुरुष कौन है जिसने इस ब्रह्म तेज को नष्ट किया है? दस महीने निरन्तर वह बालक उस तेजवान पुरुष का गर्भ में दर्शन करता रहा। उसके बाद वह अन्तर्ध्यान हो गया और गर्भ से एक सुन्दर तथा बलवान पुत्र का जन्म हुआ। धर्मराज युधिष्ठिर ने बहुत खुशी मनाई और गऊ, स्वर्ण, हाथी, घोड़े, धन आदि ब्राह्मणों को दान दिये। नामकरण संस्कार के समय ब्राह्मणों ने बताया कि यह कुरुवंश में बहुत शक्तिशाली तथा उत्तम राजा होगा।

स्वयं भगवान ने इसके गर्भ की रक्षा की है तो ये गऊ, द्विज, देव तथा विष्णु का बड़ा भक्त, धनुर्धर, पराक्रमी, दानी, क्षमाशील, उदार, यशस्वी तथा सबका शुभचिन्तक और प्रजा पालक होगा। अश्वमेध यज्ञ करेगा, कलियुग को दंड देने वाला होगा तथा वृद्धजनों का बहुत सम्मान करने वाला होगा। एक ऋषि पुत्र इसे तक्षक नाग द्वारा डसने का श्राप देगा जिससे भयभीत हो यह गंगाजी पर हरि स्मरण करने जायेगा वहां श्री शुकदेव जी आकर श्रीमद् भागवत सप्ताह की कथा सुनावेंगे जिससे यह मोक्ष को प्राप्त होगा।

यह जीवन भर गर्भ में देखे हुए उस पुरुष की प्रतीक्षा करेगा कि मुझे गर्भ में दर्शन देने वाला कौन पुरुष है? इसी कारण इसका नाम परीक्षित होगा। धीरे-धीरे परीक्षित बड़ा होने लगा। पंडितों के कहने के अनुसार वह बड़ा बलवान, उदार और धैर्यवान तथा धर्म का रक्षक हुआ। युधिष्ठिर को लोगों ने बताया कि तुमने बहुत बड़ा नर संहार किया है इससे बड़ा पाप लगा है इसे दूर करने के लिए अश्वमेध यज्ञ करना आवश्यक है। राजा युधिष्ठिर ने विद्वानों की सलाह मान कर यज्ञ करने का विचार किया और उसके लिये बहुत से स्वर्ण और धन की आवश्यकता थी। लोगों ने युधिष्ठिर को बतलाया कि प्राचीन समय में उत्तर दिशा में राजा मरु ने यज्ञ किया था उसका बहुत स्वर्ण और धन वहां पड़ा है उसे मंगाने से सब काम सरल हो जायेगा। युधिष्ठिर ने

अर्जुन और भीम को उसे लाने की आज्ञा दी। भीम और अर्जुन ने वहां से बहुत सा सोना और धन ले आये। उसके बाद में धर्मराज युधिष्ठिर ने बहुत बड़ा अश्वमेध यज्ञ किया और याचकों तथा ब्राह्मणों को मनमाना दान देकर उन्हें सन्तुष्ट किया और हरि पूजन किया जिससे उन्होंने बहुत सम्मान पाया।

विदुर गाँधारी और धृतराष्ट्र का हिमालय गमन

सूतजी बोले कि जब विदुर तीर्थ यात्रा के लिए चले गये थे तो उन्होंने बहुत से तीर्थ स्थानों में विचरण किया। सन्तों का सत्संग किया, उसके बाद मैत्रेयजी के आश्रम पर गये। विदुर जी के हृदय में जो शङ्कायें थीं वह सब उन्होंने प्रकट कीं। मैत्रेयजी ने अपने उपदेशों द्वारा ऐसा उत्तर दिया जिससे विदुर जी की सब शङ्कायें दूर हो गयीं और उन्हें ज्ञान हो गया। विदुरजी विचरण करते हुए हस्तिनापुर आये। धर्मराज ने विदुरजी का आगमन सुन स्वजनों सहित उनका स्वागत किया और सम्मानपूर्वक अपने साथ ले आये।

युधिष्ठिर विदुरजी से कहने लगे कि आपने हमारा पालन-पोषण किया। माता और भाइयों सहित हमें बहुत से संकटों से बचाया। जब आप हमें छोड़ करके चले गये थे। हमें आपकी बहुत याद आती थी। आज आपके दर्शन कर हमें बहुत सुख हुआ। अब बताओ

कि कौन-कौन से तीर्थों को गये। हमारे परम हितैषी यदुवंशियों का समाचार भी सुनाओ कि वह कुशलपूर्वक तो हैं।

विदुरजी ने प्रेमपूर्वक युधिष्ठिर को अपनी सब तीर्थ यात्रा का हाल सुनाया परन्तु यदुवंशियों का कोई भी समाचार नहीं सुनाया क्योंकि जब कोई अपने हितैषी का अप्रिय समाचार सुनता है तो वह बहुत दुःखी होता है। विदुर जी ने धृतराष्ट्र का हित करने के लिए अब वहीं निवास किया।

विदुरजी धर्मराज के अवतार थे उन्हें एक बार एक ऋषि ने शाप दे दिया था कि तुम सौ वर्ष तक शूद्र की योनि में जीवन बिताओगे इसी कारण यहाँ धर्मराज ने विदुर के रूप में अवतार धारण किया था। अब १०० वर्ष पूरे होने वाले थे। विदुरजी ने विचार किया कि अब कलियुग आने वाला है और पांडवों का भी काल आने वाला है इसलिए वह धृतराष्ट्र को समझा कर कहने लगे- हे भ्राता! देखो अब तुम्हारा अन्त समय आ गया है और पांडवों का भी अन्त समय ही है। तुमने पांडवों को बहुत दुःख दिया। लाख के भवन में जलाने का प्रबंध किया। द्रोपदी का सभा में अपमान किया अतः अब तुम्हें उन पांडवों के आश्रित जीवन व्यतीत करना उचित नहीं। तुम्हारे तो सब पुत्र समाप्त हो गये हैं, पांडव भी समाप्त हो जायेंगे इसलिए अब उचित है कि तुम हिमालय पर चलकर तप द्वारा परमात्मा को

प्राप्त करो। विदुर जी की बात धृतराष्ट्र की समझ में आ गई और वह गाँधारी सहित रात में घर से निकल कर विदुर के साथ वन को चले गये।

अगले दिन जब युधिष्ठिर नित्य की भांति उन्हें देखने गये तो वहां धृतराष्ट्र, गाँधारी तथा विदुरजी दिखाई न पड़े तो उन्होंने संजय से पूछा- हे संजय! हमारे ताऊ धृतराष्ट्र, माता गाँधारी और चाचा विदुरजी कहां गये। इतनी बात सुनकर संजय रोने लगे और कहने लगे कि मुझे किसी का कुछ पता ही नहीं, न जाने कहाँ चले गये, मुझे विदुर ने धोखा दिया। संजय के वचन सुनकर युधिष्ठिर बहुत दुःखी हुये और उन्होंने अपने अनेक दूत उनका पता लगाने को भेजे परन्तु कहीं पता नहीं चला।

युधिष्ठिर, विदुर, गाँधारी और धृतराष्ट्र की याद करके बहुत दुःखी होते थे कि एक समय नारद जी आये। युधिष्ठिर ने उनकी सेवा की और विनय पूर्वक कहने लगे। हे देवर्षि! आप तीनों लोकों का सब कुछ देखने वाले हैं। आप कृपा करके मुझको इतना बतायें कि मेरे ताऊ धृतराष्ट्र, गाँधारी और विदुर कहाँ हैं। मैं उनके बिना बहुत चिन्तित और व्याकुल हूं, न जाने वह अपना समय किन संकटों से व्यतीत करते होंगे?

युधिष्ठिर के वचनों को सुनकर नारदजी कहने लगे। हे कुरुनन्दन! अपने हृदय से शोक को निकाल दो। माया मोह में लिप्त होना ठीक नहीं। ज्ञानी पुरुष

को यह मानना चाहिये कि संसार का कर्त्ता एक ही पारब्रह्म परमात्मा है। वही हर प्राणी में आत्मा रूप में विराजमान रहता है। अनेक रूप देखने के हैं, वास्तव में वह एक ही परमात्मा सब में है। आत्म, आत्मा में भेद नहीं मानना चाहिए और न उसे कुछ सुख दुःख ही प्राप्त होता है वह परमात्मा ही जगत का पालक है।

इस समय धृतराष्ट्र, गाँधारी और विदुर सहित हिमालय के दक्षिण भाग में आश्रम पर रह रहे हैं। वह अब परमात्मा के चिन्तन में रहते हैं। उनके अब रजोगुण तथा तमोगुण समाप्त हो गये। काम क्रोधादि सब उनसे दूर रहते हैं उन्हें अब भूख प्यास किसी वस्तु की इच्छा नहीं सताती। इस प्रकार वह विदुर की कृपा से परमात्मा को प्राप्त कर चुके हैं। उनकी तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो।

आज से पाँचवे दिन धृतराष्ट्र का शरीरान्त हो जाएगा, वह परमात्मा को प्राप्त हो जायेंगे। यदि तुम चाहो तो मैं उनके शरीर को यहां ला दूँ परन्तु उससे लाभ क्या? विचार करो कि उसके लाने से कोई लाभ न होगा। वह साधवी पतिव्रता अपने पति के साथ अपना जीवन समाप्त कर देगी। आपकी इच्छा हो तो मैं विदुर जी को भी यहां ला सकता हूं परन्तु लाभ इसमें भी कुछ नहीं होगा। विदुर जी भी गाँधारी और धृतराष्ट्र के वियोग में दुःखी होकर तीर्थ यात्रा करने के लिए तीर्थ स्थानों को चले जायेंगे। यह सब कुछ देखकर तुम्हें

फिर और भी दुःख ही होगा। इस कारण तुम्हें अपने हृदय में उनका किसी भी प्रकार का सोच नहीं करना चाहिए। नारद मुनि के उपदेश से धर्मराज युधिष्ठिर के हृदय का सब दुःख और संदेह दूर हो गया और उनका चित्त शांत हो गया। उपदेश देकर नारदजी अपने लोक को चले गये।

युधिष्ठिर का दुखद स्वप्न देखना और अर्जुन का द्वारका से आना

सूतजी बोले- युधिष्ठिर ने अर्जुन को भगवान कृष्ण का समाचार लाने के लिये द्वारका भेजा था। उनको गये हुये सात मास व्यतीत हो गये थे परन्तु वह लौटकर वापस नहीं आये थे।

इन दिनों युधिष्ठिर ने नये-नये उत्पात देखे, उन्हें खराब स्वप्न दिखलाई देते थे। युधिष्ठिर ने देखा अब समय की गति बदलने लगी है। ऋतुओं ने अपना धर्म बदल दिया है। मनुष्यों में पापाचार बढ़ गया है। कपट बढ़ गया। मनुष्य लोभ के वशीभूत हो अनुचित काम करने लगे हैं। यह सब कुछ देखकर धर्मराज युधिष्ठिर दुःखी हुए और भीम से कहने लगे- हे भैया भीम! सात महीने व्यतीत हो चुके, अर्जुन अभी द्वारका से नहीं आये। मुझे बहुत अपशकुन दिखाई पड़ते हैं। बायीं भुजा, बायीं आंख तथा बायीं जांघ फड़क रही हैं। हृदय भी कांपता है। ऐसा प्रतीत होता है कि शीघ्र ही

कोई अशुभ फल प्राप्त होने वाला है। हे भीम! कुत्ते रो रहे हैं। गऊ आदि श्रेष्ठ पशु मेरे बायीं तरफ होकर जाते हैं। गधा आदि दाहिने होकर निकलते हैं, दिशाओं में धूल छाई हुई है। उल्लू कर्कष स्वर से भयावनी आवाज में बोल रहे हैं। जिसको सुनकर हृदय कंपायमान होता है। घोड़ों की आंखों से आंसू निकल रहे हैं। पृथ्वी पर्वतों सहित हिलती है। आकाश में आग सी लगी हुई दिखलाई पड़ रही है। बिना बादलों के ही भयंकर मेघों जैसी गर्जन सुनाई देती है। बज्रपात हो रहे हैं। इन सब अपशकुनों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि अब भगवान के चरण पृथ्वी से उठ गये।

युधिष्ठिर इस प्रकार भीम से बातचीत कर रहे थे उसी समय वहां पर अर्जुन भी आ गये। अर्जुन ने आंखों से आंसू बहाते हुए युधिष्ठिर के चरणों पर गिरकर प्रणाम किया। उस समय युधिष्ठिर ने अर्जुन को देखा। मुख कान्तिहीन है। उनका शरीर कांप रहा है आंखों से आंसू बरस रहे हैं। ऐसी दशा अर्जुन की देखकर युधिष्ठिर का हृदय कांप गया और दुःखी होकर कहने लगे- हे भैया अर्जुन, मौन क्यों हो? तुम्हारा यह हाल कैसे हुआ है? क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया है जो इतने व्याकुल दिखाई दे रहे हो?

मुझे श्रीकृष्ण की कुशलता बताओ। हमारे नाना सूरसेन और मामा वासुदेव आनन्दपूर्वक हैं तथा उनके भाई तो सुखी हैं? हमारी देवकी तथा अन्य मामियां

सकुशल तो हैं। अपने भाइयों सहित राजा उग्रसेन तो प्रसन्न हैं? भैया बलराम तथा अनिरुद्ध आदि सभी यदुवंशियों की कुशलता सुनाकर कहो।

श्रीकृष्ण का गौ लोक गमन

सूत जी बोले—युधिष्ठिर के वचनों को सुनकर अर्जुन दुःखी होकर कहने लगे- हे भ्राता! आज मैं भगवान से वंचित हो गया। मुझे अब कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। आज उनके बिना मैं तेजहीन हो गया हूं। उन्हीं की कृपा से मैंने स्वयंवर में अनेकों नरेशों का मान मर्दन करके द्रोपदी से विवाह किया था। उन्हीं की कृपा से मैंने इन्द्रादिक देवताओं को विजय कर खाण्डव वन में अग्नि को संतुष्ट किया था। उन्हीं की कृपा से मय दानव द्वारा आपको यह सभा प्राप्त हुई थी। उन्हीं की कृपा से राजा बलि जैसों में सम्मान प्राप्त हुआ था, उन्हीं की कृपा से भीम ने जरासन्ध को मारा था, उन्हीं ने द्रोपदी की लाज बचा कर वन में बुनीस्त्र के कोप से रक्षा की थी, उन्हीं की कृपा से मैंने शङ्कर से युद्ध कर पशुपति अस्त्र प्राप्त किया था, उन्हीं की कृपा से मैंने इन्द्रलोक में सम्मान पाया तथा निवाच्च कवचों को मार कर गांडीव धनुष की प्राप्ति की व उन्हीं की कृपा से महाभारत में अनेकों महारथी संहारे। आज वही भगवान कृष्ण मुझे छोड़कर चले गये। उन्होंने सदा हमारी रक्षा की और हम पर दयालु रहे। यह समस्त

वैभव और सम्मान मुझे सब उन्हीं ने दिलाया। आज अकेले उनके बिना मैं तेजहीन हो गया। मेरी शक्ति सामर्थ्य सब समाप्त हो गई। मैं अब किसी योग्य नहीं रहा। मैं जब श्रीकृष्ण की रानियों को लेकर आ रहा था उस समय भील लोगों ने आकर घेर लिया। मैंने उनसे संग्राम करना चाहा। मेरे पास गाण्डीव धनुष, वो ही तरकश और वही बाण थे परन्तु बिना भगवान श्रीकृष्ण के मैं कुछ नहीं कर सका। मेरे धनुष-बाण शक्ति सामर्थ्य कुछ भी काम नहीं आई। भीलों ने रानियों को लूट लिया और मैं खड़ा-खड़ा असहायों की भांति देखता ही रह गया।

हे भ्रातृवर! यह सब ईश्वर की लीला है। ब्राह्मण, ऋषि वंशज सब यदुवंशी परस्पर प्रभास क्षेत्र में लड़कर मर गये। इस प्रकार यदुवंशी के भार को भूमि से उतार कर भगवान कृष्ण भी अपने लोक को पलायन कर गए। अब यदुवंशी में नाम को दो चार ही शेष रहे होंगे। मैं अनिरुद्ध पुत्र बज्र को लेकर यहां आपके पास आया हूं।

इस प्रकार यदुवंश का संहार और श्रीकृष्ण का परमधाम पलायन सुनकर युधिष्ठिर बहुत दुःखी हुए और उन्होंने समझ लिया अब कलियुग आ गया है। अपने स्वजनों की दुःख कथा सुनकर कुन्ती ने अपना शरीर त्याग दिया।

युधिष्ठिर ने अपने सब भाईयों से विचार कर

अभिमन्यु सुत परीक्षित को ज्ञान उपदेश तथा राजनीति की शिक्षा देकर उसे हस्तिनापुर के राजसिंहासन पर बिठाया और उसको राजा बनाकर उसका राज-तिलक कर दिया।

मथुरा का राज वज्र को दिया फिर इसके बाद में संसार से मोह तोड़ कर पांचों भाई द्रोपदी सहित हिमालय पर तप करने चले गये। द्रोपदी, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव तो तप करते हुए हिमालय में गल कर स्वर्ग चले गये और राजा युधिष्ठिर सदेह स्वर्ग चले गये। पांडवों के स्वर्ग गमन का वृत्तान्त जो पढ़ता है और सुनता है वह मंगल प्राप्त करता है।

परीक्षित की दिग्विजय

सूतजी बोले- राजा होने के बाद परीक्षित ने ब्राह्मणों की शिक्षानुसार राज्य किया। राजा ने उत्तर की पुत्री इरावती से विवाह कर जनमेजय आदि चार पुत्र उत्पन्न किये। उसने कृपाचार्य को अपना गुरु बनाया और तीन अश्वमेध यज्ञ किये जिनमें ब्राह्मणों को बहुत दान और दक्षिणा से सम्मानित किया। जब राजा परीक्षित दिग्विजय को गया हुआ था तो उसने भद्राश्व, केतुमाल, भारतवर्ष, कुरु, किम्पुरुष आदि राजाओं को परास्त किया। राजाओं से भेंट स्वीकार कर उन्होंने अश्वत्थामा और श्रीकृष्ण के चरित्र सुने। और प्रसन्न होकर हरि चरणों से प्रीति करने लगा। इसके बाद में परीक्षित ने

कुरुक्षेत्र को पलायन किया।

परीक्षित द्वारा भूमि और धर्म को आश्वासन और कलियुग के वास स्थान का निरूपण

सूतजी बोले, एक दिन सरस्वती के तट पर परीक्षित ने देखा कि एक शूद्र जो राजाओं का सा वेष धारण किये था, एक बैल और एक गऊ को मार रहा था। ताड़ना के भय से कांपता हुआ बैल एक पांव से घिसटता था। यह दशा देखकर राजा बाण चढ़ा ललकार कर बोला- हे अधर्मी तू कौन है! मेरे होते, अन्याय से इन निर्बलों को मारता है! तू शूद्र मालूम होता है। रे अधम! तू वध के योग्य है। यह कह राजा ने बैल से पूछा कि तुम कौन हो? तुम्हारी तीन टाँगें कैसे टूट गयीं! पाण्डवों से रक्षित भूतल में तू ही एक ऐसा है जिसके शोक से आंसू टपकते हैं। हे गौ माता! अब तू भी रुदन मत कर। जब दुष्टों को दण्ड देने वाला मैं मौजूद हूं तब तुमको कुछ भय नहीं है। हे सौरभेय! तू अपने विरूप करने वाले को बतला मैं उसको यथार्थ दण्ड दूंगा। बैल ने कहा- हे श्रेष्ठपुरुष! हम उस मनुष्य को नहीं जानते हैं जिससे क्लेश उत्पन्न होता है अनेक शास्त्रों के अनेक मत हैं कि आत्मा को सुख दुःख देने वाला आत्मा ही है। कोई सुख दुःख का कारण देव

को मानते हैं। हे राजर्षि! कितने ही कहते हैं कि परमेश्वर सुख दुःख का कारण है। इसलिये आप ही अपनी बुद्धि से विचार लीजिये कि सुख दुख का देने वाला कौन है? धर्म के वचन सुनकर राजा का विषाद जाता रहा और उससे बोला हे धर्मज्ञ! तुम तो धर्म दिखाई देते हो, क्योंकि तुम धर्म ही की चर्चा करते हो। अधर्मी और अधर्म की सूचना करने वाला एक ही जगह है। तुमने कलियुग का नाम इसलिये नहीं लिया कि तुम्हें पाप लगेगा धर्म के तप, शौच, दया और सत्य, आपके ये चार पांव हैं। इनमें से तप, शौच और दया इन तीन पांवों को अधर्म ने तोड़ डाला है। केवल सत्य नाम वाला पांव शेष रह गया है इसी से तुम अपना निर्वाह करते हो सो इसको भी कलियुग तोड़ना चाहता है। गौरूप धारण किए हुए पृथ्वी है वह इस बात से संतप्त है कि अब्राह्मण शूद्र मुझको भोगेंगे। धर्म और पृथ्वी को इस तरह समझाकर कलियुग के मारने के लिये परीक्षित ने तीव्र खड्ग उठाया। कलियुग डर के मारे उसके चरणों में गिर पड़ा। राजा बोला तू शरण आया है इसलिए भय मत कर लेकिन तू अधर्म का मित्र है इसलिए मेरे राज्य से अभी निकल जा। यहां धर्म और सत्य ही रहते हैं। ऋषि, मुनि यहाँ भगवान का पूजन करते हैं। ऐसे वचनों को सुन कर कलियुग कांप कर राजा से बोला हे नृप! आप समस्त भू-मण्डल के राजा हो वह स्थान कौन-सा है जहां आपका राज्य न हो?

आप मुझे स्थान बता दो, मैं वहां रहकर अपना समय बिता कर आपकी आज्ञा का पालन करूंगा। कलियुग की प्रार्थना सुनकर राजा ने आज्ञा दी कि तुम जुआ, मदिरा की दुकान, वेश्या के घर और कसाई के घर इन चार स्थानों में रहो। कलियुग ने कहा ये स्थान थोड़े हैं, इनमें मेरा निर्वाह न होगा। तब राजा ने कहा मैंने तुम्हारे रहने को पंचम स्थान सुवर्ण दिया। बस सुवर्ण के साथ मिथ्या, मद, काम, रजोगुण और बैर ये पांचों स्थान भी दिए। कलियुग इन पांच स्थानों में रहने लगा। जो मनुष्य संसार में अपना वैभव बढ़ाना चाहे वो पांचों स्थानों का सेवन न करे। इस प्रकार कलियुग को दण्ड देकर बैल के जो तप, शौच और दया के तीन पांव टूट गए थे इनको बढ़ाकर पृथ्वी को सन्तोष दिया।

परीक्षित का शमीक ऋषि के आश्रम में जाना और मरा हुआ सर्प ऋषि के गले में डालना

सूतजी ने कहा- यद्यपि कलियुग का प्रवेश हो गया था जब तक राजा परीक्षित का राज्य रहा तब तक कलि प्रभाव न कर सका। राजा परीक्षित भौंरे की तरह सार वस्तु ग्रहण करने वाला था, इसलिये कलियुग से बैर बांधना उचित न समझा क्योंकि इस कलियुग में मनसा पुण्य होता है परन्तु मनसा पाप नहीं होता। पाप तो

करने से ही लगता है और पुण्य कर्म मन में विचारने से हो जाता है। एक दिन राजा परीक्षित शिकार को गए। मृगों के पीछे दौड़ते-दौड़ते भूख प्यास से बहुत व्याकुल होकर शमीक ऋषि के आश्रम में पहुंचे और वहां ऋषि को आंखें बन्द किये हुए बैठा देखा। ऋषि ध्यान लगाए थे, उन्हें राजा के आने का कुछ ज्ञान न था। ऋषि से राजा ने जल मांगा, जब राजा को कुछ उत्तर न मिला और न मुनि ने सत्कार ही किया तब तो राजा बड़ा ही क्रुद्ध हुआ। हे ऋषियो! राजा प्यास से ऐसा पीड़ित था कि उसको उस ब्राह्मण पर अत्यन्त क्रोध आया। आश्रम से निकल कर राजा ने एक मरा हुआ सर्प उठाकर उस ऋषि के कन्धे पर रखकर अपने नगर की राह ली। शमीक ऋषि का श्रृङ्गी नामक पुत्र बालकों के साथ खेल रहा था सो उस बालक से किसी ने जाकर कहा कि तेरे बाप के गले में कोई राजा मरा हुआ सर्प डाल गया है। यह सुनकर यह बालक कहने लगा-हाय! आश्चर्य है कि ये राजा कैसे अधर्मी हो गए हैं! नीच, दुर्बुद्धि, उन्मार्गगामी राजाओं को दण्ड देने वाले श्री कृष्ण भगवान परमधाम को चले गए अब इनको डर किसका है? इसी से ये धर्म के सेतु को तोड़कर चलनेलगे हैं। इस तरह कहकर क्रोध से लाल आंखें करके कौशिकी नदी का जल हाथ में ले शाप दे दिया कि जिसने धर्म की मर्यादा तोड़कर मेरे पिता के गले में मरा हुआ सर्प डाला है उसे मेरा भेजा हुआ तक्षक

आज के सातवें दिन डस लेगा। इस तरह शाप देकर वह बालक अपने आश्रम आया और पिता के गले में मरा हुआ सर्प देखकर रोने लगा। तब अपने पुत्र के संतप्त रुदन को सुन शमीक ऋषि ने नेत्र खोले। अपने कन्धों पर मरा हुआ सर्प देखकर उसे फेंक दिया और पुत्र से पूछने लगे- हे पुत्र! तू क्यों रोता है? यह सुनकर श्रृङ्गी ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजा को अयोग्य शाप दिया हुआ सुनकर ऋषि कहने लगे रे अज्ञ! तूने बड़ा गजब किया। ऐसे थोड़े अपराध पर ऐसा भारी दण्ड तूने दे दिया। राजा मनुष्यों की गिनती में नहीं है, राजा साक्षात् विष्णु का स्वरूप होता है।

राजा परीक्षित तो साक्षात् राजर्षि, अश्वमेध यज्ञ करने वाला, चक्रवर्ती धर्म का प्रतिपालक है सो भूख, प्यास से यहाँ आया, वह तो सत्कार के योग्य था। शमीक ऋषि ने ये सब बातें अपने पुत्र से कहीं, और भगवान से प्रार्थना की हे भगवान! इस नासमझ बालक ने जो आपके निष्पाप सेवक का अपराध किया है वह आप क्षमा कर दें। इस प्रकार ऋषि अपने पुत्र के अपराध पर महादुःखी हुये।

परीक्षित का श्राप समाचार सुनकर गंगा तट पर जाना और शुकादि मुनियों का आना

सूतजी बोले- राजा परीक्षित ने घर जाकर सोचा कि मैंने नीच कर्म किया है। वह ऋषि तो निष्पाप है मैंने

उनके गले में सांप लपेटा है। इस कर्म से कोई बड़ी विपत्ति मुझ पर आयेगी। मैं चाहता हूं कि वह विपत्ति मुझ पर शीघ्र आ जाये जिससे मुझे शिक्षा मिल जाय, और मैं फिर कोई ऐसा अपराध न करूं। राजा शोक सागर में निमग्न था। उधर शमीक ऋषि ने गौर मुख नामक शिष्य राजा के पास भेजा कि मेरे पुत्र के शाप से सातवें दिन तुमको तक्षक डसेगा, उससे तुम्हारी मृत्यु होगी। राजा तक्षक की विषाग्नि को बहुत उत्तम समझने लगा, क्योंकि वह विरक्ति का कारण होने से मोक्ष का कारण होगी। तदनन्तर परीक्षित इस लोक और उस लोक दोनों की वासना छोड़कर श्रीकृष्ण के चरणों में चित्त लगाकर, व्रत साधन करने के लिये आधी धोती ओढ़ी और आधी पहने, सर्वस्व त्याग कर गङ्गा तट पर जा बैठा। परीक्षित को अनशन व्रत लेकर गङ्गा तट पर बैठा सुनकर बहुत से मुनि अपने-अपने शिष्य वर्गों सहित तीर्थ यात्रा के मन से वहां आए। राजा ने उन सबका पूजन करके उनका सम्मान किया। जब ऋषि-मुनि आनन्द पूर्वक बैठ गए तब राजा ने हाथ जोड़कर अपने मन की बात कही- मैं तो रात दिन विषय वासना में अचेत था। मुझ पापी को भवसागर से बचाने के लिए परब्रह्म ने ही ब्राह्मण के द्वारा श्राप दिया है जिससे मुझको शीघ्र ही चेत हो गया। हे ब्राह्मणों! मैं सब छोड़कर भगवच्चरणों में चित्त लगाकर आपकी और गङ्गा की शरण में आया हूं। वह तक्षक आकर मुझको भले ही डस ले परन्तु आप विष्णु भगवान का संकीर्तन कीजिए।

जिससे अनन्त भगवान में मेरी प्रगाढ़ भक्ति हो और जिस-जिस योनि में मुझे जन्म लेना पड़े तहाँ-तहाँ साधु महात्माओं में मेरा स्नेह बना रहे। इतना कहकर राजा गङ्गा जी के दाहिने किनारे पर पूर्वाभिमुख कुशा बिछा उत्तर की ओर मुख करके बैठ गया। देवगण राजा की प्रशंसा करके फूलों की वर्षा करने लगे और दुन्दुभी बजाने लगे। सब महात्मा राजा की बुद्धि और धैर्य की प्रशंसा करके उत्तमोत्तम गुणों से युक्त भगवान के गुणों को कहने लगे- राजर्षि! आप श्रीकृष्ण भगवान के परम सेवक हैं। भगवच्चरण के निकट पहुंचने की इच्छा से आपने राज सिंहासन को शीघ्र ही त्याग दिया। जब तक यह अपने देह को त्यागकर बैकुण्ठ को न चले जाओ तब तक हम यहां बैठे रहेंगे। तब राजा परीक्षित ऋषि लोगों की सत्यवाणी को सुनकर नमस्कार करके बोले, मुनिवर! आपको परोपकार के अतिरिक्त और कोई दूसरा काम नहीं है। इसी बात पर विश्वास करके मैं पछता रहा हूं कि जिस मनुष्य की मृत्यु निकट आ पहुंची है उसको क्या करना चाहिए। उस कृत्य को आप सब लोग विचार कर कहिए। इस प्रश्न को सुनकर मुनि आपस में विचार करने लगे। इतने में ही दैवयोग से अपनी आत्मा में सन्तुष्ट व्यास जी के पुत्र शुकदेवजी जिनकी अवस्था केवल सोलह वर्ष की थी, शंख के समान त्रिवली युक्त कण्ठ था, वक्षस्थल बहुत ऊँचा और चौड़ा था, नाभि बहुत गम्भीर थी और पीपल के दल समान उदर पर त्रिबली

पड़ती थी। शरीर पर कोपीन थी, बाल घूंघर वाले चारों ओर बिखर रहे थे, जानुपर्यन्त लम्बी-लम्बी भुजा थीं, साक्षात् श्री नारायण के समान कान्तिमान थे, शरीर का श्यामवर्ण अत्यन्त मनोहर था। उनकी युवा अवस्था, शरीर की कान्ति और मन्द मुस्कान देखकर स्त्रियाँ मोहित हो जाती थीं ऐसे तेज युक्त शुकदेवजी को आये हुए देखकर मुनि लोग सत्कार के लिए उठ खड़े हुए तब शुकदेवजी ऐसे शोभायमान हुए जैसे तारागणों के बीच में चन्द्र। श्रीशुकदेवजी से राजा परीक्षित हाथ जोड़कर कहने लगा- हे महर्षि! आज आपकी कृपा से मेरा जन्म सफल हो गया आपने यहां आकर हम सबको पवित्र कर दिया है। आपके निकट आने से बड़े-बड़े पातक नष्ट हो जाते हैं। जिनकी मृत्यु निकट आ गई उनको आप सरीखे सिद्ध और मन वांछित फल देने वालों का दर्शन कदापि सम्भव न था। हे योगिराज! मैं केवल आपसे पूछता हूं कि जिनकी मृत्यु निकट आ पहुंची है उनको मोक्ष के लिए क्या करना उचित है? ऐसे मनुष्यों को क्या करना चाहिए सो मुझको कहो। राजा परीक्षित ने मधुर वचनों से इस प्रकार प्रश्न किया तब भगवान शुकदेवजी कहने लगे सो द्वितीय स्कन्ध में कहेंगे।

— ० —

— श्रीमद् भागवत महापुराण प्रथम स्कन्द समाप्त —

★ द्वितीय स्कन्ध प्रारम्भ ★

भगवान के विराट रूप का वर्णन

श्री शुकदेवजी कहते हैं- हे राजन्! जिन गृहस्थों को आत्मा का ज्ञान नहीं हैं उनको बहुत से विषय सुनने चाहिए। क्योंकि वे दिन रात गृहस्थी के झगड़े में ही फँसे रहे तो कुछ भी नहीं जान सकते। उनकी आयु गृहस्थी में बीत जाती है। हे राजन्! जो शास्त्र की विधि अथवा निषेध को ग्रहण नहीं करते हैं तथा जो ब्रह्म में लय हो गए वे ही भगवान श्रीहरि के गुणनुवादों को श्रवण करके प्रसन्न हुआ करते हैं। मैं जिस पुराण का वर्णन कर रहा हूं वह श्रीमद् भागवत के नाम से प्रसिद्ध है। जो इसको सुना करता है, उसको निष्काम भक्ति प्राप्त होती है। जब दीर्घकाल तक जीते रहने पर भी उसके जान लेने में समर्थ नहीं होते तब उस दीर्घ जीवन को निष्फल जानना चाहिये। यदि जीवन का मुहूर्त भी इस ज्ञान का लाभ करले तो उस जीवन को ही उत्तम कहा गया है। हे राजन्! देवासुर संग्राम में देवताओं ने राजा खटवांग को वर देना चाहा। राजा ने पूछा जीवन कितना शेष है! उन्होंने केवल चार घड़ी शेष बतलाया। राजा तुरन्त विमान द्वारा बैकुण्ठ से अयोध्या आया और दो घड़ी में सारी कामनाओं को छोड़ भगवान वासुदेव का सहारा ले मुक्त हो गया। आपकी आयु में तो अभी सात दिन बाकी हैं। अतएव आपको परलोक के

हितकर कामों को करना चाहिए। मनुष्य को यही उचित है कि अन्त समय पर विषय कामना छोड़कर वैराग्य का अवलम्बन करे। पण्डित को जल में स्नान कर सूने स्थान में आसन पर विराजित हो ऊँकार का अभ्यास करना चाहिए। सांस रोककर मन को दमन करना चाहिए। धारणा के सिद्ध होते ही योग की सिद्धि हो जाती है। परीक्षित बोले—हे ब्रह्मन्! उस धारणा को किस तरह किया जाता है। श्री शुकदेवजी ने कहा- हे राजन्! मैं भगवान के विराट स्वरूप का वर्णन करता हूं सो आप एकाग्र चित्त सुनिये। भगवान वासुदेव के सारे रूपों में विराट रूप यह है जहां भूत भविष्य वर्तमान सब विश्व रूप ईश्वर में ही दिखाई दिया करता है। भूमि, जल, अग्नि, पवन, आकाश, अहङ्कार, महतत्व, यह सात आवरण समेत देह में विराट पुरुष विद्यमान है सो इन धारणा का आश्रय भगवान से ही है। सर्वव्यापी भगवान के चरणमूल से पाताल और एड़ी में रसातल जानना। एड़ी के ऊपर गांठों के हिस्सों में महातल, उसकी जांघ में तलातल है। सुतल-लोक उसकी दोनों जानुओं में है। वितल व अतल-लोक दोनों उरू में हैं, जंघा में महातल विद्यमान है, नाभि में नभस्थल है, हृदय में स्वर्ग है। महालोक ग्रीवा में, जनलोक वदन में और तप लोक उनके ललाट में है। बाहु में तेजोमय इन्द्र इत्यादि, कानों में सारी दिशायें, श्रोत में शब्द, नासिका में अश्विनीकुमार, घ्राणेन्द्रिय में गन्ध, और मुख में

प्रकाशमान अग्नि अवस्थान करते हैं। नेत्र गोलक अन्तरिक्ष, सूर्य उनकी आंख है, दिन-रात भगवान के दोनों पलक हैं, ब्रह्मपद भौहों का चलना है, तालू इनका जल है, जीभ रस है, शिर अनन्त वेद है, दाढ़ यमराज है, स्नेह दांत, माया हँसी, विश्व की रचना उनका कटाक्ष है। ऊपर का ओठ लज्जा, निचला ओठ लोभ, हृदय धर्म, पीठ अधर्म का मार्ग और उपस्थ प्रजापति हैं। अण्डकोष मित्रा वरुण, और सातों समुद्र उस विराट पुरुष की कोख हैं। उनके हाड़ सारे पहाड़ हैं, उनकी नाड़ी सारी नदियां हैं, देह के रुऐं सारे पेड़ हैं। हे परीक्षित! भगवान श्रीहरि विश्व रूप हैं। पवन को उनका सांस जानना चाहिए। गति, अवस्था, गुण, प्रवाह और संसार को उस ईश्वर का कर्म समझना चाहिये। उनके मस्तक के केश घटा हैं, संध्या उनके कपड़े हैं, छाती प्रातःकाल है और चन्द्रमा उनका मन कहा गया है। महतत्व विज्ञान शक्ति है। श्री महादेव को उनका अन्तःकरण जानना चाहिये। उनके नाखून हाथी, घोड़े, ऊँट और खच्चर हैं, नितम्ब मृग व पशु हैं। सारे पक्षी परमेश्वर के शब्द शास्त्र हैं। सारे मनुष्यों के मन परमेश्वर की बुद्धि हैं। गन्धर्व विद्याधर और चारण इत्यादि षडज ऋषिभादि सात स्वर हैं। भगवान की स्मृत उर्वशी इत्यादि अप्सरा हैं और उनका पराक्रम असुरों की सेना है। मुख ब्राह्मण, भुजा क्षत्रिय, ऊरू वैश्य, उनके पैर शूद्र हैं। देवताओं सहित यज्ञ को विराट पुरुष का

वीर्य जानना चाहिये। मोक्ष की चाहना करने वाले इस स्थूल देह में मन को अपनी बुद्धि से धारण करते हैं। इसके परे कुछ विद्यमान नहीं है। जो केवल आत्मा का बुद्धि द्वारा अनुभव करके दर्शन किया करते हैं और चित्त लगाकर परमेश्वर को भजते हैं उनकी मुक्ति होती है।

योगी पुरुष का विवरण

श्री शुकदेवजी ने कहा- हे परीक्षित! प्रलय के अन्त में श्री ब्रह्माजी प्रथम सृष्टि को भूल गये थे। श्रीहरिने उन्हें धारणा शक्ति दी जिससे वे फिर उसकी रचना कर सके। स्वर्ग इत्यादि के मिल जाने पर आदमी अस्सय सुख कदापि नहीं भोग सकता। इसी वास्ते बुद्धिमान केवल प्राण धारण के उपयुक्त विषयों का ही भोग करते हैं। यदि भूमि है तो पलंग की क्या आवश्यकता? बाहु हैं तो तकिये का क्या प्रयोजन? अँजली है तो गिलास का क्या? पेड़ों की छाल है तो कपड़ों की क्या आवश्यकता? भोजन ही पेड़ों में फल लगा करते हैं। नदियों में जीवों के लिये ही पानी बहता है। कन्दराओं में निवास करने को कौन मना करता है। भगवान श्रीहरि अन्तःकरण में स्वयं सिद्ध हैं, वे आत्म हैं, इस वास्ते उनका भजन करना चाहिये, उनका भजन करने पर माया मिट जाया करती है। मनुष्य के हृदय में जो एक अंगुष्ठ के बराबर पुरुष निवास करता है वह चार

भुजा वाला है। चरण, पंध, शङ्ख और चक्र के चिन्हों से युक्त है। हाथ में गदा लिये प्रसन्न मुख, खिली हुई आंखें, वस्त्र पीत वर्ण, हृदय में लक्ष्मी विराजित और गले में कौस्तुभ-मणि शोभा पा रही है। गले में बनमाल पड़ी हुई है। मेखला, अँगूठी, पाजेब और कङ्कण इत्यादि गहनों से शोभित है। देह चिकनी, बाल घुँघराले, मुस्कान मधुर और मन को हरने वाली है। वे ईश्वर चिन्तन करने पर प्रकट हो जाते हैं। दर्शन होने पर बुद्धि निर्मल हो जाती है। जिस समय भक्ति उत्पन्न न हो, तब आबाल्य क्रिया का अनुष्ठान कर उसके स्थूल रूप का चिन्तन करना चाहिए। जब योगी शरीर छोड़ने की कामना करता है, तब एकाग्रचित्त से सुखासीन हो प्राण-वायु को लय करता है। फिर मन बुद्धि को अपने द्रष्टा में, उस द्रष्टा को विशुद्ध आत्मा और आत्मा को परब्रह्म में लीन कर विश्राम पा लेता है। देवता भी उस आत्मा पर अपनी प्रभुता नहीं दिखा सकते। उस दशा में सत्व, रज, तम, अहंकार तत्व और महत्व यह सब दूसरी बार उनकी सृष्टि करने को समर्थ नहीं हुआ करते। वे योगीजन आत्मा के सिवाय श्रीहरि के चरण कमलों का चिंतन करते हैं। इस वास्ते उस विष्णुपद को सारे पदों से उत्तम समझना चाहिए। इस प्रकार शास्त्र के ज्ञान-बल से ब्रह्मनिष्ठ मुनि उपराम को प्राप्त हो जाये। मन को स्थिर करके एड़ी से गुदा-द्वार को रोककर पवन को नाभि आदि छः चक्रों में चढ़ाये।

नाभि में स्थित पवन को हृदय में लाकर वहाँ उदान-वायु द्वारा छाती में ले जाये, फिर धीरे-धीरे अपने तालु में उस पवन को ले जाये। तालु में से दोनों भृकुटियों के मध्य भाग में ले आये। किसी वस्तु की चाहना न करे। आधा मुहूर्त आज्ञा चक्र में ठहर कर ब्रह्म रूप को प्राप्त हो। ब्रह्मरन्ध्र का भेदन कर शुद्ध दृष्टि से देह और इन्द्रियों को त्याग दे। यह सद्योमुक्ति है। अब क्रमुक्ति वर्णन करते हैं- हे राजेन्द्र! मृत्यु समय जो वासना प्राणी की होती है कि सब लोकों के भोग भोगता ही जाऊँ तो मन इन्द्रियों सहित जीव जाता है। विद्या, तप, योग, समाधि वालों को यह गति प्राप्त होती है। योगीजन ब्रह्मलोक मार्ग से तेजोमय सुषम्ना नाड़ी द्वारा अग्नि देवता को प्राप्त होता है। पश्चात ऊपर शिशुमार चक्र को प्राप्त होता है। पांचवें स्कन्ध में शिशुमार चक्र का वर्णन है। शिशुमार चक्र उल्लंघन करके रजोगुण रहित अति सूक्ष्म शरीर करके अकेला योगी महर्षि लोक को प्राप्त होता है। इसके अनन्तर कल्पान्त में श्रीशेष जी के मुख की अग्नि से जगत को दग्ध होता हुआ देखकर ब्रह्म-लोक को जाते हैं। गति तीन प्रकार की होती है। जो बहुत पुण्यदान करने से जाते हैं कल्पान्तर में पुण्य की न्यूनाधिकता के अधिकारी होते हैं। जो हिरण्य गर्भ आदि के उपासना बल से जाते हैं वे ब्रह्म के संग मुक्ति पाते हैं। जो भगवत के उपासक हैं वे अपनी इच्छा से ब्रह्माण्ड को भेदकर विष्णुलोक को जाते हैं। यह योग

प्रथम लिंग देह से पृथ्वी रूप होकर जल रूप हो जाता है। फिर शनैःशनैः ज्योतिर्मय अग्नि रूप हो जाता है। समय पाकर तेज रूप से पवन रूप को प्राप्त होकर व्यापकता से परमात्मा को प्रकाश करने वाले आकाश को प्राप्त हो जाता है। तामस, राजस, सात्विक तीन प्रकार का अहंकार होता है। जड़, भूत, सूक्ष्म, तामस से, बहिर्मुख दस इन्द्रियां राजस से, मन इन्द्रिय और देवता सात्विक से उत्पन्न होते हैं। जिससे जिसकी उत्पत्ति है उसी से उसका लय होता है। योगी भूत सूक्ष्म इन्द्रियों से लय, मनोमय देवमय अहंकार की गति से प्राप्त होकर महतत्व को प्राप्त होता है। हे राजन्! अनन्तर यह योगी प्रधान रूप से शान्त आनन्दमय परमात्मा को प्राप्त हो जाता है, जो मनुष्य इस भगवती गति को प्राप्त हो जाता है फिर वह संसार में आसक्त नहीं होता। श्री शुकदेवजी कहते हैं- हे राजन्! जो तुमने वेद में गाए हुए सनातन मार्ग पूछे सो हमने तुम्हारे आगे कहे। भगवान ब्रह्मा ने अपनी बुद्धि से सम्पूर्ण वेदों को तीन बार विचार कर यही निश्चय किया कि जिस मार्ग से भगवान में भक्ति होवे वही मार्ग श्रेष्ठ है। हे राजन्! इस कारण सबकी आत्मा हरि भगवान सर्वत्र सब काल में श्रवण और कीर्तन करने योग्य है। यही भगवान मनुष्यों के स्मरण करने योग्य हैं। जो भक्त जन हरि भगवान के अमृत को पान करते हैं, वे अन्तःकरण को पवित्र करते हैं और नारायण के चरणारविन्दों के

समीप जाते हैं।

अभीष्ट फल लाभ का उपाय वर्णन

श्रीशुकदेवजी परीक्षित से बोले- हे राजन्! जो मरण हार मनुष्य हैं उनको हरि भगवान की कीर्ति का श्रवण कीर्तन करना ही श्रेष्ठ है। परन्तु अनेक कामों के फल प्राप्ति के अर्थ अन्य देवताओं का भी पूजन करें। ब्रह्म तेज को बढ़ाने की कामना हो तो ब्रह्मा का पूजन करें। इन्द्रियों की तुष्टता चाहे तो इन्द्र का पूजन करे। सन्तान की वृद्धि चाहे तो प्रजापतियों का पूजन करे। लक्ष्मी की इच्छा हो तो दुर्गादेवी का पूजन करे। तेज बढ़ाने की कामना हो तो अग्निदेव का पूजन करे। धन की कामना हो तो वसुओं का पूजन करे। वीर्य बढ़ाने की इच्छा हो तो ग्यारह रुद्रों का पूजन करे। अन्न आदि पदार्थों की कामना करने वाला मनुष्य अदिति को पूजे। स्वर्ग प्राप्त होने की इच्छा हो तो बारह आदित्यों की पूजा करे। राज्य की कामना हो तो विश्वदेवों का पूजन करे। देश देशान्तर की प्रजा को वश में करना चाहे तो साध्य देवताओं का पूजन करे। आयु बढ़ाने की इच्छा हो तो अश्वनी कुमारों की पूजा करे। पुष्टि की कामना हो तो पृथ्वी का पूजन करे। जो प्रतिष्ठा बढ़ाने की कामना हो तो पृथ्वी स्वर्ग की उपासना करे। रूप की इच्छा हो तो गन्धर्वों का पूजन करे। स्त्री की कामना हो तो उर्वशी अप्सरा का पूजन करे। सबका

स्वामी होना चाहे तो परमेष्ठिनाम ईश्वर की उपासना करे। यश की इच्छा हो तो यज्ञ भगवान को पूजे। धन इकट्ठा करने की कामना हो तो वरुण अथवा कुवेर का पूजन करे। विद्या की कामना वाला श्रीमहादेव का पूजन करे। परस्पर प्रीति की इच्छा हो तो पार्वती का पूजन करे। धर्म की वृद्धि चाहे तो उत्तम श्लोक से भगवान का पूजन करे। सन्तान की वृद्धि चाहे तो पितरों का पूजन करे। रक्षा चाहे तो यक्षों का पूजन करे। बल चाहे तो मरुद्गणों का पूजन करे। राज्य की कामना हो तो मनुष्यों की पूजा करे। शत्रु का नाश करने की इच्छा वाला पुरुष निॠति और मृत्यु की पूजा करे। सम्भोग की कामना हो तो चन्द्रमा का पूजन करे। वैराग्य की कामना हो तो परम पुरुष भगवान की उपासना करे। जिसको किसी वस्तु की कामना न हो, अथवा सम्पूर्ण वस्तुओं की कामना हो और मोक्ष की इच्छा हो तो विष्णु भगवान का पूजन करे। जिस कथा के सुनने से राग और द्वेष से रहित ज्ञान उत्पन्न होता है, वैराग्य हो जाता है और मोक्ष से सत् मार्ग में भक्ति योग को प्राप्त होता है, तो ऐसा कौन पुरुष है जो भगवान की कथा में प्रीति नहीं करे। शौनकजी बोले- हे सूतजी! राजा परीक्षित ने यह कथा सुनकर शुकदेवजी से फिर अन्य क्या पूछा सो कहिए। जहां राजा परीक्षित से श्रोता, शुकदेवजी सरीखे वक्ता हों तो ऐसे सन्तों के समाज में श्रीभगवान की पवित्र कथा हो वह निश्चय

अनन्त फल देने वाली है। वृक्ष क्या नहीं खाते हैं? धौंकनी क्या श्वास नहीं लेती है? ग्राम के पशु क्या नहीं खाते हैं या विषय नहीं करते हैं? तैसे ही भगवान विमुख भी जीते हैं सांस लेते हैं, विषयादि में रत रहते हैं। लेकिन जिसके कानों के द्वारा भगवान का यश कभी नहीं पहुंचा, वे कान साँप के बिल के समान हैं। जिसकी जीभ से परमेश्वर का नाम नहीं निकलता वह मेंढ़क के समान है। जो भगवान को नहीं झुकाया जाता वह मस्तक केवल भार रूप है। जिन हाथों से हरि पूजन नहीं किया, वे हाथ मुर्दा के समान हैं। जिन नेत्रों से भगवान की झाँकी न निहारी और महात्माओं का दर्शन नहीं किया वह आँख मोरपंख के समान है। वह पत्थर हृदय से भी अधिक कठोर है जो भगवान का नाम सुन द्रवीभूत न हो। हे सूतजी! तुम हमारे मन के अनुकूल कहते हो इसलिए श्रीशुकदेवजी ने जो कहा सो आप वर्णन कीजिए।

शुकदेवजी का मंगलाचरण

सूतजी ने कहा- आत्मतत्व को निश्चय करने वाले शुकदेवजी के वचन सुनकर परीक्षित ने श्रीकृष्ण भगवान के चरणों में अपना चित्त लगा दिया और देह, स्त्री, पुत्र, घर, बन्धु, राज्य में लगी हुई ममता को त्याग दिया। राजा परीक्षित बोले- हे ब्रह्मन्! आपके वचनों से हमारे हृदय का अन्धकार नाश हो जाता है। अब मैं

यह जानना चाहता हूं कि भगवान अपनी माया से किस प्रकार विश्व की रचना करते हैं और किस प्रकार इस जगत को पालन करके संहार करते हैं? एक ही भगवान ब्रह्मादि अनेक जन्मों को धारण कर लीला करते हुए माया के गुणों को एक ही काल में कैसे धारण करते हैं? इसका उत्तर आप यथार्थ कहिये। श्री शुकदेवजी बोले- परम पुरुष परमात्मा को हमारा नमस्कार है जो साधुओं के दुःख को काटने वाले, अधर्मियों का नाश करने वाले, सम्पूर्ण सत्वगुण वालों में मूर्तिमान और परमहंस गति आश्रम वालों में स्थित मनुष्य को आत्मतत्व को देने वाले भगवान को हमारा नमस्कार है। जिस परमेश्वर का कीर्तन, स्मरण दर्शन, वन्दन, कथा, श्रवण, पूजन, मनुष्यों के पाप को नाश करता है, उस परमात्मा को बारम्बार नमस्कार है। किरात, भील, हूण, आँध्र, पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कक, यवन, खस आदि अधम भी जिस परमेश्वर के आश्रय से पवित्र हो जाते हैं उसे नमस्कार है। जिसके चरणों की समाधि से निर्मल हुई बुद्धि करे ज्ञानीजन आत्मत्व को देखते हैं, और कविजन यथा रुचि प्रकट वर्णन करते हैं सो मुकन्द भगवान मुझ पर प्रसन्न होवें। ऋषियों के स्वामी भगवान हम पर प्रसन्न हों उस व्याप्त रूप भगवान वासुदेव को हमारा प्रणाम है कि जिनके मुख कमलों से निकले हुए ज्ञानमय मकरन्द को भक्तजन पान करते हैं। हे राजन्! यही प्रश्न नारदजी ने ब्रह्माजी

से किया। साक्षात् नारायण ने ब्रह्माजी से जो कहा, आगे वर्णन किया है।

सृष्टि वर्णन

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे राजन्! ब्रह्माजी नारदजी से बोले- हे पुत्र! तेरा यह सन्देह ठीक है, जो तुमने मुझ को भागवत लीला वर्णन करने की प्रेरणा दी। हे नारद! जो तू हमको ईश्वर कहता है, यह तेरा वचन मिथ्या नहीं है। क्योंकि जिससे यह मेरा प्रभाव है, मुझसे परे उस परमात्मा को न जानकर तू ऐसा कहता है। मैं भगवान के प्रकाश से विश्व में प्रकाश करता हूं। उस भगवान वासुदेव को नमस्कार पूर्वक हम ध्यान करते हैं कि जिसकी दुर्जयमाया के मुझको सब जीव जगत का गुरु कहते हैं। हे नारद! सम्पूर्ण वेद, सब देवता, सम्पूर्ण लोक तथा सब यज्ञ, नारायण का रूप हैं। योग, तप, ज्ञान, ये नारायण ही की प्राप्ति के साधन हैं और इनका फल भी नारायण के ही आश्रित है। परमात्मा के रचे गये पदार्थों को मैं रचता हूं, मुझको भी उसी ने रचा है, उसी की कृपा कटाक्ष से मैं प्रेरित हूं और निर्गुण प्रभु के सत्व, रज, तम यह तीनों गुण जगत की उत्पत्ति, पालन, संहार के लिए माया करके अंगीकार किये हैं। ये पंच महा-भूत, देवता और इन्द्रियों के रूप गुण अध्यात्मा अधिभूत इनमें ममता उत्पन्न कराकर वस्तु से नित्यमुक्त आत्मा को जन्म मरण रूप बन्धन में फँसाते हैं।

रजोगुण से जब महतत्व विकार को प्राप्त हुआ तब तीन प्रकार का हुआ। उसके भेद ये हैं- सात्विक, राजस, तामस। तामस अहंकार से पंचमहाभूत उत्पन्न करने वाली शक्ति हुई। राजस अहंकार से इन्द्रिय उत्पन्न करने की शक्ति हुई। सात्विक अहंकार से देवता उत्पन्न करने की शक्ति हुई। जब सब भूतों का आदि तमाम अहंकार विकार को प्राप्त हुआ तब उससे आकाश हुआ। उसका सूक्ष्म रूप और असाधारण गुण शब्द है, जो शब्द द्रष्टा और दृश्य का बोधक है। जब आकाश विकार को प्राप्त हुआ तब उससे स्पर्श गुण वाला वायु प्रकट हुआ। उस वायु का गुण भी शब्द है। जब वायु विकार को प्राप्त हुआ तब उससे स्पर्श रूप शब्द गुण वाला तेज उत्पन्न हुआ। जब तेज विकार को प्राप्त हुआ तब उसमें रसात्मक जल उत्पन्न हुआ। रूप, स्पर्श, शब्द, गुण भी जल में हैं। विकार को प्राप्त हुए जल से गन्ध गुण वाली पृथ्वी उत्पन्न हुई सो पृथ्वी पूर्वतत्वों के सम्बन्ध में रस, स्पर्श, शब्द, इन गुणों से युक्त हुई। सात्विक अहंकार जब विकार को प्राप्त हुआ तब उससे मन, चन्द्रमा, दिशा, वायु, वरुण, अश्विनी कुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, मित्र ब्रह्म यह दश वैकारिक देवता प्रकट हुए। राजस अहंकार जब विकार को प्राप्त हुआ तब दस इन्द्रियां अर्थात् कर्ण, त्वचा, नासिका, नेत्र, जिह्वा ये पांच ज्ञान इन्द्रियाँ और वाणी, लिंग, हाथ, चरण, गुदा ये पांच कर्म इन्द्रियां उत्पन्न

हुई। जब यह पंच महाभूत इन्द्रिय मन गुण न मिलने के कारण शरीर रचने में समर्थ नहीं हुए तब भगवान की शक्ति से प्रेरित सबने परस्पर मिलकर सत असत को ले दोनों प्रकार की स्थूल सृष्टि की रचना की। सहस्त्र विधवर्ष पर्यन्त यह अण्ड जल में पड़ा रहा तब परमात्मा ने जीव को चेतन किया। जो पुरुष उस अण्ड को भेदन करके निकले वह असंख्य ऊरू, चरण, भुजा, नेत्र और असंख्य मुख तथा शिर वाले हुए। बुद्धिमान जन नीचे के सात अंगों से तल अतल आदि सात लोक और ऊपर के सात अंगों से सात लोक की कल्पना करते हैं। परमेश्वर के मुख से ब्राह्मण, क्षत्रिय भुजा से, वैश्य जंघा से, शूद्र चरण से उत्पन्न हुए। चरणों से भूलोक, उनकी नाभि से भुव लोक, हृदय से स्वर्ग लोक व उर से महलोक है। ग्रीवा से जनलोक, स्तनों से तपो लोक, सिर से सत्य-लोक है। ब्रह्म-लोक बैकुण्ठ सनातन है इसकी सृष्टि में अतल-लोक, उरू में वितल-लोक, जानु में सुतल-लोक, जंघा में तलातल लोक, गुल्कों में महातल-लोक, एड़ियों में रसातल-लोक, पद के तल में पाताल-लोक हैं, इस प्रकार लोकमय पुरुष 'परमेश्वर' है। चरणों में भू-लोक, नाभि में भुवलोक, मस्तक में सवर्ग लोक है। इस प्रकार लोकों की रचना है।

पुरुषों की विभूति का वर्णन

ब्रह्माजी कहने लगे- वाणी और अग्नि की उत्पत्ति

स्थान भगवान का मुख है। गायत्री आदि छन्दों के उत्पत्ति स्थान भगवान के सातों धातु हैं, हव्य देवताओं का अन्न, कव्य पितरों का अन्न, मनुष्यों का अन्न की उत्पत्ति स्थान भगवान की जिह्वा है। प्राण और पवन की उत्पत्ति स्थान भगवान की नासिका है। अश्वनी कुमार, औषधि मोद प्रमोद का उत्पत्ति स्थान भी भगवान की नासिका है। रूप और तेज के उत्पत्ति-स्थान नेत्र हैं। वर्ग और सूर्य का स्थान परमेश्वर के नेत्र गोलक हैं। दिशा और तीर्थ का स्थान भगवान के कान हैं। आकाश और शब्द का उत्पत्ति स्थान कर्ण गोलक है। वस्तु के सारांशों और सौभाग्य का उत्पत्ति स्थान भगवान का शरीर है। स्पर्श गुण वाले वायु और यज्ञ का उत्पत्ति स्थान भगवान की त्वचा है। वृक्षों का स्थान रोम है। मेघों का उत्पत्ति स्थान भगवान के केश हैं। बिजली का उत्पत्ति स्थान दाढ़ी है। पत्थर और लोहे का उत्पत्ति स्थान क्रम से भगवान के हाथ पाँव के नख हैं। लोक-पालों का उत्पत्ति स्थान भगवान की भुजा है, और भू-भुव स्वर्ग लोकों का स्थान भगवान का विक्रम है। क्षेत्र, शरण कामना, वरदान का उत्पत्ति स्थान विराट भगवान का चरण है। जल, वीर्य, सृष्टि, मेघ, प्रजापति, उत्पत्ति स्थान उसका लिंग है जिससे संतानार्थ भोग करते हैं। हे नारद! यम, मित्र का स्थान वायु इन्द्रिय है। हिंसा, मृत्यु, निर्ऋति का उत्पत्ति स्थान गुदा है।

तिरस्कार, अधर्म, अज्ञान का स्थान भगवान की पीठ है। सरोवर नदी का स्थान नाड़ी है, पर्वत भगवान के अस्थि स्थान हैं। समु और जीवों की मृत्यु का स्थान भगवान का उदर है और भगवान का हृदय अस्मदादि के लिंग शरीर का स्थान है। धर्म हमारा, तुम्हारा, सनकादि शिव ज्ञान सतोगुण इन सबों का भगवान का चित्त उत्पत्ति स्थान हैं। यह सम्पूर्ण विश्व इस विराट स्वरूप से व्याप्त है। जैसे सूर्य बाहर विश्व को प्रकाशित करता है तैसे ही भगवान ब्रह्माण्ड को बाहर भीतर से प्रकाशित करता है। हे ब्रह्मन्! भगवान की महिमा जानी नहीं जाती। उस भगवान के प्रकाशमान चरणों में सब जीवों की स्थिति है। क्षेम और अभय देने वाला भूर्भुवःस्वः इन तीनों लोकों के ऊपर मह लोक है। उसके ऊपर जनलोक, सत्यलोक हैं। उसमें ईश्वर सम्बन्धी नित्य सुख, पीड़ा रहित सुख, मोक्ष, यह क्रम से रहते हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारी जनलोक में, वानप्रस्थ तपो लोक में, संन्यासी सत्य-लोक में जाते हैं ये तीनों लोक त्रिलोकी से पृथक हैं और ब्रह्मचर्य व्रत रहित गृहस्थी त्रिलोकी के भीतर ही हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इनकी घर में ही मोक्ष हो सकती है। भोग और मोक्ष का साधन रूप कर्म और उपासना दोनों दक्षिणायण उत्तरायण मार्ग हैं। क्षेत्र जीव इन दोनों मार्गों से चलते हैं। एक ही जीव अवस्था भेद से दोनों मार्गों का अधिकारी है और विद्या, अविद्या, यह दो उपासना मार्ग

हैं। पुरुष इन दोनों के आश्रित है। वह स्वयं उत्पन्न हुआ विराट ईश्वर अपने आपको प्रकाशित कर बाहर जगत को भी प्रकाशित करता है। जिस विराट भगवान के नाभिकमल से मैं उत्पन्न हुआ, उस समय विराट पुरुष के अङ्गों के बिना यज्ञ की कुछ सामग्री नहीं देखता था। तब यज्ञ सामग्रियों में यज्ञ के पशु, वनस्पति, कुशा, यज्ञ-भूमि बहु गुण वाला काल, वस्तु, औषधि, घृतादि रस, लोहा सुवर्णादि धातु, मृतिका जल, ऋग, यजु, साम, अथर्व ये चार वेद, सब ब्राह्मण और चातुर्होत्र कर्म, मन्त्र, दक्षिणा, व्रत, देवताओं के नाम सबके निमित्त, बौधायनादि कर्म पद्धिति अनुष्ठान संकल्प की क्रिया, तन्त्र गति, मति, प्रायश्चित, समर्पण यह सम्पूर्ण यज्ञ सामग्री मैंने भगवान के अवयवों से रचना करी। इस प्रकार विराट पुरुष के अङ्गों से यज्ञ सामग्रियों को रचकर मैंने उस विराट पुरुष का उसी यज्ञ सामग्री से पूजन किया। तदन्तर राजा, तुम्हारे नवभ्राता इन्द्रादि रूप से व्यक्त और अव्यक्त रूप पुरुष भगवान का पूजन करने लगे। अनन्तर अपने-अपने समय में मुनि, ऋषि पितृ देवता, दैत्यगण, मनुष्य यज्ञ द्वारा प्रभु का पूजन करने लगे। हे नारद! उन चौबीस अवतारों की कथा को हम संक्षेप में तुम्हारे आगे वर्णन करेंगे।

भगवान का लीलावतार वर्णन

ब्रह्माजी ने कहा- हे नारद! जब हिरण्याक्ष पृथ्वी को

पाताल ले गया तब भगवान ने 'वाराह अवतार' ले समुद्र में आ अपनी दाढ़ों से हिरण्याक्ष का पेट फाड़ डाला और पृथ्वी को दाढ़ पर रख यथास्थान रख दिया। 'यज्ञावतार' में रुचि प्रजापति को आकूती स्त्री से सुयज्ञ पुत्र उत्पन्न हुआ। 'कपिलावतार' में कर्दम ऋषि के घर-देवहूती में स्त्री में नौ भगिनियों सहित कपिलदेवजी ने अवतार लिया और अपनी माता को सांख्य शास्त्र का उपदेश दिया जिससे देवहूती मोक्ष को प्राप्त हुई। 'दत्तात्रेय अवतार' में अत्रि ऋषि ने जब पुत्र की इच्छा की तब भगवान ने प्रसन्न होकर कहा कि मैं स्वयं तुम्हारा पुत्र हूंगा। इस कारण दत्तात्रेय नाम से भगवान ने अवतार लिया। 'सनकादि अवतार' में लोक रचने की इच्छा से मैंने बहुत तप किया उस तप के प्रभाव से भगवान ने सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार चार रूप धारण किये। 'नर नारायण' अवतार में दक्ष की कन्या धर्म की स्त्री मूर्ति में नर नारायण उत्पन्न किए। 'ध्रुव अवतार' में उत्तानपाद के दो पुत्र हुए। पिता की गोद में बैठने का ध्रुव ने मन किया जब सुरुचि विमाता के दुर्वचनों से बाधित होकर बालक ध्रुव पद दिया, जिस पद की भृगु आदि ऊपर से, सप्त ऋषि नीचे से स्तुति करते हैं। 'पृथु अवतार' में जब राजा वेन कुमार्ग में चले। ब्राह्मणों के शाप से राजा का पौरुष और ऐश्वर्य नष्ट हो गया और वह नरक गामी हुआ। उस समय भगवान ने वेन के घर पृथु नाम

से अवतार लेकर नरक से रक्षा की। पृथु ने जगत के अर्थ पृथ्वी को दुहकर सम्पूर्ण अन्नादि द्रव्य उत्पन्न किया। अब 'ऋषभ-देव का अवतार' कहते हैं, अग्नीध्र राजा की सुदेवी स्त्री से ऋषभ-देव जी उत्पन्न हुए जो समदर्शी, जड़ की नाईं योग करते हुये विचरने लगे उनसे जैन मत प्रकट हुआ। 'हयग्रीवावतार' में हमारे यज्ञ में भगवान हयग्रीव उत्पन्न हुये। जिनके श्वांस लेते हुए नासिका से सुन्दर वेदमयी वाणी प्रकटी। 'मत्स्यावतार' में प्रलय के समय पृथ्वी के आश्रय रूप मत्स्य भगवान को वैवस्वत मनु ने देखा। मत्स्य ने जल में मेरे मुख से गिरे हुये वेदों को लाकर जल में विहार किया। 'कच्छप अवतार' में अमृत प्राप्ति के लिए देवता और दानव जब समुद्र को मथने लगे और मंदराचल पर्वत डूबने लगा। तब भगवान ने कच्छप रूप धारण कर पर्वत को अपनी पीठ पर धर लिया। 'नृसिंहावतार' में नृसिंह रूप को धारण करके भगवान ने गदा लेकर अपने सन्मुख आये हुए हिरण्यकश्यप के हृदय को संथालों पर डालकर विदारण कर दिया। 'हरिअवतार' में ग्राह ने जब गजेन्द्र का पाँव पकड़ लिया तब गजराज व्याकुल हो कहने लगा- हे लोकों के नाथ! रक्षा करो तब भगवान गजेन्द्र की पुकार पर गरुड़ पर चढ़ धाये और ग्राह के मुख से गजेन्द्र का उद्धार किया। 'वामानावतार' में अदिति के पुत्रों में सबसे छोटे वामन जी हुये जिन्होंने दोनों चरणों से तीन लोकों को नाप

लिया। धर्म मार्ग में चलते हुए पुरुषों को याचना के बिना समर्थ जन भी स्थान से भ्रष्ट नहीं कर सकते हैं। हे नारद! राजा बलि ने तीसरा पग पूरा करने को अपना शरीर भगवान को समर्पण किया। 'हंसावतार' में हे नारद! तुम्हारे बढ़े हुए भक्ति भाव से प्रसन्न हो भगवान ने हंसावतार धारण करके भक्ति योग, ज्ञान, साधन और आत्म तत्व प्रकाशक भागवत तुम्हारे आगे वर्णन की। 'मन्वन्तर अवतार' में मन्वन्तरों में मनुवेषधारी भगवान ने अखण्डित तेज को धारण किया। 'धन्वन्तरी अवतार' में भगवान ने अपनी कीर्ति और नाम ही से महारोगी मनुष्यों के रोगों का नाश किया। यज्ञ में अमृत लाये तथा वैद्यक शास्त्र 'आयुर्वेद' को प्रवृत किया। 'परशुरामावतार' में दैव से बढ़े ब्रह्मद्रोही वेदमार्ग त्यागी, नर्क भोगी, पृथ्वी पर कंटक रूप, ऐसे क्षत्रियों के नाशक भगवान ने अवतार धारण कर इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया। 'श्रीराम चन्द्रावतार' में इक्ष्वाकु के श्रेष्ठ वंश में उत्पन्न हो राम ने रावण का नाश किया। 'श्रीकृष्ण अवतार' में पूतना, शकटासुर को मारा, कागासुर का बध किया, यमलार्जुन वृक्षों को जड़ से उखाड़ डाला, यमुना जल की शुद्धि के अर्थ कालिया नाग को मथा। ब्रजवासियों को दावाग्नि से बचाया। जँभाई लेते में श्रीकृष्ण के मुख में सब लोकों को देखकर शंकित यशोदा बोध युक्त हुई। भगवान नन्दजी को वरुण की फांसी से

छुड़ा लाये और रात्रि में सोये हुए गोकुल-वासीजनों को बैकुण्ठ लोक दिखाया। इन्द्रदेव ने महावृष्टि करी तब सात वर्ष के श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को बायें हाथ ही छोटी अँगुली पर धारण किया। रासलीला करते हुए श्रीकृष्ण ने गोपियों के कामदेव को बढ़ाया। ब्रज युवतियों को हरने वाले शङ्ख चूड़ के शिर को काटा। 'व्यासावतार' में संकुचित बुद्धि वालों को और थोड़ी आयु वाले मनुष्यों के अर्थ सत्यवती में अवतार लेकर वेदरूप वृक्ष की शाखा भेद करके वेदों का विस्तार किया। 'बौद्धावतार' में वेद मार्ग में निष्ठा वाले मय दानव की रची हुई अदृश्य पुरियों से लोकों का नाश करने वाले, सबकी बुद्धि को मोह कराने वाले, और लोभ बढ़ाने वाले पाखण्ड धर्म को दूर किया। 'कल्कि अवतार' में जिस समय भगवान 'कल्कि-अवतार' को धारण कर शिक्षा देंगे। यह अवतारी कथा संक्षेप में हमने कही। ऐसा कौन है जो भगवान के पराक्रम गिन सके। जिस पर वे कृपा करते हैं वही निष्कपट होकर सर्वात्म-भाव से भगवान का आश्रय ले माया से तर जाते हैं। हे नारदजी! यह कार्य कारण रूप प्रपंच हरि रूप ही है सो सम्पूर्ण विभूतियों का संग्रह है तुम इसको विस्तार से प्रकट करो।

राजा परीक्षित द्वारा प्रश्न करना

राजा परीक्षित कहते हैं- हे ब्रह्मन्! नारदजी ने

जिस-जिसको जैसा उपदेश दिया सो कहिए। हे ब्रह्मन्! ईश्वर की पंचमहाभूत देह धारण करना, विराट-भगवान का अवयव और स्वरूप और लौकिक पुरुष का अवयव स्वरूप जो समान ही है तो लौकिक पुरुष में और विराट पुरुष की जो अवयव स्थिति कही गई है सो हमारी समझ में नहीं आती है। ब्रह्मा जिस परमात्मा की कृपा से प्राणियों की रचना करते हैं और जिस परमात्मा के स्वरूप को देखते हैं, सो कहो। वह ईश्वर विश्व को उत्पत्ति पालन संहार करता है। माया के स्वामी अपनी माया को त्याग कर जहाँ सोते रहते हैं, सो कहो। लोकपालों सहित यह लोक विराट भगवान के अंगों से रचे गये हैं और इनसे उनके अवयवों की कल्पना हुई है यह हमने आपके मुख से सुना है, सो भी विस्तार पूर्वक कहिये। महाकल्प और अवान्तर कल्प कितना है? भविष्य, वर्तमान का वाचक काल कैसे अनुमान किया जा सकता है? स्थूल देहाभिमानी मनुष्यादि की आयु का कितना प्रमाण है? काल की सूक्ष्म और स्थूल प्रवृत्ति कैसे जानी जाती है? कर्मों से उत्पन्न होने वाले स्थान कितने और कैसे हैं? सत्य, रज, तमोगुण के परिणाम रूप देवता आदि देही की इच्छा करते हुए जीव कैसे कर्मों के समुदाय से कैसे-कैसे शरीर को प्राप्त होते हैं? पृथ्वी, पाताल, दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप इनकी और इनमें रहने वाले प्राणियों की उत्पत्ति किस-किस प्रकार होती है? ब्रह्माण्ड का

प्रमाण कितना है? महानुभावों के चरित्र, वर्णाश्रम धर्म और अवतारों की लीला युगों का प्रमाण तथा युग-युग में जो धर्म प्रवृत्त हुए हैं वे सब कहो। मनुष्यों का साधारण व्यवहारिक धर्म कहो तथा प्रजाजनों, अधिकारियों, राजऋषियों के धर्म व उपधर्म वर्णन करो। तत्वों की संख्या और उसके लक्षण, परमेश्वर का पूजन प्रकार, अष्टांग योग, अध्यात्म योग, योगेश्वरों की गति, अणिमादि द्वारा अर्चिराद मार्ग से गमन, योगीजनों के लिंग देह का नाश, ऋगादि वेद, आयुर्वेदादि धर्मशास्त्र, इतिहास पुराणों का सार यह सब कहो। सम्पूर्ण जीवों की उत्पत्ति, स्थिति, भण्डार, वैदिक और स्मार्त कर्म की विधि, धर्म-अर्थ-काम की विधि कहिये। जीवों के धर्म, प्राणियों की रचना, पाखण्ड, आत्मा के बन्धन, मोक्ष तथा अपने स्वरूप में आत्मा की स्थिति कहिये। मैं तुम्हारी शरण हूं आपका कहना हमको प्रमाण है। अन्य मनुष्य तो अन्ध परम्परा से चलने वाले हैं। हे ब्रह्मन्! ब्राह्मण के शाप के सिवाय मुझको कुछ भी व्याकुलता नहीं है। भूख प्यास से मेरे प्राण नहीं निकलेंगे क्योंकि हरि कथा रूप अमृत का पान कर रहा हूं। राजा ने भगवान की कथा के अर्थ इस प्रकार प्रार्थना की तब श्रीशुकदेवजी अत्यन्त प्रसन्न हुये। जो पूछा था सो क्रम पूर्वक कहना प्रारम्भ किया।

शुकदेवजी का उत्तर देना

भगवान ने ब्रह्मा को अपना रूप दिखाया और आत्म तत्व शुद्धि के अर्थ सत्य उपदेश किया सो मैं कहता हूं। ब्रह्माजी अपने आसन पर बैठकर जगत के रचने का विचार करने लगे परन्तु रचने के योग दृष्टि प्राप्त नहीं हुई। ब्रह्मा जी जब विचार कर रहे थे तब जल में से दो शब्द निकले, तप करो। तब, तप शब्द के कहने वाले को देखने की इच्छा से ब्रह्माजी ने सब दिशाओं की ओर देखा। परन्तु वहां कुछ भी नहीं दीखा। तब अपने आसन पर बैठ तप को हितकारी समझकर और उपदेष्टा के उपदेश को मानकर तप करने में मन लगाया। प्राण वायु को रोक और ज्ञान इन्द्रियों व कर्म इन्द्रियों को जीत कर ब्रह्मा ने सावधान मन से हजार वर्ष पर्यन्त सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करने वाला तप किया। तब ब्रह्मा के तप से प्रसन्न हुए भगवान ने बैकुण्ठ लोक दिखाया जिससे उत्तम अन्य लोक नहीं है। जहां रजोगुण और तमोगुण नहीं, शुभ सत्व स्थित है। काल का पराक्रम जहां नहीं चलता है और जहां माया का नाम नहीं है। श्याम, उज्जवल स्वरूप, पीताम्बर धारण किए, चतुर्भुजाधारी, सुन्दर तेज वाले, मालाओं से विभूषित पार्षद हैं। उस बैकुण्ठ में सम्पूर्ण भक्तों के पति लक्ष्मीपति, जगतपति, सुनन्द, नन्द, प्रबल, अर्हण आदि अपने मुख्य पार्षदों करके सेवित

भगवान का ब्रह्मा ज़ी ने दर्शन किया। भक्तों को वर देने में तत्पर, कमल समान नेत्रों से शोभायमान मुकुट और कुण्डल तथा चार भुजाओं को धारण किये, प्रकृति पुरुष, महतत्व, अहङ्कार और ग्यारह इन्द्रियों, पंचतन्मात्रा पच्चीस शक्तियों युक्त तथा अपने सब ऐश्वर्यों से युक्त और अपनी अणिमादि सिद्धियों से युक्त अपने ही धाम से सर्वदा रमण करने वाले भगवान का ब्रह्मा जी ने दर्शन किया। उनके दर्शन से मग्न ब्रह्मा जी ने भगवान के चरण कमलों को प्रणाम किया। ब्रह्मा को अपने सन्मुख उपस्थित देखकर मन्द मुस्कान भरी प्रिय वाणी से प्रसन्न मन वाले भगवान बोले- हे वेदगर्भ! तुमने विश्व को रचने की इच्छा से हमको बहुत प्रसन्न किया। दिव्य सहस्त्र वर्ष तप किया। यह हमारी इच्छा का प्रभाव है। हमारी ही कही हुई 'तप-तप' वाणी को सुनकर तुमने परम तप किया है। तप मेरा हृदय है। तप साक्षात् मेरी देह है। तप मेरी आत्म शक्ति है। तप से ही मैं इस विश्व को रचता हूं और फिर तप ही से पालन करता हूं। तप से विश्व का संहार करता हूं और परम तप से मेरा पराक्रम है। यह सुन ब्रह्माजी बोले- हे भगवन्! आप सबमें स्थित हो। सबके कर्त्तव्य को जानते हो। हे नाथ! मैं जैसे आपके निर्गुण सूक्ष्म-स्थूल रूप को जानूं, सो कहिये। भगवान कहते हैं- हे ब्रह्मन्! हमारा गुप्त शास्त्रोक्त ज्ञान जो अनुभव भक्ति सम्पूर्ण साधन सहित है, वर्णन करता हूं। स्वरूप

से जैसे मैं हूं वैसा मेरा प्रभाव है, जो रूप गुण, कर्म है वैसा ही तत्व विज्ञान तुमको हो। इस जगत में मैं ही रहता हूं, जो विश्व है, सो मैं ही हूं। प्रलय उपरान्त शेष मैं ही हूं। वास्तव में अर्थ बिना जो प्रतीत होता है और आत्मा में प्रतीत नहीं होता है उसी को मेरी माया जानो। मेरी माया कार्य द्वारा प्रतीत होती है। जैसे पंच-महाभूत सब उत्तम, मध्यम, प्राणियों में प्रविष्ट, अप्रविष्ट के समान विदित होते हैं तैसे ही मैं उनमें हूं और नहीं हूं ऐसा विदित होता है। यही मेरी सत्ता है। सब ठौर, सब काल में जो प्रतीत होता है सो आत्मा ही प्रतीत होता है। हे ब्रह्मा! जो तुम इस मत में अच्छे प्रकार स्थित रहोगे, तो तुम कल्पों में कभी मोह को प्राप्त नहीं होगे। श्रीशुकदेवजी बोले- इस प्रकार ब्रह्मा जी को उपदेश करके भगवान अन्तर्ध्यान हो गये। श्री ब्रह्मा जी ने सम्पूर्ण भूतमय इस विश्व को पहले के समान रचा। ब्रह्माजी प्रजा के कल्याण की इच्छा करते हुए अपने स्वार्थ की कामना से यम नियमादि को रच, यम और नियमों में स्थित हुए। ब्रह्मा के पुत्रों में नारदजी शील, नम्रता, दम्भ आदि गुणों से पिता की सेवा करने लगे। हे राजन्! भगवान की माया को जानने की इच्छा कर नारद ने ब्रह्मा को प्रसन्न किया। ब्रह्मा को प्रसन्न जानकर नारदजी ने पूछा, तो तूने पूछा है। उसे ब्रह्माजी ने नारायण का कहा हुआ यह दस लक्षणों वाला भागवत पुराण सुनाया। हे राजन्! नारदजी ने व्यास

मुनि को यह भागवत सुनाया। जो तुमने पूछा कि विराट पुरुष से यह जगत कैसे होता है? सो जैसे यह जगत हुआ और अन्य सम्पूर्ण तुम्हारे प्रश्नों का यथार्थ उत्तर वर्णन करूंगा।

श्री शुकदेव जी का भागवतारम्भ

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- श्रीमद् भागवत महापुराण में सर्ग, विसर्ग, स्थान, पोषण, ऊति, मन्वतर, ईशानुकथा, निरोध, मुक्ति और आश्रय ये दस लक्षण हैं। दसवें 'आश्रय' लक्षण की विशेष शुद्धि के अर्थ महात्मा वेदों के द्वारा और तात्पर्य द्वारा नवों लक्षणों का स्वरूप यहाँ वर्णन करते हैं। सर्गादि में प्रत्येक का लक्षण कहते हैं- पंच महाभूत, पंचतन्मात्रा, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, अहंकार, महतत्व इन गुणों के परिणाम से जो विराट भगवान से उत्पन्न हुआ उसे सर्ग कहते हैं। ब्रह्मा से स्थावर जंगम सृष्टि हुई उसको विसर्ग कहते हैं। मर्यादाओं के पालन करने को स्थान कहते हैं। श्रेष्ठ धर्म को मन्वन्तर कहते हैं। कर्म वासना को ऊति कहते हैं। अवतारों, चरित्रों और आख्यानों से बड़ी कथाओं को ईशानु कथा कहते हैं। जीवात्मा का भगवान में लय हो जाने को निरोध कहते हैं। रूप को त्यागकर अपने स्वरूप में स्थित होने का नाम मुक्ति है। जिससे जगत की उत्पत्ति, संहार होता है उसे परमात्मा कहते हैं उसी का नाम आश्रय है। जो आध्यात्मिक पुरुष है वह

आधिदैविक है और जो इन दोनों विभाग है वह आधिभौतिक हैं। इन तीनों की परस्पर सापेक्ष्य सिद्धि है। एक के अभाव में एक को नहीं प्राप्त होते हैं। इनमें जो तीनों को जानता है कि आत्मा अपने आश्रय है, उसको आश्रय कहते हैं। अब सृष्टि प्रकार कहते हैं- विराट पुरुष जिस समय अण्ड को भेदन करके निकला और अपने निवास स्थान की इच्छा की तब ईश्वर ने जल को रचा। जल में सहस्त्र वर्ष निवास किया, इस कारण नारायण नाम हुआ। भगवान ने योग से उठकर अनेक रूप होने की इच्छा से अपनी माया हिरण्यमय बीज के तीन भाग किये। अधिदेव, अध्यात्म, अधिभूत और एक पुरुष वर्य तीनों मेदा को प्राप्त हुआ। पश्चात् सूत्रात्मा नामक मुख्य प्राण उत्पन्न हुआ। जीवों में ईश्वर प्राण रूप चेष्टा करता है, तब इन्द्रियां भी चेष्टा करती हैं। सबों के चलाने वाले प्राण से भूख प्यास उत्पन्न हुई तब मुख उत्पन्न हुआ। मुख से तालु उत्पन्न हुआ। उसमें जिह्वा उत्पन्न हुई। अनेक रस उत्पन्न हुए। कुछ बोलने की इच्छा हुई तब वाणी-इन्द्रिय तथा सुन्दर शब्द उत्पन्न हुए। जब प्राण वायु भीतर धुक-धुकाने लगी तब नासिका उत्पन्न हुई। फिर वायु देवता और सुगन्ध दाता घ्राण-इन्द्रिय उत्पन्न हुई, तब नेत्र उत्पन्न हुए और चक्षु इन्द्रिय उत्पन्न हुई। जब वेदों के सुनने की इच्छा हुई तो श्रोत इन्द्रिय कान उत्पन्न हुए। वस्तुओं की कोमलता, कठिनता, हलकापन, भारीपन,

गर्मी-सर्दी के जानने की इच्छा हुई तब त्वचा उत्पन्न हुई। जिसमें रोम, वृक्ष, देवता और स्पर्श विषय प्रगट हुआ। त्वचा के बाहर भीतर रहने वाले वायु करके स्पर्श के गुण का ज्ञान हुआ। उसमें पवन ने प्रवेश किया। अनन्तर अनेक कर्मों के करने की इच्छा से सम्पूर्ण पदार्थों के धरने उठाने के कर्म योग्य दो हाथ उत्पन्न हुए। जब स्वेच्छाभिगमन की इच्छा हुई तब चरण उत्पन्न हुए। सन्तान, मैथुनादि, सुख की इच्छा हुई तब शिश्न इन्द्रिय कामप्रिय लिंग उत्पन्न हुआ। जब भोजनोपरांत मल त्याग करने की इच्छा हुई तब गुदा उत्पन्न हुई। जब विराट भगवान ने एक देह को त्याग कर दूसरा देह ग्रहण करने की इच्छा की, तब नाभि द्वार उत्पन्न हुआ। अपान, इन्द्रिय, मृत्यु देवता, ये प्रगट हुए। जब अन्न जल ग्रहण करने की इच्छा हुई, तब कुक्षि, आंत, नाड़ियां हुईं। नदियाँ, समुद्र, पानी के देवता हुए, तुष्टि-पुष्टि तिनके आश्रय रूप हुईं। चिन्तन करने की इच्छा हुई, तब हृदय हुआ। उस हृदय में संकल्प तथा अभिलाषा प्रगटे। त्वचा, चर्म, मांस, रुधिर, मेद, मज्जा, अस्थि, सात धातु हुईं। भूमि, जल, तेजमय ये सातों धातु और सातों प्राण आकाश, जल, वायु से उत्पन्न हुई हैं। सम्पूर्ण इन्द्रियां गुणात्मक हैं और सन्मुख स्वभाव वाली हैं। शब्दादि गुण अहंकार से होते हैं, मन सम्पूर्ण विकारों का स्वरूप है, बुद्धि विशेष ज्ञान के स्वरूप वाली है। भगवान का स्थूल स्वरूप पृथ्वी

आदि आठ आवरणों से लपेटा हुआ है। इससे परे अति सूक्ष्म, अव्यक्त, विशेषण रहित आदि मध्य अन्त-रहित, नित्य वाणी और मन से परे भगवान का सूक्ष्म रूप है। चराचर को भगवान ने रचा है। उत्तम, अधम, मध्यम, कर्म की गति हैं। जैसे कर्म करे वैसी ही योनि प्राप्त होती है। देवता सात्विक योनि हैं, मनुष्य राजस योनि हैं, तमोगुण से नरक-योनि होती है। सत्वगुण, रजोगुण, तमोगुण इनमें जब एक गुण के साथ दो-दो मिलते हैं तब तीन-तीन प्रकार के भेद को प्राप्त होते हैं। जब एक अन्य दोनों से मिलता है, तब पूर्व का स्वभाव बदल जाता है और जिसका जैसा स्वभाव होता है उसकी वैसी ही गति होती है। जगत को धारण करने वाले भगवान पशु, मनुष्यादि में अवतार लेकर इस जगत का स्थापन कर पोषण करते हैं। अनन्तर काल, अग्नि रुद्र रूप धारण करके जगत का संहार करते हैं। यह ब्रह्म कल्प, विकल्प रहित वर्णन किया, जहाँ साधारण विधि और प्राकृतिक जगत की रचना कही है। काल का परिमाण और कल्प का लक्षण विग्रह ये मैं तीसरे स्कन्ध में वर्णन करूंगा। शौनकजी बोले- हे सूतजी! तुमने कहा कि विदुरजी, बाँधवों को त्याग कर तीर्थों में विचरते फिरे। मैत्रेयजी और विदुरजी का ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी सम्वाद कहाँ हुआ और मैत्रेय ने विदुर से क्या तत्व ज्ञान कहा? सो हमसे कहो। अपने बन्धुजनों का किस कारण त्याग किया और जिस प्रकार फिर लौट आये सो कारण

कहो। सूतजी बोले- परीक्षित ने शुकदेव मुनि से जो पूछा और जो शुकदेव जी ने उत्तर दिया सो तुमसे वर्णन करता हूं।

— ० —

। श्रीमद् भागवत महापुराण द्वितीय स्कन्ध समाप्तम् ।

★ तृतीय स्कन्ध प्रारम्भ ★

प्रथम अध्याय

परीक्षित कहते हैं- हे प्रभो! भगवान मैत्रेय और विदुरजी का सत्संग कहां हुआ, और किस समय सम्वाद हुआ, सो हमसे कहिये। शुकदेवजी बोले- हे राजन्! जिस समय राज्य माँगने पर भी धृतराष्ट्र ने भाग नहीं दिया और जिस श्रीकृष्ण के सभा के बीच कहे वचनों को राजा धृतराष्ट्र ने नहीं माना। जिस समय धृतराष्ट्र ने अपने घर विदुरजी को सम्मति पूछने को बुलाया, तब जो सम्मति विदुरजी ने प्रकट की उन वाक्यों को आज कल 'विदुर नीति' नाम से जानते हैं। विदुरजी ने कहा कि युधिष्ठिर के भाग को तुम दे दो। पाण्डवों के पक्ष पर श्रीकृष्ण भगवान हैं। विदुरजी के नीति वचन सुनकर दुर्योधन के होठ फड़कने लगे और कर्ण, दुःशासन, शकुनी सहित दुर्योधन ने विदुरजी का अनादर करके कहा— "इस कपटी को यहाँ किसने बुलाया है? यह दासी पुत्र हमारे टुकड़े से पला हुआ हमारे विरुद्ध होकर हमारे शत्रुओं की कुशल चाहता है। इस अमंगलीक को हस्तिनापुर से बाहर निकाल दो, ये पास रखने योग्य नहीं है।" दुर्योधनादि के ऐसे कठोर वचनों से बंधित होकर विदुरजी ने उनके कहे को सुनकर मन में किंचित भी व्यथा नहीं मानी। अपने धनुष को द्वार पर रखकर, घर छोड़ तीर्थ-यात्रा को चल

दिये। जहाँ-जहाँ ब्रह्मा, शिव आदि अनेक रूप धरके पृथ्वी पर अनेक स्थानों में सहस्त्र मूर्ति भगवान विराजमान हैं तहाँ-तीर्थ नाम से प्रसिद्ध जो स्थान हैं उन सबों में महात्मा विदुरजी विचरने लगे। इस प्रकार घूमते हुए विदुरजी प्रभास क्षेत्र में पहुंचे। प्रभास क्षेत्र में सरस्वती के समीप ग्यारह तीर्थ हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शुक्राचार्य मन्दिर, मनु स्थान, पृथु भवन, अग्नि-कुण्ड तथा असित देवल ऋषि का स्थान, वायु-स्थान, सुदास का तीर्थ, गौशाला, स्वामीकार्तिक का मन्दिर, श्राद्धदेव, मनुसभा, इन सब स्थानों में विदुरजी कुछ दिन रहे। अनन्तर यमुनाजी के समीप आये तहां श्रीकृष्ण का बैकुण्ठ-गमन देखकर उद्धव जी आये थे। सो दोनों का समागम हुआ। उद्धवजी को विदुर जी बड़े प्रेम से हृदय लगाकर मिले और श्रीकृष्ण के कुटुम्ब व अपने बन्धु-जनों की कुशलता पूछी। विदुरजी ने पूछा- ब्रह्मा की सेवा से प्रसन्न हो जिसने अवतार लिया ऐसे श्रीकृष्ण तथा बलराम पृथ्वी के भार का हरण करके कुशल पूर्वक हैं? हमारे परम-मित्र पूजनीय श्री वासुदेवजी, प्रद्युम्नजी, सात्वत, वृक्ष भोज, दाशार्शक, महाराज उग्रसेनजी, साम्बजी, सात्यकी, श्री अक्रूरजी, देवकी, अनिरुद्ध जी, सत्यभामा के पुत्र चारुदेष्ण, गण आदि तो कुशल हैं? क्या धर्म की रक्षा धर्मावतार युधिष्ठिर जी करते हैं? जिसके चरण की धमक रण-भूमि नहीं सह सकती ऐसे भीमसेन तो कुशल हैं?

गाण्डीव धनुष धारी अर्जुनजी प्रसन्न हैं और माद्री के पुत्र सुखी तो हैं? अहो कुन्ती की कुशल तो क्या पूछें? जो अपने प्राणपति राजर्षि पांडु के बिना केवल पुत्रों की रक्षा की निमित्त जीती है। हे उद्धव! धृतराष्ट्र का हमको बड़ा शोक है कि वह नरक में गिरेगा। जिसने मरे हुए अपने भाई पांडु से द्रोह किया और अपने पुत्रों के अधीन होकर मुझको भी नगर से निकाल दिया। मैं तो हरि की कृपा से अपने रूप को छिपाकर पृथ्वी पर विचर रहा हूं। हे सखे! शरणागत आये हुए सम्पूर्ण लोकपालों व अपनी आज्ञा में स्थितजनों के अर्थ यदुवंश में जन्म लिया और तीर्थरूप पवित्र कीर्ति है जिनकी, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र भगवान की कृपाकर वार्ता कहो।

उद्धव द्वारा भगवान का बाल चरित्र वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- श्रीकृष्ण के विरह का स्मरण करके गद्गद् कण्ठ हो जाने से उद्धवजी कुछ उत्तर न दे सके। नेत्रों को पोंछकर उद्धवजी बोले- कृष्ण रूप सूर्य अस्त होने पर काल रूप अजगर से ग्रसे हुए शोभाहीन यादवों के गृहों की मैं क्या कुशल कहूं? यह लोक मन्द भाग्य है और यादव तो बड़े ही भाग्यहीन हैं। खेद की बात है कि जिस पूतना ने विष अपने स्तनों में लगाकर मारने की इच्छा से दूध पिलाया उस दुष्टा को भी यशोदा मैया के समान जान उत्तम गति दी। मैं बैर

भाव से श्रीकृष्ण में अपना मन लगाने वाले असुरों को भी परम भागवत मानता हूं, जो संग्राम में गरुड़ पर चढ़े हुए सुदर्शन-चक्र धारी भगवान का दर्शन करते हुए परम धाम को गये। कंस के भेजे हुए राक्षसों को लीला मात्र से ऐसे नष्ट कर दिया जैसे मिट्टी के खिलौने को बालक तोड़ देते हैं। विष पान से मरे हुए गोप और गौओं को जिवाया, कालीदह में जाकर कालिया नाग को नाथकर यमुना जल को निर्मल किया। प्रभु जी ने नन्दजी से गोओं की पूजा के अर्थ अनेक सामग्री सहित गोवर्धन पर्वत पुजवाया। इन्द्र से ब्रज की रक्षा की। शरद् पूर्णिमा की सुन्दर रात्रियों में गोपियों के साथ रासलीला की।

श्रीकृष्ण द्वारा कंस वध और माता पिता का उद्धार

उद्धवजी ने कहा- श्रीकृष्ण ने बलदेव सहित मथुरा में आकर अपने पिता को छुड़ाने की इच्छा से रङ्ग-भूमि में जा कंस को संहारा। राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी जी का हरण किया। सात बैलों को एक साथ नथ कर नग्नजित की सत्या नामक कन्या को विवाहा। सत्यभामा को प्रसन्न करने के लिए मूल सहित कल्प वृक्ष उखाड़ लाये। भौमासुर को मार डाला और हरण करके लाई हुई सोलह हजार एक सौ राज-कन्याओं का पाणिग्रहण किया। अपनी माया से अपने स्वरूप को

अनेक करने की इच्छा से एक-एक रानी में अपने समान गुण वाले दस-दस पुत्रों को उत्पन्न किया। कालयवन, जरासन्ध, शाल्व आदि को भीमसेन, मुचकुन्दादिकों के द्वारा नाश कराया। फिर शम्बर, द्विविद, बाणासुर, मुर, बल्वल और अन्य दन्तवक्र आदि असुरों में से किसी को स्वयं मारा किसी को प्रद्युम्न, बलराम आदि द्वारा वध कराया। तुम्हारे भाई धृतराष्ट्र और पाण्डु के पक्षपाती राजाओं की सेनाओं को कुरुक्षेत्र की भूमि में दुर्योधन सहित नाश किया। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से अश्वमेध यज्ञ कराये। साँख्य शास्त्र में चित्त लगाया। आसक्ति रहित होकर, विषयों के धर्म-कर्म का सेवन किया। सुन्दर स्नेहयुक्त और अमृतमय वाणी से, इस लोक तथा उस लोक को आनन्दित करके, यादवों को अतिशय रमण कराते आप भी सहस्त्रों स्त्रियों के साथ आनन्दपूर्वक विहार करते रहे। बहुत वर्षों तक रमण करते हुए भगवान को गृहस्थाश्रम में वैराग्य उत्पन्न हुआ। एक समय भगवान की इच्छा से यदुवंशियों के बालकों ने खेल करते-करते मुनि की हंसी करी। तब दुर्वासादि मुनियों ने कोप करके शाप दिया। कुछ महीने व्यतीत होने पर यादव दैव से विमोहित हो प्रभास-क्षेत्र गये। वहां स्नान करके उसी के जल से पितर देव और ऋषियों का तर्पण किया, तदन्तर ब्राह्मणों को बहुत दान दिये।

✕✕✕✕

विदुर का मैत्रेय के पास जाना

उद्धवजी कहने लगे- यादव ब्राह्मणों से आज्ञा ले भोजन कर और वारुणी पीकर आपस में गाली देने लगे। सूर्यास्त के समय परस्पर युद्ध होने लगा। मुनि की शापाग्नि से वे यादव परस्पर लड़कर नष्ट हो गए। श्रीकृष्ण अपनी योग माया की गति को देखकर सरस्वती नदी में आचमन करके एक पीपल के वृक्ष की जड़ में विराजमान हुए और हमसे कहा कि तुम बदरिकाश्रम जाओ। उस समय परम भगवत मैत्रेयजी लोक में विचरते-विचरते वहाँ आ पहुंचे। तब मैत्रेय को आया हुआ देखकर श्रीकृष्ण मुझसे बोले- हे साधो! हमारी कृपा से यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है, अब आगे पुनर्जन्म नहीं होगा। फिर अपनी भक्ति का उपदेश किया। तब मुझे आत्म-तत्व का ज्ञान हुआ। इस प्रकार उद्धव जी के मुख से अपने सुहृद, बान्धवों का दुसह वध सुनकर विदुरजी शोक से संतप्त हो गए, पीछे अपने ज्ञान से उस शोक को शांत किया। श्रीकृष्ण के परिवार का विध्वंस सुनकर विदुरजी उद्धव को बदरिकाश्रम को जाता देख उनसे बोले- हे उद्धव! परम ज्ञान जो योगेश्वर कृष्ण ने तुमसे कहा वह ज्ञान तुम हमसे कहो। यह सुन उद्धवजी बोले- हे विदुर! यदि तुम उस तत्व को जानना चाहते हो तो मैत्रेय का ही आराधन करो वही तुम को उपदेश करेंगे और मेरे समक्ष तुम्हारे लिए ज्ञानोपदेश

करने को भगवान ने मैत्रेय को आज्ञा भी दी थी। श्री शुकदेवजी बोले- उद्धवजी ने उस रात्रि यमुना जी के किनारे निवास किया, प्रातः वहां से उद्धवजी बदरिकाश्रम को चले गए। इतनी कथा सुन परीक्षित बोले- जब ब्रह्म-शाप से यदुवंशियों में मुख्य-मुख्य सब नष्ट हो गये और तीनों लोक के स्वामी हरि भगवान ने भी इसी शाप के कारण से शरीर छोड़ दिया तो फिर उद्धवजी कैसे बच रहे? यह सुन श्री शुकदेवजी बोले- श्रीकृष्ण ने अपने कुल का संहार करा, तन त्यागने के समय विचार किया जब मैं इस लोक से चला जाऊंगा, तो उद्धव ही इस ज्ञान को धारण कर सकता है, क्योंकि उद्धव सब प्रकार से हमारे ही समान हैं। इसलिए उद्धवज्ञान का उपदेश करता हुआ यहीं रहेगा। हे कुरुश्रेष्ठ! विदुरजी ने जब विचारा कि प्रभु ने निज-धाम पधारते समय मन से मेरा स्मरण किया तब प्रेम से विह्वल होकर वे रोने लगे। हे राजन्! उद्धवजी के जाने के पश्चात् विदुरजी गंगाजी के तट पर पहुंचे जहां मैत्रेय मुनि विराजमान थे।

मैत्रेयजी द्वारा भगवान की लीला का वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! विदुरजी ने हरिद्वार में जाकर श्रीमैत्रेय ऋषि को प्रणाम कर उनसे पूछा- सम्पूर्ण लोक सुख के लिए अनेक कर्म करता

है, परन्तु उन कर्मों से न तो सुख मिलता है और न दुःख की निवृत्ति होती है। इसलिए जो करने योग्य उपाय हैं सो आप हमसे कहिये। भगवान अवतार धारण करके जिन कर्मों को करते हैं, वे मुझसे कहिये। तब मैत्रेयजी बोले- हे विदुर! संसार के जीवों पर अनुग्रह कर तुमने बहुत अच्छा प्रश्न किया। माण्डव मुनि के शाप से तुम यम भुजिष्या दासी में व्यासजी के वीर्य से उत्पन्न हुए हो। हे विदुर! अब मैं उत्पत्ति, स्थति और संहार का वर्णन तुम्हारे आगे करता हूं। इस जगत की रचना के पूर्व भगवान एक ही था। द्रष्टा या दृश्य जो कुछ था सो वही था। जब भगवान ने कुछ नहीं देखा तब इच्छा हुई कि अनेक रूप होकर अपने को देखें। परमात्मा की जो कारणरूपिणी महाशक्ति है उसी का नाम माया कहा है। उस माया से परमात्मा ने सृष्टि को रचा। माया में अपना अंश धारण करके परमात्मा ने चिदाभास रूप वीर्य धारण किया। उस माया से महत्तत्व उत्पन्न हुआ, वो महत्तत्व अज्ञान का नाश करने वाला और विज्ञान स्वरूप आत्मा है। उसने अपने शरीर में विश्व को प्रकट किया, सो महत्तत्व भी चिदाभास, गुणकाल के अधीन हो कर भगवान के सन्मुख होकर अपनी आत्मा का रूपान्तर करने लगा। जब महत्तत्व विकार को प्राप्त हुआ तब उसमें अहंकार उत्पन्न हुआ। जो कार्य, कारण, कर्त्ता, पंचभूत, इन्द्रिय, मनोमय रूप हुआ। अहंकार, वैकारिक, तैजस, तामस भेदों से तीन प्रकार

का हुआ। वैकारिक अहंकार से ज्ञानेन्द्रिय उत्पन्न हुईं और तामस अहंकार से शब्द उत्पन्न हुआ। शब्द से आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश को ब्रह्मा का स्वरूप कहते हैं। आकाश से स्पर्श उत्पन्न हुआ, स्पर्श के विकार से वायु उत्पन्न हुआ। जब वायु विकार को प्राप्त हुआ तब रूप तन्मात्रा का प्रादुर्भाव हुआ, जो ज्योतिर्लोक की नेत्र रूप हैं। पवन सहित ज्योति जब विकार को प्राप्त हुई, तब रस मय जल उत्पन्न हुआ। जल ने विकार को प्राप्त होकर गंधगुण वाली पृथ्वी को उत्पन्न किया। हे विदुर! आकाश आदि पंचमहाभूतों में जो प्रवर-अधर हैं उनके गुणों को जानो। आकाश का गुण शब्द, पवन के गुण स्पर्श, शब्द तेज के गुण शब्द, स्पर्श रूप जल के गुण शब्द रूप, रस और पृथ्वी में शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध पांचों गुण निश्चय किए जाते हैं। जब तत्वाभिमानी देवता इस ब्रह्माण्ड की रचना करने में समर्थ न हुए तब हाथ जोड़ कर परमात्मा की स्तुति करने लगे। देवता बोले- हे देव! तुम्हारे चरण कमलों को हम नमस्कार करते हैं, जिन चरणों से श्रीगंगाजी निकलीं, जिनका जल पापों का नाश करने वाला है, जो नदियों में श्रेष्ठ हैं, उन श्री भागीरथी के स्थान आपके चरण कमल की हम शरणागत हैं। वेद आप में उत्पन्न होकर सर्वत्र विचरते हुए आप ही में प्रवेश करते हैं। हे जगन्नाथ! सामग्री सहित इस अनित्य शरीर और घर में यह मैं हूं, यह मेरा है, ऐसा है

दुराग्रह जिनका, ऐसे कुटिल और कुमति वाले मनुष्यों के हृदय में बसते हुए भी तुम्हारे चरण कमल दुर्लभ हैं, उन चरणार्विन्दों का हम भजन करते हैं। हे आदि पुरुष! लोकों की रचना के अर्थ आपने सत्वादि गुणों से हम लोगों को रचा है, सो हम सब पृथक होने के कारण ब्रह्माण्ड रचने में समर्थ नहीं हैं। आप हमको अपनी शक्ति और ज्ञान दीजिये जिससे हम संसार रचने में समर्थ हों।

विराट मूर्ति की सृष्टि

मैत्रेय ऋषि कहने लगे- इस प्रकार पृथक रूप से स्थिर होने वाली उन अपनी शक्तियों को जानकर भगवान काल, संज्ञा, शक्ति को धारण करके तेईस तत्वों के समूह में अन्तर्यामी रूप से एक साथ प्रविष्ट हुए। तत्वात्मक गुण में प्रवेश कर भगवान ने भिन्न-भिन्न तत्वों के गुणों को मिला दिया। तेईस तत्वों वाले गुणों से परमेश्वर ने विराट शरीर को प्रगट किया। तब विश्व को रचने वाला यह तत्व गुण परस्पर एकत्र होकर शोभित हुआ, जिसमें ये सब लोक स्थित थे। यह विराट सम्पूर्ण जीवों का आत्मा और परमात्मा का अंश है। यह विराट अध्यात्म अधिदेव अधिभूत इन भेदों से तीन प्रकार, और प्राण भेद से दस प्रकार का, हृदयस्थित जीव भेद से एक प्रकार का है। तब ईश्वर ने तत्वों के विविध वृत्ति, लोभ के अर्थ अपने तेज से

महत्तत्वादिकों को तापयुक्त किया। उस विराट के मुख से कितने ही स्थान अन्नयादि देवताओं के प्रकट हुए। विराट का मुख उत्पन्न हुआ, उसमें अग्नि ने प्रवेश किया। अपनी वाणी के अंश से यह विराट देह कहने के योग्य हुआ। मुख अधिष्ठान हैं, अग्नि इन्द्रिय है, वाणी इन्द्रिय है। वचन विषय है। फिर विराट भगवान के तालु हुआ उसमें जिह्वा सहित वरुण ने प्रवेश किया जिससे स्वाद प्राप्त होता है। तनदन्तर नासिका उत्पन्न हुई उसमें घ्राण सहित अश्विनीकुमार ने प्रवेश किया। घ्राण से सुगन्धि की सिद्धि हुई। फिर नेत्र उत्पन्न हुए उनमें चक्षुइन्द्रिय सहित सूर्य प्रविष्ट हुए। चक्षु के ज्ञान से स्वरूपों की पहचान होती है। फिर शरीर का चर्म उत्पन्न हुआ उसमें प्राणइन्द्रिय सहित पवन ने प्रवेश किया। तब प्राण के अंश से इसका स्पर्श होने लगा। फिर कर्ण उत्पन्न हुए, तब दिशाओं ने उसमें प्रवेश किया तो श्रोत इन्द्रिय के अंश से शब्द की सिद्धि प्राप्त हुई। फिर त्वचा उत्पन्न हुई, उसमें इन्द्रिय ने साथ औषधि देवता ने प्रवेश किया। अनन्तर लिंग उत्पन्न हुआ, जहाँ वीर्य इन्द्रिय सहित प्रजापति ने प्रवेश किया। वीर्य के अंश से जीवात्मा आनन्द को प्राप्त होता है। फिर गुदा प्रगट हुई, उसमें वायु इन्द्रिय सहित मित्र ने प्रवेश किया। वायु के अंश से जीवात्मा मल त्याग करता है। फिर हाथ उत्पन्न हुए, उनमें इन्द्र ने क्रय विक्रय आदि इन्द्रियों के साथ प्रवेश किया।

क्रय-विक्रय आदि से जीवात्मा आजीविका को प्राप्त होता है। अनन्तर चरण उत्पन्न हुए, उनमें गति इन्द्रिय सहित विष्णु ने प्रवेश किया। फिर बुद्धि उत्पन्न हुई उसमें बोध सहित सरस्वती ने प्रवेश किया। बोधक अंश से संकल्प-विकल्प आदि क्रियाओं की प्राप्ति हुई। फिर हृदय उत्पन्न हुआ उसमें मन इन्द्रिय सहित चन्द्रमा प्रविष्ट हुआ। मन में जीवात्मा संकल्प-विकल्प को प्राप्त होता है। फिर अहंकार उत्पन्न हुआ, उसमें अहंवृत्ति इन्द्रियों सहित शिव ने प्रवेश किया। कर्म रूप अहंवृत्ति से जीवात्मा कर्त्तव्य कर्म को प्राप्त होता है। फिर सत्व उत्पन्न हुआ उसमें चित्त इन्द्रिय ब्रह्मा ने प्रवेश किया। चित्त के अंश से जीवात्मा विज्ञान को प्राप्त होता है। फिर विराट-भगवान के शिर से स्वर्ग, चरणों से पृथ्वी और नाभि से आकाश उत्पन्न हुआ। रजोगुण प्रभाव से व्यवहार करने वाले मनुष्य और गौ आदि पृथ्वी पर रहने लगे। तमोगुण स्वभाव वाले रुद्र के पार्षद, भूत, प्रेतगण अन्तरिक्ष में बस गये। हे राजन्! भगवान के मुख से वेद उत्पन्न हुआ और भुजाओं से कर्म उत्पन्न हुआ।

विदुर के प्रश्न

'विदुर ने कहा- हे ब्रह्मन्! चैतन्यस्वरूप भगवान की क्रियाओं और निर्गुण भगवान के गुणों का कैसे सम्बन्ध हो सकता है? क्योंकि क्रीड़ा में उद्यम करना

और क्रीड़ा करने की इच्छा करनी ये दोनों बात किसी दूसरे के होने से होती हैं। जो स्वयं और सदैव अन्य से निवृत्त है, उस ईश्वर को काम अर्थात् क्रीड़ा करने की कामना और इच्छा कैसे हुई? भगवान ने अपनी माया से जगत को रचा, उसी से पालन करते हैं फिर उसी से संहार करते हैं। जो परमात्मा नष्ट ज्ञान वाला नहीं होता, वह माया के साथ कैसे संयुक्त हो सकता है? एक भगवान सर्वव्यापकत्व भाव से सम्पूर्ण पूर्व से स्थित कैसे सम्भव हो सकता है? हे विद्वान! इस अज्ञान में मेरा मन खेद को प्राप्त हो रहा है सो हमारे इस मोह को आप दूर करो। श्रीशुकदेवजी बोले- तत्व जानने की इच्छा से बोले विदुरजी ने यह बात मैत्रेय ऋषि से पूछी तब भगवद्भक्त मैत्रेय मुनि बोले- यही भगवान् की माया है। जैसे स्वप्न में शिर कटे बिना ही स्वप्न देखने वाले को शिर कटना प्रतीत होता है पर जागने पर शिरच्छेदनादि मिथ्या जान लेता है इसी तरह आत्म स्वरूप ज्ञान से देहादि के बन्धनादि धर्म आत्मा में प्रतीत होते हैं। वास्तव में नहीं हैं। आत्मा में जो अनात्म का धर्म प्रेरित होता है सो निवृत्ति मार्ग के सेवन से धीरे-धीरे नष्ट हो जाता है। जब इन्द्रियों का दृष्टा आत्मा हरि में प्रवृत्त होता है तब सम्पूर्ण क्लेश लीन हो जाते हैं। जब भगवान के गुणानुवादों का सुनना सम्पूर्ण क्लेशों को नाश कर देता है, तो फिर भगवान के चरणारविंदों की सेवा की प्रीति सब क्लेशों का नाश क्यों नहीं करेगी?

विदुर जी बोले- हे प्रभो! तुम्हारे सुन्दर वचनों से हमारा संशय मिट गया। परन्तु हे भगवन! अब हमारा मन बन्धन और मोक्ष में दौड़ता है। जीवात्मा बन्धन में है, और परमात्मा मोक्ष है, इसका समाधान कहो। विकार सहित महदादि तत्वों को क्रम पूर्वक रच कर उनसे विराट देह उत्पन्न करके उसमें परमात्मा को आदि पुरुष कहते हैं। जिसमें चार वर्ण हैं। उस विराट भगवान की विभूति हम से कहो। जिन विभूतियों में अनेक प्रकार की आकृति वाली प्रजा उत्पन्न हुई। भगवान ने किन प्रजापतियों को रचा और सर्ग, अनुसर्ग, मनु और मन्वन्तर के अधिपति कौन-कौन रचे? हे मुनि! इनके वंश और वंश में होने वालों के चरित्र और पृथ्वी के ऊपर तथा नीचे जो लोक हैं उनको कहो। उनकी रचना और प्रमाण कहो।

ब्रह्मा का विष्णु दर्शन

मैत्रेयजी बोले- हे विदुर! आपने जो लोकहित आकांक्षा से प्रश्न किए हैं उनके उत्तर में, मैं इसी भागवत कथा का वर्णन करता हूं। जिस समय यह जगत महाप्रलय के जल में डूब गया उस समय शेष शय्या पर श्रीनारायण अकेले ही विराजमान थे। हजारों वर्ष जल में शयन करके भगवान अपनी काल रूपी शक्ति से सम्पूर्ण लोकों को अपने देह में लीन होते देखते, लोक रचना के लिए भगवान के अन्तर्गत जो

अति सूक्ष्म रूप से स्थित अर्थ था वह रजोगुण से विद्ध होकर नारायण की नाभिस्थान को भेदन करता हुआ कमल रूप में उत्पन्न हुआ, जो अपनी कान्ति से उस जल में सूर्य के समान प्रकाश करता था। वो श्रीनारायण की नाभि से उत्पन्न हुआ था इससे उस कमल को आत्मयोनि कहते हैं। उस लोकात्मक कमल में भगवान ने प्रवेश किया, तब उस कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जिनको स्वयं ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्माजी ने जब लोकों को नहीं देखा तब आकाश में नेत्र घुमाये। चारों दिशा की ओर देखने के लिये ब्रह्मा के चार मुख उत्पन्न हो गये। कमल पर विराजमान आदिदेव ब्रह्माजी ने न तो लोक तत्व रूप कमल को जाना, न अपने आपको जाना, कि मैं कौन हूं? तब ब्रह्माजी ने विचार किया कि यह कमल कहां से उत्पन्न हो गया? नीचे तक है अथवा यहीं से उत्पन्न हुआ है? ब्रह्माजी इस प्रकार विचार करके कमल की नाल के भीतर प्रविष्ट हो गये। मगर ब्रह्माजी ने कमल की जड़ का ठिकाना नहीं पाया। तब ब्रह्माजी अपना मनोरथ पूर्ण न जानकर उलटे लौटकर अपने स्थान पर आकर समाधि लगा के योग में स्थित हो गये। सौ वर्ष योग करने से ब्रह्माजी को ज्ञान उत्पन्न हुआ और अपने हृदय के मध्य में उस प्रकाशित स्वरूप को देखा जिसको उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। शेष शय्या पर शयन कर रहे भगवान का ब्रह्माजी ने दर्शन किया।

ब्रह्मा द्वारा भगवान का स्तवन

ब्रह्माजी ने विनय की- हे भगवान्! बहुत काल तप करने से मैंने आपको जाना है। हे भगवान्! आपके स्वरूप से पृथक कुछ नहीं है और जो कुछ है सो शुद्ध नहीं है। हे परम! मैं इसी आपके स्वरूप की शरण हूं। हे सम्पूर्ण संसार के सुहृद! आप एक आत्म-तत्व, सत्व-गुण-रूप ईश्वर के द्वारा सब संसार को सुख देते हो वही दिव्य दृष्टि मुझको मिले, जो पूर्व की तरह इस जगत को रचूं। हे स्वामिन्! हमको इस जगत के रचने में प्रवृत्त करो। तदनन्तर भगवान गम्भीर वाणी से बोले- हे वेद-गर्भ ब्रह्मन्! आलस्य मत करो और जगत के रचने के लिये उद्योग करो। जिस वस्तु की प्रार्थना तुम हमसे करते हो वह मैंने पहले ही तुमको दे दी है। हे ब्रह्मन्! तुम फिर तप करो और मेरे आश्रित हुई विद्या को धारण करो। अब तुम मेरी विद्या से फैले हुए सब लोकों में व्याप्त मुझको देखोगे और मुझमें स्थित लोकों को और सब जीवों को देखोगे। रजोगुण तुमको नहीं व्यापेगा। तुमने मुझको जान लिया, क्योंकि तुमने पंचभूत इन्द्रिय, गुण, अहंकार, इनमें पृथक मुझको माना है। कमल की नाल के मार्ग से तुम्हें सन्देह हुआ कि इसके नीचे कुछ अवश्य होगा, तब हमने अपना स्वरूप तुम्हारे हृदय में प्रकट किया, हे ब्रह्मन्! तुमने जो हमारी स्तुति की है और जो तप में तुम्हारी निष्ठा हुई यह

सब मेरी ही कृपा है। यह कहकर परमेश्वर ब्रह्मा को स्वरूप दिखाकर अन्तर्धान हो गये।

दशा विधि सृष्टि

मैत्रेय जी कहने लगे- हे विदुर! ब्रह्मा ने भगवान में मन लगाकर सौ वर्ष तप किया। ब्रह्मा ने जल सहित वायु पान कर लिया। फिर जिस कमल पर ब्रह्माजी स्थित थे उसको आकाश तक व्याप्त देखकर विचार किया कि इसी कमल ने प्रथम सब लोकों को लय किया था उन्हीं लोकों की रचना करूंगा। ब्रह्मा ने उस कमल पर स्थित होकर एक कमलनाल को बहुत प्रकार से विभाग किया। विदुरजी बोले- हे प्रभो! हरि का काल रूप नामक रूप जो तुमने कहा उस काल का लक्षण हमसे कहो। मैत्रेयजी बोले- हे विदुर! यह काल जो सत्व, रज, तम, गुणों का व्यतिकार होना अर्थात् महादिकों के परिणाम से जो किया जाता है वो काल कहलाता है, वो काल विशेषों से रहित है। यहां विश्व ब्रह्मस्वरूप है, उसी माया से संहत है और ईश्वर से ही प्रकाशित है। यह विश्व जैसा अब है वैसा ही पीछे था और आगे भी ऐसा ही रहेगा। इस विश्व के नौ प्रकार के सर्ग हैं। दो प्रकार हैं प्राकृत तथा वैकृत। इनमें जो वैकृत है वो दसवां सर्ग है। काल, द्रव्य तथा गुण तीन प्रकार के नाम हैं। केवल काल से जो प्रलय होता है उसको नित्य प्रलय कहते हैं। संकर्षण की अग्नि से जो

प्रलय होता है उसको नैमित्तिक प्रलय कहते हैं। अपने-अपने कार्यों को ग्रसने वाले गुणों से प्राकृतिक प्रलय है, उन्हें दस सर्ग कहते हैं। जो महत्तत्व है वो प्रथम सर्ग है। श्रीहरि के द्वार से गुणों के विषय भाव होने को महत्तत्व कहते हैं। दूसरा अहंकार सर्ग है। द्रव्य ज्ञान क्रिया का रूप है। तीसरा भूत सर्ग है जिसमें पंचमहाभूत अपनी तन्मात्रा सहित उत्पन्न होता है। चौथा इन्द्रियों का सर्ग है जहां ज्ञानइन्द्रिय, कर्मइन्द्रिय, अहंकार वाला मन तथा इन्द्रियाधिष्ठाता होते हैं। छठा तमोगुण का सर्ग है। जहां पंचपर्वा अविद्या जीवों को दृक्षेप करने वाली उत्पन्न हुई है। ये छः प्राकृत सर्ग कहते हैं। अब वैकृतिक सर्ग सुनो- सातवां जो सर्ग है उसे मुख्य सर्ग कहते हैं। सातवां सर्ग यह है कि जो बिना फूल के फले सो वनस्पति, जिनका फल पके से नाश हो वह औषधि है। आठवां सर्ग पशु-पक्षियों का है वह अट्ठाईस प्रकार का है। पशुओं का सर्ग अविद है अर्थात् शाम सवेरे के विचार से रहित है। अहारादि का ज्ञानमार्ग है। बहुत तमोगुण वाला है नासिका के सूंघने से ही सब ज्ञान लेते हैं परन्तु ये दीर्घानुसन्धान रहित है। हे विदुर! उन अट्ठाईस भेदों को सुनो- गौ, बकरा आदि दो खुरों वाले पशु हैं। गर्दभ, घोड़ा आदि एक खुर वाले पशु हैं। पांच नख वाले- कुत्ता, सियार आदि हैं। कौआ, गीध आदि पक्षी हैं। हे विदुर! जिनका आहार नीचे को जाता है ऐसा नवां सर्ग मनुष्यों का कहा

है। मनुष्य अधिक रजोगुण वाले हैं और कर्म में तत्पर और दुःख में सुख मानने वाले हैं। हे विदुर! तीनों ये सर्ग और देव सर्ग वैकारिक सर्ग कहे हैं। सनत्कुमारों का सर्ग प्राकृत और वैकृत दोनों प्रकार का कहा है। देव सर्ग आठ प्रकार का है। सिद्ध, यक्ष, राक्षस, ब्रह्मा के रचे हुए ये दस हैं। इस प्रकार भगवान कल्प के आदि में आप ही अपनी आत्मा को रचता है।

मन्वन्तरादि के समय के परिमाण

मैत्रेयजी बोले- जिससे सूक्ष्म अन्य कोई वस्तु नहीं सो परमाणु जानना, मनुष्य को ऐक्य भ्रम होता है। जिसके अन्त का विभाग परमाणु है, जो सत स्वरूप स्थित हो उसका जो ऐक्य है उसे परम महान् कहते हैं। हे विदुर! इसी प्रकार सूक्ष्म रूप से काल का अनुमान किया है। वह अव्यक्त रूप वाला भगवान अपनी परमाणु अवस्थाओं के भोग से व्यक्त प्रत्यक्ष को भोगता है। जो परमाणुता को भोगे उस काल को परमाणु कहते हैं और जो अपनी सम्पूर्ण अवस्था को भोगता है उसको परम महान् कहते हैं। दो परमाणुओं का एक अणु कहलाता है और तीन अणुओं का एक त्रसरेणु। तीन त्रसरेणु की एक त्रुटि और सौ त्रुटि को एक वेध कहते हैं। तीन वेधों का एक लव कहलाता है। तीन लव का एक निमेष और तीन निमेष का एक क्षण कहलाता है। पांच क्षण का एक काष्ठा, पन्द्रह

काष्ठा की एक लघुता कही है। पन्द्रह लघु की एक घड़ी और दो घड़ियों का एक मुहूर्त और छः घड़ी का एक पहर होता है। सौ पहर दिन का चौथा भाग होता है, उसी को याम कहते हैं। जो छः घड़ी का याम कहा और उसे दिन का या रात्रि का चौथा भाग कहा है इसमें उभय सन्ध्याओं को दो-दो घड़ी छोड़कर समझना क्योंकि सन्ध्या को दिन में तथा रात्रि में कोई नहीं गिनते हैं।

घड़ी यन्त्र बनाने की विधि— चौबीस तोला ताँबा की कटोरी इस प्रमाण से बनावे कि जो चौंसठ तोला जल से भर जावे, उस कटोरी में चार माशे सुवर्ण की चार अँगुल लम्बी सलाई से छिद्र करे। उस छिद्र से जितने समय में जल प्रवेश होने पर वह पात्र डूब जावे उतने समय को घड़ी कहते हैं। चार-चार पहर के दिन रात होते हैं। पन्द्रह दिन का शुक्लपक्ष और पन्द्रह दिन का कृष्णपक्ष होता है। दो पक्षों का एक मास होता है जो पितरों का एक दिन-रात्रि कहलाता है। दो महीनों की एक ऋतु होती है और छः महीनों का एक अयन होता है जो दक्षिणायन, उत्तरायण भेद से दो प्रकार का है। उन दोनों अयनों का देवता का एक दिन-रात होता है, उसे मनुष्य का एक वर्ष कहते हैं। सौ वर्षों की मनुष्य की परमायु कही है। बारह महीनों में बारह राशि रूप भुवन आकाश में परिभ्रमण करता है। यह वर्ष सम्वत्सर, परिवत्सर, इडावत्सर, अनवत्सर, वत्सर इस

प्रकार से पाँच प्रकार का कहलाता है।

विदुर जी बोले- पितर, देवता, मनुष्य इनकी तो परमायु आपने कही। अब कल्प से बाहर रहने वालों की गति को वर्णन करो। मैत्रेयजी बोले- हे विदुर! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग, सन्ध्या और सन्ध्यांश सहित देवताओं के दिव्य बारह हजार वर्षों के कल्पना किये हैं। चार हजार आठ सौ वर्ष का सतयुग और तीन हजार छः सौ वर्ष का त्रेतायुग, दो हजार चार सौ वर्ष का द्वापर, एक हजार दो सौ वर्ष का कलियुग होता है। युग के प्रारम्भ में वर्षों के जो सैकड़े हैं उनको सन्ध्या और युग के अन्त में उतने ही वर्षों का सन्ध्यांश कहते हैं। जो हजार संख्या वाला काल है उसको युग कहते हैं जिसमें यज्ञादिक धर्म का विधान प्रवृत्त रहता है। सतयुग में धर्म चारों चरणों से, त्रेता में ३ चरणों से, द्वापर में २ तथा कलियुग में एक चरण से रहता है। हे विदुर! त्रिलोकी से बाहर ब्रह्मलोक पर्यन्त चार हजार युगों का एक दिन होता है, उतनी ही रात्रि होती है जिस रात्रि में जगत के रचने वाला ब्रह्मा शयन करता है। रात्रि के अन्त में फिर लोकों की रचना आरम्भ होती है। जो भगवान ब्रह्मा का दिन होता है, उसी को कल्प कहते हैं। ब्रह्मा के एक दिन में चौदह मनु होते हैं। इकहत्तर चतुर्युगों से कुछ अधिक काल तक एक-एक मनु अपना-अपना समय भोगता है। और मन्वन्तरों में मनु और मनु के वंश के राजऋषि, सप्तर्षि देवता, इन्द्र और

इनके पीछे होने वाले गन्धर्व आदि सब एक संग होते हैं। ये ब्रह्मा का एक दिन कहाता है। हर मन्वन्तर में भगवान सत्वगुण को धारण करते और अपने पराक्रम के द्वारा विश्व की रक्षा करते हैं। जब रात्रि आती है तब सृष्टि को अपने में लय कर मौन साध लेते हैं। रात्रि में सूर्य चन्द्रमा के न होने से तीन लोक अन्तर्ध्यान हो जाते हैं और फिर शेषजी के मुखाग्नि से जब तीनों लोक जलने लगते हैं तब उस अग्नि की लपट से पीड़ित हो भृगु आदि महर्षि जल-लोक को चले जाते हैं। इतने में समुद्र का जल बढ़कर प्रचण्ड लहरों से त्रिलोकी को डुबा देता है और जल ही जल दीख पड़ता है। जल में शेष शय्या पर भगवान नेत्र मूंद शयन करते हैं। उस समय भृगु आदि मुनि उसकी स्तुति करते हैं। इस प्रकार काल गति से ब्रह्मा की आयु पूरी हो जाती है। उस ब्रह्मा की आयु का जो आधा भाग है उसको परार्ध हो चुका, अब दूसरा परार्ध प्रवृत्त हुआ है, प्रथम परार्ध को ब्राह्म कहते हैं। अन्त में जो कल्प हुआ उसको पाद्म कहते हैं। हे भारत! यह दूसरे परार्ध का पहिला श्वेत वाराह नामक प्रसिद्ध कल्प है। जिसमें हरि भगवान ने वाराह स्वरूप धारण किया है। यह द्विपरार्ध संज्ञा वाला काल भगवान का निमेष गिना जाता है। परमाणु से ले के द्विपार्ध पर्यन्त यह काल प्रभु की आयु की गिनती नहीं कर सकता क्योंकि एक ब्रह्माण्ड के भीतर से पचास कोटि योजन विस्तृत है और बाहर से एक से एक

दस गुण सात पृथिव्यादिक आवरणों से लिपटा हुआ है, इस प्रकार के सहस्त्र ब्रह्माण्ड जिस ईश्वर के एक-एक रोम में गूलर के भुनगों की तरह उड़ते हैं, उस ईश्वर की आयु की कोई किस प्रकार गिनती कर सकता है। उसको अक्षर ब्रह्म कहते हैं। जो सब कारणों का कारण है, तथा विष्णु भगवान का परम धाम है।

ब्रह्मा सृष्टि वर्णन

मैत्रेयजी ने कहा- हे विदुर! अब जिस प्रकार ब्रह्मा जी ने सृष्टि की रचना करी वह कहता हूँ। ब्रह्माजी ने प्रथम अन्ध तामिस्त्र, तामिस्त्र, महा-मोह, तम, इस पंच पर्वा अविद्या को रचा। अनन्तर सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार को ब्रह्माजी ने मन से उत्पन्न किया। इन्होंने क्रिया को त्याग वीर्य को ऊर्ध्व चढ़ा लिया, जिससे नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो गए। तब ब्रह्माजी ने क्रोध को रोकने का उपाय किया। परन्तु बुद्धि से रोकने पर भी वह क्रोध भृकुटी के मध्य से नील लोहित वर्ण वाला बालस्वरूप उत्पन्न हुआ। उस समय देवताओं के पूर्वज महादेव ने रूदन करके कहा हे विधाता! मेरा नामकरण करो और मेरे रहने का स्थान बताओ। ब्रह्मा जी ने कहा कि तुम बालक के समान रोए, इससे प्रजा तुम्हें रुद्र कहेगी। हृदय, इन्द्रियां, प्राण, आकाश, पवन, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, तप ये ग्यारह स्थान तुम्हारे निवास को हैं। मन्तु, मनु,

महिसन, महान्, शिव, ॠतुध्वज, उग्रेता, भव, काल, वामदेव, धृतव्रत ये ग्यारह तुम्हारे नाम हैं। हे रुद्र! घी, वृत्ति, उशना, उमा, नियुत, सर्पि, इला, अम्बिका, इरावती, सुधा, दीक्षा, रुद्राणी तुम्हारी स्त्रियां हैं। अपनी स्त्रियों सहित प्रजा को रचो। तब शिव जी ने अपनी आकृति और स्वभाव के समान भयंकर प्रजा रची। शिवजी के रचे हुए भूत प्रेतादि जगत का संहार करने लगे। ब्रह्मा जी यह देखकर कहने लगे- हे महादेव! तुम तप करो, तपस्या के प्रभाव से जैसी प्रजा थी वैसी ही सृष्टि रचोगे। मैत्रेयजी बोले- हे विदुर! ब्रह्मा जी की आज्ञा मान शिवजी ने तप किया। अनन्तर ब्रह्माजी ने संतान के हेतु दस पुत्र उत्पन्न किए। ब्रह्माजी की गोद से नारदजी, अंगूठे से दक्ष, प्राण से वशिष्ठजी, त्वचा से भृगु, हाथ से ॠतु, नाभि से पुलह, कानों से पुलस्त्य, मुख से अंगिरा, नेत्रों से अत्रि, मन से मरीचि उत्पन्न हुआ। अधर्म से मृत्यु उत्पन्न हुई। हृदय से कामदेव, भृकुटी से क्रोध, नीचे के होठ से लोभ, मुख से वाणी, लिंग से समुद्र, गुदा से मृत्यु हुई। ब्रह्मा की छाया से श्री कर्दम ॠषि उत्पन्न हुए। मुख से सरस्वती प्रगट हुई। यद्यपि यह सुन्दरी अकामा थी तथापि ब्रह्माजी इसे देखकर कामातुर हो गये। अपने पिता ब्रह्माजी की मति को अधर्म में लगी देख कर ब्रह्मा के पुत्र मरीचि आदि ने समझाया- हे पिता! आज तक ऐसा काम न तो पूर्व के ब्रह्मादिकों ने किया है और न आगे वे करेंगे, आप

काम को जीतो, तुम समर्थ हो। ब्रह्मा जी अति लज्जित हुए और उसी समय अपना शरीर छोड़ दिया। उस शरीर को दिशाओं ने ग्रहण किया, जो कुहरा और अन्धकार नाम से प्रसिद्ध हुआ। ब्रह्माजी ने दूसरा शरीर धारण कर लिया। उस समय ब्रह्माजी विचार करने लगे कि पूर्व यह जगत जैसा था वैसा ही अब मैं कैसे रच सकूंगा? उसी समय पूर्व मुख से ऋग्वेद, दक्षिण मुख से यजुर्वेद, पश्चिम मुख से सामवेद, उत्तर मुख से अथर्ववेद उत्पन्न हुए। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व वेद, उपवेद ब्रह्माजी ने पूर्वादि चारों मुखों से क्रम पूर्वक उत्पन्न किये। फिर इतिहास-पुराण नाम वाले पंचम वेद को अपने सब मुखों से उत्पन्न किया। षोडशी पूर्व वाले मुख से रची, पुरीष्य तथा अग्निष्टोम यज्ञ ग्रह, दक्षिण वाले मुख से, आप्तोर्याम तथा अत्रिरात्रि दोनों पश्चिम वाले मुख से और वाजपेय यज्ञ व गोमेध उत्तर वाले मुख से प्रगट किये। विद्या दान, तप और सत्य धर्म के चारों चरण तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास ये चार आश्रम और इन चारों की वृत्तियां पूर्वादि मुखों से रचीं। गायत्री की उपासना करने वालों को सावित्री कहते हैं। सावित्री व्रत केवल तीन दिन का होता है और व्रतों का आचरण करते एक वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य को धारण करने को प्रजापत्य कहते हैं। वेद ग्रहण तक ब्रह्मचर्य धारण को ब्राह्मण ब्रह्मचर्य कहते हैं। नैष्टिक ब्रह्मचर्य को बृहद्व्रत कहते हैं। यह चार

प्रकार के ब्रह्मचर्य हैं। जिसका कोई निषेध न करे उस कृत्यादि को वार्ता वृति कहते हैं। अयाचित को शालीन वृत्ति कहते हैं। खेत में तथा दुकानों के नीचे गिरा हुआ अन्न बीनकर निर्वाह करने को सिलाँछ वृत्ति कहते हैं और चौथी संचय। इन चार प्रकार की वृत्तियों को गृहस्थ वृत्ति कहते हैं। वैखानस से निर्वाह करने वाले तथा नवीन अन्न मिलने पर पूर्व संचित अन्न को त्याग करने वाले, प्रभात में उठकर जिस दिशा को प्रथम देखें उसी दिशा में आये हुये फल आदि से निर्वाह करने वाले, अपने आप पड़े हुए फल आदि से जीविका करने वाले, यह चार प्रकार के वानप्रस्थ हैं। अपने आश्रम के कर्म में प्रधान रहने वाले कुटीचक्र हैं, जो कुछ काम करके जीविका करते हुए ज्ञान सीखते हैं वे बहुदक हैं, जो ज्ञान सर्वदा अभ्यास करते हैं, वे हंस हैं और तत्वज्ञान को अच्छे प्रकार जानने वाले परम हंस हैं, यह चार प्रकार के संन्यासी हैं। इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं। वेद-विद्या, धर्म-विद्या, दण्ड विद्या, नीति-विद्या, ये चारों तथा भूर्भुवः स्वः और महः ये चार व्याहृतियां पर्वादि मुखों से क्रम से प्रकटीं। ओंकार ब्रह्मा के हृदय से उत्पन्न हुआ। रोमावाली से उष्णिक, गायत्री त्वचा से, त्रुष्टुप मांस से, अनुष्टुप स्नायु से, हड्डियों से जगती, मज्जा से पंक्ति, वृहित प्राणों से, जीभ से 'क' से 'म' पर्यन्त अक्षर तथा अ, इ, उ आदि स्वर देह से हुए। उष्मा वर्ण श ष स ह इन्द्रियों से, अन्तः स्थवर्ण 'य र ल व'

बल से हुए। निषाद, ऋषभ, गान्धार, षडज, मध्यम, धैवत, पञ्चम, सात स्वर ब्रह्माजी के विहार से हुए। ऋषियों की सन्तान भी वृद्धि को नहीं प्राप्त हुईं, तब ब्रह्माजी चिन्ता करने लगे कि बड़ा आश्चर्य है कि मैं नित्य उद्यम कर रहा हूं परन्तु वृद्धि नहीं होती? निश्चय इसमें दैव प्रतिबन्धक है जो प्रजा को बढ़ने नहीं देता। जब ब्रह्मा ने दैव को दोष दिया, तब उनके शरीर में से दो स्वरूप हो गये जिसको काय कहते हैं। एक शतरूपा दूसरा स्वायम्भुव मनु। उन दोनों ने मैथुन किया। मैथुन से प्रजा बढ़ने लगी। इनके प्रियव्रत, उत्तानपाद दो पुत्र तथा आकूती, देवहूती, प्रसूती ये तीन कन्यायें हुईं। स्वायम्भुव मनु ने आकूति रुचि को दी, देवहूती कर्दमजी को और प्रसूति नामक कन्या दक्ष को दी। जिनकी सन्तानों से यह जगत भर गया।

भगवान द्वारा वाराहरूप की जल में उत्पत्ति

मैत्रेयजी ने कहा- जब अपनी स्त्री सहित स्वायम्भुव मनु उत्पन्न हुए तब उन्होंने हाथ जोड़कर ब्रह्माजी से कहा- हे पिता! मैं तुमको नमस्कार करता हूं। हमारी शक्ति के अनुसार कर्म करने की आज्ञा करो, मेरा निवास स्थान और प्रजा के रहने को ठौर बताइये। ब्रह्माजी की नासिका के छिद्र से अकस्मात् अंगूठे के अग्रभाग के समान वाराह का एक बच्चा उत्पन्न हो

गया। देखते-देखते वह वाराह एक क्षण में ही हाथी के समान बड़ा हो गया। मरीच आदि ब्राह्मण, सनत्कुमार आदि मुनि व मनु सहित ब्रह्माजी उस शूकर को देखकर अनेक प्रकार के विचार करने लगे। वाराह के शरीर के समान सा यह दिव्य जन्तु कौन आकर खड़ा हो गया? कदाचित यज्ञ भगवान तो नहीं प्रगटे। श्री ब्रह्माजी अपने पुत्रों सहित यह विचार कर रहे थे कि इतने में वाराहजी गर्जने लगे। उस समय घर्घार शब्द सुनकर जनलोक, तपलोक, सत्यलोक में रहने वाले मुनिगण परम पवित्र वेदत्रयी मंत्र पढ़-पढ़कर स्तुति करने लगे। वेद वाणी को सुनकर वाराह भगवान ने फिर गर्जन किया और गजेन्द्र के समान जल में प्रवेश किया। वाराह भगवान स्वयं यज्ञ मूर्ति होने पर भी पशु के समान घ्राण से पृथ्वी को सूंघते, जल में प्रवेश कर गए और पृथ्वी को अपनी दाढ़ से उठाकर रसातल से ऊपर को लाये। हाथ में प्रज्वलित गदा को लिये हुये अपनी ओर आते हुए असह्य पराक्रमी हिरण्याक्ष दैत्य को भगवान ने जल में ऐसे मार डाला कि जैसे गजराज का मृगराज संहार करे। हे राजन्! श्याम वर्ण वाले वाराहजी की श्वेत दाढ़ों के अग्रभाग से पृथ्वी को ऊँची उठाकर लाते देखकर ब्रह्मादिक देवता तथा ऋषि हाथ जोड़कर वेदमन्त्रों से स्तुति करने लगे- हे भगवान! हमारा नमस्कार है। हे भूधर! दाढ़ के अग्रभाग पर आपसे धारण की गई यह पृथ्वी शोभा को प्राप्त हो रही है।

पृथ्वी की लोगों के वास के निमित्त स्थापना करो। आप स्थावरजङ्गम सबके पिता हो इस कारण आपकी स्त्री पृथ्वी है। हम तुम्हारे साथ इस अचला देवी को नमस्कार करते हैं। तब वाराह भगवान ने पृथ्वी को जल पर अचल कर दिया। इस प्रकार वाराह भगवान पृथ्वी को जल पर स्थापित करके अपने स्थान को चले गये।

दिति की गर्भोत्पत्ति

विदुरजी कहने लगे- हे मुनि उत्तम! पृथ्वी का उद्धार करते हुये भगवान का और हिरण्याक्ष का किस कारण युद्ध हुआ? यह प्रश्न सुनकर मैत्रेयजी ने कहा- प्रथम हिरण्याक्ष और हिरणककश्यप की उत्पत्ति सुनो। हे विदुर! एक समय संध्या काल में दक्ष की कन्या दिति ने कामातुर हो सन्तान की इच्छा से कश्यप ऋषि से भोग की याचना की। कश्यपजी सूर्यास्त के समय अग्नि होत्र शाला में विराजमान थे। दिति ने कहा- हे विद्वान्! कामदेव मुझ अबला को दुःख देता है। सन्तान वाली सपत्नियों की समृद्धि से दग्ध होती हुई जो मैं दासी हूं सो हमारे पुत्र न हो यह बड़ा आश्चर्य है। हे कमल नयन! आप मेरी कामना पूर्ण करो। दिति के वचन सुन कर कश्यपजी कहने लगे- हे भीरु! दो घड़ी पर्यन्त धैर्य धारण करो जिससे संसारी मनुष्य हमारी निन्दा न करें। इस संध्या समय में महादेवजी के गण भूत, प्रेत,

वेतालादि विचरते फिरते हैं। महादेव अपने तीनों नेत्रों से आठों पहर देखते रहते हैं सो वे अवश्य हमारे विहार का अवलोकन करेंगे, तनिक इनकी लज्जा करो। कश्यपजी ने दिति को समझाया, परन्तु मदन के मद से अचेत इन्द्रियों वाली दिति ने वेश्या के समान लाज छोड़ कर कश्यपजी का वस्त्र पकड़ लिया। तब वे अपनी पत्नी का हठ जानकर भगवान को प्रणाम करके उस हठीली स्त्री के साथ विहार करने लगे। भोग से निश्चिन्त होकर स्नान करके प्राणायाम किया और ध्यान मग्न हो जप करने लगे। उस निन्दित कर्म से लज्जित हुई दिति नीचा सिर किये कश्यपजी के समीप आकर बोली- हे ब्रह्मन्! महादेव हमारे इस गर्भ का विध्वंस न करें, उनकी लज्जा मैंने नहीं की, यह अपराध मुझसे हुआ है। वे सतीजी के पति हमारे बहनोई हैं वो हम पर प्रसन्न हों। मैत्रेयजी बोले- अपनी संतति का शुभ चाहने वाली दिति से कश्यपजी संध्या-बंदन से निवृत्त होकर बोले- प्रिये! तुम्हारा चित्त शुद्ध न होने से, मौहूर्तिक दोष से, हमारी आज्ञा नहीं मानने से, देवताओं का अनादार करने से तुम्हारे उदर से अत्यन्त दो अधर्मी पुत्र उत्पन्न होंगे। देवताओं को जीतकर सबको दुःख पहुंचायेंगे। भगवान अवतार धार कर उन दोनों का नाश करेंगे। यह सुनकर दिति बोली- हे स्वामिन्! भगवान के हाथ से मैं अपने पुत्रों का मरना चाहती हूं परंतु ब्राह्मण के क्रोध से मेरे पुत्रों का मरण न हो। दिति

का वचन सुन कर कश्यप मुनि बोले, तुमने अपने अपराध का पछतावा किया और विष्णु, महादेव और मैंने इन तीनों का बहुत मान और आदर किया इसके प्रभाव से तुम्हारे पुत्र के जो पुत्र होंगे उनमें से प्रहलाद परम भगवद्भक्त तथा सन्तापहारी होगा।

बैकुण्ठ के दो विष्णु भक्तों के प्रति ब्राह्मणों का शाप

मैत्रेयजी ने कहा- कश्यपजी के वीर्य को देवताओं को पीड़ा होने की शंका से दिति ने सौ वर्ष गर्भ धारण किया। उस गर्भ के तेज से निस्तेज हुये सब लोकों को देखकर सब लोकपालों ने ब्रह्माजी से जाकर निवेदन किया। हे प्रभु! आप जानते हो जिससे हम सब भयभीत हो रहे हैं। अन्धकार से लुप्त कर्म वाले हम लोगों को आप सुखी करो। यह दिति गर्भ सम्पूर्ण दिशाओं में अंधकार बढ़ाता है। स्तुति सुनकर ब्रह्माजी ने कहा हमारे मन से उत्पन्न सनक, सनन्दन, सनत्कुमार चारों भाई सर्वदा सम्पूर्ण लोकों में विचरते रहते हैं। वे एक समय बैकुण्ठलोक को गये। उस बैकुण्ठ में सनकादिक मुनि छः द्वारों तक बिना रोक-टोक चले गये। जब सातवें द्वार पर पहुंचे, तो सुन्दर वेष वाले जय विजय नामक दो पार्षद देखे। सर्वत्र समदृष्टि होने से, सम्पूर्ण जगत् में विचरने वाले, वृद्ध होने पर भी पांच वर्ष की अवस्था वाले और आत्मतत्व के जानने वाले, उन

कुमारों को नग्न सातवें द्वार में घुसते देखकर दोनों द्वारपाल रोकने लगे। भगवान के दर्शन की इच्छा भंग होने से मन में दुःख मानकर क्रोध से बोले- बैकुण्ठ लोक में समदर्शी भगवान विराजमान हैं तुमको विषम बुद्धि कैसे हुई। तुम दोनों उस लोक में जाओ जहां भेद दृष्टि से काम, क्रोध, लोभ से ग्रसित पापी रहते हैं। मुनियों का यह वचन सुनकर दोनों पार्षद कांपने लगे। मुनियों के चरणों में गिर पड़े और कहने लगे- अपराध करने वालों को जो दण्ड चाहिए वही दण्ड आपने दिया है, परन्तु आप की कृपा से भगवान के स्मरण का नाश करने वाला मोह हमको न हो। भगवान अपने पार्षदों के अपराध को जान कर नंगे पांवों से भागते वहीं आ पहुंचे। श्यामवर्ण, विशाल वक्ष-स्थल, पीताम्बर धारण किये, वनमाला से सुशोभित हाथ गरुड़ पर धरे, दूसरे हाथ से कमल को घुमा रहे, कुण्डलों से सुशोभित कपोल, मनोहर मुखारविन्द, मणिमय मुकुट धारण किए, अमूल्य हार और कंठ में कौस्तुभ मणि धारे, हरिस्वरूप के दर्शन कर सनकादिक ने भगवान के चरणारविंदों में प्रणाम किया।

दोनों द्वारपालों का बैकुण्ठ से अघः पतन

ब्रह्मा जी कहने लगे- सनकादिक मुनियों की प्रशंसा करके भगवान बोले- ये जय विजय मेरे पार्षद हैं इन्होंने मेरी आज्ञा उल्लंघन करके आपका अपराध किया है,

हे मुनियो! आपने दण्ड दिया सो अच्छा किया है, मेरे पार्षदों ने आपका अनादर किया सो मैं यह मानता हूं कि मैंने ही किया है। ये मेरे पार्षद दैत्य योनि को प्राप्त होकर फिर मेरे पास आ जायेंगे, आपने जो कोप दिया है वह हमारे ही निमित्त समझो। इसके अनन्तर वे भगवान की परिक्रमा कर और आज्ञा लेकर चले गये। भगवान जय विजय पार्षदों से बोले- तुम जाओ और भय नहीं करो, तुम्हारा भला होगा। मैं ब्रह्म शाप को निवारण कर सकता हूं पर हमारे मन में भी लीला करने की इच्छा है। जब हम योग निद्रा को प्राप्त हुये तब क्रोध से लक्ष्मीजी ने कहा था कि सनकादिक मुनि द्वार पर आवेंगे और उनको जय विजय रोकेंगे। सो हे पार्षदो! मुझसे बैर भाव करके थोड़े ही समय में तुम हमारे समीप फिर आ जाओगे। इस प्रकार दोनों पार्षदों को समझाया। लक्ष्मी जी को साथ लिये बैकुठधाम में भगवान ने प्रवेश किया। वह दोनों द्वारपाल शाप से हतश्री होकर भगवान के लोक से नीचे गिरे और उनका गर्व जाता रहा। जिस समय वह दोनों बैकुण्ठ से गिरने लगे तब हाहाकार शब्द हुआ। वही दोनों भगवान के पार्षद दिति के उदर में प्रवेश कर कश्यपजी के तेज में प्रविष्ट हुए। उन असुरों के तेज से तुम लोगों का तेज मन्द हो गया है। तुमको संसार में अन्धकार दिखाई देता है। भगवान असुरों का नाश कर तुम्हारे तेज को बढ़ावेंगे।

दित्ति का पुत्र जन्म

मैत्रेयजी बोले- सौ वर्ष पूर्ण हो जाने पर दिति के दो पुत्र एक ही बार उत्पन्न हुये। उनके जन्म लेते समय आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष में अनेक अपशकुन होने लगे। बिना बादल गर्जने का शब्द होने लगा, कुत्ते ऊपर को मुख उठाकर अनेक प्रकार की बोलियाँ बोलने लगे। दिति के दोनों पुत्र गिरिराज की भाँति बढ़ने लगे। जिनके मुकुट का अग्रभाग आकाश को स्पर्श करता, भुजाओं से दिशाओं को रोकते, चरणों से पृथ्वी कंपाते, जब वह दोनों खड़े होते तब सूर्य इनकी कमर की कौंधनी से नीचे रहता था। कश्यपजी ने उन दोनों का नामकरण किया। जो प्रथम उत्पन्न हुआ था उसका नाम हिरण्यकशिपु तथा दूसरे का नाम हिरण्याक्ष रखा। हिरण्यकशिपु ने अपनी भुजाओं के बल से व ब्रह्मा जी के वरदान से त्रिलोकी को अपने वश में कर लिया। उसका छोटा भाई हिरण्याक्ष गदा हाथ में लकेर युद्ध करने की इच्छा से स्वर्ग को गया। उस समय असुर के भय से देवता पर्वतों की कन्दराओं में जा छिपे। तब दैत्यराज ने इन्द्रादि देवताओं को डराने की महाघोर गर्जना की। हे तात्! वह महाबली दैत्य अनेक वर्ष तक सागर को लोहे की गदा से मारता हुआ समुद्र में क्रीड़ा करने लगा। जल उछल-उछल आकाश को जाने लगा, फिर घूमता-घूमता वह वरुण की पुरी में आया।

वरुण के निकट जाकर दैत्य ने हंसकर कहा- हे अधिराज! मुझको युद्ध दान दीजिए। तुम लोकपालों के स्वामी हो। पूर्व समय आपने दैत्य दानवों को जीत कर राजसूय यज्ञ किया था। तब वरुण बोले- हे दैत्यराज! अब हमने युद्ध करना छोड़ दिया है, तुमको भगवान के बिना कोई प्रसन्न करे, ऐसा दूसरा मुझको नहीं दीख पड़ता। भगवान युद्ध करने में प्रवीण हैं, वही तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे, उनके पास आप जाइये।

वाराहदेव के साथ हिरण्याक्ष का युद्ध

मैत्रेयजी कहने लगे- हे विदुर, वरुण के वचन सुनकर महा अभिमानी हिरण्याक्ष, वरुण लोक से निकला तभी सामने से नारदजी को आते देखा। वह नारदजी से बोला- तुमने कहीं विष्णु भी देखा है। नारदजी ने कहा- भगवान वाराह का रूप धारण कर पाताल लोक को गए हैं। यह सुनकर वह शीघ्र पाताल लोक को गया। पृथ्वी को दाढ़ के अग्रभाग पर धर ऊपर को उठाकर लाते हुए वाराह भगवान को देख कर हिरण्याक्ष हँसकर कहने लगा- जल में विचरने वाले वाराह को मैंने आज ही देखा है। हे अज्ञ! मेरे सम्मुख आ और यह पृथ्वी छोड़ दे, क्योंकि यह भूमि ब्रह्माजी ने पातालवासियों को समर्पण की है। हे शूकर! तू मेरे देखते पृथ्वी को लेकर कभी नहीं जा सकेगा। तू हमें मारने को उत्पन्न हुआ है और माया से दैत्यों का संहार

करता है। हे मूर्ख! तेरा बल योगमाया ही है, सो तुझको मारकर मैं अपने बान्धवों का शोक दूर करूंगा। शत्रु के दुर्वचनों से व्यथित हुए वाराह जी पृथ्वी को भयभीत देख कर जल से बाहर निकले। तब हिरण्याक्ष वाराहजी के पीछे दौड़ा और दुर्वचन कहने लगा। वाराहजी ने जल पर पृथ्वी को अपनी आधाररूप शक्ति से स्थित किया जिससे फिर जल में डूब न जावे। भगवान बोले हिरण्याक्ष! तू सत्य कहता है, बनवासी वाराह हम ही हैं, परन्तु तुझ सरीखे कुत्तों को ढूंढते फिरते हैं। जब वाराह भगवान ने उसका अनादर किया और बहुत ठट्ठा किया, तब हिरण्याक्ष क्रोध में भर गया। गदा लेकर वाराहजी पर दौड़ा और भगवान पर प्रहार किया। शत्रु की गदा के वेग को देखकर वाराह जी तिरछे होकर बच गए। तब वह असुर दूसरी गदा लेकर बारम्बार घुमाने लगा, उसे देख भगवान उसके सम्मुख दौड़े। प्रभु ने शत्रु की दाहिनी भौंह पर गदा चलाई, उस चतुर दैत्य ने उसी गदा पर अपनी गदा फैंककर मारी। वे दोनों गदाओं से घोर युद्ध करते थे। दोनों के घाव हो गए, उन घावों में से रुधिर की धारा निकलती थी, उसकी गन्ध से क्रोध बढ़ता जाता था। उन द्वेषभाव वाले योद्धाओं का युद्ध देखने को ऋषियों को साथ लिए श्री ब्रह्माजी आये। दैत्य को देखकर और उसको महापराक्रमी जानकर ब्रह्माजी ने नारायण से कहा- हे सुरोत्तम! इस मायावी दैत्य से खेल मत करो। यह

असुर जब सन्ध्या समय को पाकर बढ़ जाये उससे पहले ही इसका नाश हो जावे तो अच्छा है, इस कारण इसे शीघ्र मारो। अभिजित योग इसके नाश करने वाला एक मुर्हूत भर को आ गया है, यह बहुत अच्छा हुआ। जिसके वध को आपने वाराह का शरीर धारण किया, सो यह पापी आप ही आपके सम्मुख युद्ध करने आ गया है। अब पराक्रम करके इस दैत्य को युद्ध में मारकर लोकों को सुखी करो। ब्रह्माजी का वचन सुनकर वाराह भगवान ने अपने शत्रु को निर्भय विचरते देखकर उसके समीप जाकर उसकी ठोड़ी में एक गदा मारी। दैत्य ने भगवान की गदा पर प्रहार किया जिसके कारण भगवान की गदा गिर गई। हिरण्याक्ष को प्रहार करने का अवकाश भी मिल गया था, परन्तु भगवान को शस्त्र रहित देख संग्राम को धर्म मान शस्त्र नहीं चलाया। प्रभु ने दैत्य के धर्म को प्रमाण करके सुदर्शनचक्र का स्मरण किया। भगवान् को चक्र लिये हुए अपने सम्मुख खड़े देखकर दैत्य अपने होठों को चबाने लगा। फिर जलती हुई तीन शिखा वाले त्रिशूल को उस दैत्य ने वाराह भगवान के मारने के लिए हाथ में लिया। त्रिशूल को आता देख भगवान ने सुदर्शन चक्र से उसे खण्ड-खण्ड कर दिया। तब उसने भगवान के वक्षस्थल में मुष्टिका प्रहार कर वह असुर अन्तर्ध्यान हो गया। मुक्का लगने से भगवान का शरीर किंचित भी कम्पायमान नहीं हुआ। भगवान के ऊपर उस असुर

ने अनेक प्रकार की माया प्रगट की। कभी रुधिर की, कभी केशों की, कभी पीव की, कभी विष्ठा की, कभी मूत्र की, कभी हाड़ों की वर्षा करने लगा। माया का नाश करने को वाराह भगवान ने सुदर्शन चक्र का प्रयोग किया। जब उस दैत्य की आसुरी माया नष्ट हो गई, तब भगवान के पास आकर उनको अपनी दोनों भुजाओं में लेकर मोड़ने लगा। भगवान ने ऐसी माया की कि वे बाहर ही स्थित दीख पड़े। फिर वह दैत्य भगवान के हृदय में घूंसों से ताड़ना करने लगा। यह देखकर भगवान ने ऐसे थप्पड़ मारे जिसके लगते ही दैत्य चक्कर खाने लगा। वह दैत्य ऐसे गिरा, मानो वायु किसी वृक्षराज को उखाड़ गिराता है।

देवहूति के साथ कर्दम ऋषि का सम्बन्ध

विदुर जी ने कहा- हे भगवन्! स्वायम्भुव मनु का वंश हमसे कहो। स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रियव्रत और उत्तानपाद ने जैसे धर्म और पृथ्वी की पालना की सो कहिये। स्वायम्भुव मनु की कन्या देवहूति आपने कर्दम की स्त्री कही थी। उस देवहूति से कर्दमजी ने कितने पुत्र उत्पन्न किये। रुचि और दक्ष ने मनु की कन्याएं आकृति और प्रसूति से किस प्रकार से सृष्टि उत्पन्न की, सो कहिये। मैत्रेयजी कहने लगे- जब ब्रह्माजी ने कर्दमजी से कहा कि तुम सृष्टि रचो तब कर्दमजी ने दस हजार वर्ष तप किया। हे विदुर! तब भगवान ने प्रसन्न

होकर कर्दमजी को अपना स्वरूप दिखाया। भगवान स्वरूप को देखकर कर्दमजी ने साष्टांग प्रणाम किया, फिर प्रेम से स्तुति करने लगे। ऋषि बोले- हे भक्तवत्सल! आपके दर्शन करने से नेत्र सफल हुए। हे ईश! विवाह की मुझको इच्छा है, परन्तु स्त्री शीलवती, बुद्धिमती, ज्ञान वाली हो क्योंकि स्त्री से धर्म, अर्थ, काम की सिद्धि होती है। तब विष्णु भगवान कहने लगे- जिस कारण हमारा भजन तुमने किया है सो तुम्हारे लिये सब उचित प्रबन्ध कर दिया है। स्वायम्भुव मनु अपनी शतरूपा स्त्री सहित परसों आपको देखने यहाँ आवेगा। अपनी कन्या आपके अनुरूप जानकर देवेगा जिसमें तुम्हारा मन इतने वर्ष से लग रहा था, वह राजकन्या तुम्हारे मनोरथ को शीघ्र ही पूर्ण करेगी और नौ कन्या उत्पन्न करेगी। तुम्हारी कन्याओं में ऋषि लोग अनायास अपनी पुत्र सन्तान उत्पन्न करेंगे। हे महामुने! आपके वीर्य से मैं तुम्हारी स्त्री देवहूति में कपिलदेव का अवतार लेकर सांख्य शास्त्र वर्णन करूंगा। ऐसे कहकर भगवान बैकुण्ठ लोक चले गये। इसके अनन्तर कर्दम ऋषि बिन्दुसरोवर में बैठे स्वायम्भुव मनु के आने की प्रतीक्षा करने लगे। स्वायम्भुव मनु, स्त्री शतरूपा को साथ लिये, अपनी पुत्री देवहूति को रथ पर बैठाये, पृथ्वी पर पर्यटन करने निकले। विचरते-विचरते स्वायम्भुव मनु कर्दमजी के आश्रम पर आये। जिस सरोवर में भगवान ने कर्दमजी

पर प्रसन्न अपने नेत्रों से आँसुओं की बिन्दु गिराये हैं उसी दिन से उसका नाम बिन्दु सरोवर हुआ। अमृत समान मीठा जल उसमें भरा है। उस बिन्दु सरोवर तीर्थ में प्रवेश करके स्वायम्भुव मनु ने अपनी स्त्री और कन्या सहित वहाँ होम करते हुए कर्दम मुनि को देखा। मनुजी ने नमस्कार की, कर्दमजी ने यथायोग्य आशीर्वाद दिया, और राजाओं के योग्य सत्कार किया। फिर कहा- हे राजन्! आपका विचरना, सज्जनों की रक्षा और दुष्टों के संहार के अर्थ है, क्योंकि आप भगवान की शक्ति रूप हो। जो तुम कठोर धनुष को लेके दुष्टों को त्रास देते हुए, अपनी सेना को साथ लिये हुए जगत् में न विचरो, तो भगवान की बांधी हुई सम्पूर्ण मर्यादा दुष्टों द्वारा नाश हो जावे। हे वीर! आपका पधारना यहाँ किस कारण हुआ सो आप कहिए?

महर्षि कर्दम के साथ देवहूति का विवाह

मैत्रेयजी ने कहा:- जब कर्दमजी ने मनु के गुण और कर्मों की प्रशंसा की, तब मनु लज्जा करके बोले- श्रीब्रह्मा जी ने आत्मा रूप देव की रक्षा के अर्थ, तप, विद्या योग से युक्त, आप सरीखे ब्राह्मणों को अपने मुख से उत्पन्न किया है। भगवान ब्रह्मा के हृदय ब्राह्मण हैं, इस कारण ब्राह्मण क्षत्रिय परस्पर एक दूसरे की रक्षा करते हैं सो आप असत् रूप होकर सबकी रक्षा करते हैं। आपके दर्शन से हमारे सम्पूर्ण सन्देह दूर हो

गये। हे मुने! मैं इस कन्या के प्रेम विवश अति क्लिष्ट चित्त और दीन हूं। यह प्रियव्रत और उत्तानपाद की बहिन हमारी कन्या देवहूति पति की अभिलाषा करती है। हे प्रियवर! मैं आपको यह कन्या समर्पण करता हूं। निर्मुक्त मनुष्य को स्वयं प्राप्त हुई वस्तु का अनादर करना उचित नहीं होता। हे विद्वान! आप विवाह का उद्योग कर रहे हो। इस कारण मेरी इस कन्या को ग्रहण कीजिए। कर्दम ऋषि बोले- मैंने तुम्हारा कहा अंगीकार किया। हमारी इच्छा विवाह करने की है और आपकी कन्या की कान्ति ही साक्षात् लक्ष्मी का तिरस्कार करती है, ऐसी आपकी कन्या का आदर कौन नहीं करेगा? परन्तु मैं आपकी कन्या का इस शर्त पर विवाह करना स्वीकार करूंगा कि जब तक हमारे सन्तान न होगी तब तक मैं गृहस्थाश्रम का सेवन करूंगा। इसके अनन्तर परम हंसों में मुख्य भगवद्धर्मों का अनुष्ठान करूंगा। उनकी मुखारविन्द की शोभा से देवहूति का मन लोभ में आ गया। स्वायम्भुव मनु ने अपनी रानी शतरूपा और पुत्री देवहूति का अभिप्राय जानकर कर्दमजी को अपनी कन्या समर्पण की। शतरूपा ने उन दोनों को दहेज में बहुत धन, आभूषण, वस्त्र गृहस्थी में काम आने योग्य अनेक वस्तुएं दीं। तदनन्तर विदा होने के समय महाराज ने मोहयुक्त हो दोनों भुजाओं से उठा कन्या को हृदय से लगाया। फिर राजा-रानी कर्दमजी से आज्ञा लेकर, वहाँ से विदा हो, अपने नगर को

पधारे। स्वायम्भुव मनु को देश में आया हुआ जान सम्पूर्ण प्रजा आनन्द युक्त हो राजा को लिवाने आई। राजा ने अपनी राजधानी में प्रवेश करके अपने राज-भवन में निवास किया। मनु महाराज ने मनुष्यों के वर्णआश्रम के अनेक प्रकार के उत्तम धर्म वर्णन किये हैं, जिसको मनुस्मृति कहते हैं।

विमान में कर्दम और देवहूति की रति लीला

माता-पिता के चले जाने पर पतिव्रता देवहूति नित्य प्रीति प्रीतिपूर्वक पति की सेवा करने लगी। कर्दमजी भी सेवा से दुर्बल देह वाली देवहूति से प्रेममय वाणी में बोले- हे मानवि! आज मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हो गया हूं, सुख भोगने के योग्य जो यह शरीर है वो तुमने मेरी सेवा के अर्थ दुर्बल कर दिया। अपने मन में रत होकर तप, समाधि, उपासना और आत्मयोग से जीते भगवत के दिव्य प्रसाद हैं जो कि भय से तथा शोक से रहित हैं उन ऐश्वर्यों को भी मैं तुमको जो दिव्य दृष्टि देता हूं उससे देखो। योग माया अविद्या में अपने पति को अति प्रवीण देखकर देवहूति की सब पीड़ा और चिन्ता दूर हो गई। फिर कुछ लज्जा सहित हँसती हुई कहने लगी- हे द्विज श्रेष्ठ! आप अबोध व्यक्तियों के स्वामी हो यह मैं भली भाँति जानती हूं। पतिव्रता स्त्रियों को गुणवान पति विषे एक बार भी जो अंग-संग हो जाता है उससे

अत्यन्त गुणवान सन्तान उत्पन्न होती है। वो पुत्र प्राप्त होना ही पतिव्रताओं को बड़ा लाभ होता है। इनसे उस अंग संग के विषय में जो कृत्य हैं उनसे मुझे शास्त्र के अनुसार शिक्षा दीजिए। जिससे यह देह आपके साथ रमण करने योग्य हो जावे। मैं आपसे उद्दीप्त किए हुए कामदेव से प्रभाव पा रही हूं उसको शान्त करने के निमित्त एक उत्तम पति बनाना योग्य है। मैत्रेयजी बोले- हे विदुर! तब प्रिया का प्रिय चाहते हुए कर्दमजी ने अपने योग बल से उसी समय इच्छानुसार चलने वाला एक विमान बनाकर प्रकट किया। सब इच्छा पूर्ण करने वाला अलौकिक, रत्नों से जड़ा हुआ, सब सिद्धियों से संचित, ऋतुओं में सुख देने वाला, अनेक प्रकार के वस्त्रों से पूर्ण, पृथक-पृथक बिछी शय्या और चमर, पंखे आसनों से मनोहर शोभायमान चित्रकारी, हीरों से जड़े किवाड़, भीतों के भीतर माणिक, पद्मराग, जहाँ तहाँ चित्र विचित्र चमक रहे विहार मन्दिर, शयन भवन, उपभोग स्थान आंगन सुखदायक बनाये गये थे। ऐसे विमान को देखती हुई भी देवहूति अधिक प्रसन्न नहीं हुई। तब सम्पूर्ण जीवों के अन्तःकरण की बात को जानने वाले कर्दमजी बोले- हे भीरु! इस बिन्दु-सरोवर में स्नान करके इस विमान पर चढ़ो। भगवान ने अपने नेत्रों से आनन्द का बिन्दु डालकर यह तीर्थ उत्पन्न किया है। तब देवहूति पति का वचन मान बिन्दु सरोवर में प्रविष्ट हुई। देवहूति को सरोवर के भीतर एक हजार

कन्यायें (सब किशोर अवस्था वाली) कमल समान सुगंधि वाली दीख पड़ीं। देवहूती को देखकर सब कन्यायें उठ खड़ी हुईं और हाथ जोड़कर बोलीं कि हम सब आपकी दासी हैं। यह कहकर उन्होंने देवहूति को उबटन लगाकर अच्छी प्रकार स्नान कराकर रेशमी वस्त्र पहिनाये। अति स्वादिष्ट भोजन कराया, मधुर और मादक पीने का पदार्थ दिया। इसके अनन्तर देवहूती ने फूलों की माला पहन, मांगलिक पदार्थ धारण कर अपने अंग को आरसी में देखा। देवहूती ने जब अपनी मनोहर छवि को देखा तब अपने प्राण प्रीतम कर्दम जी के पास अपने आप को देखा। कर्दम जी उनका कोमल हाथ पकड़कर विमान पर ऐसे शोभित हुए जैसे तारागणों के बीच में पूर्ण चन्द्रमा आकाश में होता है। उस विमान पर बैठकर कर्दम जी सुमेरु की कन्दराओं में जहाँ शीतल मन्द सुगन्ध पवन बह रहा था और गंगा जी के प्रवाह का सुन्दर शब्द हो रहा था, वहां बहुत काल तक देवहूति को साथ लिए, रमण करने लगे। फिर कर्दम जी प्रसन्न होकर वैश्रम्भक-नन्दन, सूरसेन, पुष्पभद्रक, मानस, चैत्ररथ, इन देवताओं के उद्यानों में रमणी के साथ रमण करने लगे। फिर महायोगी कर्दम जी सब पृथ्वी को अपने विमान पर से अपनी पत्नी को दिखाते हुए सर्वत्र विचर कर अपने स्थान को लौट आए। विषय सुख की इच्छा वाली देवहूती के साथ कर्दम मुनि ने अपना नव शरीर धारण करके अनेक

वर्षों तक रमण किया उस विमान में रतिकारी परमोत्तम शय्या में विराजी हुई देवहूति अपने पति के साथ ऐसी मोहित हुई कि समय की कुछ भी सुधि न रही। सौ वर्ष व्यतीत हो गए तब भी काम लालसा पूर्ण न हुई। देवहूति के बहुत सन्तान होने के संकल्प को जानकर कर्दम जी ने अपने स्वरूप को नव प्रकार से विभाग करके उसमें वीर्य धारण किया। जिससे देवहूति ने एक साथ नौ कन्याओं को उत्पन्न किया। तदनन्तर कर्दम जी ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वन जाने की इच्छा प्रकट की तो पतिव्रता देवहूति व्याकुल हृदय से नीचे को मुख किये आँसुओं की धारा को रोककर मधुर वचन से बोली- हे स्वामिन्! आपने हमारा मनोरथ पूर्ण किया अब आप मुझको अभयदान दीजिए। हे ब्रह्मन्! प्रथम कन्याओं के विवाह करो और आप वन को जाना चाहते हो तो मुझको ज्ञान देने वाला एक पुत्र दे दो। हे स्वामिन्! मैंने परब्रह्म को त्यागकर इन्द्रियों के सङ्ग इतना समय व्यतीत कर दिया वही बहुत है। मैं निश्चय आपकी माया से ठगी गई हूं जो मोक्ष के देने वाले आपको पाकर संसार बन्धन में बंधने की इच्छा करती हूं।

कपिल देव का जन्म

मैत्रेयजी कहने लगे- देवहूति के ज्ञान वैराग्य युक्त वचन सुनकर कर्दमजी ऋषि बोले- हे अनिदिते! तुम

अपनी आत्मा की निन्दा मत करो, क्योंकि अविनाशी भगवान तेरे गर्भ से आकर उत्पन्न होंगे। देवहूति कर्दमजी के वचन सुनकर निर्विकार भगवान का भजन करने लगी। जब बहुत काल व्यतीत हो गया तब भगवान प्रसन्न हुए। उस समय आकाश में बाजे बजने लगे, गन्धर्व गाने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं। आकाश से देवता फूल बरसाने लगे। दसों दिशाओं में आनन्द छा गया। तब मरीचि आदि मुनियों सहित ब्रह्मा जी आये और कहने लगे- हे पुत्री! तुमने निष्कपट हृदय से हमारी पूजा की है। तुम्हारी सुन्दर स्वरूप वाली कन्यायें सृष्टि को अनेक प्रकार से बढ़ायेंगी। इसलिए इनके शील स्वभाव और रुचि के अनुसार मुख्य ऋषियों के अर्थ से आज इन्हें समर्पण करो, और विवाह करके संसार में अपना यश बढ़ाओ। हे देवहूति तुम्हारे गर्भ से विष्णु भगवान ने अवतार लिया है, यह सांख्य शास्त्र के आचार्यों के परम मान्य संसार में कपिल देव के नाम से विख्यात होकर तुम्हारी कीर्ति को बढ़ावेंगे। मैत्रेय जी बोले- ब्रह्माजी उन दोनों को आश्वासन देकर मुनियों सहित सत्यलोक को सिधारे। कर्दमजी ने अपनी नौ कन्यायें मरीचि आदि मुनियों को विवाह दीं। कला मरीचि को, अनुसुइया अत्रि को, श्रद्धा अङ्गिरा को, हबिर्भू पुलस्त्य को, मति पुलह को, क्रिया ऋतु को, ख्याति भृगु को, अरुन्धती वशिष्ट को, शाँति अथर्व को ब्याही। हे विदुर! विवाह हो जाने पर वे ब्राह्मण कर्दम

मुनि से आज्ञा लेकर अपने-अपने आश्रमों को चले गये। भगवान का अवतार हुआ जानकर एकान्त में आ, प्रणाम करके कर्दम मुनि कपिल भगवान से यह बोले- अहो भगवान! सांख्य-ज्ञान की शिक्षा करने को भगवान हमारे घर अवतरे हो। भक्तों को जिस-जिस स्वरूप में दर्शन की आकांक्षा होती है, आप उसी-उसी स्वरूप को धारण करके उनको प्रसन्न करते हो। आपका अवतार होने से मैं पितृ ऋण से उऋण हो गया, और मेरा मनोरथ सफल हो गये। कपिल भगवान बोले- हे मुने! हमने जो तुमको वचन दिया था, उसे पूरा करने को तुम्हारे यहाँ हमने अवतार धारण किया है। सूक्ष्म अनादि आत्म सम्बन्धी ज्ञान-मार्ग बहुत काल से नष्ट हो गया था, उसका प्रचार करने के अर्थ मैंने यह शरीर धारण किया है। जहाँ इच्छा हो वहाँ जाओ, जो कुछ करो मेरे समर्पण करो, यही पूर्ण सन्यास है। आप मोक्ष को प्राप्त होंगे। मैं माता देवहूति को भी सब कर्मों को शान्त करने वाली आत्म विद्या का उपदेश करूंगा कि जिससे यह मोक्ष को प्राप्त होगी। मैत्रेयजी बोले- कर्दमजी कपिलदेवजी की प्रदक्षिणा करके वन को चले गये। निर्गुण ब्रह्म में लवलीन होकर शान्तबुद्धि कर्दमजी वासुदेव भगवान में अपने चित्त को लगाकर बन्धन से छूट गये।

कपिल देव का उत्कृष्ट भक्ति के लक्षणों का वर्णन

कर्दमजी जब वन को चले गये तब देवहूति को प्रसन्न रखने की इच्छा से कपिलदेव जी बिन्दु सरोवर में वास करने लगे। एक समय देवहूति ने कहा- हे प्रभो! विषयों से अब मुझको वैराग्य हो गया है। हे देव! आप सम्मोह को नाश करने योग्य हो। मैं प्रकृति पुरुष के जानने की इच्छा करके आपकी शरण आई हूं। मैत्रेयजी बोले- अपनी माता की मोक्ष इच्छा को सुनकर भगवान कपिलदेवजी कहने लगे- हे माता! योगीजनों का योग मैं तुम से कहता हूं। मन से ही बन्धन है, मन से ही मोक्ष है। विषयों में आसक्त मन बन्धन का कारण है। ईश्वर में अनुरक्त हुआ मन मुक्ति का हेतु है। अभिमान से उत्पन्न हुये काम लोभादिक दोषों से दूर हुआ मन जब शुद्ध होता है, तब विषय सुख से रहित हो समता में आने से शुद्ध हो जाता है, उस समय पुरुष प्रकृति से परे शुद्ध ब्रह्म को, ज्ञान, वैराग्य और भक्ति से युक्त ब्रह्म स्वरूप को तथा क्षीण बल वाली प्रकृति को देखता है। भगवान की भक्ति भाव के समान ब्रह्म प्राप्ति के अर्थ दूसरा कोई कल्याण करने वाले, सबके प्यारे, जिनका कोई शत्रु नहीं शान्त स्वभाव साधु सब साधुओं के आभूषण रूप हैं। जो पुरुष मुझमें दृढ़ भक्ति करते हैं और सब कर्मों, स्वजनों और बन्धुजनों को भी त्याग देते

हैं और अपना मन मुझमें लगाकर मेरी ही कथा को सुनते और कहते हैं वे मनुष्य अध्यात्मादि से व्यथित नहीं होते। हे साध्वि! साधु लोग, सब विषयादिक संगों से रहित रहते हैं, उन महात्माओं का संग करना चाहिए। जब मनुष्य मेरी सृष्टि आदि लीलाओं का निरन्तर चिन्तन करता है, उसे इन्द्रिय विषयों से वैराग्य हो जाता है। तब वह सुगम योग मार्गों से यत्न करता है। प्रकृति के गुणों की सेवा न करने से, वैराग्य से बढ़े हुए ज्ञान से, योग साधन से और भक्ति से प्राणी इसी देह में मुझको प्राप्त हो जाता है। यह सुन देवहूति कहने लगी- हे प्रभो! कैसी भक्ति करनी उचित है? वह कैसी भक्ति है जिससे मैं मोक्षपद को अनायास प्राप्त हो जाऊं। भगवान में मन जाकर लग जाता है, ऐसा ही मोक्ष-स्वरूप योग आपने वर्णन किया है, वह योग कैसा है और कितने अंग वाला है। कपिल भगवान कहने लगे- शुद्ध सत्ववृत्ति वाले इन्द्रियों के देवताओं का व जो वेद विहित कर्म करने वाले इन्द्रियों की वृत्ति का सत्व मूर्ति वाले भगवान में भक्ति हो तो वह मुक्ति से भी बड़ी कहलाती है। वह भक्ति शरीर को शीघ्र ही दग्ध कर देती है। परन्तु वह भक्ति निष्काम होनी चाहिए। जिनकी चेष्टा हमारे चरणों की सेवा में रहती है वे साधुजन मोक्ष की भी इच्छा नहीं करते। हे अम्ब! उनको मोक्ष की इच्छा न होने पर भी मेरी भक्ति उन्हें मुक्त कर देती है। अज्ञान नष्ट होने पर भी मेरे भक्त

भोग, सम्पत्ति, अणिमादिक सिद्धियों और बैकुण्ठ लोक की परमोत्तम सम्पत्ति को भी नहीं चाहते हैं तो भी वे बैकुण्ठ में ये सब पदार्थ पाते हैं। जिनको मैं आत्मा के समान प्यारा, पुत्र के समान स्नेहपात्र, सखा से समान विश्वासी, गुरु के सदृश उपदेशक, भाई के तुल्य हितकारी और इष्टदेव के समान पूज्य हूं, वे मेरे भक्त कदापि भाग्यहीन नहीं होते और काल भी उनको नहीं मार सकता। प्रधान पुरुष का ईश्वर और सम्पूर्ण भूतों की आत्मा मैं हूं।

सांख्य-योग कथन

कपिल भगवान कहने लगे- हे माताजी! अब मैं तत्वों के लक्षणों को वर्णन करता हूं। यह आत्मा ही पुरुष है, जो अनादि, त्रिगुण है, माया से परे है, अन्तर्यामी है, आप ही प्रकाशवान है, जिससे युक्त होने से यह जगत प्रकाशित है। सो यह जीवात्मा दैवी अप्रकट रूप और त्रिगुणमयी माया को ज़ो आप ही प्राप्त हुई, उसको अपनी लीला कर के प्राप्त हुआ। ज्ञान छिपाने वाली, गुणों से अनेक प्रकार की विचित्र, प्रजा को रचने वाली माया को देखकर वह पुरुष ज्ञान चेष्टा से मोहित हो अपने स्वरूप को भूल गया। पुरुष साक्षी मात्र है, इसी से अकर्त्ता है, कर्त्ता आनन्दघन तथा ईश्वर ही है। इसके उसी कर्तृत्वाभिमान से कर्म बन्धन होता है और उसी को भोगों में पराधीनता होती है।

पुरुष को कार्य, कारण, कर्त्ता इनका रूप हो जाने में कारण प्रकृति है और प्रकृति से परे जो पुरुष है उसी को कारण माना है। यह सुनकर देवहूति ने कहा- हे पुरुषोत्तम! प्रकृति और पुरुष का भी लक्षण कहो। यह सुन भगवान कहने लगे- जिसको प्रधानतत्व कहते हैं उसको प्रकृति जानो। प्रकृति सत्वादि तीन गुणों से सम्पन्न रहती है और अव्यक्त है। चौबीस तत्वों का समूह प्राधानिक ब्रह्म कहलाता है। भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, पंच महाभूत और गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, पंचतन्मात्रा, श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाणी, हाथ, पाँव, लिंग, गुदा दस इन्द्रियां और मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार चार सगुण ब्रह्म हैं। जो काल है वह माया की अवस्था पच्चीसवाँ तत्व है। कितने ही परमेश्वर के प्रभाव को काल कहते हैं, जिसका भय माया के वश हुए पुरुषों को प्राप्त होता है। हे माता! जिसमें सत्वादि तीन गुण समानता से रहते हैं और जो आप निर्विशेष है, वह भगवान कहलाता है। भगवान सबसे भीतर विराजमान है। जो बाहर विराजमान है वही भगवान काल कहलाता है। जब भगवान ने विकार को प्राप्त हुए धर्म की अभिव्यक्ति स्थान रूप प्रकृति में अपना चिदाभास वीर्य स्थापित किया तब उस माया से हिरण्यमयी महतत्व उत्पन्न हुआ। तब उस महतत्व ने अपने तेज घोर तम को पान कर लिया। तब काल, धर्म, गुण के साथ जगदादि परमात्मा ने तत्वों में

प्रवेश किया। परमेश्वर के प्रवेश होने से तत्वों का समूह क्षोभ को प्राप्त होकर इकट्ठा हुआ। तब इनसे अचेतन अण्ड उत्पन्न हो गया। उस हिरण्यमय अण्डकोष में परमेश्वर ने प्रविष्ट होकर अपनी शक्ति के अनेक छिद्र प्रगट किये। पुरुष क्षेत्रज्ञ परमात्मा के योग से उत्पन्न हुई बुद्धि से तथा भक्ति और वैराग्य से ज्ञान द्वारा ध्यान करें।

मोक्ष विधि का वर्णन

कपिल भगवान कहने लगे- यह आत्मा देह में स्थित है, परन्तु देह के धर्मों से लिप्त नहीं होता। परन्तु जब पुरुष प्रकृति के सत्वादि गुणों में आसक्त हो जाता है, तब अपने स्वरूप को भूल कर अहङ्कार से आसक्त हो जाता है। इसी कृतत्व को मानने के अभिमान से पराधीन होकर प्रकृति के सङ्ग किये हुए कर्मों के दोषों से नाना योनियों में प्राप्त होता हुआ, कभी मरता है, कभी जन्मता है। जीवात्मा को चाहिए कि मन को तीव्र भक्ति, योग, वैराग्य से अपने वश में करे। यम नियम आदि योग मार्गों का अभ्यास करता हुआ चित्त को एकाग्र करता रहे, मेरे साथ निष्कपट प्रीति रखे और मेरी कथा सुने। सम भाव रखने से, बैर भाव न करने से, कुसंग को छोड़ देने से, ब्रह्मचर्य धारण करने से, मौन-व्रत से, अपने धर्म का आचरण करने से, दैव इच्छा से जो कुछ मिल जाय उसी से सन्तुष्ट रहे। थोड़ा

भोजन करे, मननशील हो, एकांत में वास करे, शान्त वृत्ति रखे, सबसे मित्रता रखे, दयालु स्वभाव रहे और मन को स्वाधीन रखे, कलत्र पुत्र आदि में दुराग्रह नहीं करे। साधक अहङ्कार वांछित आत्मा से शुद्ध आत्मा को प्राप्त होकर उसका दर्शन करे। देवहूति बोली- हे प्रभो! माया पुरुष को कभी नहीं त्यागती है और पुरुष प्रकृति को कभी नहीं त्यागता है। दोनों का परस्पर सम्बन्ध प्रतीत होता है। तब इसमें दोष आता है कि अकर्त्ता पुरुष को जिस प्रकृति के आश्रय से कर्मों का बन्धन माना है फिर उसका प्रकृति के गुणों के विद्यमान होने पर प्रकृति से कैवल्य कैसे हो सकता है? ये मुझको सन्देह है सो आप कहिये। कपिलदेव जी कहने लगे- हे माता! निष्काम धर्म करने से, निर्मल चित्त से, एकाग्रता से, पुरुष फिर उसके अतिरिक्त अन्य वस्तु देखने की इच्छा नहीं करता है। शनैः-शनैः भगवान के अंग से मन को नियुक्त करके धैर्य के ध्यान से शिथिल प्रयत्न हो जाता है। जब मन शांत हो जाये तब इस प्रकार विषय रहित होके वैराग्य को प्राप्त मन भगवान में लीन हो जाता है। मन अकस्मात् ब्रह्म आकार हो जाता है। मैं ध्यान करने वाला हूं ये मेरा उपास्य ध्येय है। सुख-दुख का देखना फिर कहाँ होता है। क्योंकि यह योगी देहाभिमान को त्यागकर साक्षात् अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। आसन पर रहे या चला जाय, अर्थात् दैववश से वहां आ जाय परन्तु उसे उसकी

कुछ भी परवाह नहीं होती। जब तक देह के आरम्भ कर्म विद्यमान रहते हैं तब तक यह शरीर भी इन्द्रियों सहित प्रारब्ध के आधीन हुआ जीता रहता है। परन्तु यह योगी उस शरीर में अहंकार, अभिमान नहीं करता, क्योंकि यह समाधि पर्यन्त पूर्ण योग को प्राप्त होकर आत्मतत्व को साक्षात अनुभव कर चुका है। सब जीवमात्र आत्मा में व्याप्त है, अनन्य भाव करके ऐसा देखे वह सिद्ध कहलाता है। जैसे अनेक प्रकार के लम्बे चौड़े कष्टों में ज्ञान रूप होकर प्रतीत होता है, ऐसे ही माया स्थित हुआ आत्मा पृथक-पृथक योनियों के गुण भेद से अलग-अलग प्रतीत होता है। इसलिए जीतने में जिन्हें बड़ी कठिनता है ऐसी दैवी विष्णु शक्ति और सत असत् रूपा इस प्रकृति माया को भगवान की कृपा से जीतकर यह जीवात्मा ब्रह्म स्वरूप होकर स्थित रहता है।

भक्ति योग और योगाभ्यास वर्णन

देवहूति ने कहा- हे भगवन्! महतत्व आदि को तथा प्रकृति और पुरुष लक्षण और इन सबका असली स्वरूप कैसे जाना जावे? हे प्रभो! इन सबका मूल क्या है? मैत्रेयजी बोले- कपिल देव अपनी माता के वचनों को सुन कर सराहना कर कहने लगे- हे भामिनि! भक्ति-योग का मार्ग अनेक प्रकार का है। क्योंकि मनुष्यों की प्रकृति सत, रज, तम गुणों वाली होने से यह भेदभाव को प्राप्त हो जाता है। नवधा भक्ति फल से

सत्ताईस प्रकार की हो जाती है, और फिर वही नवधा भक्ति इक्यासी प्रकार की हो जाती है। प्रथम भक्ति संतों की सङ्गति, दूसरी श्रवण हिंसा, दम्भ मत्सरता इन तीन में से किसी भाव से मेरी भक्ति करे वह तामसी है। जो विषय भोग यश ऐश्वर्य वृद्धि को हमारी भक्ति करे तो वह राजसी है। जो कर्मों को परमेश्वर के समर्पण करता हुआ मेरा भजन करे वह सतोगुणी है। जो अन्तर्यामी में मन की गति लगावे यह भलानुसन्धान की इच्छा रहित और विच्छेद रहित भक्ति होती है। यह निर्गुण भक्ति है, जो पुरुषोत्तम की भक्ति के अतिरिक्त और किसी की आशा नहीं करते हैं। जब जीव मात्र में मेरी भावना से हृदय शुद्ध हो जाता है। महात्माओं का सत्कार करने से, दुखियों पर दया करने से, समान वाले से मित्रता करने से, यम नियम साधन करने से, शरीर शुद्ध हो जाता है। ब्रह्म-विद्या को श्रवण करने से, मेरे नामों के संकीर्तन करने से, सरल भाव करने से, अहंकार का त्याग कर देने से मन निर्मल हो जाता है। इस प्रकार मेरे धर्मों के आचरण वाले इन गुणों से पुरुष का अन्तःकरण शुद्ध हो जावे, तब वह मुझको प्राप्त होता है। मैं सब जीवों में सदा रहता हूं, मेरी अवज्ञा करके जो केवल मूर्ति का पूजन करता है, वह विडम्बना मात्र है। सब प्राणियों में विद्यमान सबकी आत्मा (ईश्वर) जो मैं हूं, सम्पूर्ण में विराजमान मैं हूं, मुझ से जो द्वेष रखता है, उस पुरुष का मन कभी शान्त नहीं

होता। हे माता! जो आपका अपमान करता है, उस पर मैं कभी प्रसन्न नहीं होता। जो प्राणी अपने और दूसरे में भेद करता है उनको मैं मृत्यु रूप होकर कष्ट देता रहता हूं। इस कारण सब जीवों का अन्तर्यामी मैं हूं।

काल प्रभाव का वर्णन

कपिलदेव जी कहने लगे- हे माता! इस सम्पूर्ण चराचर में जीवधारी श्रेष्ठ हैं, उनसे प्राणधारी श्रेष्ठ हैं उनसे इन्द्रियों के ज्ञान वाले श्रेष्ठ हैं, उनसे स्पर्श ज्ञानी श्रेष्ठ हैं, उनसे रस जानने वाले श्रेष्ठ हैं, रस जानने वालों से गन्ध जानने वाले अच्छे हैं, उनसे शब्द जानने वाले श्रेष्ठ हैं, शब्द जानने वालों से स्वरूप जानने वाले श्रेष्ठ हैं, उनसे अधिक चरणों वाले श्रेष्ठ हैं, उनसे चौपाये और चौपाये से मनुष्य श्रेष्ठ है। मनुष्यों में चार वर्ण श्रेष्ठ हैं। वेदपाठियों में अर्थ को जानने वालों में सन्देह निवारण करने वाले श्रेष्ठ हैं। उनमें जो वेद विहित कर्म करते हैं, निष्काम कर्म वाले उत्तम हैं। उन निष्काम कर्म करने वालों में श्रेष्ठ वह है, जो सब कर्मों को मेरे समर्पण कर देता है। माता ने पूछा—जीव की संसृति तथा काल का स्वरूप कहो। भगवान कहते हैं- हे माता! जो व्यतिरेत भगवद्रूप है, वो ही दैव कहलाता है। इसी विष्णुस्वरूप यज्ञ फलदाता को काल रूप कहते हैं। इस कलात्मक भगवान का न तो कोई प्रिय है, न मित्र है, न बन्धु है। जिसके भय से वनस्पति वृक्ष,

लता, औषधि, फूल-फल प्रकट करती हैं नदियाँ बहा करती हैं, समुद्र मर्यादा को नहीं त्यागते। जिसके भय से अग्नि जलती रहती है, पृथ्वी नहीं डूबती तथा आकाश श्वास लेने वालों को अवकाश देता है। इसी के भय से महतत्व लोक रूप बनाकर विस्तार करते हैं। जिसके भय से ब्रह्मा, महेश, बारम्बार इस जगत को रचते, पालते और संहार करते हैं। पिता पुत्र से आदि जन को उत्पन्न करता है और मृत्यु से अन्त तक को यही मारता है।

तामसी गति का वर्णन

कपिलदेव जी बोले- जीव काल के पराक्रम को नहीं जान सकता। मनुष्य सुख के अर्थ जिस काम को करने लगता है उस काम को काल नष्ट कर देता है। स्त्री पुत्रादि कुटुम्बियों के पालन पोषण की चिन्ता से यह मनुष्य हिंसा आदि पाप कर्मों को करता है। स्त्रियों की माया, बालकों की तोतली बातें आदि जिस घर में हैं उसमें निवास करता हुआ गृहस्थी के दुःख दूर करने का उपाय करता हुआ उन दुःखों को ही सुख के समान मानता है। हिंसा से जीवों को क्लेश देता हुआ, द्रव्य इकट्ठा करके अपने कुटुम्ब का पोषण करता है, और अन्त समय अकेला नरक में जाकर गिरता है। जब कुटुम्ब के पालन करने की सामर्थ्य नहीं रहती है, तब वे स्त्री पुत्रादि भी उसका आदर नहीं करते। इतने पर भी

ज्ञान और वैराग्य उसको नहीं होता। पुत्रवधू के दिए टूकों को कुत्तों की तरह खाता है परन्तु तो भी मनुष्य को वैराग्य नहीं आता। इस प्रकार यह कामी पुरुष पीड़ा से अचेत होकर मर जाता है। उस समय लाल नेत्रों वाले यमदूत आते हैं। उनको देखकर पापी कांपने लगता है। नरक का दुख भोगने के अर्थ उस जीव को गले में फांसी डालकर ले जाते हैं। उन दूतों के धमकाने से पापी का हृदय फटता है, शरीर कांपने लगता है, उससे अपने पापों का स्मरण करता है। भूख प्यास से पीड़ित, सूर्य, दावानल और उष्ण वायु से सन्तप्त होकर, बालू के ऊपर चलता है, जहां न कोई ठहरने का स्थान है, न कहीं जल है, यमदूत निर्दयता से चाबुक मारते हैं। मूर्छा आ जाती है, सचेत होने पर फिर उठकर चलता है। इस प्रकार पापी को निर्दयी यमदूत अन्धकार वाले यमलोक में पहुंचाते हैं। कहीं उनके शरीर को जलाते हैं, कहीं उसका मांस काटकर उसी को खिलाते हैं। कहीं उस जीव की आँतें कुत्ते और गीध निकाल लेते हैं, और सांप बिच्छू, डाँस आदि के काटने से क्लेशित हो वह प्राणी अपने पापों का फल भोगा करता है। हे माता! यह भी प्रसिद्ध है कि यहां ही नरक और यहां ही स्वर्ग है। नरक में होने वाली पीड़ा यहां भी देखने में आती है और जो धर्म करते हैं उनको स्वर्ग भी यहां ही है। प्राणी के कर्म साथ जाते हैं। उसको अपने पाप का फल अकेले ही भोगना पड़ता है। जब पाप क्षीण होता है,

तब पवित्र होकर उन्हीं पूर्वोक्त कर्मों को करता है फिर उसी गति को पाता है। इस प्रकार यह संसार कभी निवृत्त नहीं होता।

फिर अपने पूर्व जन्मार्जित कर्मों के प्रभाव से यह जीव वीर्य के आश्रय होकर स्त्री के उदर में पहुंचता है। वीर्य और रज का मेल होकर केवल गदला सा जल होता है। फिर पांच रात में गोल बबल बनता है। दस दिन में बेर के समान हो जाता है, फिर अण्डे का सा आकार बन जाता है। प्रथम महीने तथा दूसरे महीने में जीव के हाथ पाँव आदि उत्पन्न होते हैं। तीसरे महीनों में नख, रोम, अस्थि, चर्म, लिंग और गुदा के छिद्र उत्पन्न होते हैं। चौथे महीने में सात धातु उत्पन्न होते हैं। पांचवें महीने में क्षुधा तृषा उत्पन्न होती है। छठे महीने में जरायु से लिपट कर दाहिनी कोख में घूमा करता है और माता के भोजन से उसकी धातु बढ़ती है। इसकी माता जो दुःसह पदार्थ खाती है, उससे इसका शरीर सूज जाता है और पीड़ा होने लगती है। कोई-कोई दुष्ट स्त्रियां टिकरे चबाती हैं उससे इस गर्भ को बड़ा दुःख होता है। यह पेट के भीतर ज़ेर से बंधा और बाहर मां की आंतों से बंधा, नीचे योनि की ओर मुख किए कमान के समान टेढ़ी पीठ झुकाए पड़ा रहता है, हाथ पांव तक चला नहीं सकता। वहाँ इसको सौ जन्मों के कर्म स्मरण हो आते हैं वह लम्बे-लम्बे श्वांस ले लेकर पछताता है। तब वह दुःखी होकर बारम्बार परमेश्वर

की स्तुति करता है। जीव कहता है कि परमेश्वर के जो चरण कमल हैं उनकी मैं शरण को प्राप्त होता हूं, वे भगवान मेरी अवश्य रक्षा करेंगे क्योंकि भगवान की कृपा बिना ज्ञान नहीं और ज्ञान बिना मोक्ष नहीं। माता के देह, रक्त, विष्ठा मूत्र के गर्त में पड़े हुए अत्यन्त दुखी, मुझ जीव को हे नारायण! कब बाहर निकालेंगे। गर्भ से बाहर निकालकर इस मोह मय संसार में आना नहीं चाहता क्योंकि बाहर निकलते ही तुम्हारी माया घेर लेती है। इसलिए अब मैं यहीं अपनी आत्मा का इस संसार से उद्धार करूंगा और आपके चरणों को हृदय में धारण करूंगा। जिससे फिर कभी गर्भ में निवास का दुख मुझको भोगना न पड़े। कपिल भगवान बोले- हे अम्ब! इस प्रकार वह जीव परमेश्वर की स्तुति करता है, उसको बाहर निकलने के अर्थ सूतिका वायु उसको तत्काल पृथ्वी पर फेंक देता है। वह बाहर निकलता है तो उसका सब ज्ञान नष्ट हो जाता है। विपरीत गति को प्राप्त होकर सब ज्ञान नष्ट हो जाने से बारम्बार रोने लगता है। यह जीव बालपन के पांच वर्ष पर्यन्त दुःखों को भोगता है। युवा अवस्था में जब मनोरथ सिद्ध नहीं होता तब बड़े क्रोध व शोक में मग्न होकर रहता है। फिर स्त्री भोग करने में ही उद्यम करने वाले पुरुषों की सङ्गति में पड़कर उसी मार्ग में चलने लगता है और कुसंगति के प्रभाव से पहले कहे हुए नरकों में फिर पड़ता है। दुष्ट जनों के संग से सत्य, शौच, दया, मौन

धारण, बुद्धि, लक्ष्मी, लज्जा, यश, क्षमा, ऐश्वर्य, सब नष्ट हो जाते हैं। स्त्रियों का संग करने से मोह बन्धन होता है ऐसा मोह बन्धन अन्य किसी प्रसंग से नहीं होता। जिसको मेरी सेवा से आत्म लाभ भी हो गया हो वह यदि योग की सिद्धि चाहे तो वह स्त्रियों का संग कदापि न करे, क्योंकि मुमुक्ष के अर्थ स्त्री नरक का द्वार कहलाती है। इसलिये उस भगवान की माया को दैव से प्राप्त अपनी मृत्यु समझनी चाहिए।

देवहूति को ज्ञान प्राप्त होना

मैत्रेयजी बोले- इस प्रकार कपिल भगवान के वचन सुन देवहूति भगवान को प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगी। हे देव! आपके स्वरूप का ब्रह्मा भी केवल ध्यान ही करते हैं, साक्षात् नहीं करते। सत्य संकल्प और अद्भुत शक्ति वाले आप, माया रूपी बालक बनकर मेरे उदर में कैसे आये? हे विभो! आप पापी पुरुषों को दण्ड देने के अर्थ और भक्तजनों के ऐश्वर्य को बढ़ाने के अर्थ अपनी इच्छा से देह धारण करते हो। हे भगवन! आपके मन श्रवण, कीर्तन, प्रणाम, स्मरण करने से चाण्डाल भी यज्ञ करने के योग्य हो जाता है। बिना पुण्य भगवद् भजन करना अत्यन्त दुर्लभ है। ब्रह्म स्वरूप, परम पुरुष, वेद गर्भ को मैं बारम्बार प्रणाम करती हूं। कपिल भगवान दयालु हो देवहूति के प्रति कहने लगे- हे माता! मेरे कहे हुए इस मार्ग में स्थित होने

पर तुम जीवन्मुक्ति को प्राप्त हुई हो। क्योंकि मेरे कहे हुए ज्ञान द्वारा मेरे स्वरूप की प्राप्ति होती है। स्वरूप प्राप्त हो जाने से फिर इस संसार में जन्म नहीं होता और जो इस ज्ञान को नहीं जानते वे संसार में भ्रमते हैं। मैत्रेयजी बोले- कपिलदेवजी देवहूति को अपनी आत्मगति दिखाकर और आज्ञा लेकर वहां से चले गए। तब देवहूति भी अपने पुत्र के कहे हुए मार्ग से योग धारण कर उस बिन्दु-सरोवर पर निवास करने लगी। उग्र तप धारण करती हुई देवहूति वहां रहने लगी। पीछे कपिल भगवान के उपदेशों के अनुसार अखण्ड समाधि में स्थित हो गई। इस प्रकार थोड़े ही काल में देवहूति भगवान को प्राप्त हो गई। जहां पर देवहूति को मुक्ति प्राप्त हुई वह स्थान सिद्ध पद नाम से प्रसिद्ध है और देवहूति का विमल शरीर नदी स्वरूप होकर अब भी विद्यमान है। महायोगी कपिलदेवजी माता की आज्ञा से उत्तर दिशा की ओर चले गए। भगवान कपिलदेवजी तीनों लोकों की शान्ति के निमित्त सावधान हो योग धारण करके अब तक उसी स्थान पर विराजमान हैं। वहां सांख्य शास्त्र के आचार्य सदा उनकी स्तुति करते हैं। हे विदुर! जो कपिलदेव भगवान के कहे आत्म प्राप्ति के साधनों में अत्यन्त गुप्त मत को सुनता अथवा सुनाता है वह बैकुण्ठ को प्राप्त होता है।

★ चतुर्थ स्कन्ध प्रारम्भ ★

मनु कन्याओं का वर्णन

मैत्रेयजी कहने लगे—स्वायम्भुवमनु ने शतरूपा से तीन कन्यायें उत्पन्न कीं- आकूति, देवहूति, प्रसूति। मनु ने आकूति का रुचि ऋषि के साथ इस शर्त पर विवाह कर दिया कि इस कन्या के जो प्रथम पुत्र होगा उसको मैं लूंगा। रुचि प्रजापति ने उस आकूति से एक जो पहला जोड़ा उत्पन्न किया, उनमें जो पुरुष थे सो यज्ञ स्वरूप धारी विष्णु थे, इसी से उनका नाम यज्ञ हुआ और जो कन्या थी वह लक्ष्मी जी के अंश से उत्पन्न दक्षिणा थी। अपनी पुत्री आकूति के परम तेजस्वी यज्ञरूप पुत्र को स्वायम्भुवमनु अपने घर लाये और उस दक्षिणा कन्या को रुचि ऋषि ने रखा। जब दक्षिणा विवाह योग्य हुई तब उसके साथ यज्ञ भगवान ने विवाह किया। यज्ञ भगवान ने उस दक्षिणा रानी से तोष, प्रतोष, भद्र, शान्ति, वृहस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वन्ह, सुदेव, रोचन बारह पुत्र उत्पन्न किये। यह सब तुषित नाम वाले देवता हुए। मरीचि आदि सप्त ऋषि हुए और यज्ञ भगवान देवताओं के स्वामी इन्द्र हुए। मनु के प्रियब्रत और उत्तानपाद दो पुत्र हुये। स्वायम्भुवमनु ने अपनी देवहूति नामक कन्या कर्दम ऋषि को दी थी, उसका चरित्र तो तुमने सुना ही है। मनु ने प्रसूति नामक कन्या दक्षप्रजापति को दी, जिसके वंश से तीनों लोक

भर गये। मैत्रेयजी कहते हैं- हे विदुर! कर्दम ऋषि की नौ कन्यायें जो मरीचि आदि ऋषियों की स्त्रियाँ हुईं उनकी सन्तान का विस्तार मैं कहता हूं सो सुनिए। कला जो मरीचि की स्त्री थी उससे कश्यप और पूर्णिमान दो पुत्र हुए। पूर्णिमान के विरज, विश्वग दो पुत्र और देवकुल्या कन्या हुई। देवकुल्या हरि के चरण धोने से जन्मान्तर में आकाश गंगा हुई है। अत्रि ऋषि की स्त्री अनसूया ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव के अंश चन्द्रमा, दत्रात्रेय और दुर्वासा नाम वाले तीन पुत्र उत्पन्न किये जो महातेजस्वी हुए। विदुरजी पूछने लगे- हे गुरो! स्थिति, रचना संहार करने वाले ये तीनों देवता अत्रि ऋषि के घर क्या करने की इच्छा से उत्पन्न हुए? यह मुझसे कहिये। मैत्रेयजी बोले- जब ब्रह्मा ने अत्रि ऋषि को सृष्टि रचने की आज्ञा दी तब वह ऋषि कुल पर्वत पर तप करने लगे। इस तप से ऋषीश्वर के शीर्ष में से अग्नि प्रकट हुई उससे तीनों लोक तपने लगे। यह देखकर ब्रह्माजी, महादेव और भगवान हरि, ऋषि के आश्रम में पहुंचे। इन तीनों के प्रकट होने से अत्रि मुनि चकित हो गये। पुष्पादिक अञ्जलि में लेके तीनों देवताओं का मुनि ने पूजन किया और बोले- जिन्होंने सृष्टि के उत्पत्ति, पालन व संहार के निमित्त देह धारण किए हैं ऐसे आप तीनों को मैं बारम्बार प्रणाम करता हूं। अत्रि मुनि के वचन सुनकर वे तीनों हंसकर कहने लगे- हे ब्रह्मन्! जिस प्रकार तुमने संकल्प किया है

उसके अनुसार होना चाहिए। सत्य संकल्प वाले मन में जिसका ध्यान किया है, वे तीनों देवता हम एक ही हैं। हे मुने! इसी से अब हम तीनों के अंश से तुम्हारे घर उत्पन्न होकर पुत्र जगत में प्रसिद्ध होंगे। उसी से आपका कल्याण होगा। वे तीनों देवेश्वर मनोवांछित वरदान देकर अपने स्थान को चले गये। तदन्तर ब्रह्मा जी के अंश से चन्द्रमा, विष्णु के अंश से दत्तात्रेय तथा शिवजी के अंश से दुर्वासा प्रकटे।

अंगिरा ऋषि की श्रद्धा स्त्री से चार कन्यायें प्रकट हुईं। सिनीवाली, कुहु, राका चौथी अनुमति। उनके दो पुत्र, एक तो उतथ्यजी, दूसरे देव गुरु बृहस्पतिजी हुए। पुलस्त्यजी ने हविर्भू नाम वाली कन्या से अगस्त्य नामक पुत्र उत्पन्न किया। पुलस्त्यजी के दूसरा पुत्र महातपस्वी विश्रवा प्रकट हुआ। विश्रवाजी की इड़विड़ा स्त्री से कुबेर नामक पुत्र हुआ। तथा दूसरी स्त्री से रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण तीन पुत्र उत्पन्न हुए। हे महामुनि! पुलह ऋषि की गति स्त्री से कर्मश्रेष्ठ, वरियान, सविष्णु तीन पुत्र उत्पन्न हुए। ऋतु ऋषि की क्रिया स्त्री से साठ हजार बाल-खिल्य ऋषिपुत्र उत्पन्न हुए। हे परन्तप! वसिष्ठजी की ऊर्जा स्त्री से चित्रकेतु, सरोचि, गिरज, मित्र, उल्वण, वसुभृद्यान, द्युमान ये सप्तर्षि हुए। वसिष्ठ की दूसरी स्त्री से शक्ति आदि दूसरे पुत्र हुए। अथर्वण की चिति स्त्री से धृतब्रत, अश्विशिरा और दग्ध पुत्र हुए। मैत्रेयजी कहते हैं अब

तुम भृगुऋषि के वंश का वृत्तान्त सुनो। हे महाभाग! भृगुजी ने ख्याति नाम स्त्री से धाता, विधाता दो पुत्र और एक कन्या लक्ष्मी को प्रकट किया। धाता की सायति स्त्री से मृकण्डु पुत्र उत्पन्न हुआ। मृकण्डुजी के श्री मार्कण्डेयजी हुए। प्राण के वेदशिरा मुनि हुए। हे विदुरजी! शुक्राचार्य जी भृगुजी के सुत हुए। शुक्राचार्यजी के भगवान उशना नामक सुत हुए। इस प्रकार मुनीश्वरों ने सृष्टि द्वारा लोकों की वृद्धि की, जिससे सब लोक भर गये। दक्ष प्रजापति ने स्वायम्भुवमनु की कन्या प्रसूति से विवाह किया। उस प्रसूति से दक्ष ने सोलह कन्यायें उत्पन्न कीं जिनमें से तेरह तो धर्म को विवाह दीं और एक अग्नि को, एक पित्रों को, और एक शिवजी को विवाह दी। श्रद्धा, मैत्री, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, उन्नति, बुद्धि, मेघा तितिक्षा, मूर्ति, धर्म की स्त्री हुईं। धर्म की पत्नी श्रद्धा के शुभ उत्पन्न हुआ। मैत्री के प्रसाद, दया के अभय, शांति के सुख, सृष्टि के मुद, पुष्टि के गर्व, क्रिया के योग, उन्नति के दर्प, बुद्धि के अर्थ, मेघा के स्मृति, तितिक्षा के क्षेम, ह्रदि के प्रश्चय नाम के पुत्र उत्पन्न हुए। सम्पूर्ण गुणों की उत्पत्ति रूप मूर्ति में नर और नारायण नाम के सुत उत्पन्न हुए। नर नारायण के जन्म समय सर्वत्र-परम मंगल होने लगे। तब सब देवता स्तुति वाक्य कहने लगे कि जो भगवान अपनी माया से आज धर्म के घर में ऋषि उत्पन्न हुए हैं, उन नारायण को हम नमस्कार

करते हैं। हे विदुर! जब कृपा दृष्टि से देखे गये देवताओं ने प्रार्थना की, तब नारायण देवताओं की पूजा को अङ्गीकार कर गन्धमादन पर्वत को पधारे। ये दोनों ऋषि हरि भगवान के अङ्ग से यहाँ पृथ्वी पर आये। तब पृथ्वी का भार उतारने को नर के अंश से गुरुकुल में अर्जुन नाम और नारायण ने यदुकुल में श्रीकृष्ण नाम से जन्म लिया है। अग्नि की स्त्री स्वाहा में पावक, पवमान और शुचि ये तीन अग्नि के पुत्र उत्पन्न हुए। इन तीनों अग्नि पुत्रों के पन्द्रह-पन्द्रह पुत्र हुए। सब पिता, पुत्र मिलकर उनञ्चास अग्नि प्रकट हुए। यज्ञ में वेद पाठी लोग जिनका नाम लेकर आहुति देते हैं, वे अग्नि ये हैं। जिसके नाम से यज्ञ में आग्नेय इष्टि निरूपण की जाती हैं। अग्निष्वात, मर्हिषद, सोपम, आज्यप, ये पितृगण हैं, इनमें कोई साग्नि हैं, कोई अनाग्नि हैं। इन पितरों के स्वधा पत्नी से यमुना और धारिणी दो कन्यायें उत्पन्न हुईं। इन कन्याओं ने विवाह ही नहीं किया। अवधूतनी हो गईं और जो महादेवजी की स्त्री सती थी वे शिवजी की सेवा करने पर भी पुत्र को प्राप्त न कर सकी।

शिव और दक्ष का परस्पर विद्वेष

विदुर जी ने कहा—दक्ष प्रजापति ने शिवजी से वैर किस कारण किया! हे ब्राह्मण! यह सुन मैत्रेयजी कहने लगे कि हे विदुर! प्रथम विश्वस्त्रष्टाओं के यज्ञ में ऋषिश्वर, देवगण अपने-अपने अनुचरों सहित, सिद्ध

और अग्नि सब इकट्ठे हुए। उस बड़ी सभा के अन्धकार को अपने तेज से दूर करते हुए दक्ष प्रजापति को आये हुए देखकर सब ऋषि, सब सभासद अग्नि सहित अपने-अपने आसनों से उठ खड़े हुए। वहां ब्रह्मा जी और महादेवजी अपने आसन से नहीं उठे। उनको दक्ष ने देख विचारा कि शिव ने मेरा अनादर किया है। ऐसा विचार अपमान न सह, कोप दृष्टि से शिवजी की तरफ देख ये वचन बोला कि हे देवताओं! यह महादेव लोकपालों के यश को नष्ट करने वाला निर्लज्ज है। जिसे इसने मूर्खता से, सज्जनों के चलाये मार्ग को दूषित कर दिया। वास्तव में यह मेरे शिष्य भाव को प्राप्त नहीं हुआ है। क्योंकि इसने हमारी कन्या का पाणिग्रहण किया है। देखो मुझे आया देख इसने मेरा वाणी से भी सत्कार नहीं किया। इस क्रिया के लोप करने वाले, अभिमानी, मर्यादा के तोड़ने वाले महादेव को मैं कन्यादान करना नहीं चाहता था, परन्तु मैंने मूर्खता से कन्या दे दी। देखो यह शमशान में रहने वाला है और भूत, प्रेत, पिशाचों के साथ नग्न शरीर, खुले केश, हंसता रोता फिरा करता है। चिता भस्म से स्नान करने वाला, भभूती रमाने वाला तथा हड्डियों के आभूषण धारण करने वाला और प्रथम गण और भूतों का पति है। ऐसे इस भूतनाथ को मैंने ब्रह्मा जी के कहने से अपनी कन्या विवाह दी, यह मुझे बड़ा खेद है। मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर इतने पर भी क्रोध रहित बैठे हुए

शिवजी की निन्दा करके वह दक्ष शिवजी को शाप देने लगा कि यह सब देवताओं में अधर्म है, इसलिये यज्ञ में भाग देने के समय ये देव पंक्ति में भाग पाने योग्य नहीं है। तब शिव जी के अनुचर नन्दिकेश्वरजी ने महादेवजी को शापित हुआ जान कर क्रोध में भर दक्ष को और अनुमोदन करने वाले ब्राह्मणों को शाप दिया। नन्दीश्वरजी ने शाप दिया कि यह दक्ष देहाभिमान वाला बुद्धि से आत्मा को भूलकर पशु समान होकर निरन्तर स्त्री की कामना वाला होकर फिर थोड़े ही दिनों में इसका मुख बकरा सा हो जाये। जो लोग यहां शिवजी की निंदा सुनने वाले हैं, वह शिवजी के द्वेषी सदा मोह को प्राप्त हो जायें और आज से सब ब्राह्मण मात्र भक्ष्याक्ष्य विचार शून्य होकर सबके घरों में भोजन करने वाले होकर उदर पोषण के ही अर्थ विद्या, तप और व्रतों के धारण करने वाले इस संसार में याचक बनकर घर-घर में निर्धन होकर भिक्षा मांगते फिरें।

सती का दक्षालय जाने की प्रार्थना करना

श्रीमैत्रेयजी बोले इस प्रकार बैर भाव करते हुए शिव जी और दक्षजी को बहुत समय बीत गया। दक्ष ने बाजपेय यज्ञ कर, ब्रह्मर्षि देवर्षि, पित्रगण, देवता सब बुलाये और उनकी स्त्रियाँ भी अपने पतियों के साथ आईं। वार्तालाप करते, आकाश मार्ग से देवताओं को जाते देख सती अपने पिता के घर यज्ञ सुनकर युवतियों

को देखकर उत्कंठित हो सती ने अपने पति से कहा कि, आपके श्वसुर के यहाँ यज्ञ हो रहा है, हे वाम! यदि आपकी इच्छा हो, तो आप भी चलें, सब अपनी-अपनी देवांगनाओं को लिये जा रहे हैं। हे शिव! निश्चय है कि अपने-अपने पतियों सहित हमारी बहिनें, पिता की बहिनें, माता की बहिनें, और अपनी माता, सबों को देखूंगी। सुरोत्तम! पिता के घर उत्सव सुन कन्या चलायमान हुए बिना कैसे रहे? यदि कहो कि तुमको बुलावा तक तो पिता ने दिया नहीं है, फिर बिना बुलाये कैसे जाना चाहती हो? हे प्रभो! मित्र, पति, गुरु और पिता इनके घरों में बिना बुलाये जाने में भी कुछ दोष नहीं होता। हे देव! इसलिए प्रसन्न हो हमारी मनोकामना पूर्ण करो। हे दिव्य दृष्टि वाले! मैं आपसे प्रार्थना करती हूं कि मुझ पर दया कर मुझे जाने की आज्ञा दो। मैत्रेयजी बोले इस प्रकार जब सतीजी ने महादेवजी से प्रार्थना की, तब दक्ष के दुर्वचनों का स्मरण करके महादेवजी ने सती से हंसकर कहा—हे शोभने! तुमने जो कहा कि बिना बुलाये भी बन्धुजनों के यहां जाना चाहिए वह ठीक है परन्तु जिनको जानें कि हमारे देखने से उनके हृदय में आनन्द होगा उनके घर तो बिना बुलाये जाना दूषित नहीं और जो अपने को देखकर प्रसन्न न होते हों, वह चाहे भले ही पिता ही क्यों न हो उनके घर कभी न जावे। क्योंकि देखो सतीजी! युद्ध में शत्रुओं के बाण से भी इतनी पीड़ा नहीं होती

जितनी कि सम्बन्धियों के दुर्वचनों से पीड़ा होती है। जो महात्मा अपने से बड़े को देखकर उठ खड़े होते हैं, यथा प्रणामादि करते हैं, यह रीति परमोत्तम है, परन्तु वे लोग सर्वान्तर्यामी परमेश्वर को ही मन से प्रणाम करते हैं, देहाभिमानियों को नहीं करते हैं। हे वरारोहे! यद्यपि दक्ष तुम्हारा पिता है, तथापि हमारा शत्रु है। तुमको उसे और उनके पक्ष वालों की ओर देखना भी नहीं चाहिए। जो तुम हमारा वचन उल्लंघन करके दक्ष के घर को जाओगी, तो तुम्हारा भला नहीं होगा। क्योंकि पुरुष का सम्बन्धियों द्वारा जो अपमान हो जाता है तो शीघ्र मृत्यु का कारण होता है।

सती का देह त्याग

सती कभी तो पिता के देखने की इच्छा से और कभी महादेवजी के भय से कभी भीतर जाती कभी बाहर निकलती। जब पिता के घर जाने की इच्छा हो तब बाहर निकले और जब शिवजी का भय हो तब भीतर चली जावे। फिर स्त्री स्वभाव से सती शोक व क्रोध से विकल हो पिता के घर चल दी। जल्दी-जल्दी अकेली जाती हुई देखकर सती के पीछे महादेवजी के हजारों अनुचर चले, मणिमान तथा मद आदि पार्षद, यज्ञ, नन्दीश्वर वृषभ पर सतीजी को चढ़ा कर आगे चले। सतीजी को शिवजी के गण नन्दीश्वर पर बैठा गाते और दुन्दुभी आदि बजाते हुए प्रसन्न होकर चले

1088 SHIV PAR BATI GANESH Hem Chander Bhargava & Co Delhi-6.

और यज्ञ में सतीजी जा पहुंची। सतीजी को आया हुआ देख करके भी यज्ञ करने वालों में से माता और बहिन के अतिरिक्त दक्ष के भय से किसी ने सती का सत्कार नहीं किया। दक्ष ने कुछ आदर नहीं किया केवल माता और बहिनें प्रेम से गद्‌गद् होकर आदर पूर्वक उनसे मिलीं। उस समय पिता के अनादर से माता और मौसियों की दी हुई पूजा और आसन को सती ने ग्रहण नहीं किया। जब सती ने शिवजी के भाग से हीन उस यज्ञ को देखा तब यज्ञ सभा में क्रोध से अभिमानी दक्ष को गम्भीर वाणी से धिक्कारती यह वचन कहने लगी- सम्पूर्ण देहधारियों के प्रिय आत्मा शिवजी से तेरे बिना और कौन शत्रुता करे? हे द्विज! तुझ सरीखे निंदक पुरुष दूसरों के गुणों में से केवल दोष ही लेते हैं। किन्तु जो महा उत्तम मनुष्य होते हैं, थोड़े से गुणों को अधिक करके मानते हैं, ऐसे महात्माओं का तूने अपराध किया है। शिव ये दो अक्षर के नाम को जो मनुष्य एक बार का उच्चारण करता है, उसके पापों का नाश हो जाता है ऐसे शिव से तुम बैर करते हो, इस कारण तुम महा अमंगल रूप हो। धर्म रक्षक स्वामी की लोग जहां निन्दा करते हों, वहां उस मनुष्य को मार डालने की सामर्थ्य हो तो उसको मार ही डाले। यदि मारने की सामर्थ्य न हो तो कान बन्द करके उठ जावे। समर्थ हो तो निंदक की जिह्वा को काट डाले, फिर प्राणों का त्याग कर दे यही सनातन धर्म है। हे पिताजी!

अणिमादिक सिद्धियां हमारी इच्छा मात्र से उत्पन्न हो सकती हैं। तुम्हारी पदवियां तो यज्ञ शालाओं में रहती हैं और यज्ञ के अन्न से तुम तृप्त हुए लोग ही उनकी प्रशंसा करते हैं। जो कि महादेवजी का अपराधी तू है, उससे उत्पन्न हुए इस देह से मेरा कुछ प्रयोजन नहीं। इसलिए तुम्हारे शरीर से उत्पन्न हुए इस देह को रखना नहीं चाहती हूं।

मैत्रेय जी बोले- हे विदुर! सती जी इस प्रकार दक्ष से कह मौन होकर उत्तर की ओर मुख कर बैठ गईं और हाथ में जल ले आचमन कर रेशमी पीत वस्त्र पहिने नेत्र को बंदकर योग मार्ग का साधन कर पालथी मारकर बैठ गईं। सती जी ने आसन जीतकर प्राण और अपान दोनों पवनों को रोक समान को नाभि चक्र में ला उदान वायु को नाभि से उठा उसी वायु को हृदय में लाकर फिर हृदय में स्थित उदान वायु को कण्ठ मार्ग से भृकुटि के बीच में प्राप्त कर दिया। सतीजी ने विचारा कि ये शिवजी का द्वेषी है। यदि मेरा अंग यज्ञ में पड़ा रहा तब ये न जाने इसकी क्या दशा करें इससे मैं ऐसा करूं कि जो इसे मेरे अंग की भस्म प्राप्त न हो। फिर अपने पति के चरण कमल का स्मरण किया। उस समय सती की समाधि अग्नि से शरीर आप ही भस्म हो गया। यह देखकर देखने वालों को महान आश्चर्य हुआ और वहां हा-हाकार शब्द हुआ, कि अहो महादेव जी, पत्नी सती जी ने दक्ष के अपमान से अपने प्राणों को छोड़ दिया।

यह कठोर हृदय शिवजी से बैर करने वाला दक्ष बड़ी निंदा को प्राप्त होवेगा क्योंकि जिसने अपने अपराध से मरती हुई अपनी पुत्री की निवारण नहीं किया। इस प्रकार वहां लोग कह रहे थे कि महादेव जी के पार्षद गण शस्त्र लेकर दक्ष को मारने को उठे तब पार्षदों को आते देख भृगुजी ने उनके विनाश करने वाली ऋचाओं को पढ़ दक्षिण अग्नि में एक आहुति दी। जब उस अध्वर्यु ने वह होम किया, तब ऋभुनामक हजारों देवता प्रकट हुए। वे हवन की अधजली लकड़ी लिए दौड़े और शिवजी के गणों को मारकर चारों दिशाओं को भगा दिया।

वीर भद्र द्वारा दक्ष का वध

मैत्रेयजी कहने लगे—दक्ष से निरादर की हुई सती का मरण और ऋभुनाम देवताओं से अपनी सेना का भगाना, नारद मुनि के मुख से सुन शिवजी ने क्रोध में भरकर दाँतों से होठों को दबा भयानक रूप से अट्टहास के साथ अग्नि के समान तेज वाली अपनी एक जटा को उखाड़ कर पृथ्वी पर दे पटका। जटा को पटकते ही बड़ी देह व हजार जिस के भुजा व मेघ से समान जिसका वर्ण, जिसके तीन नेत्र, महा विकराल जिसकी दाढें, कपाल-माला धारण किये एक वीर भद्र नाम का पुरुष प्रकट हुआ और महादेव जी के हाथ जोड़ कर बोला—मैं आपका किंकर हूं, आज्ञा दीजिए क्या

करूं? शिवजी बोले—कि हे भट! तू मेरे पार्षदों में मुख्य है, जाकर मेरी आज्ञा से यज्ञ सहित दक्ष का नाश कर। हे विदुर! इस प्रकार क्रोधित शिवजी से आज्ञा पा महादेव जी की परिक्रमा कर वीरभद्र पार्षदों को साथ ले, मृत्यु नाशक त्रिशूल हाथ में लेकर दक्ष की ओर धाया। उस समय दक्ष और सभासद सब उत्तर दिशा में उड़ती हुई धूल को देख विचारने लगे कि यह धूल कहां से आती है। दक्ष की रानी आदि स्त्रियां सब उद्विग्न हो कहने लगीं कि प्रजापति दक्ष ने बिना अपराध वाली अपनी पुत्री का अपमान किया उसी पाप का फल है जो शिवजी प्रलय में जटा को बिखेर कर, त्रिशूल की नोक से दिग्गजों को छेद देते हैं और अस्त्र शस्त्र उठाए ऊंचे अट्टहास से दिग्गजों को विदीर्ण करते हैं, भयंकर दाढ़ों से तारागणों को नष्ट करते हैं, वैसे तेज युक्त शिवजी को कोपायमान करके क्या ब्रह्मा भी सुख पा सकता है? इस प्रकार यज्ञ में महात्मा लोग उदास हो बातचीत कर रहे थे कि हजारों उत्पात होने लगे, हे विदुर! उसी क्षण अस्त्र शस्त्र लिये काले-पीले, स्वरूप किये अनेक प्रकार के शरीर वाले शिव गणों ने दक्ष प्रजापति के यज्ञ को घेर लिया। किसी ने तो यज्ञस्तम्भ उखाड़ डाला और किसी ने पत्नीशिला को नष्ट किया। किसी ने अग्नीध्रशाला का नाश कर दिया, किसी ने क्रीड़ा स्थान, किसी ने भोजन शाला को विध्वंस किया। कितनों ने यज्ञ पात्र तोड़ डाले, कितनों ने अग्नि को

बुझा दिया, बहुतों ने कुण्डों में मूत्र कर दिया और कितनों ने वेदी और मेखला को तोड़ डाला। भृगु को मणिमान ने बांध लिया, दक्ष को वीरभद्र ने, पूषादेव को चण्डीश्वर ने, भगदेव को नन्दीश्वर ने पकड़ लिया। महादेव जी के गण और पार्षदों ने पत्थरों से ऋत्विज, सभासद सबको मारा जिससे वे भाग गये। स्रुवा हाथ में लिये पूर्ववत यज्ञनाशकों को निवारण करते भृगु ऋषि की मूंछ दाढ़ी को वीरभद्र ने उखाड़ लिया, क्योंकि शिव शाप के समय भृगु दाढ़ी दिखाकर हंसे थे। वीरभद्र ने क्रोध से भृगु को पृथ्वी पर पटक कर नेत्र निकाल लिये क्योंकि उसने शिवजी की निन्दा करते हुए दक्ष को नेत्रों से इशारा किया था। जो निन्दा करते हुए दक्ष के सन्मुख दांत दिखाकर हंसा था ऐसे पूषा देवता के दांत वीरभद्र ने उखाड़ लिए। अनन्तर दक्ष की छाती पर चढ़ शस्त्रों से वीरभद्र उसका सिर काटने लगे तो भी दक्ष के शिर को न काट सके। जब शस्त्रों से दक्ष का शिर न कट सका तब वीर भद्र को विस्मय हुआ। फिर वीरभद्र ने देखा कि यज्ञ में जो पशु मारा जाता है उसे गला घोंटकर मारते हैं, यह विचार कर कण्ठ मोड़कर दक्ष का सिर देह से पृथक कर दिया। फिर दक्ष सिर को नारियल की तरह स्वाहा कर पूर्णाहुति कर दी। चारों ओर महाशोक छा गया। फिर वीरभद्र क्रोधित होकर उस यज्ञ स्थान को तोड़-फोड़ अग्नि से जलाकर अपनी सेना साथ ले कैलाश पर्वत को चले गए।

देवताओं का शिवजी के पास जाना और यज्ञ सम्पूर्ण करना

मैत्रेयजी बोले कि—हे विदुर! जब देवगण शिवजी के गणों से पराजित हुए, तब भय से व्याकुल होकर ऋत्विज और सभासदों को साथ ले ब्रह्माजी के समीप जा सब वृतान्त कहकर सुनाया। देवताओं के कहे हुए वृतान्त को सुन ब्रह्माजी कहने लगे कि हे देवताओं! जो तेजस्वी पुरुष किसी का बिगाड़ करे तो उचित है कि उससे बदला लेने की इच्छा न करे। तुमने यज्ञ में भाग लेने वाले शिवजी को भाग से दूर किया है इससे तुम अपराधी हो। यदि यज्ञ सन्धान करने की इच्छा हो तो अब भी शुद्ध चित्त होकर शिवजी को शीघ्र प्रसन्न करो। उन शिवजी के तत्व को न तो मैं जानता हूं न तुम लोग जानते हो। ब्रह्माजी इस प्रकार देवताओं को आज्ञा देकर उनको और प्रजापतियों को साथ लेकर महादेव जी के निवास स्थान पर्वतराज कैलाश को चले। वहां उन्होंने देखा कि निर्मल झरने झर रहे थे, कन्दरायें और शिखर शोभा दे रहे थे, सिद्ध जनों की स्त्रियां अपने पतियों के साथ विहार कर रही थीं और पवित्र जल वाली नन्दनाम गंगा चारों ओर बह रही थी। श्रीशिवजी के कैलाश पर्वत को देख देवता लोग आश्चर्य को प्राप्त हुए। उसके समीप कुबेर की अलकापुरी को देखा और कमलों के वन को देखा

जिस वन में सौगन्धिक नाम के कमल खिल रहे थे। उस वन से आगे चलकर एक वट-वृक्ष को देखा। वह वृक्ष सौ योजन ऊंचा और तीन सौ कोस के विस्तार वाला था उसकी सघन छाया सूर्य के उदय और अन्त के समय तक कभी हटती नहीं थी और जिसमें किसी पक्षी का घोंसला नहीं था। वट के नीचे शिवजी को देवताओं ने देखा। वहां सनन्दन आदिक शिवजी की सेवा कर रहे थे और कुबेर सिर झुकाये उपासना कर रहा था। ब्रह्मादिक देवताओं ने महादेवजी का दर्शन कर हाथ जोड़कर नमस्कार किया। ब्रह्माजी को आये देखकर शीघ्र उठ कर शिवजी के जो समीप बैठे थे उन्होंने उठकर ब्रह्माजी को प्रणाम किया। तदन्तर ब्रह्माजी महादेवजी से हँसते हुए बोले- ईश! आपको मैं जानता हूं कि शुभ कर्म करने वालों को स्वर्ग, मोक्ष और अशुभ करने वाले को नरक देने वाले आप ही हो, फिर किस कारण किसी पुरुष को विपरीत फल मिल जाता है। जो आपके ही चरणों में मन को अर्पण करते हैं, ऐसे महात्माजनों का भी अज्ञानियों की नाई पराभव नहीं हो सकता, तब आपकी तो बात ही क्या है। जिस समय भगवान की माया से मोहित जन महात्मा पुरुषों का अपराध भी करते हैं तो वे महात्मा उस अपराध को प्रारब्ध का फल समझ उनके ऊपर दया ही रखते हैं। हे रुद्र! यज्ञ कराने वाले मूर्खों ने तुमको यज्ञ में भाग नहीं दिया, इसलिए दक्ष का यज्ञ समाप्त नहीं हुआ। अब

आप मरे हुए उस दक्ष के यज्ञ का उद्धार करो। तब शिवजी ने कहा- हे ब्रह्माजी मैं क्या करूं? तब ब्रह्माजी ने कहा कि हे शिव! प्रथम तो दक्ष जी जावे और भृगु के नेत्र हो जावें, भृगु के दाढ़ी हो जावे, पूषा के दांत पहले की नाई हो जावें। हे मनु! छिन्न-भिन्न अंग वाले देवता तथा ऋत्विजों के दुःख आपकी कृपा से दूर हो जावें। तब शिवजी ने कहा कि हे पितामह! कुछ मेरा भी ध्यान है। तब ब्रह्माजी कहने लगे- हे रुद्र! इस यज्ञ में जो शेष भाग बचेगा, वह आपका होगा ये सब स्वीकार करते हैं। इस समय यह यज्ञ पूर्ण होना चाहिए।

तब महादेवजी ने प्रसन्न हो कहा- हे ब्रह्माजी, सुनिए। जो दक्ष का सिर भस्म हो गया है अब वो सिर तो कहां से आवेगा? दक्ष का सिर बकरे का लगाया जावे और भृगु के जो नेत्र निकाले गए हैं सो भृगु अपने भाग को मित्र देवता के नेत्रों से देखे। और पूषा यजमानों के दांतों से पिसा हुआ अन्न भोजन किया करे, और जिन देवताओं ने हमें शेष भाग दिया है उनके अङ्ग पूर्ण हो जावेंगे। और जिनके सब अंग नष्ट हो गए थे, उनकी बाहु का काम अश्विनीकुमार की भुजाओं से और हाथ का पूषा देवता के हाथों से हुआ करेगा और अध्वर्य और ऋत्विज जैसे प्रथम थे वैसे ही हो जायेंगे और भृगुजी की अब वो दाढ़ी तो होने से रही परन्तु बकरे की दाढी होवेगी। मैत्रेयजी बोले कि हे तात! शिवजी के

वचन सुन सब प्रसन्न हो धन्यवाद देने लगे। फिर देवता और मुनियों ने शिवजी की प्रार्थना की, कि आप चलिये और यज्ञ पूर्ण कीजिए। तब शिवजी ब्रह्मा जी को साथ ले यज्ञशाला में आ पहुंचे और यज्ञ को पूरा किया। यज्ञ में बकरे का सिर काटकर दक्ष के धड़ से जोड़ दिया गया। सिर रखते ही शिवजी ने दक्ष की ओर देखा तो देखते ही प्रजापति उठ बैठा। और निष्कपट अन्तःकरण से महादेव की स्तुति करने लगा। दक्ष बोले- हे भगवान! मैंने आपका अपमान किया था, तो भी आपने कृपा की जो मुझको दंड दिया। विद्या, तप और व्रतधारी ब्राह्मणों को आपने अपने मुख से उत्पन्न किया है। इसलिए हे विभो! आप विपत्तियों में ब्राह्मणों की रक्षा करते हो। मैंने जो देव सभा में दुर्वचनों से आपको दुखित किया था, तो भी आपने उस दुःख को नहीं माना मुझको दया दृष्टि से बचाया। हे भगवान! अपने अनुग्रह से स्वमेव सन्तुष्ट होओ। दक्ष ने अपने अपराधों को क्षमा कराने को शिवजी से प्रार्थना की ब्रह्माजी की सम्मति से फिर यज्ञ कर्म का प्रारम्भ किया। और भगवान के समीप जा दक्ष ने सब पूजन की सामग्री रख समर्पण की और स्तुति करने लगा। आप जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तीनों अवस्थाओं से रहित हो अपने स्वरूप में स्थिर, अद्वितीय, एक आप ही हो, माया का तिरस्कार कर स्वाधीन होने पर भी मनुष्य देहधर माया रूपी नाटक रचते हो, परन्तु आप निर्विकार

तथा निर्लेप हो। सब ऋत्विज स्तुति करने लगे- हे भगवान! नन्दीश्वर के शाप से दुराग्रह रखने वाले हम आपके तत्व को नहीं जानते, ये इन्द्रादि देवता सब आपके ही रूप हैं परन्तु आपके तत्व को फिर भी नहीं जानते हैं। फिर सभासद स्तुति करने लगे कि- हे शरणागत रक्षक! यह संसार महाकठिन पंथ है जिसमें अनेक क्लेश हैं। शिवजी बोले- हे वरद मुनियो! आदर पूर्वक पूजन करने योग्य मुझको यद्यपि मूर्ख लोग आचार भ्रष्ट कहते हैं, तथापि आपकी कृपा से उस कहने को मैं नहीं गिनता। श्री भृगुजी स्तुति करने लगे हे भगवान! आत्म ज्ञान वाले ब्रह्मादिक देहधारी भी अपनी आत्मा में स्थिर हुए आपके स्वरूप को अब भी नहीं जानते, सो कृपा करो। ब्रह्माजी बोले पदार्थों के भेद को जानने वाली इन्द्रियों से जो कुछ ग्रहण किया जाता है वह आपको सत्य स्वरूप नहीं है। इन्द्रजी बोले- हे अच्युत! विश्वपालक! असुर वंश के नाश करने वाले अस्त्रों सहित आपका अष्ट भुजा वाला रूप जगत का उत्पादन तथा पालन करने वाला है। ऋत्विजों की स्त्रियां स्तुति करने लगीं- हे यज्ञयात्मन! यज्ञ केवल आप ही के पूजन के अर्थ प्रजापति ने रचा था, सो दक्ष पर कोप करके इस समय विध्वंस कर दिया है, इसलिए आप अपनी पावन दृष्टि से पवित्र करो। ऋषि तथा सब सिद्ध लोग स्तुति करने लगे- दुःख से दग्ध हुआ और तृष्णा से पीड़ित हमारा मन आपकी कथा में प्रवेश

होकर शांत हो; सायुज्य मुक्ति होने के समान प्रतीत होता है। दक्ष की स्त्री प्रसूति स्तुति करने लगी- हे ईश! मैं आपको प्रणाम करती हूं, आप मेरी रक्षा करें। आपके बिना यह यज्ञ शोभा नहीं देता था। सब योगेश्वर बोले- हे प्रभो! हे विश्वात्मन जो पुरुष अपनी आत्मा से आपको पृथक नहीं देखता है, उससे प्यारा आपको कोई नहीं है तो भी हे भक्तवत्सल! अनन्य भक्ति से भजन करने वाले हम पर कृपा करो। अग्निदेव बोले- हे प्रभो! जिस तेज से अति समृद्धि से यज्ञ में टपकते हुए घृत को धारण कर सब देवताओं को उनके भागों को पहुंचाया करता हूं, उन यज्ञों के रक्षक भगवान को मैं बार-बार प्रणाम करता हूं। देवता बोले- पूर्व कल्प के अन्त में रचे हुए जगत को उदर में धारण कर आप आद्यपुरुष प्रलय के जल में शेष-शय्या पर सोये सो भगवान हमारे नेत्रों के आगे आये हो, यह हम पर बड़ा अनुग्रह किया। देव! ये मरीचि आदि ऋषि, ब्राह्मण, रुद्र, शिवा इत्यादि देव आपके अंश हैं। हे नाथ! आपको हम प्रणाम करते हैं। तदन्तर सब ब्राह्मण स्तुति करने लगे कि प्रभो! यज्ञ, हवि, अग्नि, मंत्र, समिधा, दर्भ, पात्र, सभासद, ऋत्विज, यजमान, यजमान की स्त्री, देवता, अग्निहोत्र, स्वधा, सोमघृत, यज्ञ पशु यह सब आप ही हो, ऐसे आपको नमस्कार है। मैत्रेयजी कहने लगे- हे विदुर! भगवान की जब इस प्रकार स्तुति की गई तब दक्ष प्रजापति ने फिर यज्ञ

प्रारम्भ किया और भगवान अपने भोग से प्रसन्न हो दक्ष से बोले- हे दक्ष! मैं ही अपनी माया को धरकर इस जगत को रचता, पालता, संहार करता हूं। हे ब्रह्मन्! हम तीनों देवों विषे जो पुरुष भेद नहीं समझता है वह शान्ति को प्राप्त होता है। मैत्रेयजी बोले, जब भगवान ने दक्ष को उपदेश किया तब प्रजापति ने अपने यज्ञ में प्रथम भगवान का पूजन कर फिर सब देवताओं का भी पूजन किया। फिर यज्ञ के अवशेष भाग से महादेवजी का पूजन किया। फिर समाप्ति करके सोम पान करने वाले देवताओं का पूजन कर ऋत्विजों सहित देवताओं को विदा किया। दक्ष को धर्म में बुद्धि रहने का वरदान देकर सब देवता अपने लोकों को चले गये। दक्ष कन्या सती जी अपने शरीर को छोड़कर फिर हिमालय की स्त्री मैना के उदर से प्रकट हुई, ऐसा हमने सुना है। फिर भी वह अम्बिका महादेव पति को प्राप्त हुई। दक्ष यज्ञ को विध्वंस करने वाले महादेवजी का यह चरित्र मैंने श्री उद्धव के मुख से श्रवण किया था। हे विदुर! जो पुरुष यह नित्य प्रति भक्ति भाव से सुनकर दूसरों को सुनाता है, वह शिवजी की भक्ति के प्रभाव से सब पापों से छूट जाता है।

ध्रुव चरित्र

दक्ष कन्याओं के वंश कहने के प्रसंग से दक्ष की कथा कही। अब पुत्रियों के वंश के प्रसंग में होने

वाली ध्रुवजी की कथा वर्णन करते हैं। मैत्रेयजी बोले-कि शौनकादि ऋषि श्री नारदजी, शृभु, हंस, आरुणि और यति इन ब्रह्माजी के पुत्रों ने नैष्ठिक ब्रह्मचारी होने से गृहस्थाश्रम नहीं किया, अतएव इनसे वंश नहीं चला। ब्रह्माजी का पुत्र अधर्म भी था उसकी मृषा नामक स्त्री से दम्भ नामक पुत्र और माया नाम की कन्या हुई। उन बहन भाई को पति पत्नी बना कर मृत्यु ने गोद ले लिया। उसके कोई सुत नहीं था, दम्भ की माया नाम स्त्री से लोभ नामक सुत और निकृत नामक कन्या हुई। लोभ की निकृति नाम स्त्री से क्रोध नाम सुत और हिंसा नाम कन्या हुई। क्रोध से हिंसा नाम स्त्री से कलिनाम सुत और दुरुक्ति नामक कन्या हुई। कलि की दुरुक्ति नामक स्त्री से भय नाम सुत और मृत्यु नाम पुत्री हुई। भय की मृत्युनाम स्त्री से निरय नाम पुत्र और यातना नामी पुत्री हुई। हे अनघ! संक्षेप में यह प्रति सर्ग वर्णन किया है, जो कोई पुरुष तीन बार अधर्म वंशावली को सुने उसके शरीर के सब मैल दूर हो जाते हैं।

हे कुरुकुल नन्दन अब ब्रह्माजी के अंश से उत्पन्न हुए स्वायम्भुवमनु के प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम दो पुत्र हुए। राजा उत्तानपाद को सुनीति प्यारी नहीं थीं। सुरुचि राजा को बहुत प्यारी थी। सुनीति का पुत्र ध्रुव था। एक समय राजा सुरुचि के पुत्र को गोद में बिठा प्यार कर रहा था, इतने में ध्रुव जी आकर राजा की गोद में बैठने को उद्यत हुए, अपनी सौत के पुत्र ध्रुव को पिता

की गोदी में चढ़ते देख अभिमानयुक्त होकर सुरुचि ईर्षा भरे वचन कहने लगी। सुरुचि बोली- हे वत्स! तुम राजसिंहासन पर बैठने योग्य नहीं हो, क्योंकि हमारी कुक्षि से तुमने जन्म नहीं लिया है। अपनी सौतेली माता के इन दुर्वचनों से बिंधा हुआ, मौन साधे अपने पिता को छोड़ रोता हुआ ध्रुव माता सुनीति के समीप गया। अपने पुत्र को दुःखी देख कर माता सुनीति ने दौड़कर गोद में उठा लिया और सौत के कहे पुरवासियों के मुख से वचन सुनकर वह अबला दुखित हो नेत्रों से आंसुओं की धारा बहाने लगी। अबला सुनीति पुत्र से कहने लगी- हे बेटा! जो औरों को दुःख पहुंचाता है उसका फल अवश्य भोगना पड़ता है। हे पुत्र! हमारी सौत ने जो कहा है सो सत्य है, उसे तुम त्यागकर धैर्य धारण करो। जो तुम उत्तर की नांई राज्य सिंहासन की इच्छा करते हो तो भगवान की आराधना करो। इस प्रकार माता के वचनों को सुन वहाँ ध्रुव जी पुर से बाहर चल दिये। नारद जी यह बात सुन आए और उसकी अभिलाषा को जान उसके सिर पर अपना हाथ धर कर आश्चर्यपूर्वक बोले- हे राजकुमार अभी तुम बालक हो, मान अपमान का मानना अज्ञान ही से है। तुम माता के कहने से परमात्मा को प्रसन्न करने जाते हो जिसे मुनि लोग ढूँढ़ते हैं। इस कारण हठ छोड़ो, वृद्धावस्था में तप के लिए यत्न करोगे तो सफल होगा। जिसके भाग्य में जो दिया है उसी प्रारब्ध से मिले हुए सुख दुःख

से प्रसन्न रह मनुष्य मोक्ष फल को प्राप्त होता है। यह सुन कर ध्रुवजी बोले कि आपने यह शान्ति मार्ग दिखाया है जो हम सरीखे को देखना कठिन है। तो भी क्षत्रीय स्वभाव वाले के हृदय में यह ठहर नहीं सकता, क्योंकि मेरा हृदय सुरुचि के दुर्वचनों से विंधा पड़ा है। हे ब्रह्मन्! जहाँ हमारे पितर और अन्य कोई आज तक न गये हों ऐसे त्रिभुवन पद को जीतने का मेरा मनोरथ है, सो मुझे वह मार्ग बतलाइये। निश्चय ही आप ब्रह्मा जी के पुत्र हो और संसार के हित के हेतु विचरते रहते हो। फिर मेरे ही लिए आप संसार में क्यों फाँसते हो? मैत्रेय जी बोले- ध्रुव जी के वचन सुनकर नारदजी प्रसन्न हुए और उनसे स्नेह मय वचन कहे। तुम्हारी माता ने जो मार्ग बतलाया है, वह निश्चय ही मोक्ष देने वाला और भगवान से मिलाने वाला मार्ग है। हे पुत्र! यमुना जी के किनारे पवित्र मधुवन क्षेत्र है, वहाँ तुम जाओ निश्चय ही तुम्हारा कल्याण होगा। वहां जाकर स्नान कर निवास करो और पूरक, कुम्भक, रेचक वृत्ति वाले प्राणायाम से शनैः-शनैः प्राण इन्द्रिय और मन के मैल को दूर करके श्री कृष्ण भगवान का ध्यान करो। इस प्रकार भगवान के स्वरूप को ध्यान करते हुए मन परमानन्द को प्राप्त कर और विषयों से निवृत्त होकर भगवान के चरणों में लग जाता है। हे राजपुत्र! परम गुप्त मंत्र मुझसे सुनो, जिसको मनुष्य सात रात्रि जपने से आकाश में विचरते हुए देवताओं को देखता है- 'ओं

नमो भगवते वासुदेवयाय' इस मंत्र को जपकर भगवान की पूजा करे। इस प्रकार काया, वाणी, मन से भगवान की भक्ति करे। निष्कपट भाव से भजन करने वाले पुरुष को सम्यक भक्ति को बढ़ाने वाले भगवान, उसी समय फल देते हैं। ये वचन सुनकर ध्रुव नारदजी की परिक्रमा और प्रणाम करके भगवान के चरणों से शोभित मधुवन को चल दिये। ध्रुवजी के चले जाने पर नारद मुनि राजा उत्तानपाद के अन्तःपुर में प्रविष्ट हुए। राजा ने मुनि का सत्कार किया। विराजमान होकर नारदजी बोले- हे राजन्! आपको क्या सोच है। यह सुनकर उत्तानपाद कहने लगे- हे ब्रह्मन्! मैंने स्त्री के वश होकर पांच वर्ष के अपने बालक को माता सहित घर से निकाल दिया है। हे ब्रह्मन्! उस अनाथ बालक को वन में कहीं भेड़िये तो नहीं खा जायेंगे? यह सुन नारद जी बोले- हे राजन्! पुत्र का सोच मत करो। भगवान उसके रक्षक हैं। उसका यश सम्पूर्ण जगत में फैलेगा। मैत्रेय जी बोले- इस प्रकार सुनकर राजा उत्तानपाद पुत्र की चिन्ता करने लगा। ध्रुव जी मधुवन में पहुंचकर यमुना में स्नान कर शुद्ध हुए जिस रात्रि वहां पहुंचे थे उसी रात्रि में व्रत धारण कर भगवान की सेवा करने लगे। अब ध्रुवजी के तप करने की विधि कहते हैं- प्रथम मास में तीन-तीन रात्रि के बीते एक समय कैथ या बेर का भोजन करते हुए भगवान की पूजा करते हुए महीना व्यतीत किया। दूसरे महीने में ध्रुव छटे, छटे दिन

टूटकर गिरे तृण व पत्तों को खाकर भगवान का पूजन करने लगे। तीसरे मास में नवें-नवें दिन जल-पान मात्र कर के भगवान का पूजन करते रहे। चौथे महीने में बारहवें-बारहवें दिन केवल पवन भक्षण करके ध्रुवजी ने हृदय में भगवान को धारण किया। फिर जब पांचवे महीने ध्रुवजी श्वांस को रोककर एक पांव से अचल हो परमेश्वर का ध्यान करने लगे तब सब ओर से मन को खींचकर हृदय में भगवान का स्मरण करने लगे, ध्रुवजी परमेश्वर में लीन हो गये। प्रकृति और पुरुष के ईश्वर की जब ध्रुवजी ने धारणा की तब तीनों लोक कांपने लगे। देवता भगवान विष्णु से बोले- हे भगवान! प्राणियों का श्वांस रुकना हमने नहीं देखा, इसका कारण नहीं जाना, हे शरणागत वत्सल! इस कलेश से हमें छुड़ाओ। श्री भगवान बोले- हे देवताओं! भय मत करो, तुम्हारे प्राण रुकने का कारण ध्रुव है सो उस बालक के मनाने से तुम्हारा कल्याण होगा।

नारायण से वर पाकर ध्रुव का अपने देश में जाना और पिता से प्राप्त राज्य का पालन करना

मैत्रेयजी कहने लगे- हे विदुर! भगवान के वचन से निर्भय हो देवता प्रणाम कर स्वर्ग चले गए और भगवान भी उसी समय ध्रुव को देखने को मधुवन पधारे।

ध्रुव जी नेत्र मूंदे ध्यान मग्न थे। ध्रुव की समाधि को तोड़ने के लिए भगवान ध्रुव के हृदय से अन्तर्ध्यान हो गये। ध्रुव ने भगवद्रूप को न देखा तब नेत्र खोले, तब साक्षात् चतुर्भुज भगवान को देखा। दर्शन करते ध्रुव ने अपने शरीर को पृथ्वी की ओर झुक दण्डवत प्रणाम किया। प्रेम में गद्‌गद् बालक भगवान की स्तुति करने लगा। शक्तियों को धारण करने वाले भगवान मेरे अन्तःकरण में अपनी चैतन्य शक्ति से मेरी वाणी चेतन करते हैं और प्राणों को चेतन करते हैं। ऐसे भगवान को मेरा नमस्कार है। हे प्रभो! मैं इतना ही चाहता हूं कि आपकी भक्ति बनी रहे और इस भवसागर को मैं बिना परिश्रम ही पार कर सकूं। तब भगवान ध्रुवजी की प्रशंसा करके बोले- हे राजकुमार तुम्हारे मनोरथ को मैं जानता हूं। हे ध्रुवजी! जो आज तक किसी को न मिला हो वह मंगल पद तुम्हें देता हूं। त्रिलोकी के नाश होने से भी नाश नहीं होता, ऐसे स्थान की धर्म, अग्नि, कश्यप, इन्द्र, सप्तऋषि सब तारा रूप से प्रदक्षिणा करते हैं। अब तुम अपने नगर को जाओ, तुम्हारा पिता तुमको राज्य देकर वन को चला जावेगा। तब धर्म के अनुसार छत्तीस हजार वर्ष भू-मण्डल का राज्य करोगे। तुम्हारा भाई उत्तम मृगया खेलने में मारा जाएगा, उसकी माता ढूंढ़ने को वन में जायेगी, वहां अक्समात लगे दावानल में भस्म होकर प्राण त्याग देगी। तुम बहुत दक्षिणा युक्त यज्ञों से मुझे पूजकर संसार के भोग को

भोगकर अन्त में हमारा स्मरण करोगे। भगवान अपना पद दिखा अपने धाम को चले गए। ध्रुव भगवत दर्शन के वियोग से दुखी हो अपने नगर को चला। विदुर जी पूछने लगे कि हे मैत्रेय जी! मुझको आश्चर्य है कि जो भगवान का पद मायावी पुरुष को मिलना कठिन है उस विष्णु पद को एक ही जन्म में प्राप्त होकर ध्रुव ने अपने को मनोरथ सहित क्यों माना? यह सुनकर मैत्रेय जी बोले- सौतेली माता की बातों से विंधे हुए ध्रुवजी ने भगवान से मुक्ति की इच्छा नहीं की थी इसलिए ध्रुवजी सन्ताप को प्राप्त हुए। पछताए हुए ध्रुवजी बोले- जो कि सनक आदिक ब्रह्मचारी समाधि लगा अनेक जन्मों में जिस परमेश्वर के पद को जान सकते हैं, सो छः महीने के तप से उन भगवान को प्राप्त होकर मैं फिर संसार का संसार में रहा। अहो! यह बड़े कष्ट की बात है। भगवान तो मुझको अपना परमधाम देते थे, परन्तु मुझ भाग्यहीन ने अपनी मूर्खता से मान याचना की। मैत्रेयजी बोले- हे विदुर! आप सरीखे भी भगवान के सेवक हैं, वे मनुष्य श्री भगवान से किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करते क्योंकि बिना मांगे ही उनको मनोभिलाषित पदार्थ प्राप्त हो जाते हैं। मधुवन से चलकर जब ध्रुवजी अपने नगर में पहुंचे तो दूत द्वारा राजा उत्तानपाद को समाचार मिला कि आपका पुत्र आया है। ब्राह्मणों द्वारा वेद ध्वनि कराते राजा की दोनों रानियां और राजा पुत्र ध्रुव को देखने नगर से बाहर

निकले। राजा की दोनों पटरानी पालकी में बैठ उत्तम को साथ लिए ध्रुव की अगवानी को चलीं। उपवन के निकट आते हुए ध्रुव को देखकर राजा रथ से उत्तर प्रेम से पुलकायमान हो ध्रुव के पास पहुंचा। मन में अत्यन्त उत्कण्ठा से राजा ध्रुव को भुजा पसार कर मिला। फिर पुत्र के सिर को बारम्बार सूंघकर राजा ने अपने नेत्रों के जल से पुत्र को स्नान कराया। ध्रुव जी ने पिता के चरणों को प्रणाम कर उनसे बातचीत की और सुरुचि माता के चरणों में सिर झुका प्रणाम किया कि माता ये सब तेरा ही प्रताप है। सुरुचि ने चरणों में पड़े ध्रुव को उठा हृदय से लगा नेत्रों से आँसू बहा गद्गद् वाणी से कहा कि हे बेटा! सन्देह नहीं करना कि सुरुचि ने ये आशीर्वाद कैसे दिया। कारण यह है कि जिसके ऊपर भगवान प्रसन्न हो जाते हैं उसको सब नमस्कार करते हैं। उत्तम और ध्रुव प्रेम में विह्वल हो अंग स्पर्श से रोमांचित हो नेत्रों से आंसुओं की धारा बहाने लगे। ध्रुव की माता सुनीति ने अपने प्यारे पुत्र से मिलकर हृदय के ताप को शान्त किया। ध्रुव की माता के स्तनों से दूध टपकने लगा और नेत्रों से जल बहने लगा। उस समय सुनीति की सब सराहना करने लगे, कि अहो! तुम्हारा बड़ा भाग्य है जो गुप्त हुआ तुम्हारा पुत्र आ गया। अब यह सम्पूर्ण भू-मण्डल की रक्षा करेगा। इस प्रकार ध्रुव को उत्तम के साथ हथिनी पर बिठा राजा उत्तानपाद ने अपने नगर में प्रवेश किया। महाराज ध्रुव

को मार्ग में नगर की स्त्रियां सरसों, अक्षत, दूध, फूल को थाल में रखकर भेंटने को आती थीं। पितृ भवन में ध्रुव जी, सुखपूर्वक रहने लगे। उत्तानपाद अपने सुत के अद्भुत्त प्रभाव को कानों से सुन और आंखों से देख परम आश्चर्य को प्राप्त हुआ और ध्रुवजी को राज्यतिलक दे अपने को वृद्ध जान वन को तप करने के निमित्त चल दिया।

यक्षगणों के साथ ध्रुव का युद्ध

प्रजापति शिशुकुमार की कन्या से ध्रुवजी ने विवाह किया। उसके कल्प और वत्सर दो पुत्र हुए। दूसरी स्त्री इलावायु से कन्या के उत्कल पुत्र हुआ, अन्य स्त्रियों से रत्न रूप एक कन्या उत्पन्न हुई। ध्रुव के भाई उत्तम ने विवाह नहीं किया। एक दिन वह हिमालय के भीतर आखेट को गया। वहाँ एक यक्ष ने उसे मार डाला और उसकी माता उसी के समान गति को पा मर गई। ध्रुव जी ने अपने भाई उत्तम का मारा जाना सुन शोक से संतप्त हो यक्ष को जीतने के हेतु अलकापुरी पर चढ़ाई की। ध्रुवजी ने अपना शङ्ख बजाया जिससे यक्षों की स्त्रियाँ भयभीत हो गईं। तदनन्तर ध्रुवजी के शङ्ख का शब्द सुन कुबेरजी के बलवान उपदेश, महाभट, गुह्यक, राक्षस और गन्धर्व अपने-अपने शस्त्र उठाकर निकले। तब ध्रुव ने धनुष हाथ में ले एक-एक यक्ष के तीन-तीन बाण मारे। सब यक्ष बाण लगने से अपने को पराजित

हुआ मान ध्रुवजी के युद्ध कर्म की प्रशंसा करने लगे। फिर एक लाख तीस हजार यक्षों ने ध्रुवजी पर बाणों की झड़ी लगा दी। उस समय विमानों पर बैठे सिद्ध लोगों ने बड़ा हा-हाकार किया कि हाय! यह राजा यक्षों से मर रहा है। तदनन्तर युद्ध में जब लोग जय-जय उच्चारण करने लगे, उस समय ध्रुवजी का रथ शस्त्रों से ऊपर आ प्रकाशमान हुआ। तब अपने धनुष को टंकारते हुए ध्रुवजी ने अपने बाणों से उनके शस्त्रों को चूर्ण कर दिया। ध्रुवजी के बाण यक्षों के कवच को काटकर शरीर में छिद गये। आहत मनुष्यों से आच्छादित रणभूमि अत्यन्त शोभा देने लगी। ध्रुवजी ने जब उस संग्राम में किसी शस्त्रधारी को न देखा तब अलकापुरी को देखने की इच्छा की। सारथी से पूछा, तेरी क्या इच्छा है? सारथी ने कहा नाथ! भूल न कीजिए, यह यक्ष लोग बड़े मायावी हैं। ध्रुवजी इस प्रकार अपने सारथी से कह रहे थे कि अनायास समुद्र के समान शब्द सुनाई देने लाग सब ओर दिशाओं में आँधी की सी धूल उड़ने लगी फिर क्षणमात्र में आकाश मेघों से आच्छादित हो गया, बिजली चमकने लगी बादल गरजने लगा। कुछ देर उपरान्त रुधिर, खखार, पीव, विष्ठा, मूत्र, चर्बी, माँसादिक की वर्षा होने लगी। तदनन्तर आकाश में बड़ा भारी पर्वत दिखाई दिया, फिर उस गदा, परिघ, खड्ग, मूसल सहित पत्थरों की वर्षा होने लगी। सहस्त्रों सर्प. मतवाले हाथी, सिंह, व्याघ्र ये दौड़ते ध्रुवजी के

सम्मुख आने लगे। तदनन्तर समुद्र पृथ्वी को डुबाता हुआ आता दीखा। कायर पुरुषों को त्रास देने वाली इस माया को यक्षों ने रचा। तब उन मायाओं को देख कर सप्तर्षि वहाँ आये। वे आकर ध्रुवजी से बोले कि हे ध्रुव! जिन भगवान का नाम उच्चारण करने से मनुष्य भवसागर पार हो जाता है सो भगवान का स्मरण करो वही दुःख दूर करेंगे।

सप्तर्षियों का वचन सुनकर ध्रुवजी ने नारायण अस्त्र का सन्धान किया। नारायण अस्त्र का संधान करते ही सम्पूर्ण माया नष्ट हो गई। उस नारायण अस्त्र में से सुवर्ण मय पंखों वाले बाण निकल कर यक्षों की सेना में प्रवेश करने लगे। तब मनुजी सप्तर्षियों सहित ध्रुवजी के समीप आकर बोले- हे पुत्र! बस करो इस क्रोध को त्याग कर दो, हे पुत्र! यह हमारे कुल योग्य कर्म नहीं है। हे भ्रातृ-वत्सल ध्रुव एक यक्ष के अपराध से भाई के मारे जाने से दुखी होकर तुमने सहस्त्रों यक्ष मार डाले भगवान के भक्तों का यह मार्ग नहीं है। भगवान के भक्त तो सब प्राणियों में क्षमा, दया, मित्रता रखने से भगवान प्रसन्न होते हैं। भगवान के प्रसन्न होने पर पुरुष माया के गुणों से छूट जीवन्मुक्त हो ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। पंच महाभूतों से ही यह सब स्त्री पुरुषों की उत्पत्ति होती है। हे पुत्र! ये यक्ष तुम्हारे भाई को मारने वाले नहीं हैं। तात! इस पुरुष की मृत्यु और जन्म का कारण परमेश्वर है। पुत्र! जब तुम पांच

वर्ष के थे तब अपनी सौतेली माता के वाक्यों से विचलित हो माता को त्याग वन में जाकर भगवान का आराधन कर दर्शन किया और सर्वोच्च पद को प्राप्त हुए। हे पुत्र! विरोध त्याग परमात्मा को सम्यक दृष्टि से ढूंढो। देखो अब तुम दिव्य दृष्टि से भगवान में परम भक्ति कर के 'मेरा है' 'मैं हूं' ऐसे अहंकार को धीरे-धीरे काटो। हे ध्रुव! तुमने अपराध किया अतः कुबेर जी को प्रणाम करके अपने मधुर वचनों से प्रसन्न करो। इस प्रकार स्वायम्भुवमनु अपने पौत्र को उपदेश कर सातों ऋषियों के साथ अपने पुर को चले गए।

ध्रुव का विष्णु धाम में आरोहण

ध्रुवजी की वृत्ति जानकर कुबेरजी वहां आये और हाथ जोड़े ध्रुवजी को देखा। कुबेर बोले- क्षत्रिय पुत्र, मैं तुम पर प्रसन्न हूं क्योंकि तुमने अपने पितामह की आज्ञा से बैर को त्याग दिया तुम मुझसे वरदान मांगो। कुबेर ने ध्रुवजी को जब वरदान देने को कहा तब ध्रुवजी ने वर माँगा कि भगवान में हमारी स्मृति बनी रहे। श्री कुबेर ध्रुवजी को वरदान दे अन्तर्ध्यान हो गए। तब ध्रुवजी भी नगर को लौट आए। फिर ध्रुवजी ने यज्ञों से यज्ञपति भगवान का पूजन किया। भगवान में भक्तिरत हुए ध्रुवजी अपनी आत्मा में विराजमान परमात्मा को देखने लगे। छत्तीस हजार वर्ष पर्यन्त ध्रुवजी ने राज किया। संसार अनित्य है, ऐसा जानकर ध्रुव बद्रिकाश्रम

को चले गये। वहां हरि के विराट स्वरूप में मन लगाया और समाधि में स्थित हो शरीर को छोड़ दिया। उस समय ध्रुवजी ने एक उत्तम विमान देखा, उस विमान के पीछे पार्षद नन्द-सुनंद देखे। ध्रुवजी झट उठ खड़े हुए और पूजा का क्रम भूल केवल भगवान के नामों का उच्चारण कर उनको पार्षद जान हाथ जोड़ प्रणाम करने लगे। ग्रीवा नीचे किये, ध्रुव जी के निकट जाकर सुनन्द और नन्द दोनों ने कहा हे राजन्! तुम्हारा कल्याण हो। हमारा वचन सुनो, हम भगवान के पार्षद हैं, तुमको परमधाम ले जाने को हम आये हैं। उस सर्वोच्चपद पर चलकर तुम विराजमान होओ। ध्रुवजी ने पार्षदों की वाणी सुन, स्नान कर, कृत्य से निश्चिन्त हो, मांगलीक अलङ्कार धारण कर मुनियों से आशीर्वाद ले, उस विमान की पूजा और प्रदक्षिणा कर, पार्षदों को प्रणाम कर उस विमान पर चढ़ने की इच्छा की। उसी समय मृत्यु उपस्थित हुआ और ध्रुव जी को नमस्कार कर बोला कि महाराज मुझे अंगीकार करो तब ध्रुव जी मृत्यु के मस्तक पर चरण टेक, उस विमान पर बैठे। जब ध्रुव जी स्वर्ग को जाने लगे तब उन्होंने अपनी माता का स्मरण किया। उन दोनों पार्षदों नें ध्रुव जी के अभिप्राय को समझ विमान में बैठी आगें जाती हुई सूनीति को दिखा दिया। श्री ध्रुवजी भगवान के प्रिय होने से तीनों लोकों के मुकुटमणि होकर आज तक विराजमान हैं। नारद ऋषि ने प्रचेताओं के यज्ञ में जाकर तीन श्लोकों

में ध्रुवजी की महिमा गाई। ध्रुव का चरित्र, धन, यश और आयु का देने वाला तथा स्वर्ग व ध्रुव पद का दाता और पाप नाशक है।

वेन के पिता अंग का वृतान्त

सूतजी कहने लगे- मैत्रेयजी के मुख से ध्रुव जी की विष्णुपद मिलने की कथा सुन विदुरजी ने मैत्रेयजी से प्रश्न किया कि जिन प्रचेतों के यज्ञ में जाकर ध्रुव की प्रशंसा की थी तो वे प्रचेता किसके पुत्र थे और उन्होंने यज्ञ कहां किया था? यह सुन मैत्रेयजी बोले कि जब ध्रुवजी अपने पुत्र उत्कल को राज्य दे वन चले गए, तब उत्कल ने अपने पिता के राज्य सिंहासन की इच्छा नहीं की क्योंकि वह जन्म से ही शांत चित्त था। वह आत्मज्ञानी मार्ग में जाता हुआ अपने पुर से निकल पड़ा। राजमंत्री सहित कुल के वृद्धों ने उसके छोटे भाई भ्रमि के पुत्र वत्सर को राजा बनाया। वत्सर की स्ववींथि स्त्री के पुष्पर्ण, तिम्मकेतु, ईश, उर्ज, वसु और जय छः पुत्र हुए। पुष्पर्ण के प्रभा और दोषा दो स्त्रियां थीं। प्रभा के प्रातः मध्यान्ह सायं के तीन पुत्र हुए। व्युष्ट के पुष्पकरिणी स्त्री से सर्व तेज नाम पुत्र हुआ और सर्व तेज आकृति से चक्षु हुआ उस मनु के नडवेला स्त्री से बारह पुत्र हुए- १. पुत्र, २. कुत्स, ३. चित्र, ४. अम्न, ५. सत्यवान, ६. ऋत्तु, ७. ब्रत, ८. अग्निष्टोम, ९. अतीरात्र, १०. प्रद्युम्न, ११. शिवि, १२. उल्मुक।

पुष्पकरिणी स्त्री से छः सुत हुए जिनके- १. अङ्ग, २. सुमनस, ३. ख्याति, ४. ऋतु, ५. अंगरिस, ६. गाय ये नाम थे। अंग के सुनीता से वेन उत्पन्न हुआ जिसकी दुष्टता से अंग दुखी होकर नगर से चले गए। राजा मर गया तब मुनियों ने उसकी दाहिनी भुजा को मथा। तब वेन के हाथों के मथने से पृथु उत्पन्न हुए। विदुरजी पूछने लगे- उस पवित्र आत्मा अंग के घर में ऐसी दुष्ट संतान कैसे हुई? वेन का क्या अपराध देख मुनिजनों ने शाप दिया और वेन का सम्पूर्ण चरित्र मुझ से कहो।

मैत्रेयजी बोले हे विदुर! एक समय अंग ने अश्वमेध यज्ञ किया। ब्राह्मणों ने देवताओं का आवाहन किया। परन्तु देवता नहीं आये। तब ब्राह्मणों ने राजा से कहा- हे महाराज, देवता तुम्हारे शाकल्य को ग्रहण नहीं करते हैं। देवताओं का कुछ अपराध बन पड़ा होगा जिससे देवता अपने भाग को नहीं लेते हैं। राजा अंग उदास हो ब्राह्मणों की आज्ञा से पूछने लगा। हे सभासद गण! मैंने ऐसा क्या अपराध किया है? समझाकर कहो। सभासद बोले हे नरदेव! यह तुम्हारा पाप है कि तुम पुत्रहीन हो। इससे तुम पुत्र उत्पन्न होने की कामना से यज्ञ-भगवान का भजन करो। भगवान तुम्हें पुत्र दें। सभासदों का वचन सुन ब्राह्मण सन्तान उत्पन्न होने के अर्थ विष्णु के हेतु पुरोडास भाग का हवन करने लगे। हवन करते ही एक पुरुष सुवर्ण के पात्र में पकी हुई खीर लिए कुण्ड से निकला। ब्राह्मणों की आज्ञा से राजा ने

खीर अपने हाथ में ले ली और सूँघकर रानी को दे दी। फिर वह रानी उस खीर को खा पति के सकाश से गर्भवती हुई। समय पूर्ण होने पर रानी के पुत्र हुआ। वह बालक बाल्यवस्था ही से अपने नाना की चाल पर चलने लगा। वह अधर्मी हुआ। वह बालक वन में मृगया को विचरता हुआ पशुओं को निरापराध मारता फिरता था। राजा अंग ने दुष्ट पुत्र को समझाया तो राजा दुःखी हो विचारने लगा जिन गृहस्थियों के पुत्र नहीं हैं, उनको दुष्ट सन्तान से प्राप्त दारुण दुःख भोगने नहीं पड़ते हैं। पापी सन्तान से निन्दा अधर्म और मनुष्यों से बैर, उत्पन्न होता है। फिर राजा ने विचारा कि, नहीं शोक देने वाले पुत्र से कुपुत्र ही अच्छा है। ऐसे वैराग युक्त हो आधी रात के समय राजा अंग नींद त्यागकर और अपनी प्यारी सुनीता को सोती छोड़ वन को चल दिया। प्रातःकाल राजा को महल में न देख मंत्री तथा अन्य प्रजादिक अपने स्वामी को गया जान शोक में विह्वल हो ढूंढ़ने लगे, जब राजा अंग का कहीं पता नहीं मिला तो नगर में आकर सबने मुनि लोगों की सभा में जाकर आंसू बहाते हुए कहा कि महाराज हमको राजा का पता नहीं लगा।

वेन का राज्याभिषेक

तब ब्राह्मणों ने माता सुनीता को बुलाकर वेन को राज्य दे दिया। मदान्धवेन अभिमान से भरा हुआ,

महात्माओं का अपमान करने लगा। वेन के दुष्टाचरण को देख प्रजा को दुःखी जान सब मुनि विचार करने लगे कि बड़े खेद की बात है, प्रजा को दोनों ओर से कष्ट हो रहा है एक ओर तो चोरों का और इधर राजा का भय है, हमने विचारा था कि संगति पायेगा तो अच्छा हो जायेगा, सो अब यही प्रजा का नाश करना चाहता है। चलो समझा दें, जो समझाने पर भी वह कहना नहीं मानेगा, तो तेज के प्रभाव से जला देवेंगे, इस प्रकार विचार कर क्रोध को छिपा लोग राजा वेन को नीति भरे वचनों से समझाने लगे। हे नृपवर्य! हम आपसे वह बात करते हैं कि जिससे आपकी कीर्ति बढ़े। प्रजा का कल्याण रूप राज धर्म नष्ट नहीं होना चाहिये क्योंकि उसके नाश होने से राज्य भ्रष्ट हो जाता है। दुष्ट मन्त्री व चोरादिकों से प्रजा की रक्षा करता हुआ राजा लोक परलोक में सुखी रहता है। देवताओं का अपमान नहीं करना चाहिये। यह सुन वेन कहने लगा कि तुम मूर्ख हो जो आजीविका देने वाले मुझ पति को छोड़कर अन्य देवों की पति की तरह उपासना करते हो। हे ब्राह्मणो! तुम यज्ञादि कर्मों से हमारा पूजन करो। राजा वेन ने जब मुनियों का निरादर किया, तब वे बहुत क्रोधित हुए और कहने लगे कि पापी को मारो, यह सिंहासन पर बैठने योग्य नहीं है क्योंकि यह निर्लज्ज यज्ञेश्वर की निन्दा करता है। क्रोधित लोगों ने वेन को हुंकार से मार दिया। जब ऋषि लोग वेन को मार

खीर अपने हाथ में ले ली और सूँघकर रानी को दे दी। फिर वह रानी उस खीर को खा पति के सकाश से गर्भवती हुई। समय पूर्ण होने पर रानी के पुत्र हुआ। वह बालक बाल्यवस्था ही से अपने नाना की चाल पर चलने लगा। वह अधर्मी हुआ। वह बालक वन में मृगया को विचरता हुआ पशुओं को निरापराध मारता फिरता था। राजा अंग ने दुष्ट पुत्र को समझाया तो राजा दुःखी हो विचारने लगा जिन गृहस्थियों के पुत्र नहीं हैं, उनको दुष्ट सन्तान से प्राप्त दारुण दुःख भोगने नहीं पड़ते हैं। पापी सन्तान से निन्दा अधर्म और मनुष्यों से बैर, उत्पन्न होता है। फिर राजा ने विचारा कि, नहीं शोक देने वाले पुत्र से कुपुत्र ही अच्छा है। ऐसे वैराग युक्त हो आधी रात के समय राजा अंग नींद त्यागकर और अपनी प्यारी सुनीता को सोती छोड़ वन को चल दिया। प्रातःकाल राजा को महल में न देख मंत्री तथा अन्य प्रजादिक अपने स्वामी को गया जान शोक में विह्वल हो ढूंढ़ने लगे, जब राजा अंग का कहीं पता नहीं मिला तो नगर में आकर सबने मुनि लोगों की सभा में जाकर आंसू बहाते हुए कहा कि महाराज हमको राजा का पता नहीं लगा।

वेन का राज्याभिषेक

तब ब्राह्मणों ने माता सुनीता को बुलाकर वेन को राज्य दे दिया। मदान्धवेन अभिमान से भरा हूआ,

महात्माओं का अपमान करने लगा। वेन के दुष्टाचरण को देख प्रजा को दुःखी जान सब मुनि विचार करने लगे कि बड़े खेद की बात है, प्रजा को दोनों ओर से कष्ट हो रहा है एक ओर तो चोरों का और इधर राजा का भय है, हमने विचारा था कि संगति पायेगा तो अच्छा हो जायेगा, सो अब यही प्रजा का नाश करना चाहता है। चलो समझा दें, जो समझाने पर भी वह कहना नहीं मानेगा, तो तेज के प्रभाव से जला देवेंगे, इस प्रकार विचार कर क्रोध को छिपा लोग राजा वेन को नीति भरे वचनों से समझाने लगे। हे नृपवर्य! हम आपसे वह बात करते हैं कि जिससे आपकी कीर्ति बढ़े। प्रजा का कल्याण रूप राज धर्म नष्ट नहीं होना चाहिये क्योंकि उसके नाश होने से राज्य भ्रष्ट हो जाता है। दुष्ट मन्त्री व चोरादिकों से प्रजा की रक्षा करता हुआ राजा लोक परलोक में सुखी रहता है। देवताओं का अपमान नहीं करना चाहिये। यह सुन वेन कहने लगा कि तुम मूर्ख हो जो आजीविका देने वाले मुझ पति को छोड़कर अन्य देवों की पति की तरह उपासना करते हो। हे ब्राह्मणो! तुम यज्ञादि कर्मों से हमारा पूजन करो। राजा वेन ने जब मुनियों का निरादर किया, तब वे बहुत क्रोधित हुए और कहने लगे कि पापी को मारो, यह सिंहासन पर बैठने योग्य नहीं है क्योंकि यह निर्लज्ज यज्ञेश्वर की निन्दा करता है। क्रोधित लोगों ने वेन को हुंकार से मार दिया। जब ऋषि लोग वेन को मार

अपने-अपने आश्रम को चले गए तब सोच करती हुई सुनीता ने अपने पुत्र के शरीर को मंत्र और औषधियों के योग से तेल में रख छोड़ा क्योंकि सुनीता ऋषियों की विद्या जानती थी। एक समय वे मुनि सरस्वती में स्नान कर अग्नि होत्र कर्म से निश्चिन्त हो नदी पर बैठे सत्कथा वर्णन कर रहे थे, इतने में भय देने वाले उत्पात दीख पड़े। उनको देख मुनियों ने विचार किया कि राजा के न होने से चोरों द्वारा उपद्रव तो नहीं हो जायेगा। ऋषि लोग विचार कर आये और मरे हुए वेन की जंघा को मथने लगे तब उसमें से एक पुरुष प्रकट हुआ। वह कौआ सा काला और बहुत अंग वाला था। वह पुरुष सिर झुकाए हाथ जोड़ मुनियों से कहने लगा, क्या आज्ञा है? मुनि लोग कहने लगे, कि निषाद अर्थात् बैठ जा। हे विदुर! ऋषियों के इस प्रकार कहने से उसकी निषाद जाति हुई। उसी के वंशी निषाद, पर्वतों पर वनों में रहा करते हैं। वेन के शरीर का पाप इसी निषाद के रूप से निकल गया और शरीर निष्कलङ्क हो गया।

पृथु की उत्पत्ति और राज्याभिषेक

अनन्तर ब्राह्मणों ने राजा वेन की भुजा मथीं तब स्त्री-पुरुष का जोड़ा उत्पन्न हुआ। उसको देख ऋषि उसको भगवान की कला जान प्रसन्न हो कहने लगे- यह पुरुष भगवान की कला से उत्पन्न हुआ, और यह

कन्या लक्ष्मी की कला से हुई है। यह पुरुष आदि राजा पृथु नाम से प्रसिद्ध होवेगा और यह देवी वरोरहा अर्चि पृथु राजा की पत्नी होगी। ब्राह्मण उनकी प्रशंसा करने लगे, गन्धर्व गान करने लगे। सिद्ध फूल बरसाने लगे और अप्सराएं नाचने नाचने लगीं, आकाश में बाजे बजने लगे। वहां देवता, ऋषि, पितृगण, लोकपाल व महादेवजी को साथ लिए ब्रह्माजी भी आये, और पृथु के दाहिने हाथ में गदाधारी तथा दोनों चरणों में कमल का चिन्ह देख ब्रह्माजी ने प्रभु को हरि की कला मान लिया। राज-तिलक देने को सब अभिषेक की सामग्री लाने लगे। नदी, समुद्र, पर्वत, नाग, गौ, पक्षी, मृग, स्वर्ग, पृथ्वी सब भेंट लेकर उपस्थित हुए। महाराज पृथु अभिषिक्त हो अपनी अर्चि नाम पटरानी के साथ अति शोभा को प्राप्त हुआ। महाराज कुबेर ने स्वर्ण सिंहासन भेंट दिया और वरुण ने शीतल जल टपकाने वाला छत्र, वायु ने चमर, धर्म ने ताला, इन्द्र ने मुकुट, यमराजजी ने संयमन नाम दण्ड दिया। ब्रह्माजी ने ब्रह्ममय कवच, सरस्वती ने उत्तम हार, हरि ने सुदर्शन चक्र, और लक्ष्मीजी ने अखण्ड सम्पत्ति दी। महादेव ने खड्ग, पार्वतीजी ने सौचन्द्रनामा ढाल, चन्द्र ने घोड़े, त्वष्टा ने सुन्दर रथ, अग्नि ने सींगों से बना हुआ धनुष दिया, सूर्य और पृथ्वी ने बाण, यथेच्छ पहुंचाने वाली पादुका, स्वर्ग ने पुष्पाञ्जलि, खेचरा ने नाट्य, सुन्दर गीत, बाजे और अन्तर्धान होने की विद्या दी, मुनियों ने सत्य आशीर्वाद,

समुद्र ने शंख समर्पण किया और समुद्र पर्वत, नदी सबों ने पृथु को मार्ग दिया। तब सूत मागध बन्दीजन पृथु की स्तुति करने को उपस्थित हुए। तब वेन पुत्र पृथु ने गम्भीर वाणी से कहा- हे बन्दीजनो! जिसके गुण संसार में विदित होते हैं, जिसकी स्तुति करना योग्य है, मेरे लिए तुम्हारी वाणी मिथ्या होनी चाहिए, इस कारण जब मेरे गुण प्रकट हों, तब तुम मेरे यश की प्रशंसा करना हे सूत! हम तो अभी लोक में प्रसिद्ध नहीं हुए हैं। फिर अपनी स्तुति कैसे करावें।

मैत्रेयजी कहने लगे- राजा पृथु निषेध करता तो रहा परन्तु गायक-गुण मुनियों की प्रेरणा से स्तुति करने लगे। हे माया अवतार! आप साक्षात् नारायण हैं। हे महाराज! आप धर्म धारण करने वाले, लोकों को धर्म में चलाने वाले और मर्यादा की रक्षार्थ, अपराधी को दण्ड देने वाले होंगे। सबको समान भाव से बर्तकर दुःखीजन जो ऊपर आ पड़ेंगे, उनके अपराध के भार को सहन करोगे। आप अमृतमयी मूर्ति से व अनुराग भरी चितवन से मन्द मुस्कान से जगत को तृप्त करेंगे। सबके भीतर और बाहर कार्यों को गुप्त दूतों द्वारा देखता हुआ महाराज पृथु उदासी रहेगा। पृथु दृढ़ व्रत, सत्यवादी वृद्धजनों का सेवक, सबको शरण देने वाला होवेगा। पृथु जहां सरस्वती प्रगट हुई वहां सौ अश्वमेध यज्ञ करेगा। जब पिछला यज्ञ समाप्त होने पर होगा तब इन के घोड़े को इन्द्र हर ले जायेगा। तब राजा पृथु अपने

उपवन में सनत्कुमार को अकेले पाकर उनका आराधन करके ज्ञान को प्राप्त होगा। जहां-तहां प्रजा जन महिमा गाकर प्रसिद्ध करेंगे। तब राजा पृथु अपनी कथा सुनेंगे।

पृथ्वी को मारने के लिए पृथु का उद्योग

मैत्रेयजी कहते हैं- हे विदुर! जब बन्दीजनों ने पृथु को विख्यात किया, तब उन बन्दीगणों को पृथु ने प्रणाम कर सत्कार सहित मनोकामना पूर्ण प्रसन्न किया और ब्राह्मण आदि सब प्रजा का पृथु ने सत्कार किया। तब विदुर बोले- हे मैत्रेयजी! पृथ्वी ने गौ का रूप क्यों धारण किया और पृथु ने उसको दुहा तब बछड़ा कौन हुआ और दुहने का पात्र क्या था? ऊंची नीची पृथ्वी को पृथु ने बराबर कैसे किया? राजा के पवित्र घोड़े को इन्द्र किस कारण चुरा कर ले गया? हे ब्रह्मन्! सनत्कुमार से पृथु किस ज्ञान को प्राप्त हो किस गति को प्राप्त हुआ? तथा और भी पृथु शरीर का जो पवित्र यश है वह कृपा करके मुझसे वर्णन करो। सूतजी ने कहा- जब ब्राह्मणों ने पृथु को राज्य दिया, तब ऐसा हुआ कि एक साथ भू-मण्डल अन्न रहित हो गया और प्रजा ने क्षुधा से दुर्बल शरीर हो पृथु के समीप जाकर कहा- हे राजन्! हम सब जठराग्नि से दग्ध हो रहे हैं। हे शरणागत रक्षक! अन्न बिना हम लोग मर न जावें। दुःखित हुई, सम्पूर्ण प्रजा का दीन वचन सुन पृथुजी ने विचार कि

और भली भांति जान लिया कि इस समय सम्पूर्ण औषधियों के बीजों को पृथ्वी निगल गई है। इसी से अन्न उत्पन्न नहीं कर सकती। यह निश्चय कर धनुष हाथ में ले क्रोध करके महाराज पृथु ने पृथ्वी के मारने को बाण चढ़ाया। पृथु को क्रोध पूर्वक शस्त्र उठाए देख पृथ्वी गौ का रूप धारण कर भयभीत हो भागी। उसके पीछे पृथुजी क्रोध से धनुष बाण चढ़ाए दौड़े और जहां तक पृथ्वी गई वहां तक उसका पीछा न छोड़ा। तब पृथ्वी पीछे लौटी और पृथुजी के सम्मुख मस्तक नवाकर बोली- हे शरणागत वत्सल! मेरा पालन करो। आप मुझ निरपराधिनी को किस कारण मारना चाहते हो? जिस पर यह सम्पूर्ण जगत स्थिर है, ऐसी मुझे मार कर अपने शरीर को और इस प्रजा को जल पर कैसे धारण करोगे। यह सुन पृथु जी बोले- हे वसुधे! तुझे मैं मार ही डालूंगा, क्योंकि यज्ञ में तू अपना भाग तो ले लेती है। लेकिन अन्न नहीं उपजाया करती। तुम मन्द बुद्धि ने मुझे कुछ न समझ ब्रह्माजी की प्रथम रची हुई औषधियों के बीज रोक लिए हैं, उनको तू उत्पन्न नहीं करती है। इसलिए क्षुधा पीड़ित प्रजा को तुझे मार कर तेरे मांस से शांत करूंगा। क्योंकि जो प्राणी आप ही अपनी बड़ाई करने वाला हो, दया न रखता हो, उसके वध करने वाले को कुछ दोष नहीं। अरी हठीली! माया से गौ-रूप धारण करने वाली तुझे तिल-तिल काटकर मैं अपने योग बल से प्रजा को जल के ही ऊपर

धारण करूंगा। इस प्रकार क्रोध मूर्ति धारण किये पृथु को देख हाथ जोड़ पृथ्वी बोली- आपको मैं बारम्बार प्रणाम करती हूं। जिस विधाता ने जीवों के रहने के निमित्त मुझको रचा है; वही स्वाधीन परमेश्वर आज मेरे मारने को उद्यत हुए हैं, तब मैं किसकी शरण में जाऊं। हे विभो! आपने अपनी आत्मा से रचे जगत को भली भांति से स्थापित करने हेतु वाराह अवतार धारण कर हिरण्याक्ष को मार रसातल से मेरा उद्धार किया था और मुझ पर हुई प्रजाओं की रक्षा हेतु पृथु रूप धार करके प्रगट हुए हो, फिर मुझे क्यों मारना चाहते हो, बड़े अचम्भे की बात है।

कामधेनु रूपिणी पृथ्वी दोहन

पृथ्वी क्रोधित पृथु की स्तुति कर फिर बोली- हे प्रभो! आप क्रोध शान्त करो, और मेरी विनय सुनो, जो बुद्धिमान होते हैं वे सब वस्तुओं से सार ग्रहण कर लेते हैं। हे राजन्! पूर्व ब्रह्माजी ने जो औषधियां रची थीं उनको वेन आदि कुकर्मी राजाओं को भोगते देखा तो मैंने यज्ञ के अर्थ उन औषधियों को निगल लिया सो निश्चय है कि अब सब औषधियां मेरे शरीर में पच गई हैं सो महात्माओं के उपाय से और अपने योग बल से आप ले लेने योग्य हो। हे वीर! प्रथम तो मेरे अनुसार एक बछड़े की कल्पना करो, फिर वैसा ही योग्य पात्र, जिससे मैं आपकी दुग्धमय कामनाओं को पूर्ण करूं।

हे भूत भावन! आप सबके अर्थ मन वांछितफल देने वाले अन्न की इच्छा करते हो तो एक दुहने वाले को भी नियत करो। मुझको बराबर कर दो जिससे वर्षा का जल ढलकर नहीं जा सके। इस प्रकार पृथ्वी का वचन सुन पृथु ने स्वायम्भुवमनु को बछड़ा बनाया और अपने दोनों हाथों रूप दोहिनी में औषधियां रूप दूध दुहा। ऋषि मुनि आदिक पन्द्रह जनों ने बृहस्पति को बछड़ा बनाकर इन्द्रिय रूप पात्र में वेदमय दुग्ध पृथ्वी से दुहने लगे। सब देवताओं ने सुवर्ण पात्र में कीर्ति ओज बल रूप दुग्ध दोहन किया। गन्धर्व अप्सराओं ने विश्वासु को वत्स बना कमल पात्र में सुन्दरता मान-विद्या मधुरता रूप दूध दुहा। पितरों ने अर्यमा को वत्स बना मिट्टी के पात्र में पितरों के योग्य अन्न को दुहा। विद्याधरों ने कपिलजी को वत्स बनाकर आकाश में विचरने वाली विद्या रूप दूध को दुहा। असुरों ने मय को वत्स बनाकर गुप्त हो जाने के संकल्प मात्र से सिद्ध होने वाली माया रूप दुग्ध को दुहा। यक्ष, राक्षस, भूत, पिशाच सबों ने रुद्र वत्स बना कपाल पात्र रूधिर रूप आसव का दोहन किया। पशुओं ने नन्दीश्वर को बछड़ा बनाकर वन रूप दोहिनी तृणरूप दुग्ध का दोहन किया और मांसाहारी जीवों ने सिंह को वत्स बना शरीर रूप पात्र में मांस रूप दूध दुहा। पक्षियों ने गरुड़ को वत्स बना शरीर रूप पात्र वनस्पति रूप दूध दुहा। पर्वतों ने हिमालय को वत्स बना शिखर रूप पात्र में

धातुओं को दुहा। इस प्रकार सबों ने पात्र वत्स आदि बदल कर अपने मनमाने अन्न को पृथ्वी से दुहा। फिर पृथु ने प्रसन्न हो पृथ्वी को बराबर कर दिया। पृथु पृथ्वी पर उत्तमोत्तम निवास स्थानों की कल्पना करने लगे। ग्राम, दुर्ग, गौशाला, ग्वालों के निवास स्थान, सेना के रहने योग्य स्थान, किसानों को गांव, सबों को बनाया। महाराज पृथु से पहले गांव आदि की रचना कहीं नहीं थी, तदन्तर पृथु ने सौ अश्वमेघ यज्ञ करने के संकल्प से मनु दीक्षा नियम धारण किया। इन्द्र ने समझा कि उनके यज्ञ पूर्ण हो जायेंगे तो इन्द्रासन छिन जायेगा। दुखी होकर और विघ्न करने लगा। सौवांयज्ञ करके पृथु जी भगवान का पूजन करने लगे, तब इन्द्र ने अन्तर्ध्यान हो घोड़ा हरण किया। दौड़ते हुए इन्द्र को अत्रिजी ने यज्ञाश्व लिये जाते देखा। अत्रि की प्रेरणा से पृथु का पुत्र विजिताश्व इन्द्र को मारने दौड़ा। उसी समय जटा रखाये भस्म धारण किए योगी के स्वरूप इन्द्र को देख विजिताश्व ने उसके मारने को बाण नहीं छोड़ा। जब पुत्र लौट आया, तब उसको अत्रिजी ने फिर भेजा और कहा- हे तात! यही इन्द्र है तुम्हारे पिता के यज्ञ विध्वंस करने वाला यही है, यह योगी नहीं है। विजिताश्व तब फिर शीघ्र ही पीछे लौटा और क्रोध करके इन्द्र पर झपटा। तब इन्द्र घोड़े को छोड़कर अन्तर्ध्यान हो गया। राजकुमार अपना घोड़ा लेकर यज्ञशाला में आया, महर्षियों ने राजकुमार के अद्भुत

कर्म को देख उसका नाम विजिताश्व रख दिया। इन्द्र फिर वहां आया, और अन्धकार फैलाकर सांकल में बंधे हुए यज्ञाश्व को सांकल सहित खोलकर चुरा ले गया, फिर विजिताश्व इन्द्र के पीछे गया और कपाल धारण किए इन्द्र को देख बाण प्रहार नहीं किया। अत्रि मुनि ने फिर कहा, अरे पुत्र! मारता क्यों नहीं यही इन्द्र है। यह सुन राजकुमार बाण सन्धान कर इन्द्र के पीछे दौड़ा, तब इन्द्र घोड़ा त्याग वहीं अन्तर्ध्यान हो गया। तब वह वीर घोड़े को लेकर यज्ञ में आया। पराक्रमी महाराज पृथु ने इस बात को जान सुरेन्द्र पर क्रोध करके धनुष बाण हाथ में लिया तब मुनियों ने कहा- हे महाबाहो! यज्ञ में यज्ञाश्व के अतिरिक्त किसी दूसरे का वध करना उचित नहीं है। हे ऋत्विज! इन्द्र वध तुमको उचित नहीं क्योंकि इन्द्र यज्ञ भगवान का शरीर है, इन्द्र के साथ मित्रता करो नहीं तो यह अनेक माया रच यज्ञ विध्वंस करने की चेष्टा करेगा। हे राजन्! आपने जो निन्यानवें यज्ञ किये हैं ये ही बहुत हैं। इन्द्र आपका ही स्वरूप है, इसलिए क्रोध करना योग्य नहीं है। आप इस संसार में धर्म मर्यादा की रक्षा करने के अर्थ अवतरे हो। इस जगत का जिस प्रकार कल्याण हो ऐसा ही उपाय करके प्रजापतियों के मनोरथ को पूर्ण करो। इस प्रकार पृथु को ब्रह्माजी ने समझाया, तब यज्ञ परित्याग कर राजा पृथु ने इन्द्र के साथ मिलाप कर लिया। फिर पृथु यज्ञ के अन्त में जब अवभूत स्नान कर चुका, तब

उस यज्ञ में तृप्त हुए वर देने वालों ने वरदान दिए। ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर पृथु को आशीर्वाद देते हुए बोले- हे महाबहो! आपके बुलाने से हम सब यहां आए, सो आपने यथोचित सत्कार किया। इस प्रकार पृथु से पूजा सत्कार पा आशीर्वाद दे यज्ञ की प्रशंसा करते हुए देव ऋषि अपने स्थानों को चले गये।

भगवान विष्णु का पृथु को उपदेश

मैत्रेयजी ने कहा- श्री नारायणजी इन्द्र को साथ ले वहां आये और प्रसन्न हो पृथु से बोले- हे राजन! इस इन्द्र ने तुम्हारे सौवें यज्ञ में विघ्न किया इस कारण यह अपराध क्षमा कराना चाहता है। हे नरदेव! साधुजन प्राणियों से द्रोह नहीं करते हैं। हे वीर! तुम सम, उत्तम, मध्यम, अधम, सुख और दुःख में समान भाव रखो और इन्द्रियों को जीतो। प्रजा का पालन ही राजा का धर्म है। इस प्रकार उस धर्म को प्रधान मानकर उसी को करते हुए प्रजा की रक्षा करोगे तो तुम सबके प्रिय होगे और अपने घर सनकादिक सिद्धजनों के दर्शन करोगे। हे मानवेन्द्र! मुझसे वर मांगो। मैत्रेयजी बोले- भगवान ने जब इस प्रकार आज्ञा की तब पृथु ने प्रेम पूर्वक दोनों चरणों का स्पर्श कर, कर्म से लज्जित हुए इन्द्र से मिल बैर भाव का परित्याग कर दिया। अनन्तर भगवान का पृथुजी ने पूजन किया और भक्ति से भगवान के चरण कमल ग्रहण किये। पृथु ने भगवान

का दर्शन किया। पृथु बोले- हे विभो! आपसे कैसे वर मांगू? जो वर नारकी लोगों को भी मिल सकते हैं उनको मैं नहीं मांगना चाहता हूं। हे नाथ! मैं तो मोक्ष की भी इच्छा नहीं करता हूं। जहां आपके चरणारविन्द का श्रवणादिक आनन्द नहीं है। अतः आप अपनी कथा सुनने को मुझे दस हजार कान दीजिए, यह मैं मांगता हूं। हे भगवान! लक्ष्मीजी की नांई लालसा मैं भी करता हूं, सो एक ही स्वामी और एक ही प्रकार सेवा करने से लक्ष्मीजी का और मेरा द्वेष भाव होवेगा ही, परन्तु हे जगदीश! जगत माता लक्ष्मीजी के काम में यदि हमारा विरोध भी हो जायेगा तो मेरी सेवा को बहुत मानोगे। आप समदर्शी होने के कारण लक्ष्मीजी का पक्ष नहीं करोगे, हे भगवान! भजन करते हुए पुरुष को जो आप 'वर मांगो' कहते हो, इसको मैं जगतमोहिनी वाणी मानता हूं। इस प्रकार पृथु ने स्तुति की, तब भगवान ने कहा- हे राजन्! जाओ तुम हमारी भक्ति को प्राप्त होवोगे। जो प्राणी हमारी आज्ञा के अनुसार चलता है वह आनन्द को प्राप्त होता है।

यज्ञ सभा में पृथु द्वारा प्रजावर्ग के प्रति कृतज्ञता

राजा पृथु ने अनेक श्रेष्ठ कर्म करके जगत् की रक्षा की और अपने प्रताप को भू-मण्डल में फैलाया और अन्त समय मोक्ष को प्राप्त हुए। पृथु का सुयश सुन

उसको वर्णन करने वाले मैत्रेयजी का सत्कार करके विदुरजी बोले- जिस पृथु का ब्राह्मणों ने राज्याभिषेक किया था और देवताओं ने पदार्थ भेंट में दिए और जिसने विष्णु के तेज को अपनी भुजाओं में धारण कर पृथ्वी को दुहा उस पृथु की कीर्ति को ऐसा कौन है जो न सुने। मैत्रेयजी बोले- गंगा और यमुना के बीच के क्षेत्र में निवास करते हुए महाराज पृथु जी अपने किये हुए पुण्य को त्याग करने की अभिलाषा से अपने कर्मों के सुखों को भोगने लगे, परन्तु उनमें आसक्त नहीं हुए। हे विदुर! एक समय पृथु ने महायज्ञ में दीक्षा ली वहां देवता, ब्रह्मर्षि और राजर्षि लोगों का समाज हुआ। समाज में आये हुए पुरुषों का सत्कार, पूजन करता हुआ पृथु समाज में खड़ा हुआ। राजा पृथु ने कहा- हे सभासदो! मैं दण्ड धारण करने वाला, राजा प्रजा की रक्षा करने, आजीविका देने, चोर आदि अपराधियों को दंड देने, सबको धर्म मर्यादा में स्थापना करने को परमात्मा से नियत किया गया हूँ। सो मुझे इन कर्मों के करने में सब लोक प्राप्त हो गए हैं। जो राजा प्रजा को धर्म उपदेश नहीं करता है और उससे कर लेता है, वह राजा अपनी प्रजा के पाप को भोगता है। हे पितर, देवता और ऋषियो! आप भी बात का अनुमोदन करो। क्योंकि कर्म करने वाले, शिक्षा देने वाले, अनुमोदन करने वाले को, परलोक में बराबर फल मिलता है। हे महात्माजनो! परमेश्वर को नहीं

मानने वाले राजा वेन आदिक मनुष्यों में सोच करने योग्य थे। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति केवल आत्मा से ही होती है। परमेश्वर के चरण में उत्पन्न हुई रुचि तपस्वीजनों के पापों को नष्ट कर देती है। अहो! मेरी प्रजा के लोग नियम धारण करके भगवान का भक्ति से पूजन करते हैं, और मैं प्रार्थना करता हूँ कि समृद्धि न होने पर भी तप व विद्या में प्रकाशवान ब्राह्मणों का बड़ी समृद्धियों से बढ़ा हुआ राजकुल तिरस्कार न करे। ये ब्राह्मण दोष रहित, श्रद्धा, तप, मंगल मौन, संयम समाधि धारण करने वाले हैं। मैं उन ब्राह्मणों की चरणरज को अपने मुकुट पर धारण करूं यही मेरी प्रार्थना है। यह सुन पितर, देवता व ब्राह्मण धन्यवाद देकर प्रशंसा करते हुए बोले, इस संसार में पुत्र के सुकर्म से पिता का परलोक सुधर जाता है। क्योंकि ब्राह्मणों के शाप से मरा हुआ वेन अपने पुत्र पृथु के प्रभाव से तर गया। हे पवित्र कीर्ति वाले! आपके स्वामी होने से हम जानते हैं कि भगवान हमारे स्वामी हैं। हे नाथ! आप हमको शिक्षा देते हो इसमें आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि दयावान महात्मा प्रजा पर स्नेह रखते हैं। हे प्रभो! प्रारब्ध कर्म से भटकते हुए हम लोगों को आज आपने अज्ञान अन्धकार से पार कर दिया।

पृथु को महर्षि सनत्कुमार का ज्ञानोपदेश

मैत्रेयजी कहते हैं- हे विदुर! इस प्रकार समाज में सब पृथु की प्रशंसा कर ही रहे थे कि वहां सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार आ उपस्थित हुए। उनका दर्शन होते ही पृथु सभासद और अनुचरों सहित उठ खड़ा हुआ, मुनियों का पूजन किया। सनकादिक मुनियों से पृथु ने हाथ जोड़ कर कहा हे कल्याण मूर्ति! आपके दर्शन योगीजन को भी दुर्लभ हैं। फिर मुझसे ऐसा कौन सा शुभ कर्म बन पड़ा जिससे आपके दर्शन हुए? आप बालक होते हुए भी बड़ों के ब्रतों को धारण करते हैं। हे स्वामियो! आप तपस्वीजनों के सुहृद हो, इसलिए मैं पूछता हूं कि इस संसार में बिना परिश्रम किस साधन से कल्याण होता है? महाराज पृथु के सारगर्भित वचनों को सुनकर सनत्कुमारों ने कहा-महाराज! सम्पूर्ण प्राणियों के हित के लिए आपने बहुत अच्छा प्रश्न किया। हे राजन्! आपकी भगवान के गुणानुवाद में जो प्रीति है वह दुर्लभ है। वह प्रीति अन्तःकरण से विषय वासना को दूर कर देती है। सम्यक शास्त्रों में मनुष्य के कल्याण निमित्त यही साधन निश्चय किया गया है कि आत्मा के भिन्न पदार्थ में वैराग्य होना और व्यापक आत्मा जो निर्गुण है उसमें प्रीति होना सार है। उस प्रीति का साधन श्रद्धा, भगवद्धर्म का आचरण, आत्मा-ज्ञानी होना, आत्मयोग

में निष्ठा रखना, योगेश्वर की उपासना और भगवान की कथा सुनना है। इन साधनों से भगवद्च्चरणों में प्रीति हो जाती है। ब्रह्म में जब अत्यन्त प्रीति हो जाती है। तब ज्ञान और वैराग्य से हृदय में ज्ञान की अग्नि बढ़ती है और विज्ञानी होने से पुरुष आचारवान, वासना रहित हो स्थूल देह को भस्म कर देता है। फिर अहंकार उत्पन्न नहीं होता। विचार शक्ति के नाश से स्मृति नष्ट होती है। स्मृति के नाश से ज्ञान नाश होता है, ज्ञान के नाश को ही आत्मा का नाश होना कहा है। इससे बढ़कर मनुष्य के किसी स्वार्थ का नाश नहीं। धन और इन्द्रियों का ध्यान करना और विषय वासना का विचार रखना यही पुरुष के पुरुषार्थों का नाश करने वाला है। जो मनुष्य इस अंधकार रूप नरक से पार होने की इच्छा करे, वह पुरुष कभी किसी का संग नहीं करे। नरेन्द्र! स्थावर जंगम जगत को प्रकाश करने वाले महात्मा जिनके चरणारविंद की भक्ति से अहंकार को तोड़ देते हैं। इस प्रकार इन्द्रियों को रोकने वाले व मन से विषय वासना को त्यागने वाले योगी भी उस ग्रन्थि को तोड़ नहीं सकते हैं। उन भगवान वासुदेव की शरण में प्राप्त होओ। महा गम्भीर संसार सागर को हरिनाम रूपी नाव बिना जो पार उतरने की इच्छा करते हैं उनको बड़ा कष्ट होता है। अतः भगवान की चरणों की नौका से संसार-सागर से पार हो जाओ।

सनत्कुमारों से आत्मज्ञान प्राप्ति का साधन सुन पृथु

बोले- हे दीनदयालु! आप धर्मात्मा हो, इसलिये आपने पूर्ण आत्म-ज्ञान सुनाया। अब आपको गुरु दक्षिणा क्या दूँ? हे ब्रह्मन्! मेरे प्राण स्त्री, पुत्र, घर, राज्य, बल, पृथ्वी, कोष सब मैंने साधुओं को समर्पण कर दिया है। वेदशास्त्र को जानने वाला ब्राह्मण ही सेनापति और राज्य व दण्ड देने में अधिपति होने योग्य है। जो कुछ जगत में वैभव है सब ब्राह्मणों का ही है, हम आपको क्या दें। केवल नियम अथवा जल पात्र देने के अतिरिक्त मैं क्या दे सकता हूं। इसलिए महादयालु आप अपने किए हुये उपकार ही से मुझ पर प्रसन्न होवो। इस प्रकार पृथु द्वारा अभिनन्दित सनत्कुमार राजा की प्रशंसा कर ब्रह्मलोक को पधारे। महाराज पृथु एकाग्रता से अध्यात्म विद्या में स्थित हो अपनी आत्मा को कृतार्थ मानने लगा। पृथु अखण्ड राज्य और ऐश्वर्य से युक्त हो, घर रहने पर भी इन्द्रियों में आसक्त न हुआ। इस प्रकार आध्यात्म कर्मों को करते हुए पृथु ने अपनी पत्नी अर्चिषि से विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्षक्ष, द्रविण, बृक नाम पांच पुत्र उत्पन्न किये। राजा पृथु जी समयानुसार जगत की रक्षा अर्थ सुन्दर गुणों से प्रजा को प्रसन्न रखते थे। पृथु तेज में अग्नि के समान, महेन्द्र के समान दुर्जय, पृथ्वी की नांई क्षमावान, स्वर्ग के समान मनुष्य की कामना पूर्ण करने वाले, मेघ के समान कामनाओं को वर्षाने वाले, समुद्र के समान अगाध, सुमेरु पर्वत के समान धैर्यधारी, धर्मराज के

समान शिक्षा देने वाले, कुवेर के समान धनवान, वरुण के समान गुप्त पदार्थ रखने वाले, बल विक्रम में पवन के समान, शत्रु को महादेव के समान, रूप में कामदेव, हिम्मत में सिंह, मनुष्य स्नेह में मनु के समान, प्रभुता में ब्रह्मा के समान, ज्ञान में बृहस्पति के सदृश, जितेन्द्रियत्व में विष्णु के तुल्य थे और गौ ब्राह्मण, गुरु तथा भगवद्भक्तों की भक्ति करने में तथा पराये उपकार करने में पृथु अपने समान आप ही हुए। श्रीरामचन्द्रजी के समान पृथु ने कीर्ति प्राप्त की।

पृथु का बैकुण्ठ गमन

मैत्रेयजी कहते हैं- आत्मज्ञानी, सम्पूर्ण जीवों की जीविका दाता, सत्पुरुषों का धर्म धारण करने वाले और जितेन्द्रिय राजा पृथु ने परमेश्वर की आज्ञा से प्रजा पालनादिक सब कार्य पूर्ण किये। अपने को वृद्ध जान पृथुजी ने पृथ्वी को पुत्रों को सौंप अपनी स्त्री को साथ ले तप करने को तपोवन गमन किया। वहां भी दृढ़ता से सम्पूर्ण नियमों को धारण कर वानप्रस्थ में चित्त लगा, तप करने में प्रवृत्त हुए। प्रथम कन्द, मूल, फल का आहार किया। फिर सूखे पत्तों का, तदनन्तर जल पान किया, फिर पवन का भक्षण करने लगे। वह वीर पृथु ग्रीष्म काल में पंचाग्नि तापते, वर्षाकाल में वर्षा सहते, शीतकाल में गले तक जल में खड़े हो तप करते और पृथ्वी पर सोते थे। इस प्रकार पृथु पवन को

जीतकर भगवान की आराधना के अर्थ तप करने लगे। सनत्कुमारों ने जो अध्यात्म ज्ञान वर्णन किया था उसी के अनुसार पृथु भगवान का भजन करने लगे। पृथु जी की ब्रह्मा में निष्ठा वाली अनन्य भक्ति हो गई, तब राजा ने शुद्ध सत्य होने के कारण ज्ञान को प्राप्त कर लिया। देह अभिमान कट जाने से पृथु अपने आत्म स्वरूप को प्राप्त हुआ। इस प्रकार उस वीरोत्तम पृथु राजा ने मन को आत्मा से लगाकर ब्रह्म स्वरूप हो पांव की ऐड़ियों से गुदा को दबा, अपनी वायु को ऊपर को चढ़ाये नाभि की कोठी में स्थापित कर हृदय में, फिर छाती में, कण्ठ में प्राप्त कर, उसी वायु को योग मार्ग से सिर में चढ़ाया, फिर प्राणों को भी मस्तक में चढ़ाकर अपने शरीर में रहने वाली वायु को वायु में, पृथ्वी रूप शरीर को पृथ्वी में मिला, जो तेज अंश था, उसे तेज में लय कर दिया। इन्द्रियों को आकाश में और रस को जल में लीन कर, अपने-अपने स्थान के अनुसार यथा योग्य देह का लय कर पांचों तत्वों में मिलाया। फिर आकाश को अहंकार में, अहंकार को महातत्व में लीन किया। फिर माया का परित्याग कर, कैवल्य मोक्ष को प्राप्त हुआ। पृथुराज की महारानी अपने पति के समान धर्मानुष्ठान करती हुई, ऋषियों की सी वृत्ति करके कन्द-मूल फल आदि खा स्वामी की सुश्रूषा सेवा के परिश्रम से दुबली हो गई थी। पृथुजी के शरीर में से जब चैतन्यता जाती रही तब पति का देह मृतक देख

उसने कुछ विलाप किया। फिर धैर्य धार पर्वत के शिखर पर ईंधन चुन, चिता बना कर उस पर स्वामी के शरीर को रक्खा। पीछे स्नान कर उस समय के अनुसार क्रिया कर स्वामी को जलांजलि दे, देवताओं को प्रणाम कर अग्नि की तीन परिक्रमा दे, पति के चरणों का ध्यान कर; अग्नि में प्रवेश किया।

पृथु का वंश वर्णन

राजा पृथु के स्वर्गवास के उपरान्त पृथु का पुत्र विजिताश्व महाराज हुआ। उसने अपने छोटे भाइयों को बड़े प्रेम से दिशाओं का राज्य दिया। हर्यक्ष को पूर्व दिशा का, धूम्र केश को दक्षिण दिशा का, बृक को पश्चिम दिशा का और द्रविण को उत्तर दिशा का राज्य दिया। विजिताश्व जब अश्वमेघ का घोड़ा इन्द्र से छीनने गया था, उस समय इन्द्र से अन्तर्ध्यान होने की विद्या सीखी, इस कारण विजिताश्व का दूसरा नाम अन्तर्ध्यान कहा जाता था। इसके शिखण्डनी स्त्री से तीन पुत्र उत्पन्न हुए। पावक, पवमान और शुचि। ये तीनों पहले अग्नि रूप थे, वशिष्ठजी के शाप से यहां जन्मे, फिर अपनी गति को प्राप्त हुए। अन्तर्ध्यान नाम वाले विजिताश्व के नभस्वती रानी से हविर्धान पुत्र हुआ। कर लेना, दण्ड देना , इत्यादि सब राज वृत्तियों को दूसरों को दुःख देने वाली मान विजिताश्व ने इनका परित्याग कर दिया। यज्ञ में वह आत्मज्ञानी परमात्मा

का पूजन करता हुआ समाधि लगाकर परमेश्वर के लोक को प्राप्त हुआ। हविर्धान के हविर्धानी पत्नी में वर्हिषद, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य, जितब्रत ये छः पुत्र हुए। हविर्धान का पुत्र प्रजापति बर्हिषद विलक्षण था। इस राजा ने पृथ्वी में किसी स्थान को यज्ञ किये बिना नहीं छोड़ा। इसी से राजा का प्राचीन बर्हि नाम हुआ। इस प्राचीन बर्हि ने ब्रह्मा की आज्ञा से सप्रद कन्या शतद्रुति से विवाह किया। आभूषण से सजी हुई, विवाह में अग्नि की प्रदक्षिणा करती हुई शतद्रुति के रूप को देख, अग्नि मोहित हो गया। इसके दस पुत्र हुए, वे सब समान नाम व आचरण वाले, धर्म परायण, प्रचेता नाम से प्रसिद्ध हुए। उन सबको प्राचीन बर्हि ने सृष्टि रचने की आज्ञा दी तब प्रचेता की आज्ञा से तप करने को समुद्र के समीप गये। वहाँ जल में दस हजार वर्ष तप करके भगवान का पूजन किया। तप करने को जाते समय मार्ग में श्रीशिवजी ने प्रसन्नता पूर्वक जिस मंत्र का उपदेश किया था, उसी उपदेश के अनुसार भगवान का ध्यान करते हुए ये दशों प्रचेता पूजन करने लगे। यह सुन विदुर जी ने पूछा ब्रह्मन्! प्रचेताओं का महादेवजी से मार्ग में समागम हुआ और शिवजी ने उनको जो उपदेश किया, वह आप हमसे वर्णन कीजिये। मैत्रेयजी बोले- हे प्रचेता जब समुद्र तट पर पहुंचे, वहां उन्होंने एक जल से भरा हुआ सरोवर देखा। वह सरोवर नील कमल, रक्त कमल, उत्पल, अम्भोज,

अल्हार, इन्दीवर की खान था और वहां हंस, सारस, चकवा, चकवी, जलमुर्ग आदि पक्षी शब्द कर रहे थे। वहां मृदंग और प्रणव आदि बाजों का स्वर भेद सहित गान मन को हरने वाला था। उसको सुनकर प्रचेता विस्मय को प्राप्त हो गये। उसी समय सरोवर में से अपने अनुचरों सहित श्री महादेव जी निकले। महादेवजी को प्रसन्न मुख देख राजकुमारों ने प्रणाम किया, तब शिवजी प्रचेताओं से बोले हे राजकुमारो! तुम लोग प्राचीन बर्हि के पुत्र भगवान की आराधना करना चाहते हो, सो मैं जानता हूं, तुम्हारा कल्याण हो। भगबान वासुदेव की शरण में जो जाता है, वह मेरा परम प्रिय है। इसलिए मोक्षदायक एवं सर्व विघ्न-नाशक स्तोत्र को मैं वर्णन करता हूं उसको तुम सुनो, हे भगवान! आत्म-वेत्ताओं की स्वस्ति के अर्थ तुम्हारा उत्कर्ष है। आपके चरित्र आत्म ज्ञानियों को स्वरूपानन्द देने वाले हैं, हे ईश! आप कर्मों के फल देने वाले, सर्वज्ञ और मंत्ररूप एवं धर्मात्मा, पुराण पुरुष, सांख्य योग के ईश्वर, बैकुण्ठ के दाता हो। हे ब्रह्म! आप को मेरा प्रणाम है। इस प्रकार के श्रीमद्भागवत में वर्णित श्लोक संख्या ३० से ७० तक रुद्रगीत नामक स्तोत्र को पूर्ण करते हुए शिवजी बोले- हे राज पुत्रो! विशुद्ध चित्त हो इस रुद्र-गीत स्तोत्र का पाठ करो, तुम्हारा कल्याण होवेगा। यह स्तोत्र सुनने का सौभाग्य मुझे ब्रह्मा जी से प्राप्त हुआ इस स्तोत्र के प्रभाव से

मैंने तमोगुण को नष्ट कर अनेक प्रकार की प्रजा रची है।

पुरंजन की कथा

महादेवजी उपदेश देकर उन प्रचेताओं से पूजित हो अन्तर्ध्यान हो गये। श्री शिवजी के कहे हुए रुद्र-गीत नामक स्तोत्र को सब प्रचेताओं ने जपते हुए जल में दस हजार वर्ष पर्यन्त तप किया। हे विदुर! महाराज प्राचीन बर्हि का मन कर्मों में आसक्त था, इसलिए श्रीनारदजी ने महाराज को ज्ञान उपदेश किया। हे राजन्! आप कौन से कर्म से किस फल की इच्छा करते हो? सुन राजा ने कहा- हे महाभाग! मेरी बुद्धि कर्मों में ही रही है, सो आप ज्ञान उपदेश दीजिये, जिससे मैं कर्मों के बन्धन से छूट जाऊं। यह सुन नारदजी बोले- हे प्रजापते! तुमने यज्ञ में हजारों पशुओं का वध किया है, ये पशु पीड़ा को स्मरण करते हुए तुम्हारी मरने की बाट देख रहे हैं, जब तुम मरोगे तो ये तुमको श्रृङ्गों से मारेंगे। इस विषय की पुष्टि के लिए मैं राजा पुरञ्जन का हाल कहता हूं। हे राजन! एक पुरंजन नाम का राजा था, उसका अविज्ञाता नामक सखा था। पुरंजन अपनी राजधानी के लिये योग्य नगर के ढूँढ़ने को अब पृथ्वी पर फिरा। राजा पुरंज़न एक समय विचरता हिमवान पर्वत के दक्षिण की ओर चला गया। यहां एक नगर नव द्वारों वाला देखा, उस नगर के बाहर एक उपवन था। इस उपवन में एक

स्त्री ग्यारह सेवकों सहित विचरती हुई दीख पड़ी, एक-एक सेवक के साथ सैकड़ों स्त्रियां थीं। पांच सिर वाला साँप उस स्त्री की रक्षा करता था और वह षोडष वर्ष की अवस्था वाली सुन्दरी उस उपवन में योग्य पति की खोज में विचर रही थी। उसकी लज्जा भरी मुस्कान से, चंचल नयनों वाली की घूमती हुई भृकुटी रूप धनुष से, नेत्रों की बनी रूप पंख वाले कटाक्ष रूप वाणी से, राजा पुरंजन बिंध गया, मोहित होके राजा उससे पूछने लगा- हे कमल नयनी! तुम कौन हो? इस उपवन में क्या करना चाहती हो? सो मुझसे कहो। ये ग्यारह भट तुम्हारे कौन हैं, इनमें ग्यारहवां बड़ा बली जान पड़ता है, इसका क्या नाम है? यह सैकड़ों स्त्रियां कौन हैं और यह पांच सिर वाला सर्प कौन है? तुम मुनि के युक्त दीख पड़ती हो, इस वन में किसकी खोज में विचर रही हो? जो प्रीतम होगा, उसके मनोरथ तुम्हारे चरणारविन्द के प्रभाव से परिपूर्ण हो जाते होंगे, हे वारद! तुम देवाङ्गना स्त्रियों में से नहीं हो? क्योंकि देवाङ्गना पृथ्वी का स्पर्श नहीं करती हैं, और तुम पांवों से भूमि का स्पर्श कर रही हो इसलिए तुम मुझ शूर के साथ रह इस नगर को सुशोभित करो। श्री नारदजी कहते हैं- हे वीर! इस प्रकार पुरंजन उस नारी के सम्मुख प्रार्थना कर रहा था, तब वह सुन्दरी भी राजा को देख मोहित हो गई और आदर पूर्वक उसकी प्रार्थना स्वीकार कर बोली- हे पुरुषोत्तम! मैं अपने उत्पन्न कर्त्ता को अच्छी तरह नहीं

जानती कि हम सबको किसने उत्पन्न किया है? मैंने जब से होश संभाला है उस दिन से इस पुरी को ही जानती हूं। मैं यह भी नहीं जानती कि मेरे रहने की पुरी किसने बनाई है? ये ग्यारह पुरुष मेरे मित्र हैं और यह स्त्रियां मेरी सखियां हैं। जब मैं सो जाती हूं तब यह पांच सिर वाला नाग इस नगर की रक्षा करता है। आपका आगमन बहुत अच्छा हुआ, जो सांसारिक विषय भोगों की इच्छा रखते हो, तो मैं अपने बन्धुओं और इन स्त्रियों को साथ ले, तुम्हारे स्नेह को पूरा करूंगी। हे विभो! मेरे दिये विषय भोगों को भोगते हुए सौ वर्ष तक मेरी रमणीक नगरी में वास करो। हे राजन! आप सरीखे पति को पाकर ऐसी कौन स्त्री है जो आपको न वरे। नारद जी कहते हैं- हे राजन! इस प्रकार वे दोनों परस्पर प्रेममयी बातें कर रहे थे। तदनन्तर सुन्दरी का हाथ पकड़ पुरंजन उस नगर में प्रवेश कर आनन्द करने लगा। उस नगर में सात द्वार ऊपर और दो द्वार नीचे हैं। वहां पाँच द्वार पूर्व को, एक दक्षिण को, एक उत्तर को, दो पश्चिम को थे। हे राजन! अब इनके नाम कहता हूं। पूर्व की ओर खद्योता और अविरमुखि दो (नेत्र) हैं। इनसे पुरंजन राज विभ्राजित नाम देश (रूप), मेंद्युमान नाम (चक्षु-इन्द्रिय) मित्र के साथ सैर को जाता है। नलिनी और नलिनी नाम (नाक) दो द्वार पूर्व की ओर हैं, इन द्वारों से पुरञ्जन, अबधून (घ्राण) नाम सखा के साथ सौरभ

(गन्ध) नाम देश में सैर को जाता है। उसी ओर मुख्या (मुख) नाम पांचवां द्वार है इससे पुरंजन आपण (सम्भाषण) और बहूदन (अन्न) देशों में अपने रसज्ञ (जिह्वा) नाम मित्र के साथ सैर करने को जाता है। हे नृप! दक्षिण की ओर पितृहू नाम (कर्ण) द्वार है, इससे राजा पांचालदेश (कर्म-काण्ड विषयक शास्त्र) में श्रुतधर नाम (कर्ण इन्द्रिय) मित्र के साथ हवा खोरी को जाता है तथा देवहू (वाम कर्ण) उत्तर का द्वार है जिससे राजा (निवृत्त शास्त्र) देश में उसी श्रुवधार नाम मित्र के साथ सैर को जाता है और आसुरी (शिशन) नाम पश्चिम द्वार से पुरंजन (मैथुन सुख) नाम देश में दुर्मद (उपस्थइन्द्रिय) नाम मित्र के साथ सैर को जाता है। पश्चिम की ओर निवृति (गुदा) नाम द्वार से राजा लुब्धक (वायु इन्द्रिय) नाम मित्र के साथ वैशस (मल त्याग) नाम देश में सैर को जाता है। इन नव द्वार के अतिरिक्त विर्बाक (पाँव) और पेशस्कृत द्वार से काम करता है। वह निषूचीन (मन) नाम मंत्री के साथ जब अन्तःपुर (हृदय) में आता है, तब स्त्री (बुद्धि) और पुत्रों (इन्द्रियों के परिणाम) मोह (तमोगुण का) कार्य प्रसाद (सत्व गुण का कार्य) और हर्ष (रजोगुण का कार्य) को प्राप्त होता है, इस प्रकार कामी और ठगाया हुआ पुरंजन (जीव) स्त्री (बुद्धि) की आज्ञानुसार कार्य करने लगता है। इसकी स्त्री जब मदिरा पीती हैं, तब आप भी पीकर मद में विह्वल हो जाता है। जब

खाती है तब आप भी खाता है। गाती है तो गाने लगता है, रोती है तो पुरंजन भी रोने लगता है और जब हंसती है तो हंसने लगता है, बोलती है तो बोलने लगता है। नारद जी कहते हैं कि- हे राजन! स्त्री ने उसे ठगकर अपने बस में कर लिया तो अज्ञानी पुरंजन आधीन हो क्रीड़ा मृग की भाँति स्त्री के अनुसार चलने लगा।

नारदजी कहने लगे- हे महाराज! पुरंजनी ने पुरंजन को मधुर वचन और सुन्दर कटाक्षों से मोहित करके वश में कर लिया। राजा ऐसा आसक्त हो गया कि रात्रि दिवस को भी भूल गया। हे राजेन्द्र! उत्तम शय्या पर स्त्री के हाथ का तकिया बना शयन कर राजा पुरंजन उस स्त्री ही को पुरुषार्थ रूप मानता हुआ परमात्मा को भूल गया। हे राजेन्द्र! इस प्रकार कामातुर हो स्त्री के साथ रमण करते हुए राजा बेसुध हो गया। इन दिनों में पुरंजन की स्त्री से ११०० पुत्र उत्पन्न हुए और ११० कन्यायें हुईं, वे कन्यायें माता पिता के यश को बढ़ाने वाली गुण युक्त थीं। फिर पुरंजन ने पुत्रों और पुत्रियों के विवाह कर दिये। अनन्तर एक-एक पुत्र के सौ-सौ पुत्र हुए, उससे पुरंजन का वंश बहुत बढ़ गया। घर में धन, पुत्र, पौत्रों के वशीभूत हो, मोह जाल में फंस यह राजा बन्धन में फँस गया। फिर पुरंजन ने दीक्षा लेकर यज्ञों से देवता, पितर आदि सबों का भजन किया। पुरंजन की वृद्धावस्था आ पहुंची, जो यौवनमत्त स्त्रियों को अप्रिय है। उस समय गन्धर्वों के राजा चण्डवेग के

पास तीन सौ साठ गन्धर्व निवास करते थे और उन गन्धर्वों की तीन सौ साठ स्त्रियां थीं। जिनमें आधी काली और आधी श्वेता थीं। उन्होंने पुरंजन की नगरी को घेर लिया। उन्होंने नगरी को लूटना चाहा परन्तु पांच सिर वाले सर्प ने नगरी को लूटने नहीं दिया। वह बलवान नाग सौ वर्ष तक पर्यन्त युद्ध करता रहा। जब युद्ध करने पर वह थक गया, तब उसने चिन्ता युक्त हो पुरंजन को चेतावनी दी। परन्तु पुरंजन स्त्री के वशीभूत हुआ अपने देश के छिन जाने व शत्रु के आने के भय से भी भयभीत नहीं हुआ। हे राजन्! वो गन्धर्व नगर लूटना चाहते ही थे कि काल कन्या अपने लिये वर ढूंढ़ती हुई विचर रही थी, परन्तु किसी ने उसको अङ्गीकार न किया था। पहले उससे राजा पुरु ने पिता के कहने से विवाह किया था, तब उसने राजर्षि पुरुष को राज्य दिया। एक समय फिरती हुई यह काल कन्या मार्ग में मुझे मिली। वो यद्यपि मुझे जानती थी तथापि काम देव से मोहित हो मेरे समीप आई और बोली- नारद! तू मेरे साथ विवाह कर ले। मेरे मना करने पर उसने मुझे शाप दिया। हे मुने! तुम सर्वदा विचरते ही रहोगे। तब मैंने उपदेश किया कि तुम यवन पति भय को जाकर वरो। यह सुन वह राजा भय के पास गई और बोली- हे वीर! मैं तुमको अपना पति बनाना चाहती हूं। हे मंगल स्वरूप, तुम मुझे अंगीकार करो। काल-कन्या का वचन सुनकर राजा कहने लगा- हे

कन्ये! अपनी ज्ञान दृष्टि से मैंने तेरे लिये पति नियत कर दिया है। तू श्रेष्ठ पुरुषों के अयोग्य है, तू गुप्त रीति से सब संसार को भोग। किसी को न जान पड़े कि यह कहां से आ गई? अब तू हमारी सेना साथ लेकर चली जा। यह कालज्वर मेरा भाई है और तुम मेरी बहिन हो जगत में विचरो। मैं भी अपनी सेना साथ लिये तुम दोनों के पीछे गुप्त रीति से इस लोक में विचरता रहूंगा। नारद जी कहने लगे- तब भय की आज्ञा को सुन उसकी सेना के योद्धा और प्रज्वर काल कन्या के साथ पृथ्वी पर विचरने लगे। उन सबों ने एक दिन पुरंजन की नगरी को घेर लिया। काल-कन्या पुरंजन के पुर को बल से भोगने लगी। कन्या ने भीतर जाते ही फाटकों को खोल दिया, द्वारों में होकर यवन सैनिक पुरी में प्रवेश करके प्रजा को पीड़ा देने लगे। इस अपनी नगरी को क्लेशित देख पुरंजन व्याकुल हो तापों से पीड़ित होने लगा। काल कन्या के संसर्ग से पुरंजन कान्तिहीन, बुद्धि रहित हो गया। जब काल कन्या ने पुरवासियों का मर्दन किया, गन्धर्व तथा यवनों ने पुरी में उपद्रव मचाया, तब दुखित हो पुरंजन नगरी छोड़ने लगा। इतने में प्रज्वर आ उपस्थित हुआ, उसने सब नगरी जला दी। पुर के लोग और कुटम्बियों व स्त्री पुत्रों सहित पुरंजन विलाप करने लगा। काल कन्या से घेरी हुई नगरी के सब द्वार यवनों ने रोक लिये और प्रज्वर ने नगरी में आग लगा दी, तब वह नाग भी जलने लगा और

निकलने की इच्छा करने लगा। पुरंजन के अंग शिथिल हो गये, तब वह रोने लगा। कुमति से बंधा हुआ पुरंजन का जब स्त्री से वियोग का समय आया तब वह विचारने लगा, जब मैं इस लोक को त्याग कर चला जाऊंगा तो यह मेरी स्त्री छोटे-छोटे बालकों का किस प्रकार निर्वाह करेगी? इतने में पुरंजन को यवनराज की आज्ञा से बांधकर यवन लोग अपने घर की ओर ले चले, तब शोकाकुल हो हा-हाकार करते हुए कुटुम्बी उसके पीछे दौड़े। जब यवनों ने नाग को तंग कर दिया तब वह भी नगरी त्याग कर चला गया। तब उसके निकलते ही वह नगरी नष्ट होकर पंच तत्वमय हो गई। जिस समय बलवान यवनराज इसको पकड़ कर ले जाने लगा तो भी उस अज्ञानी को अपना पूर्व मित्र स्मरण नहीं आया। उस पुरंजन ने जिन पशुओं को मारा था वे सब क्रोधित हो उसके शरीर को कुल्हाड़ी से काटने लगे। पत्नी के प्रसंग से दूषित राजा अनेक वर्षों तक नरक भोगकर मन में उसी स्त्री का चिंतन रखने से दूसरे जन्म में स्त्री हुआ। विदर्भराजसिंह के घर में जाकर इसने कन्या का जन्म पाया। इस विदर्भ कन्या केस्वयंवर में दक्षिण देश में प्रसिद्ध पाण्ड्य राजा आकर सब राजाओं को युद्ध में जीतकर कन्या को विवाह कर ले गया। अनन्तर पाण्ड्य राजा ने उस विदर्भी नामी स्त्री से मनोहर कन्या उत्पन्न की और फिर सात पुत्र हुए। इन सात पुत्रों में से एक-एक के अनेकानेक सुत हुये।

पाण्ड्य राजा की कन्या श्यामा नाम की थी उसका विवाह अगस्त्य मुनि के साथ हुआ। उससे दृढ़च्युत पुत्र हुआ। उसके ईध्मवाह नाम पुत्र हुआ, फिर वह पाण्ड्य राजा पृथ्वी को अपने बेटों को बाँट कर भगवान की अराधना करने की इच्छा से कुचालन पर्वत पर जाने लगा, तब वह वेदर्भी घर, सुत और अपने पति के साथ चलने लगी। वहाँ चन्द्रवसा, ताम्रपणी, वटोदका नाम की नदियाँ बह रह थीं, उनके पवित्र जल से मज्जन कर दोनों ने अन्तःकरण के मल को धो डाला। कन्द बीज, मूल, फल, पत्र, घास तथा जल से निर्वाह करता हुआ राजा तप करने लगा। जप, तप, विद्या, यम, नियम से वासनायें भस्म हो गईं। तब राजा इन्द्रियाँ, पवन, अन्तःकरण को वश में कर आत्मा को ब्रह्म समझने लगा और सौ वर्ष तक एक स्थान पर खड़ा रहा। उसको भगवान् में प्रीति रखने से देह आदिक वस्तुओं का कुछ भी ज्ञान न रहा। हे राजन्! तब आत्मा को ब्रह्म मानता हुआ, अन्त में इस अन्तःकरण की वृत्तिरूप ज्ञान को भी त्यागकर जीवनमुक्त हो गया। विदर्भ कन्या पतिव्रता होने से सब सुख त्याग परम धर्मज्ञ पति की सेवा में प्रवृत्त हुई थी। यह पति के समीप रहने से शान्त स्वरूप हो गई। एक दिन जब पति के चरण स्पर्श किये तो चरणों में गर्मी नहीं जान पड़ी। तब वह अबला सोच करती, विलाप करने लगी- हे राजर्षि! उठो-उठो! इस प्रकार विलाप करती हुई वेदर्भी पति के चरणों में

गिरी। फिर चिता बनाकर उस पर पति के शरीर को रख आग लगा दी, और आप भी उसमें बैठने को उद्यत हुई। हे राजन्! उस समय इसका पूर्व मित्र ईश्वर ब्राह्मण का रूप धर वहां आया और धैर्य देके उस रोती हुई वेदर्भी से बोला- तू कौन है? और यह चिता में कौन है? तू मुझको जानती है, मैं तेरा सखा हूं, सृष्टि के समय मुझमें स्थिर होकर तूने सुख विहार किये थे। हे आर्य! हम और तुम मानसरोवर वासी हंस हैं, और हजारों वर्षों बिना स्थान रहे थे। फिर एक नगर मिला। नगर में पाँच उपवन और वन द्वार थे, एक उसका रक्षक, तीन कोट, छः व्यापारी और पांच हाटें। ऐसी नगरी में जा तू उस स्वामिनी का दास बन गया, और उसके साथ रमण करने लगा, हे मित्र! स्त्री के प्रसंग से तेरी दुर्दशा हुई। तू पूर्व जन्म में अपने को पुरुष मानता था और इस जन्म में स्त्री मानता है। हम दोनों हंस हैं, तू अपनी उड़ान को भूल गया है। हे मित्र! जो मैं हूं वही नारदजी कहते हैं कि उस ईश्वर ने इस हृदय में रहने वाले जीवन को जब समझाया, तब जीव स्वस्थ हो अपने स्वरूप का विचार कर 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसी स्मृति को प्राप्त हो गया। हे प्राचीनबर्हि! मैंने पुरंजन के बहाने यह आत्म-ज्ञान तुझको दिखाया है।

पुरंजन-पुर की व्याख्या

राजा प्राचीन बर्हिजी कहने लगे कि हे भगवान!

आपके वचनों को ज्ञानी ही समझ सकते हैं, मैं उन्हें कैसे समझ सकता हूं। जो आपने कहा है इसे फिर कहो। यह सुन नारदजी बोले- मैंने जिसे राजा पुरंजन कहा उसको जीव जानो, वह अपने प्रारब्ध शरीर को प्रकट करता है। जो अविज्ञात नाम मित्र कहा था, वह ईश्वर है। जब इस जीव को विषयों को भोगने की इच्छा हुई तब नव-छिद्र वाले मनुष्य शरीर को अच्छा माना, और जो पुरंजनी मिली थी, उसको बुद्धि जानो। जिस बुद्धि के आश्रित हो जीव इन्द्रियों द्वारा विषयों को भोगता है, और जो पुरंजनी के मित्र थे, उनको इन्द्रियां जानो और जो सखियां थीं उनको बुद्धि की वृत्तियाँ जानो, पांच सिर वाले सर्प को पांच प्रकार का प्राण जानो, जो सेनापति था वह मन जानना चाहिये, पांचों विषयों को पांचाल देश जानो, जिसमें नव-द्वार वाला पुर, यह शरीर है। पुरंजन की सेना वह ग्यारह इन्द्रियाँ हैं, आखेट करना, सो पांच हत्या हैं, चण्डवेग गन्धर्व था, सो वर्ष जानना। तीन सौ साठ गन्धर्व कहे सो वर्ष के दिन हैं, तीन सौ साठ काली और गौरी गन्धर्विनी, वे शुक्ल और कृष्णपक्ष की रानियां हैं। काल कन्या वृद्धावस्था है, उसको यवनों के राजा मृत्यु ने अपनी बहिन बनाया। उस मृत्यु के जो सैनिक कहे वह आधि व्याधि हैं, और जो प्रज्वर कहा वह शीतल उष्ण दो प्रकार का ज्वर है। ऐसे नाना अध्यात्मिक त्रयताप स्वयं निर्गुण होने पर भी वह जीव दुःख भोगता हुआ विषयों की तृष्णा रख

अहंकार और ममता से कर्म करता हुआ सौ वर्ष तक देह में रहा। यह जीवात्मा जब परमात्मा को नहीं जानकर माया के गुणों में फंस जाता है तब यह जीव देह अभिमान से परवश होकर सात्विक, राजस, तामस कर्म किया करता है और उन कर्मों से क्लेश देने वाले लोकों में जाता है। यह प्राणी दुःख से कभी छूट नहीं सकता। हे अनघ! कर्मों की वासना को कर्म ही मिटा दे, ऐसा नहीं हो सकता। जैसे एक स्वप्न में दूसरा स्वप्न देखने लगता है; तो पहला स्वप्न दूसरे स्वप्न को दूर नहीं कर सकता, यद्यपि स्वप्न असत्य है तथापि जब तक मन करके लिंग शरीर की स्वप्नावस्था रहती है, तब तक वह मिट नहीं सकता, इसी प्रकार यह संसार मिथ्या है, तो भी जब तक विषयों का ध्यान रहता है, तब तक वह मिट नहीं सकता है। हे राजर्षे! भगवान का अत्यन्त प्रीति से भक्ति योग किया जावे तो उससे ज्ञान और वैराग्य प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक भगवान की कथा को सुने व निरन्तर अध्ययन करा करे, ऐसे प्राणी को थोड़े ही समय में भक्तियोग प्राप्त हो जाता है। महात्माजनों के मुख से भगवान की चरित्र नदियाँ बहा करती हैं जो मनुष्य कामना से उन नदियों को कानों के द्वारा पान करते हैं उन पुरुषों को क्षुधा, तृषा, भय, शोक, मोह ये स्पर्श नहीं करते और स्वभाव से उत्पन्न हुए इन विकारों से उपद्रव युक्त हुआ, यह जीवात्मा हरि की कथा रूपी सुधा का पान नहीं करता है। हे

प्राचीनबर्हि! इसलिए तुम अज्ञान से यज्ञादिक कर्मों से कभी भी परमार्थ बुद्धि मत करो। जो लोग ऐसा कहते हैं कि वेद का अभिप्राय कर्म पर है, वे वेद के तात्पर्य को नहीं जानते। तूने पशुओं का बध कर अपने अभिमान का परिचय दिया। तू केवल कर्म को ही प्रधान जानता है और फल देने वाले परमेश्वर को नहीं जानता। तुच्छ पदार्थों का करने वाला एक मृग, मृगी के साथ में आसक्त हो रहा है, और भ्रमरों की गुंजाहट उसे लुभा रही है। उसके आगे जीवों को मारने वाले भेड़िये खड़े हैं, उनसे भय न कर, आगे बढ़ता जाता है और पीठ में व्याध का बाण लग रहा है। हे राजन्! तुम अन्वेषण करो ये उक्त लक्षण वाला मृग कहां है और कौन है? तब राजा सब तरफ देखने लगा। नारद जी ने कहा कि राजा क्या देखते हो? जो हमने मृग कहा है सो तुम हो, यह विचारो, क्योंकि तुम रस सहित स्त्रियों वाले घरों में पुष्प वाटिका के फूलों की मधुर सुगन्धी के समान अत्यन्त तुच्छ जिह्वा आदि का सुख ढूंढ़ते हो और स्त्रियों में ही मन लगाते हो और भौरों की गुंजाहट के समय स्त्री मधुर सम्भाषण में तुम्हारे कान ललचाते रहते हैं, आगे खड़े भेड़ियों के समान अपनी आयु को हरते हुए जानो, इन्हीं दिनों को भेड़ियों रूपी भय न मान तुम विहार कर रहे हो और परोक्ष रीति से तुम्हारे पीछे व्याध रूपी काल-बाण तुमको बींधता है। प्राचीनबर्हि यह सुन कहने लगा- हे भगवान! आपने जो कहा वह मैंने

अहंकार और ममता से कर्म करता हुआ सौ वर्ष तक देह में रहा। यह जीवात्मा जब परमात्मा को नहीं जानकर माया के गुणों में फंस जाता है तब यह जीव देह अभिमान से परवश होकर सात्विक, राजस, तामस कर्म किया करता है और उन कर्मों से क्लेश देने वाले लोकों में जाता है। यह प्राणी दुःख से कभी छूट नहीं सकता। हे अनघ! कर्मों की वासना को कर्म ही मिटा दे, ऐसा नहीं हो सकता। जैसे एक स्वप्न में दूसरा स्वप्न देखने लगता है; तो पहला स्वप्न दूसरे स्वप्न को दूर नहीं कर सकता, यद्यपि स्वप्न असत्य है तथापि जब तक मन करके लिंग शरीर की स्वप्नावस्था रहती है, तब तक वह मिट नहीं सकता, इसी प्रकार यह संसार मिथ्या है, तो भी जब तक विषयों का ध्यान रहता है, तब तक वह मिट नहीं सकता है। हे राजर्षे! भगवान का अत्यन्त प्रीति से भक्ति योग किया जावे तो उससे ज्ञान और वैराग्य प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक भगवान की कथा को सुने व निरन्तर अध्ययन करा करे, ऐसे प्राणी को थोड़े ही समय में भक्तियोग प्राप्त हो जाता है। महात्माजनों के मुख से भगवान की चरित्र नदियाँ बहा करती हैं जो मनुष्य कामना से उन नदियों को कानों के द्वारा पान करते हैं उन पुरुषों को क्षुधा, तृषा, भय, शोक, मोह ये स्पर्श नहीं करते और स्वभाव से उत्पन्न हुए इन विकारों से उपद्रव युक्त हुआ, यह जीवात्मा हरि की कथा रूपी सुधा का पान नहीं करता है। हे

प्राचीनबर्हि! इसलिए तुम अज्ञान से यज्ञादिक कर्मों से कभी भी परमार्थ बुद्धि मत करो। जो लोग ऐसा कहते हैं कि वेद का अभिप्राय कर्म पर है, वे वेद के तात्पर्य को नहीं जानते। तूने पशुओं का बध कर अपने अभिमान का परिचय दिया। तू केवल कर्म को ही प्रधान जानता है और फल देने वाले परमेश्वर को नहीं जानता। तुच्छ पदार्थों का करने वाला एक मृग, मृगी के साथ में आसक्त हो रहा है, और भ्रमरों की गुंजाहट उसे लुभा रही है। उसके आगे जीवों को मारने वाले भेड़िये खड़े हैं, उनसे भय न कर, आगे बढ़ता जाता है और पीठ में व्याध का बाण लग रहा है। हे राजन्! तुम अन्वेषण करो ये उक्त लक्षण वाला मृग कहां है और कौन है? तब राजा सब तरफ देखने लगा। नारद जी ने कहा कि राजा क्या देखते हो? जो हमने मृग कहा है सो तुम हो, यह विचारो, क्योंकि तुम रस सहित स्त्रियों वाले घरों में पुष्प वाटिका के फूलों की मधुर सुगन्धी के समान अत्यन्त तुच्छ जिह्वा आदि का सुख ढूंढ़ते हो और स्त्रियों में ही मन लगाते हो और भौरों की गुंजाहट के समय स्त्री मधुर सम्भाषण में तुम्हारे कान ललचाते रहते हैं, आगे खड़े भेड़ियों के समान अपनी आयु को हरते हुए जानो, इन्हीं दिनों को भेड़ियों रूपी भय न मान तुम विहार कर रहे हो और परोक्ष रीति से तुम्हारे पीछे व्याध रूपी काल-बाण तुमको बींधता है। प्राचीनबर्हि यह सुन कहने लगा- हे भगवान! आपने जो कहा वह मैंने

सुना और मनन भी किया, परन्तु इस ज्ञान को मेरे सपाध्याय नहीं जान्ते थे, नहीं तो मुझसे अवश्य कहते। हे विप्र! उन्होंने मेरे आत्मज्ञान में सन्देह कर दिया वह सब दूर हो गया। परन्तु एक सन्देह है कि यह पुरुष जिस शरीर से कर्म करता है उस शरीर को त्याग परलोक जाता है, वहां दूसरे शरीर से कर्मों के फल भोगता है। मुझे यह पूछना है कि इस देह से किये हुए कर्म दूसरे देह से किस प्रकार भोगे जाते हैं, दूसरा सन्देह यह है जैसे अग्निहोत्र कर्म किसी न किसी समय किया, फिर उस समय के अनन्तर वह कर्म अदृश्य हो जाता है। ऐसा वह कर्म अपना फल कैसे देता है। यह सुन नारदजी कहने लगे कि कतृत्व और भर्क्तृत्व यह स्थूल शरीर का कुछ नहीं है, किन्तु अन्तःकरण का है। सो वह अन्तःकरण स्थूल शरीर के साथ नष्ट नहीं होता और जन्मांतर में जो स्थूल शरीर मिलता है, उस शरीर में यह पूर्वजन्म का अन्तःकरण बना रहता है, इसी से जो करता है सो ही भोगता है। इस बात को स्वप्न दृष्टांत से स्पष्ट दर्शाते हैं। जब स्वप्न देखने में आता है, उस समय स्थूल शरीर का अभिमान जाता रहता है और दूसरे प्रकार के शरीर में अन्तःकरण अन्य अनेक विषयों को भोगता है, परन्तु जाग्रत अवस्था के देह का और स्वप्नावस्था का अन्तःकरण एक ही है, अन्तःकरण नहीं बदल जाता है। पुत्रादि मेरे हैं और यह मैं हूं, ऐसा कह जिस समय शरीर को ग्रहण करता है उसी देह द्वारा

कर्म को ग्रहण करता है, जिससे बारम्बार जन्म होता है। पूर्व जन्म में भी कर्म के समय चित्त की वृत्तियाँ उपस्थित थीं और भोगने के समय भी उपस्थित हैं, इसलिए पूर्व जन्मकृत कर्म नष्ट नहीं होते हैं। यह जीवात्मा कितने स्थूल शरीरों को धारण कर त्याग देता है। मरने वाले मनुष्यों को जब तक पूर्व देह के प्रारब्ध फलों से दूसरा स्थूल देह नहीं मिलता तब तक उनके पहले देह का अभिमान नहीं मिटता। हे राजन्! सम्पूर्ण बन्धन दूर करके जगत् को भगवत्स्वरूप देखते रहो। मैत्रेयजी विदुर जी कहते हैं, नारद जी प्राचीनबर्हि को इस प्रकार जीव और ईश्वर की गति दिखा सिद्ध-लोक को चले गये। फिर राजा मंत्रियों से बोले, जब हमारे पुत्र घर आवें तब तुम उन्हें राज्य गद्दी पर बिठला देना। फिर राजा तप करने को गंगासागर के संग कपिलदेव के आश्रम पर गये। वहाँ राजा भगवान के चरण कमल का भजन कर सायुज्य मोक्ष को प्राप्त हुआ। हे विदुर! भगवान के प्रभाव से जगत को पवित्र करने वाला, नारदजी के मुख से निकला हुआ आत्मज्ञान सम्बन्धी आख्यान का जो मनुष्य मनन करते हैं, वे इस संसार चक्र में नहीं घूमते और सब बन्धनों से मुक्त हो ब्रह्मलोक को जाते हैं।
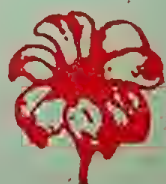
प्राचीनबर्हि के पुत्रगण को विष्णु का वरदान

विदुरजी ने प्रश्न किया हे ब्रह्मन्! वे प्रचेता रुद्रगीत स्तोत्र से भगवान को प्रसन्न कर कौनसी सिद्धि को प्राप्त हुए। मैत्रेयजी बोले- ये प्रचेता रुद्र गीत से परमेश्वर को प्रसन्न करते हुए दस हजार वर्ष तक घोर तप करते रहे। उनकी स्तुति से प्रसन्न हो भगवान ने उनको दर्शन दिया और मेघ के समान गम्भीर वाणी से यह वचन कहा, नृपनन्दनो! तुम वरदान मांगो मैं प्रसन्न हूं। जो पुरुष सांयकाल तथा प्रातःकाल इस रुद्र गीत से मेरी स्तुति करेंगे उनको मैं मनोवांछित फल प्रदान करूंगा, सब लोकों में तुम्हारी कीर्ति होवेगी। ब्रह्माजी के गुणों वाला तुम्हारा एक पुत्र होगा। यह त्रिलोकी को अपनी संतानों से पूर्णकर देवेगा। हे राजपुत्रो! प्रम्लोचा अप्सरा ने काण्डूऋषि के प्रसंग से एक कन्या जनी थी वह कन्या उसने वृक्षों में पटक दी। जब वह कन्या भूख से रोने लगी, उस समय कन्या को दुःखी देख वृक्षों के राजा चन्द्रमा ने दयालु हो उसके मुख में अपनी तर्जनी अंगुली दे दी। प्रचेताओ! तुम्हारे पिता ने तुमको प्रजा रचने की आज्ञा दी है, उस आज्ञा को पूरा करने को इस कन्या के साथ विवाह करो। कन्या दसों भाइयों की स्त्री होगी। तुम मेरे अनुग्रह से देवताओं के हजारों वर्ष पर्यन्त वैसे ही रहोगे और स्वर्ग तथा पृथ्वी के भोग

भोगोगे। फिर मुझसे भक्ति करके विषय वासना को दग्धकर नरक रूप इस संसार से वैराग्य हो जाने पर मेरे धाम को प्राप्त होगे। प्रचेता हाथ जोड़ गद्गद् वाणी से भगवान की स्तुति करने लगे- हे जगत्पते! अपने ज्ञान द्वारा संसार के दुःखों को नाश करने वाले, कमल समान चरणों वाले, आपको नमस्कार है। हे जगत्पते! मोक्ष मार्ग को दिखाने वाले आप हम पर प्रसन्न हुए, यही वरदान हम चाहते थे। दूसरा वरदान यह मांगते हैं कि हमने जो वेद का अध्ययन किया है, ब्राह्मण तथा वृद्धजनों की सेवा कर प्रसन्न किया है, किसी प्राणी से बैर भाव नहीं किया, चिरकाल समुद्र के भीतर निवास कर तप किया है, इन सबका हम फल मांगते हैं कि आप प्रसन्न होओ। इसी प्रकार प्रचेताओं ने जब भगवान की स्तुति की, तब भगवान प्रसन्न हो 'तथास्तु' बोले। दर्शन करते-करते प्रचेताओं के नेत्र तृप्त न हुए और यही चाहा कि भगवान न जावें, परन्तु भगवान वहां से अपने परमधाम को चले गये। तदनन्तर प्रचेता समुद्र से बाहर निकलकर चल दिये। उन्होंने ऊंचे वृक्षों को देख कोप किया, उनको दूर करने के अर्थ प्रचेताओं ने मुख में से प्रलय काल की अग्नि और वायु को प्रकट किया। उसकी अग्नि से वृक्षों को जलते देख ब्रह्माजी आये और उनको नीति भरे वचनों से समझाकर शांत करने लगे। शेष वृक्षों ने भय मान ब्रह्माजी के उपदेश से अपनी कन्या प्रचेताओं को प्रदान कर दीं, तब

प्रचेताओं ने ब्रह्माजी की आज्ञा से उस कन्या को अंगीकार किया। उस स्त्री से प्रचेताओं के दक्ष प्रकट हुआ। यह दक्ष पूर्व जन्म में ब्रह्माजी का पुत्र था परन्तु शिवजी का अपमान करने से उसका दूसरा जन्म क्षत्रियों में हुआ और इस दक्ष ने ईश्वर की प्रेरणा से जैसी चाहिये वैसी ही प्रजा उत्पन्न की। इसने जन्म लेते ही सब तेज वालों के तेज को हर लिया और कर्म करने में इसकी दक्षता देख सब उसे दक्ष कहने लगे। सम्पूर्ण प्रजा की रक्षा करने को ब्रह्माजी ने इसको अभिषेक कर प्रजापति नियत किया।

प्रचेता-गण का वन गमन और मुक्ति लाभ

मैत्रेयजी कहते हैं- जब प्रचेताओं को राज्य करते-करते हजारों वर्ष व्यतीत हो गये तब उनको ज्ञान उत्पन्न हुआ और भगवान के स्मरण आ जाने से वे लोग अपनी स्त्रियों को पुत्रों पर छोड़, घर त्याग वन को चले गये। पश्चिम दिशा में समुद्र तट पर जाकर तप करने लगे। मन, वचन, प्राण को जीत, दृष्टि को वश में कर आसन लगाकर, ब्रह्म में मन लगा बैठे थे कि नारदजी ने आकर दर्शन दिया। प्रचेताओं ने उठकर उनको प्रणाम किया और विधि पूर्वक पूजन किया फिर बोले- हे मुने! आज आपका पधारना बहुत अच्छा हुआ। हे प्रभो! भगवान ने और शिव ने हम को ज्ञानोपदेश दिया

था। वह ज्ञान घर में आसक्त होने के कारण हम भूल गये। इसलिये कृपाकर अध्यात्मज्ञान का उपदेश करो। नारदजी बोले- हे राजकुमारो! मनुष्यों के जन्म, कर्म, आयु, मन, वचन वे ही सफल हैं कि जिनसे भगवान की सेवा ब्रन सके। जैसे वृक्ष की जड़ सींचने से उसके शाखा, फ़ूल, फल, पत्र सब तृप्त हो जाते हैं, ऐसे ही भगवान की पूजा से सब देवताओं की पूजा हो जाती है। जैसे सूर्य किरणों से जल वर्षा होती है फिर ग्रीष्म ऋतु में सूर्य में ही जल लीन हो जाता है इसी प्रकार यह संसार भगवान से उत्पन्न होता है फिर उन्हीं में लीन हो जाता है इसलिए भगवान से पृथक कुछ भी नहीं है। परमात्मा को अपनी आत्मा समझ कर उसका भजन करो। सब प्राणियों पर दया करो, जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष करो, इन आचरणों से भगवान शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं। हे विदुर! नारदजी ने प्रचेताओं को उपदेश किया, ध्रुवजी की कथा कह भगवद् भक्ति का सच्चा आदर्श बताया। इसी प्रकार अनेक कथायें कह नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये। नारदजी के आदेशानुसार प्रचेतागण भी भगवान में भक्ति रखते हुए और उसके ध्यान को धरते हुए बैकुण्ठ धाम गये।

— श्रीमद् भागवत महापुराण चतुर्थ स्कन्द समाप्त —

★ पाँचवां स्कन्ध प्रारम्भ ★

प्रियव्रत का राज्य भोग और फिर ज्ञान निष्ठा

परीक्षित कहने लगे- हे मुनि ! प्रियव्रत भक्त थे परन्तु जगत् में लिप्त रहकर भी सिद्धि पाई इसमें मुझको बड़ा सन्देह है। श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे राजन् ! भगवान के चरण-कमल में जिनका मन लग जाता है वह भगवान की कथा को ही परम पद समझते हैं। हे राजन! स्वायम्भुवमनु का पुत्र प्रियव्रत परम वैष्णव अद्वितीय भक्त था। नारदजी की अराधना कर उसने आत्म तत्व को जान लिया था, तब स्वायम्भुवमनु ने उसको राजनीति प्रधान गुणों का आश्रय जान, भूमि पालन करने में नियुक्त करना चाहा। यद्यपि पिता की आज्ञा उल्लंघन करना अनुचित था तथापि राज्य अधिकार के प्रपंच से अपने तिरस्कार को सोच राजपुत्र ने राज्य-भार ग्रहण नहीं किया और गृह त्याग कर चला गया। तदनन्तर ब्रह्माजी वेद और मरीचि आदि को साथ ले प्रियव्रत को शिक्षा देने को उतरे। अपने पिता ब्रह्माजी को देख प्रियव्रत भी हाथ जोड़ ब्रह्माजी की स्तुति करने लगे। हे परीक्षित ! पूजा को अङ्गीकार कर ब्रह्माजी प्रियव्रत से बोले- हम, महादेव, तथा नारदजी सब जिस परमेश्वर की आज्ञा पालन करते हैं, उसकी आज्ञा पालन से तुमको विमुख नहीं होना चाहिये।

हे वत्स! जिस परमेश्वर की वाणी रूप डोरी में बंधे हुए हम मनुष्यों की इच्छा से उनके लिए कर्म करते हैं वैसे ही परमेश्वर की इच्छा से उसी की आज्ञानुसार कर्म करते हैं। हे प्रियव्रत ! परमेश्वर हमारा प्रभु है, वह हमारे गुण, कर्म के अनुसार जो योनि देता है हम उसको अंगीकार कर अपने सुख दुःख को भोगा करते हैं। तुम भगवान के आश्रित हो, परमेश्वर के दिये हुए भोगों को भोगो और आत्म स्वरूप परमात्मा का भजन करो। हे राजन् ! ब्रह्माजी के उपदेश से सन्तुष्ट हो प्रियव्रत ने मस्तक नवाया और 'जो आज्ञा' कह कर ब्रह्माजी का गौरव रक्खा। प्रियव्रत के आचरण से ब्रह्माजी प्रसन्न हुए और मनु की पूजा से सम्मानित हो नारद के साथ सत्य लोक को चले गये। स्वायम्भुवमनु ने नारद की सम्प्रति से प्रियव्रत को राज्य भार सौंप संसार को त्याग शान्ति प्राप्त की। प्रियव्रत ने विश्वकर्मा प्रजापति की बर्हिष्मती कन्या से विवाह किया। उसने दस पुत्र उत्पन्न किए और कन्या ऊर्जस्वता नाम वाली उत्पन्न की। १. आग्निध्र , २. इष्मजिहल, ३. यज्ञबाहु, ४. महावीर, ५. हिरण्यरेता, ६. धृतपृष्ठ, ७. सवन, ८. मेघतिथि, ९. बीतिहोत्र, १०. कवि। यह दस पुत्र अग्नि के अवतार थे। इनमें से कवि, महावीर, सवन से तीन नैष्ठिक ब्रह्मचारी हुए। उन्होंने बाल्यावसथा से ही आत्म विद्या में परिश्रम कर परमहंस आश्रम को धारण किया। वे राजपुत्र परमहंसाश्रम में ही शान्त स्वभाव हो

भगवान का स्मरण करने से अपने अन्त:करण में विष्णु भगवान होने से भगवद्भक्ति को प्राप्त हुए। प्रियव्रत की दूसरी स्त्री से उत्तम, तामस, स्वेत तीन पुत्र हुए थे। तीनों मन्वन्तरों के अधिकारी हुए। आत्मज्ञानी प्रियव्रत ने ११ करोड़ वर्ष तक राज्य कर प्रजा की रक्षा की। सूर्यनारायण पृथ्वी तल को प्रकाशित करते समय आधे भाग को अन्धकार से ढकते हैं, एक ही साथ सबको प्रकाशित नहीं करते हैं, यह देख राजा प्रियव्रत ने प्रतिज्ञा की कि हम अपने प्रभाव से रात्रि को भी दिन करेंगे। यह विचार कर अपने ज्योतिमय रथ पर आरूढ़ हो सूर्य की सात परिक्रमा की, प्रियव्रत के लिए यह आश्चर्य की बात नहीं थी क्योंकि भक्ति से प्रियव्रत अलौकिक हो गया था। प्रियव्रत के रथ के पहियों से जो सात गड्ढे पड़ गये, वही सात समुद्र कहलाये और उन्हीं से जम्बू, प्लेक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रोंच, शाक, पुष्कर नाम सात द्वीप हुए। क्षीरोद, इक्षुरसीद, सरोद घृतोद, क्षीरोद, दधिमण्डोद, शुद्धोद से सात समुद्र सातों द्वीपों की खाई के समान हैं। इनमें प्रियव्रत ने अपने पुत्रों को एक-एक द्वीप का राजा बना दिया। राजा ने ऊर्जस्वता नाम अपनी कन्या शुक्राचार्य को विवाह दी जिससे देवयानी हुई। विष्णु भगवान की कृपा से जिन्होंने इन्द्रियाँ जीत लीं ऐसे प्रियव्रत का ऐसा पुरुषार्थ होना कुछ आश्चर्य नहीं। नारद जी की सेवा करने के समय राज्य का भार जो आ पड़ा, इससे अपनी आत्मा को

अकृतार्थ सा मान प्रियव्रत वैराग्य को प्राप्त हो कहने लगा- अहो मैं इन्द्रियों के वश विषय रूप अन्धकूप में गिर पड़ा, यह अच्छा नहीं हुआ। हे राजन् इस प्रकार अपने को धिक्करराते हुए प्रियव्रत पुत्रों के मध्य पृथ्वी का विभाग कर, स्त्री को मृतक शरीर के समान त्याग, नारदजी के उपदेश किये मार्ग पर चलने लगा।

आग्नीध्र का चरित्र वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- जब राजा प्रियव्रत वन को चला गया तब उनका आग्नीध्र नाम पुत्र धर्म दृष्टि रख जम्बूद्वीप में रहने अपनी वाली प्रजा का सुत के समान पालन करने लगा। वह एक समय पुत्र द्वारा पितृलोक प्राप्ति की कामना करके मंदराचल पर्वत की गुफा में तपस्वी हो ब्रह्माजी की अराधना करने लगा। तब ब्रह्माजी ने पूर्वचित अप्सरा को राजा के पास भेजा। वह आग्नीध्र के निकट बन में घूमने लगी, उसकी पायलों की झनकार से आग्नीध्र का ध्यान टूट गया। ध्यान भंग होते ही आग्नीध्र ने नव यौवना अप्सरा को सामने देखा। कामातुर हो आग्नीध्र नारी से बोले- हे सुमुखी ! तुम कौन हो, तुमने यह रूप किससे पाया है। मुझे जान पड़ता है कि ब्रह्मा ने तुमको मेरी स्त्री होने के लिए भेजा है। तब अप्सरा भी राजा पर मोहित हो गई और दोनों दस करोड़ वर्ष पर्यन्त सुख भोगते रहे। कुछ समय बाद उस अप्सरा के गर्भ से राजा आग्नीध्र के नव

पुत्र हुए। इस प्रकार वह अप्सरा एक वर्ष में एक पुत्र को उत्पन्न कर घर को छोड़ ब्रह्माजी के पास चली गई। पिता आग्नीध्र ने नव खण्ड कल्पना कर जम्बूद्वीप को विभाग कर बराबर-बराबर बाँट दिया, तब वे सब पुत्र राज्य का भोग करने लगे। परन्तु आग्नीध्र विषय भोग से तृप्त नहीं हुआ, अतएव उसी अप्सरा को विषय सुख साधन के अर्थ बड़ा मानता हुआ वेदोक्त कर्म कर अप्सरा लोक में गया। उन नौ भाईयों ने मेरु की नव कन्याओं को विवाहा।

आग्नीध्र के पुत्र नाभि का चरित्र वर्णन

श्री शुकदेवजी ने कहा- हे राजा परीक्षित ! जब आग्नीध्र के जेष्ठ पुत्र नाभि के कोई पुत्र नहीं हुआ तब वह सन्तान की इच्छा से अपनी स्त्री मेरुदेवी के साथ यज्ञ-अनुष्ठान द्वारा यज्ञ पुरुष की अराधना करने लगा। नाभि के शुद्ध भाव से द्रवीभूत भगवान ने यज्ञ में प्रकट हो अपना दर्शन दिया। नाभि ने भगवान के सुन्दर रूप को देख मस्तक नवाया और ऋत्विजों सहित सप्रेम पूजा की- हे पूज्यतम ! आपके स्वरूप को जानना कठिन है। हे नाथ, आप सदा स्वतंत्र स्वयम्भू प्रकट हुए हो और सब आनन्द रूप हो, परन्तु जो हम सकाम भक्त हैं, उनको आपकी आराधना करना ही योग्य है। हम अज्ञानी हैं, अपनी आत्मा के कल्याण मार्ग को नहीं जानते इसलिये आपने हम पर अनुग्रह कर सामान्य देवता की तरह

स्वयमेव ही दर्शन दिया है। हे नाथ ! हमारा मनोरथ पूर्ण कीजिये कि हम आपके मंगलकारी स्वरूप का कभी विस्मरण न करें। हे शरणागत रक्षक ! दूसरी इच्छा यह है कि यह राजा आपके समान पुत्र की कामना से अराधना करता है, हे पूज्यतम ! आप राजा की इच्छा को अपनी कृपा से पूर्ण कीजिये। प्रार्थना से सन्तुष्ट हो भगवान बोले- मेरे समान तुम्हें पुत्र प्राप्त हो, यह तुमने बड़ा कठिन वरदान मांगा। मेरे समान तो मैं ही हूं अस्तु मैं स्वयं राजा नाभि के यहाँ अंशावतार लूंगा। हे परीक्षित ! यह कहकर भगवान अर्न्तध्यान हो गये। हे राजन् ! तब कालान्तर में भगवान मेरु देवी से उत्पन्न होकर अवतार लेकर प्रकट हुये। यह अवतार ऋषभ अवतार के नाम से प्रसिद्ध है।

नाभि के पुत्र ऋषभदेव का वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- इसके अनन्तर जन्म से ही जिनके भगवान के लक्षण, दिन प्रति दिन जिनका प्रताप बढ़ रहा हो, ऐसे ऋषभ देवजी का पालन करने को सब प्रजा, देवता, मन्त्री गण, चाह करने लगे। पिता नाभि ने उनका नाम ऋषभ (श्रेष्ठ) रक्खा। एक समय इन्द्र ने उनकी उन्नति देख ईर्षा से उनके राज्य में जल नहीं वर्षाया। यह देख ऋषभदेव ने आत्म योग से वर्षा कर ली। राजा नाभि ने जान लिया कि नगर के सब लोग मेरे पुत्र पर अत्यन्त स्नेह रखते हैं अतः राजा मर्यादा के

रक्षणार्थ पुत्र ऋषभदेवजी को राज दे अपनी स्त्री मेरुवती को साथ ले बदरिकाश्रम को चला गया। वहाँ तप के प्रभाव से मन को एकाग्र कर भगवान की उपासना करते-करते योग की समाधि के द्वारा जीवन मुक्त हो गया। हे राजन् ! ऋषभदेवजी ने विद्या पढ़ने को कुछ दिन गुरुकुल में वास किया, अनन्तर वे गुरुजनों की आज्ञा ले कर घर आये। ऋषभदेवजी ने इन्द्र की दी हुई जयन्ती नाम स्त्री से सौ पुत्र उत्पन्न किये। उन सबमें सबसे बड़ा भरत उत्तम गुणों से युक्त था। ऋषभदेवजी के अन्य जो सुत थे उनमें कुशावर्त, इलरावर्त, मलयकेतू, भद्रासेन, इन्द्रपृथ, विदर्भ, कीकट आदि ये नव पुत्र बड़े थे। उनसे छोटे कवि, हरि, अन्तारि, क्षप्रबुद्ध, पिपलायन, अविर्होत्र, द्रामिल, चमस, करभाजन नाम के ये नव पुत्र, परम वैष्णव हुए जिनका चरित्र वासुदेव नारद सम्वाद द्वारा एकादश स्कन्द में वर्णन करेंगे। तदनन्तर इससे छोटे इक्यासी पुत्र वेद के ज्ञाता विशुद्ध होकर ब्राह्मण हो गये। ऋषभदेव यथा राजा तथा प्रजा वाले सिद्धान्त की पुष्टि के लिये प्रजा को पथ-भ्रष्ट होने से बचाते थे। एक समय ऋषभदेव विचरते-विचरते ब्रह्मावर्त में चले गये। वहां ब्रह्मार्षि जनों की सभा में अपने पुत्रों को उपदेश करने लगे।

ऋषभदेवजी बोले कि- हे पुत्रो ! मनुष्यों को भोगों में नहीं फंसना चाहिये। यह भोग तो वाराह आदि को भी मिल जाता है। यह शरीर तप करने योग्य है,

क्योंकि तप द्वारा ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है। विद्वान कहते हैं कि महान् पुरुषों की सेवा मुक्ति का द्वार है और स्त्री तथा कामी पुरुषों का, नरक का द्वार है। जो सदाचारी शान्त वृत्ति हैं, वह साधु कहलाते हैं। परमेश्वर में मित्र भाव रखने वाले महापुरुष हैं। मनुष्य जब तक आत्म विद्या से आच्छादित रहता है, तब तक पूर्व कर्म मन को अपने वश में रखता है। जब तक मुझमें प्रीति नहीं होती तब तक जीव बन्धन से नहीं छूटता और जब मनुष्य के हृदय में कर्मग्रन्थि शिथिल हो जाती है, तब यह मिथुनी भाव से निवृत हो जाता है। तदन्तर अहङ्कार को त्याग परम पद में प्राप्त होता है। मेरा ही कीर्तन करना, किसी से वैर नहीं करना, समदृष्टि रखना, इन्द्रियों को रोकना, अहङ्कार व ममता को त्यागना, वेदान्त का अभ्यास, एकान्त निवास, ब्रह्मचर्य से रहना, वाणी को वश में रखना, सर्वत्र मुझमें भावना युक्त ज्ञान रखना, योगाभ्यास समाधि, इन पच्चीस साधनों से युक्त हुआ पुरुष लिंग उपाधि को दूर कर सकता है। ऋषभदेवजी कहते हैं कि यह मेरा मनुष्य शरीर मैंने इच्छा से धारण किया है। मैंने अधर्म को पीठ पीछे रक्खा, इसलिए मुझको ऋषभदेव कहते हैं। तुम मेरे हृदय से उत्पन्न हुए पुत्र हो इसलिए ईर्षा त्याग तुम अपने बड़े भाई भरत की सेवा करो, ऐसी मेरी आज्ञा है। हे वत्सगण! सब प्राणियों का सम्मान करना ही हमारी पूजा है। श्री शुकदेवजी बोले- हे राजन् भगवान् ऋषभदेव अपने

गया, तब अन्त समय आया जान उन्होंने पुत्रों को यथायोग्य विभाग करके सब सम्पदाओं से परिपूर्ण भवन का त्याग कर सन्यास ले, पुलस्त्य, पुलह मुनि के आश्रम में तपस्या करने चले गये। वे तपस्वी एवं भक्त की तरह अपने जीवन को व्यतीत करते थे, कभी-कभी वे भगवद् प्रेम में निमग्न हो ब्रह्मानन्द की अनुभूति करते थे, तदन्तर समाधि योग की क्रिया करते अखण्ड ज्योति का ध्यान करने लगे।

श्री शुकदेवजी कहने लगे- एक समय भरत जी गंडक में स्नान कर नैमित्तिक कर्म करके 'ओंकार' का नदी तट पर जप कर रहे थे। हे राजन्! उसी समय एक हिरणी जल पान करने को उसी नदी के समीप आई। अधिक प्यास के कारण वह जल पी रही थी कि इतने में एक सिंह ने गर्जना की। उसको सुन हिरणी का कलेजा फटने लगा। उसने भय से नदी को पार करने को छलाँग मारी, उससे उसका गर्भ नदी में गिर पड़ा। उसके गिरने से हिरणी बहुत व्याकुल होकर पर्वत की गुफा में जा गिर कर मर गई। भरत जी नदी में गिरे हुए शिशु को मातृ-हीन जान दयापूर्वक आश्रम में उठा लाये। भरत जी ने शयन, भ्रमण भोजनादि सब कार्यों में उस मृगछौने को अपने साथ रक्खा और जब कुशा, फूल समिधादि लेने को जाते तब भेड़िया आदि के भय से उसे अपने साथ ही ले जाया करते। पाठ करते हुए भी उठ कर भरत जी इस बच्चे को देखते और

आर्शीर्वाद दिया करते कि वत्स ! तुम्हारा मंगल हो। एक दिवस बच्चा अपने सजातियों को चौकड़ी लगाते देख उनके साथ चला गया तो भरतजी अति उदास हो गये और मृग के वियोग से विकल हो गये कि कोई भेड़िया व्याघ्र उसको अकेला जान उसको खा न जावे। सूर्य भी अब अस्त होना चाहते हैं परन्तु वह अब तक नहीं आया। जब कभी मैं झूठी समाधि लगा बैठ जाता, तब मृग छौना मेरे पास आ अपने सींग की नौक से मेरा स्पर्श किया करता था। जब कभी भगवत्पूजा की सामग्री को बिगाड़ देता, तब मेरे झिड़कने से शीघ्र ही ऋषि बालक की नांई चुपचाप बैठ जाता था। रात्रि में चन्द्रमा को देख उसमें मृग चिह्न देख भरत अपना मृग बालक समझ कहने लगे- अहो? हमारा मृग छौना जब भूल से चला गया होगा, तब चन्द्रमा ने यह समझ कर कि कहीं सिंह इसको भक्षण न कर जाय दयापूर्वक अपने समीप रख लिया है। इस प्रकार मोह में प्राप्त हो भरत का सब सत्कर्म छूट गया। जब भरत का काल आया उस मरण काल में भी वे ध्यान योग में देख रहे थे मानो वह मृग शावक पुत्र की नांई मेरी बगल में बैठकर शोक करता है। इस कारण हिरणी में अनुरागी आसक्त चित्त होने से, पामर मनुष्य की भाँति उनको हिरण का जन्म लेना पड़ा। पूर्व जन्म की सेवा के प्रताप से हिरणी जन्म में भरत की स्मरण शक्ति रही। पूर्व जन्म को स्मरण कर भरत जी मन में कहने लगे- अहो!

ज्ञानीजनों के मार्ग से मैं भ्रष्ट हो गया, सब परित्याग, एकान्त बन में योग मार्ग द्वारा भगवान का भजन करता था, सो अपने अज्ञानपन से मृगशावक की संगति के भय से हिरणस्वरूप में अकेले विचरते थे, और सूखे पत्ते तथा घास, लता आहार कर जीवन धारण करते रहे। कुछ समय व्यतीत होने पर जब काल आया तब इन्होंने गण्डकी के बीच खड़े होकर अपने हिरण शरीर को त्याग दिया।

भरत का जड़ विप्र रूप में जन्म ग्रहण करना

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! इसके अनन्तर एक ब्राह्मण की बड़ी स्त्री से नौ पुत्र उत्पन्न हुए और छोटी से एक पुत्र और कन्या का जोड़ा प्रकट हुआ। वहां उस जोड़े में का पुत्र राजा भरत था जो हिरण का जन्म पा चुका था। हे परीक्षित! भरतजी ने ब्राह्मण कुल में जन्म पाने पर यह विचार किया कि संगति के दोष से फिर कहीं बन्धन न हो जाय, इस कारण भगवान का स्मरण करते हुए गृह-विरक्त रहना चाहिए। इस प्रकार विचार करते हुए भरत सबको, अपने को मूर्ख, पागल, अन्धा और बहरा सा दिखाते थे। ब्राह्मण ने पुत्र के सब संस्कार कर दिये और यज्ञोपवीत करा सन्ध्या वन्दनादि की शिक्षा देने लगा परन्तु 'जड़' ध्यान न देते प्रयुक्त शिक्षा के प्रतिकूल आचरण करते। परन्तु पुत्र

को पढ़ाना ही चाहिए ऐसा स्नेह रखने से वह ब्राह्मण परिश्रम करता था। जिसका मनोरथ पूरा नहीं हुआ, ऐसा वह ब्राह्मण मृत्यु को प्राप्त हो गया। तब उसकी छोटी स्त्री इस कन्या-पुत्र को अपनी सपत्नी को सौंप सती हो गई। पिता की मृत्यु के बाद भरत ने नव भ्राताओं में उसको मूर्ख समझ पढ़ाने का उद्योग छोड़ दिया, वह बावलों के समान घूमने लगे। वे दृढ़ व पुष्ट थे। जैसे धूल में भरी हुई महामणि नहीं दीख पड़ती, इसी प्रकार जड़ भरतजी का ब्रह्मतेज नहीं दीखता था। कटि पर पड़ा हुआ लंगोटा और यज्ञोपवीत बहुत मलीन हो रहा था, इस कारण उनकी महिमा कोई नहीं जानता था। यह ब्राह्मणों में नीच है, ऐसा कह लोग निरादर करते थे। इस प्रकार अपमानित हो जड़ भरतजी विचरते थे। जब-जब भरत लोगों से काम की मजदूरी ले भोजन करने लगा तब भाइयों ने भरतजी को धमकाया कि हम तुमको राज से निकाल देंगे। जब उसके भाइयों ने रक्खा तो खाने से उसका पेट न भरे। यदि ढाई सेर खाने को धरें तो खा जाये। तब स्त्री ने कहा ये आफत नहीं भोगी जायेगी। तब उसके भाईयों ने भोजन का लोभ दे धानों में क्यारी बनाने में लगा दिया। एक समय चोरों के शूद्र राजा ने सन्तान होने की इच्छा से मनुष्य की बलि भद्रकाली के निमित्त करनी चाही। उसने मनुष्य पाला, दैवयोग से वह छूट गया। तब राजा के दूतों को ढूढ़ते फिरते से जड़ भरत खेती की

रक्षा करता हुआ दृष्टि में आया। वह इसको दोष रहित जान रस्सी से बाँध भद्रकाली के मन्दिर में लाये। चोरों ने जड़ भरत को स्नान करा कर नवीन वस्त्र और आभूषण पहिनाये, सुगन्धि लगाई, मोतियों की माला पहिनाई और तिलक आदि लगाकर सजाया। फिर भोजन कराके धूप, दीप, फल, हार, अक्षत और फल आदि भेंट रख पूजन किया। बड़े-बड़े बाजों के साथ उसको भद्रकाली के निकट ला सिर झुकाकर बिठाया। तदनन्तर पुरोहित ने इस पुरुष पशु के रक्त से भद्रकाली को तृप्त करने के लिए खड्ग हाथ में लिया, तो भरतजी के तेज से देवी का शरीर जलने लगा। तब देवी मूर्ति त्याग उसमें से बाहर निकली। देवी जी के शरीर में अधिक दाह होने से क्रोध था, देवी ने पुरोहित से तलवार छीन उन सब पापात्मा चोरों का सिर काटकर फेंक दिया। हे राजन्! जो मनुष्य बड़े पुरुष के साथ अत्याचार करना चाहे उसका सब प्रकार से बुरा हो जाया करता है। जो सब जीवों के मित्ररूप व बैर रहित होते हैं और जिनकी रक्षा भगवान ने चण्डिका रूप धर कर की ऐसे जो परमहंस भरतजी के समान हैं, उनके लिये ऐसा होना आश्चर्य नहीं है।

जड़ भरत और राजा रहूगण का ज्ञान सम्वाद

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे राजा परीक्षित! एक समय

राजा रहूगण कपिलदेव के आश्रम पर जाता था, मार्ग में कहारों का स्वामी एक कहार बेगार में पकड़ना चाहता था, उसके सामने भरत आ गया। तब उसने विचार किया कि यह मनुष्य युवा व हृष्ट-पुष्ट है, ऐसा विचार कर उसने इनको पकड़ लिया और जड़ भरत जी पालकी उठा ले चले। तब उन कहारों की गति से उनकी गति मिली नहीं और पालकी टेढ़ी होने लगी यह देखकर रहूगण कहने लगा कि यह पालकी टेढ़ी क्यों हुई जाती है? कहार लोग डरकर रहूगण से निवेदन करने लगे- महाराज! हमारी असावधानता नहीं है यह मनुष्य जो अभी लाया गया है, ये शीघ्र नहीं चलता। राजा ने क्रोध युक्त हो जड़ भरतजी से उपहास करता हुआ बोला- हे भाई! तुम बहुत थक गए हो, अकेले दूर से पालकी उठाकर लाये हो, तुम पुष्ट नहीं हो और बुढ़ापे ने तुमको घेर लिया है। यह सुन जड़ भरत मौन हो पहले के समान चलने लगे। जब फिर पालकी टेढ़ी हुई, तब राजा क्रोध से कहने लगा कि- अरे यह क्या! तू जीता ही मरा हुआ है, मैं तुझे अभी यम के पास भेजता हूं। तब जड़ भरतजी मुस्कराकर रहूगण से बोले- हे वीर! तुमने जो कहा सो ठीक है, इसमें हमारा तिरस्कार नहीं हुआ, क्योंकि देह से मेरा सम्बन्ध होवे तो मैं समझूं। यह बोझ क्या है और यह देह क्या है? मार्ग कोई वस्तु हो और उनके साथ मेरा सम्बन्ध हो तो तुम्हारे वचनों से अपना तिरस्कार समझूं। तुमने कहा, तुम पुष्ट

हो, ऐसा तो मूर्ख ही कह सकता है। क्योंकि आत्मा को पुष्ट कहना सम्भव नहीं, तुमने कहा, तू जीता हुआ मुर्दा है तो सब संसार ही जीता हुआ मुर्दा है, क्योंकि यह संसार आदि-अन्त वाला है। यह विकार शरीर का है मेरा नहीं है। हे राजन! जो तुमने कहा कि आज्ञा उल्लंघन करता है सो केवल व्यवहार मात्र के बिना यह राजा है। और यह दास है, ऐसी भेद-बुद्धि का अवकाश थोड़ा भी देखने में नहीं आता, इसलिए व्यवहार दृष्टि से जो देखा जाए तो कौन राजा है और कौन दास है? यह नहीं दीख पड़ता है। तो भी कहिए क्या करें? बावले तथा मूढ़ की नांई आचरण करके आत्म स्वरूप को प्राप्त हुए मुझे शिक्षा देने से क्या होता है? जैसे पिसे हुए चून को पीसना वृथा है, ऐसे ही मुझको दण्ड व शिक्षा देना व्यर्थ है। श्रीशुकदेवजी कहते हैं- हे राजा परीक्षित! स्वभाव से शान्त मुनिवर जड़ भरतजी जब राजा रहूगण के वचनों का उत्तर दे पालकी को उठाने लगे तो सिन्धु और सौबीर देश का राजा रहूगण भरतजी के वचन सुन पालकी से उतर पड़ा और अभिमान त्याग, जड़ भरतजी के चरणों में सिर रख अपराध क्षमा कराकर कहने लगा- हे ब्रह्मन! गुप्त रूप से परिभ्रमण करने वाले आप कौन हो? जो मूढ़ की नांई रहते हो। हे साधु! आपने जो वचन कहे, सो मैं उन वाक्यों का अर्थ करने को समर्थ नहीं हूं। मैं आत्म तत्व के जानने वाले, आपको गुरु करके इस जगत में सत्य शरण लेने योग्य अथवा

इस संसार का निस्तार क्या है, यह पूछने को प्रमत्त होता हूं। हे प्रभो! इस घर में फँसे हुए मन्द बुद्धि लोग किस प्रकार आप योगेश्वर की गति को जान सकते हैं? हे स्वामिन! आपके वचनों को मैं ठीक प्रकार नहीं समझा। हे दीनबन्धो! राजापन के अभिमान से महात्माओं को तुच्छ समझने वाला जो मैं हूं सो मुझ पर आप कृपा दृष्टि कीजिये कि जिससे पाप से मेरा निस्तार हो जावे। जड़ भरत कहने लगे- रहूगण तुम पण्डितों की सी बातें बनाते हो इस कारण विद्वानों की मण्डली में तुम श्रेष्ठ नहीं हो। जिस प्रकार स्वप्न सुख, अदृश्य और अनित्य होने से त्याग करने योग्य है, वैसे गृहस्थाश्रम का सुख भी अनित्य होने से त्याज्य है। रजोगुण, सत्वगुण, तमोगुण, इनसे बिंधा हुआ पुरुष जब तक इनके वश में रहता है तब तक यह निरंकुश रह पाप पुण्य किया करता है। यह मन ही पाप पुण्य की वासना से युक्त हुआ पृथक-पृथक देह और पृथक-पृथक नाम उसी देह के हेतु ऊंची व नीची योनि में जाता है। काल से प्राप्त हुए दुःख, सुख, मोह आदि फलों को मन ही देता है। यह मन ही जीव की माया रचित उपाधि है, इसलिए यह अपने विषे जीव का अभ्यास कराकर, ये मन जीव को छल संसार में घुमाता है। राजन्! जब तक यह देह धारी जीव सबको त्याग, ज्ञान के उदय से इन्द्रियों को जीव अविद्या से दूर कर, आत्म तत्व को नहीं जानता है, तब तक इस संसार में घूमता है। इसलिए

तुम अपने मन को भगवान रूप गुरु के चरणों की उपासना रूप शस्त्र से नाश करो।

श्रीशुकदेवजी बोले- हे राजन्! जब ऐसा उपदेश किया तब राजा रहूगण बोले- हे अवधूत! अपने परमानन्द के शरीर को तुच्छ किये हुए मलीन भेष में विचरते हुए आपको बारम्बार नमस्कार है। जो आपने ज्ञान योग से गुथे हुए वचन कहे हैं उनको मैं समझ नहीं सका, कृपाकर सरल शब्दों में उपदेश दें। जड़ भरत जी बोले, हे राजन्! पृथ्वी तत्व से बना हुआ आदि जो कुछ है उसको तुम कहार आदि वर्ण भेद से जानते हो और जो पृथ्वी से बना हुआ पत्थर आदि है उसे आप भार जानते हो। विचार कर देखो तो कुछ भेद नहीं है, जैसा पत्थर वैसा ही कहार। क्योंकि किसी हेतु से वो ही पृथ्वी का विकार चलने लगा उसका नाम 'आदमी' कहते हैं फिर उसी पृथ्वी तत्व की बनावट भी ऐसी है है कि पांव, पिंडली, सांथल, (जंघा) कटि, छाती, ग्रीवा, कन्धे पर पालकी, पालकी में राजा छुपा हुआ देखता हूं। मैं राजा हूं, इसी अहङ्कार से तुम अन्धे हो गये हो। यह सब बोझ उठाने वाले कष्ट पा तन क्षीण हो रहे, जिनको देख चित्त दुःखी होता है, उनको तुमने पकड़ कर पालकी में जोत रक्खा है, इस कारण तुम महा निर्दयी हो और निर्लज्ज होकर कहते हो कि मैं सबकी रक्षा करता हूं, इसलिए तुम झूठे हो। हे राजन्! जब हम जानते हैं कि इस जगत की उत्पत्ति और लय भूमि में ही

है फिर केवल नाम के सिवाय कौन सदा रहने वाला है। पृथ्वी सत्य नहीं है क्योंकि यह अपने कारण रूप में लीन हो जाती है। अब सत्य वस्तु कहते हैं। एक परब्रह्म ही सत्य है, जो परब्रह्म, शुद्ध, स्वयं, परिपूर्ण, निर्विकार प्रत्यक्ष रूप है और उसी का नाम भगवान वासुदेव है। हे राजा! इस परब्रह्म की प्राप्ति न तप से होती है, न वेद विहित कर्म से, न अन्नादिक बांटने से और न गृहस्थाश्रम में परोपकार करने से होती है, किन्तु महात्माओं के चरण रज सेवन करने से ब्रह्म की प्राप्ति होती है। विषयों से योग नाश होता है। मैं पहले जन्म में राजा था। मैंने राज्य आदि त्याग दिया था और भगवान की ही आराधना किया करता था, किन्तु एक हिरण के बच्चे का संग होने से सब प्रयोजन नष्ट हो गया और मुझे मृग योनि में पूर्व स्मृति बनी रही। फिर अब भी भय करता हुआ मनुष्यों के संग से गुप्त रूप हो विचरता हूं। इस कारण मनुष्य को चाहिये कि संग रहित हो महात्माजनों की संगति कर ज्ञान से मोह का छेदन करें। भगवान की लीला का मंथन और स्मरण करने से ज्ञान हो जाता है, उस ज्ञान से मनुष्य संसार से पार हो जाता है।

भरतवंश का वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं कि भरत का सुमति पुत्र हुआ। जिसने ऋषभदेवजी के मार्ग का अनुसरण

किया। उस सुमति के वृद्धसेना स्त्री से देवजित पुत्र हुआ। देवजित के आसुरी नामा स्त्री से देवद्युम्न नाम पुत्र हुआ। देवद्युम्न के धेनुमति से परमेष्ठी हुआ। परमेष्ठी के सुवर्चला से प्रतीह नाम पुत्र हुआ, प्रतीह ने आत्मविद्या पढ़ भगवान् का साक्षात् दर्शन किया। प्रतीह के सुवर्चला नाम स्त्री से प्रतीहर्ष, प्रस्तोता, उद्गाता तीन पुत्र हुए। प्रतीहर्ष के स्तुति से अज, भूमा दो पुत्र हुए। भूमा के ऋषि कन्या नामा स्त्री से उदगीथ हुआ, उसके देवकुल्या से प्रस्ताव हुआ। प्रस्ताव के नियुत्सा से विभु हुआ। विभु के रतिनामा से पृथुषेण। पृथुषेण से अकृति से नक्त और नक्त से द्रति नाम पत्नी से गय नाम पुत्र हुआ। गयराजा यशस्वी और राजऋषियों में परमोत्तम था। भगवान के अंश से होने के कारण यह राजा लक्षणों से महापुरुष भाव को प्राप्त हुआ था। हे राजन्! उस राजा गय के चरित्र की प्रशंसा प्राचीन इतिहास जानने वाले लोग गान द्वारा करते हैं। राजा गय की उर्णा नाम पत्नी से सम्राट हुआ। सम्राट को उत्कला से मरीचि और मरीचि को विन्दुमती से विन्दुरमान। विन्दुरमानको सरधासे मधु हुआ, मधु से सुमना से वीरब्रत हुआ, उसके भोजनामा से मन्थु, प्रमन्थु दो पुत्र हुए, मन्थु के सत्त से यौवन हुआ उसके दूषणा व ऐत्वष्टा हुआ। ऐत्वष्टा के विरोचना से शतजित् आदि सौ पुत्र हुए और एक कन्या प्रकट हुई। प्रशंसा में यह श्लोक है कि जिस प्रकार भगवान अपनी कीर्ति से

देवताओं को सुशोभित करते हैं उसी प्रकार राजा विरज ने महाराज प्रियव्रत के वंश को कीर्ति से सुशोभित कर दिया।

भुवनकोश वर्णन

राजा परीक्षित ने पूछा- हे मुने! सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल का विस्तार आपने वर्णन किया। भूमण्डल के बीच प्रिय्वरत के रथ के पहियों से सात समुद्र बने, फिर समुद्रों की मर्यादा से सात द्वीपों की रचना हुई है, ऐसा आपसे सुन चुका हूं। परन्तु आपने संक्षेप से कहा। कृपया विस्तार से कहिये। श्री शुकदेवजी बोले- कोई मनुष्य यदि देव आयु को प्राप्त होवे तो भी ब्रह्माण्ड रचना के नाम, भगवान की माया का अन्त जानने को समर्थ नहीं हो सकता। इसलिए इस भूगोल को नाम रूप और लक्षण द्वारा वर्णन करेंगे। यह भू-मण्डल कमलकोश है, इसके बीच में जम्बूद्वीप एक लाख योजन विस्तार वाला है। इस जम्बूद्वीप में नौ हजार योजन विस्तार वाले नौ खण्ड हैं और आठ पर्वतों से इनका विभाग किया हुआ है। इन नौ-खण्डों के बीच में सुवर्ण से बना सुमेरु पर्वत है जो एक लाख योजन ऊंचा है। इलाब्रत के उत्तर में नीलगिरि, श्वेतगिरि और श्रृङ्गवान हैं। ये तीनों पर्वत रम्यक, हिरणमय, कुरु इन तीनों खण्डों के मर्यादा पर्वत हैं। यह पर्वत दो हजार योजन चौड़े हैं। इसी प्रकार इलाब्रत से दक्षिण की ओर

निषद, हेमकूट, हिमालय यह तीन पर्वत हैं ये भी हरिवर्ष, किम्पुरुष, भरतखण्ड इन तीनों के मर्यादा पर्वत हैं। उनकी ऊंचाई दस हजार योजन और दो हजार योजन की मोटाई है। इलाब्रत से पश्चिम को माल्यवान, पूर्व को गन्धमादन पर्वत हैं, जो नील और निषज पर्यन्त दो हजार योजन चौड़े हैं। इनकी ऊंचाई हिमालय के समान है। ये पर्वत केतुमाल, भद्राश्व खण्डों के मर्यादा हैं। इसी तरह मन्दर, मेरुमंदर, सुपार्श्व, मुकुन्द यह चार पर्वत दस-दस हजार योजन विस्तार वाले हैं, इस पर वृक्ष ग्यारह-ग्यारह सौ योजन ऊंचे और शाखाओं के सौ योजन मोटी जटा हैं। इन पर्वतों पर दूध, शहद, ईख का रस और मधुर जल से भरे हुए चार तालाब हैं, उनके सेवन करने वाले उपदेवगण, सिद्धियों को प्राप्त होते हैं। इन पर्वतों पर नन्दन, चैत्ररथ, बैभ्रजिक, सर्वतोभद्र ये चार बगीचे हैं, जहाँ देवांगनायें विहार किया करती हैं। मन्दर नाम पर्वत के ऊपर ग्यारह सौ योजन ऊँचा देवताओं का एक आम्र वृक्ष है, उसकी टहनियों से बड़े-बड़े अमृत समान मीठे फल गिरा करते हैं। जब उनका रस बहने लगता है तब उससे सुगन्धि युक्त लाल रस वाली अरुणोदा नदी, इलाब्रत खण्ड के पूर्व दिशा में बहा करती है और जम्बू नाम नदी दक्षिण दिशा की ओर बह रही है। इसी नदी से किनारों की मिट्टी रस से भीगती है, फिर सूख जाती है, तब उसी का नाम जग्बनद से सुवर्ण बन जाता

है और सुपार्श्व पर कदम्ब का वृक्ष है, उसके कोटरों में से पांच मधु की धारा पश्चिम की ओर इलाब्रत को आनन्दित करती हैं। मुकुन्द नाम पर्वत पर शतवल्य नाम वटवृक्ष है उसमें से दूध, दही, घी, शहद, गुड़, अन्न आदि, शय्या, आसन, अभरण आदि की नदी बहती हैं। सुमेरु पर्वत के पूर्व में जठर, देवकूट पर्वत हैं, ये अठारह हजार योजन लम्बे तथा दो दो हजार योजन चौड़े और ऊंचे हैं फिर दक्षिण की ओर कैलाश और करवीर ये दो पर्वत हैं। इन आठ पर्वतों से घिरा हुआ सुवर्ण का सुमेरु पर्वत चारों ओर से प्रकाशमान होता है। सुमेरु के मध्य में ब्रह्माजी की नगरी है, इस पुरी के चारों ओर आठों लोकपालों की आठ पुरी हैं।

गंगाजी का विस्तार तथा रुद्र द्वारा संकर्षण देव का स्तवन

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे राजा परीक्षित! इस अध्याय में श्रीगंगाजी का महात्म्य वर्णन करते हैं। वामनावतार भगवान ने राजा बलि के यज्ञ में जा तीनों लोकों को नापते समय अपने दाहिने चरण से पृथ्वी को दबाया तो अंगूठे के नख से ऊपर का भाग फूट गया, उस छिद्र में से श्री गंगाजी की धारा ब्रह्माण्ड के भीतर बैठी थी। यह धारा स्वर्ग के मस्तक पर उतरी है। भगवान वामनजी के चरणों से उत्पन्न हुई, इससे भगवत्पदी नाम हुआ। हे राजन्! गंगाजी यद्यपि बलि

के यज्ञ के समय ब्रह्माण्ड छिद्र में प्रवेशित हुई थीं तथापि सहसा पृथ्वी पर नहीं उतरीं। हजार चौकड़ी युग के उपरान्त स्वर्ग के मस्तक पर पहुंची। हे नृप! स्वर्ग का मस्तक पद है। जहाँ श्रीध्रुवजी गंगाजी को देख भगवान के चरण का जल मान अब तक अपने मस्तक पर धारण कर रहे हैं। तदनन्तर दो धारा जब नीचे गिरीं, तब सप्तऋषि धारण करते हैं। तब चन्द्र मण्डल को सेवन करती हुई सुमेरु पर स्थित वम्र पुरी में बहती हुई चार धारा होकर चारों दिशाओं में बहती समुद्र में मिलती हैं। सीता, नन्दा, चक्षु, भद्रा ये चार नाम हैं। सीता पूर्व दिशा के क्षीर-समुद्र में जा मिलती है, चक्षु धारा माल्यवान पर्वत से मिलकर पश्चिम दिशा में क्षीर समुद्र में जा मिलती है। भद्रा उत्तर दिशा में सुमेरु पर्वत से नीलगिरी पर आई, वहां से श्रृंगवान पर्वत पर से नीचे गिरती उत्तर दिशा के समुद्र में जा मिलती है। इस प्रकार अलकनन्दा गंगा ब्रह्मलोक से दक्षिण की ओर गिरती हुई अनेक पर्वतों का उल्लंघन कर भरतखंड में ही दक्षिण दिशा के समुद्र में जा मिलती है। इन खण्डों में भतरखण्ड ही किये हुए कर्म का फल देने वाला है। शेष आठ स्वर्गवासियों के पुण्य भोगने के स्थान हैं, उनमें रहने वाले की आयु दस हजार वर्ष की होती है। दस सहस्त्र हाथी के समान बल होता है। इन खण्डों में भगवान मनुष्यों पर अनुग्रह करने को आज तक विराजमान हैं। इलाब्रतखण्ड में तो महादेव जी ही

विराजमान हैं, वे पार्वती सहित क्रीड़ा करते हैं, वहां कोई पुरुष नहीं जाता, यदि कोई इस खण्ड में दैवयोग से चला जावे तो स्त्री भाव को प्राप्त हो जाता है। उस खण्ड में पार्वतीजी की हजारों दासियां महादेव की सेवा करती हैं। महादेवजी भगवान श्री शेषजी जी मूर्ति का ध्यान करके आगे कहे हुए मन्त्र का जप करते हैं। संकर्षण मन्त्र- ''ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुण संख्या नायाननन्ताय व्यक्ताय नमः।''

पृथ्वी खण्डों का वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- ऐसे ही भद्राश्वखंड में भद्रश्रव का पुत्र स्वामी है। उसके सेवक भगवान की हयग्रीव अवतार की मूर्ति को हृदय में स्थित करके इस मन्त्र को ''ॐ नमो भगवते धर्मायारत्माविशोधनाय नमः'' जपते हैं। प्रलय काल में तमोगुण वेद को चुरा ले गया, तब तो हयग्रीव अवतार धारण कर पाताल से वेद लाये, और ब्रह्माजी को दिये। हरिवर्ष खण्ड में नृसिंह भगवान् विराजमान हैं। प्रहलादजी उस खण्डों के पुरुषों के साथ भक्ति से नृसिंह की उपासना करते हैं। तुमाल खण्ड में भगवान कामदेव रूप से विराजमान हैं, संवत्सर की पुत्री व पुत्र, स्त्री पुरुष रूप से निवास करते हैं। रम्यक खण्ड में भगवान मत्स्यावतार रूप से विराजमान हैं, वहाँ मनु अब तक भाव भक्ति से इस स्वरूप का आराधन करते हैं। हिरण्यमय खण्ड में कूर्म

शरीर धारण कर भगवान विराजमान हैं, जहां अर्यमा देवता उस खण्ड के पुरुषों के साथ भगवान की मूर्ति की सेवा करता है। उत्तर कुरु खण्ड में भगवान वाराह रूप धारण करके विराजमान हैं। पृथ्वी देवी उस वाराह भगवान को भक्तियोग से भजती है और उपनिषद के मंत्र का उच्चारण करती है।

श्रीशुकदेवजी बोले- कि हे राजन्! इसी प्रकार किम्पुरुष खंड में सीतापति भगवान श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं, उनकी सेवा हनुमानजी करते हैं। इसी प्रकार भरत खंड में नर नारायण भगवान बद्रिकाश्रम में विराजमान हैं, नारदजी इनकी उपासना करते हैं। श्री शुकदेवजी बोले, हे राजन्! कितने ही विद्वान् इस जम्बूद्वीप के आठ उपद्वीप करते हैं। राजा सगर के पुत्र यज्ञीय घोड़े को ढूंढने गये, तब उन्होंने पृथ्वी को खोदा, उससे यह आठ उपद्वीप हुए। उनके नाम यथा- १. स्वर्णप्रस्थ, २. चन्द्रप्रस्थ, ३. आवर्तन, ४. रमणक, ५. मंदहरिण, ६. पांचजन्य, ७. सिंहल और ८. लंका हैं। इस प्रकार यह जम्बूद्वीप के खंडों का विभाग मैंने तुमसे कहा।

लोकालोक पर्वत का वर्णन

श्रीशुकदेवजी ने कहा- इसके उपरान्त प्लक्ष आदि द्वीपों के विभाग वर्णन किये जाते हैं, प्रथम जम्बूद्वीप का विस्तार लाख योजन है, और क्षीर समुद्र से यह घिरा है

और प्लक्ष द्वीप दो लाख योजन है। उस प्लक्ष का वृक्ष है, यह वृक्ष सुवर्ण कान्ति वाला ग्यारह हजार योजन ऊंचा है इसी के नाम से वह प्रसिद्ध है। इसमें अग्नि रहती है। प्रियव्रत पुत्र इध्मजिव्ह ने इसके सात खण्ड करके अपने पुत्रों को दे आप समाधि लगा कर शरीर को त्याग दिया। शिव, यवश, समुद्र, शान्त, मोक्ष अमृत, अभय ये सात वर्ष हैं और ये ही पुत्रों के नाम हैं। इनमें सात पर्वत, सात ही नदियां प्रसिद्ध हैं। उन पर्वतों के नाम हैं मणिकूट, बज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिषमान्, सुवर्ण, हिरण्यष्ठीव, मेघमाल पर्वत और अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री सुप्रभाता, ऋृतुम्भरा, सत्यम्भरा ये नदियां हैं। इनके जल से मनुष्य का रजो व तमोगुण दूर हो जाता है। वहां हंस, पतंग, उर्ध्वायन सत्यांग चार वर्ण हैं इनकी आयु हजार वर्ष की है। ये सब सूर्य नारायण की स्तुति करते हैं। ''प्रयत्नस्य विष्णोरूप यत्सत्यस्यार्तस्य ब्रह्मणः। अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमान धीमहि'' इस मंत्र का जप करते हैं। इन पांच द्वीपो में पुरुषों की आयु, इन्द्रिय, सामर्थ्य, साहस, बल, बुद्धि, स्वभाव की सिद्धि सबमें समान भाव से वर्तमान रहती है। प्लक्षद्वीप ईख रस के समुद्र से घिरा हुआ है। शाल्मलिद्वीप जो प्लक्षद्वीप से दुगुना बड़ा है वह भी मदिरा के समुद्र से घिरा हुआ है, शाल्मलिद्वीप चार लाख योजन चौड़ा है। समुद्र भी चार लाख योजन चौड़ा है। इस द्वीप में शाल्मली का वृक्ष है

शरीर धारण कर भगवान विराजमान हैं, जहां अर्यमा देवता उस खण्ड के पुरुषों के साथ भगवान की मूर्ति की सेवा करता है। उत्तर कुरु खण्ड में भगवान वाराह रूप धारण करके विराजमान हैं। पृथ्वी देवी उस वाराह भगवान को भक्तियोग से भजती है और उपनिषद के मंत्र का उच्चारण करती है।

श्रीशुकदेवजी बोले- कि हे राजन्! इसी प्रकार किम्पुरुष खंड में सीतापति भगवान श्रीरामचन्द्रजी विराजमान हैं, उनकी सेवा हनुमानजी करते हैं। इसी प्रकार भरत खंड में नर नारायण भगवान बद्रिकाश्रम में विराजमान हैं, नारदजी इनकी उपासना करते हैं। श्री शुकदेवजी बोले, हे राजन्! कितने ही विद्वान् इस जम्बूद्वीप के आठ उपद्वीप करते हैं। राजा सगर के पुत्र यज्ञीय घोड़े को ढूंढने गये, तब उन्होंने पृथ्वी को खोदा, उससे यह आठ उपद्वीप हुए। उनके नाम यथा- १. स्वर्णप्रस्थ, २. चन्द्रप्रस्थ, ३. आवर्तन, ४. रमणाक, ५. मंदहरिण, ६. पांचजन्य, ७. सिंहल और ८. लंका हैं। इस प्रकार यह जम्बूद्वीप के खंडों का विभाग मैंने तुमसे कहा।

लोकालोक पर्वत का वर्णन

श्रीशुकदेवजी ने कहा- इसके उपरान्त प्लक्ष आदि द्वीपों के विभाग वर्णन किये जाते हैं, प्रथम जम्बूद्वीप का विस्तार लाख योजन है, और क्षीर समुद्र से यह घिरा है

और प्लक्ष द्वीप दो लाख योजन है। उस प्लक्ष का वृक्ष है, यह वृक्ष सुवर्ण कान्ति वाला ग्यारह हजार योजन ऊंचा है इसी के नाम से वह प्रसिद्ध है। इसमें अग्नि रहती है। प्रियव्रत पुत्र इध्मजिव्ह ने इसके सात खण्ड करके अपने पुत्रों को दे आप समाधि लगा कर शरीर को त्याग दिया। शिव, यवश, समुद्र, शान्त, मोक्ष अमृत, अभय ये सात वर्ष हैं और ये ही पुत्रों के नाम हैं। इनमें सात पर्वत, सात ही नदियां प्रसिद्ध हैं। उन पर्वतों के नाम हैं मणिकूट, बज्रकूट, इन्द्रसेन, ज्योतिषमान्, सुवर्ण, हिरण्यष्ठीव, मेघमाल पर्वत और अरुणा, नृम्णा, आंगिरसी, सावित्री सुप्रभाता, ऋतुम्भरा, सत्यम्भरा ये नदियां हैं। इनके जल से मनुष्य का रजो व तमोगुण दूर हो जाता है। वहां हंस, पतंग, उर्ध्वायिन सत्यांग चार वर्ण हैं इनकी आयु हजार वर्ष की है। ये सब सूर्य नारायण की स्तुति करते हैं। ''प्रयत्नस्य विष्णोरूप यत्सत्यस्यार्तस्य ब्रह्मणः। अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमान धीमहि'' इस मंत्र का जप करते हैं। इन पांच द्वीपो में पुरुषों की आयु, इन्द्रिय, सामर्थ्य, साहस, बल, बुद्धि, स्वभाव की सिद्धि सबमें समान भाव से वर्तमान रहती है। प्लक्षद्वीप ईख रस के समुद्र से घिरा हुआ है। शाल्मलिद्वीप जो प्लक्षद्वीप से दुगुना बड़ा है वह भी मदिरा के समुद्र से घिरा हुआ है, शाल्मलिद्वीप चार लाख योजन चौड़ा है। समुद्र भी चार लाख योजन चौड़ा है। इस द्वीप में शाल्मली का वृक्ष है

उसमें गरुड़ का घोंसला है। ये गरुड़ वेद द्वारा भगवान की स्तुति किया करते हैं। इस द्वीप के अधिपति प्रियव्रत के पुत्र यज्ञबाहु ने इसको अपने सात पुत्रों को उन्हीं के नाम के अनुसार बांट दिये, उनके १. सुरोचन, २. सोमनस्य, ३. रमणक, ४. देववर्ष, ५. पारिभद्र, ६. आप्यायन, ७. अविज्ञात, ये सात खण्ड पुत्रों के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन सात खण्डों में १. स्वरस, २. शतश्रृग, ३. वामदेव, ४. कुन्द, ५. रजनी, ६. नन्दा, ७. राका ये सात नदियां हैं। इन खण्डों में श्रुतिधर, वीर्यश्वर, वसुन्धर, इषधर चार वर्ण हैं। ये लोग चन्द्र भगवान का वेद मन्त्रों से पूजन करते हैं। इसी प्रकार आठ लाख योजन का कुशद्वीप है और घृत समुद्र इसके चारों ओर है। इस द्वीप में देवताओं का बनाया हुआ एक कुश का स्तम्भ है। यह कुश स्तम्भ अग्नि के समान प्रकाशवान हैं और दसों दिशाओं को सर्वदा प्रकाशित करता है। हे राजन्! इस द्वीप का अधिपति प्रियव्रत हिरण्यरेता हुआ। उसने द्वीप सातों पुत्रों को बांट दिया और आप तप करने चला गया। १. वसु, २. वसुदार, ३. दृढ़रुचि, ४. नाभिगुप्त, ५. स्तुत्यव्रत, ६. विबक्त, ७. वामदेव इन सातों के सात पुत्र थे इन्हीं के नाम से सातों खण्ड हैं तथा इन सातों खण्डों में सात पर्वत और सात नदियां हैं, उनमें से १. चक्र, २. चतुश्रृङ्ग, ३. मित्रावदा, ४. श्रुतिविन्द, ५. देवगर्भ, ६. धृतच्युता, ७. मन्त्रमाला ये सात नदियां हैं। १. कुशल, २. कोविद, ३. अभि-

युक्त, ४. कुलक, ये चारों वर्ण रहते हैं और अग्नि का पूजन इस मंत्र से करते हैं, कि हे अग्नि! भगवान को आप हव्य पहुंचाते हो, इस कारण इस पूजा को भगवान को पहुंचाओ। कुशद्वीप के बाहरी भाग में क्रौंचद्वीप है, यह सोलह लाख योजन चौड़ा है। यह क्षीर समुद्र से घिरा है, इसमें क्रौंच नाम एक पर्वत है, इसके किनारे और कुंज स्वामिकार्तिक ने तोड़ दिये तथापि क्षीर सागर से सींचे जाने के कारण यह सदैव निर्भय रहता है। उसका अधिष्ठाता प्रियव्रत धृतपृष्ठ था उसने सात खण्ड कर अपने पुत्रों के नाम रख विभाग कर दिया। १. आम, २. मेधुरुह, ३. मघपृष्ठ, ४. सुयामा, ५. भ्राजिष्ठ, ६. लोहितार्ण ७. वनस्पति ये सातों पुत्र व खण्डों के नाम हैं। इनमें सात पर्वत और सात नदियां हैं- १. शुक्ल, २. वर्धमान, ३. भोजन, ४. उपवहण, ५. नन्द, ६. नन्दन, ७. सर्वतोभद्र ये पर्वत हैं और १. अभया, २. अमृतपौधा, ३. आर्यका, ४. तीर्थवती, ५. बृत्ति रूपवती, ६. पवित्रवती, ७. शुक्ला ये नदियां हैं और पुरुष, ऋषध, द्रविण, देवक चारों वर्ण का पूजन करते हैं और इस मन्त्र को जपते हैं- हे जलदेव! तुमको परमेश्वर से सामर्थ्य प्राप्त हुई है, अतएव आप भू-लोक, भुव-लोक, स्वर्ग-लोक को पवित्र करते हो, सो आप हमारे शरीर को पवित्र करो। इससे आगे सातद्वीप हैं, उसका विस्तार बत्तीस लाख योजन है, यह दधिरस समुद्र से घिरा है, इसमें शाक वृक्ष है। उसमें प्रियव्रत

पुत्र मेघातिथि अधिपति था, उसने इसको अपने पुत्रों के नाम से सात खण्ड करके उन सबमें यथाक्रम परोजब, मनोजब, पवमा, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुरूप, विश्वाधर सात पुत्रों को अधिपति किया, तदन्तर वह राजा भगवान में मन को प्रवेश करने को वन चला गया। इसमें पर्वत १. ईशान, २. अरुश्रृङ्ग, ३. बलभद्र, ४. शतकेशर, ५. सहस्त्रस्त्रोत, ६. देवपाल, ७. निजधूति ये सात हैं, और १. अनघ, २. आयुदा, ३. उभयस्पृष्टि, ४. अपराजिता, ५. पञ्चपदी, ६. सहस्त्र श्रुति, ७. निजधृति ये नदियां हैं। इसमें रहने वाले ऋतुब्रत, सत्यब्रत, दानब्रत, अनुब्रत वर्णधारी प्राणायाम से रज-तम को दूर करते हुए समाधि योग से वायु की उपासना इस मंत्र से करते हैं- जो वायुरूप भगवान प्राणियों में प्रवेश हो अपनी प्राण वृत्तियों से सबका पालन करता है, वह अन्तर्यामी हमारी रक्षा करे। दधिजल सागर से आगे पुष्कर द्वीप चौंसठ लाख योजन है यह चारों ओर जल समुद्र से घिरा हुआ है। इस खंड में ब्रह्माजी का आसनरूप एक कमल है। मानसोत्तर नाम पर्वत इस द्वीप के मध्य में है, इसका विस्तार व ऊंचाई दस हजार योजन है इसीके ऊपर पन्द्रह आदिक लोकपालों की चार पुरी हैं और इसी पर्वत पर सूर्य के रथ का उत्तरायण और दक्षिणायन पर नियत काल भ्रमण करता है। इसका अधिपति प्रियव्रत पुत्र वीतिहोत्र हुआ। उसके दो पुत्र रमणक और धातिकि नाम के

थे। इन्हीं नामों से दो खण्डों में इसका विभाग कर दोनों को स्वामी बना राजा वीतिहोत्र भगवान की अराधना में लग गया। उसके रहने वाले भगवान को आगे कहे हुए मन्त्र से जपते हैं- जो कर्म के रूप एक परमेश्वर अद्वितीय शान्त स्वरूप हैं उनको हमारा नमस्कार है। श्री शुकदेवजी बोले- पूर्वोक्त द्वीप से आगे लोकालोक नाम पर्वत है, जहां सूर्य प्रकाश रहता है, उसको लोक, और जहां प्रकाश नहीं रहता उसको अलोक कहते हैं। इन देशों के विभाग कर परमात्मा ने इनके चारों ओर घेरा बनाया है। डेढ़ करोड़ सात लाख योजन दूसरी भूमि है, वह आठ करोड़ उनतालिस लाख योजन है, और दर्पण के समान प्रकाशित है, उसमें यदि कुछ भी रक्खा जाये तो फिर हाथ नहीं लगता। इस कारण वहां कोई निवास नहीं करता। इसके आगे लोकालोक पर्वत है यह पर्वत तीनों लोकों के अन्त में त्रिलोकी की मर्यादा रूप परमेश्वर ने रचा है। त्रिलोकी का प्रकाश पीछे की ओर न पहुंच सके, इतनी इस पर्वत की ऊंचाई और चौड़ाई है। यह पर्वत पचास करोड़ योजन है, मेरु से चारों ओर साढ़े बारह करोड़ योजन दूर है। इस पर्वत के ब्रह्माजी ने १. ऋषभ, २. पुष्करचूड़, ३. बामन, ४. अपराजित, ये चार दिग्गज स्थित किये हैं। इन दिग्गजों की रक्षा भगवान् अपने पार्षदों सहित लोकालोक पर्वत पर विराज कर करते हैं। इस आलोक से परे योगेश्वरों के बिना गति नहीं है। जो इस ब्रह्मांड के प्रमाण का

निरूपण करते हैं। पूर्वोत्तर कपालों के मध्य भाग से जब सूर्य आता है तब पच्चीस करोड़ के प्रमाण से इस गोले में अवकाश करता है। पहले ब्रह्मांड अचेतन था उस समय सूर्य ने वैराजरूप से इसमें प्रवेश किया, इस कारण मार्तण्ड कहते हैं। ब्रह्मांड इनमें से उत्पन्न हुआ, इसलिए हिरण्य-गर्भ नाम प्रसिद्ध है। दिशा, आकाश स्वर्गादिलोक, पृथ्वी, दूसरे लोक, स्वर्ग, अपवर्ग, नरक, पाताल ये सब सूर्य ही से विभक्त हैं। देवता, पशु, पक्षी आदि मनुष्य, सर्प, बिच्छू आदि, लता तृण आदि सब प्राणियों के आत्मा, और तेज के अधिष्ठाता, सूर्य ही हैं इस कारण सूर्य की उपासना योग्य है।

राशि संचार और उनके द्वारा लोक यात्रा निरूपण

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! इस प्रकार प्रमाण और लक्षण से भूमंडल की स्थिति कही है। इसी प्रकार खगोल का प्रमाण है, इसी प्रमाण से नभोमंडल को समझना। जैसे मटर, चना, अरहर, उड़द आदि की दाल की जाय, तो उसके दोनों दल समान होंगे इसी प्रकार भूगोल और खगोल हैं, इन दोनों के बीच आकाश है। इस अन्तरिक्ष के बीच में सूर्य त्रिलोकी को तपाते हैं, और यही सूर्य उत्तरायण, दक्षिणायन विषवत गतियों से ऊंचे चढ़ना, नीचे उतरता व समान स्थान पर चलने के हेतु मकर राशियों में आकर

रात-दिन को बड़ा छोटा और समान कर देता है। जब मेष और तुला राशि में सूर्य आते हैं तब रात-दिन समान होते हैं। जब वृष आदि पांच राशियों में सूर्य आते हैं तब दिन बड़े रात्रियां एक महीनें में एक-एक घड़ी कम होती जाती है। वृश्चिक आदि पांच राशियों में सूर्य, दिन छोटा और रात बड़ी करते हैं। जब सूर्य दक्षिणायन आते हैं, तब दिन बढ़ते हैं और जब उत्तरायण आते हैं तो रात्रियां बढ़ती हैं। इस प्रकार सूर्य का मानसोत्तर और सुमेरु के बीच भ्रमण करने का मार्ग नव करोड़ इक्यावन लाख योजन है, और इन पर्वतों से पूर्व इन्द्रपुरी है। दक्षिण की ओर में धर्मराजपुरी है। इन से पश्चिम की ओर वरुणपुरी है। उत्तर में चन्द्रमा की पुरी है। इन पुरियों में जब सूर्य पहुंचता है तब उदय, मध्याह्न, अस्त और अर्धरात्रि हुआ करते हैं, जो प्राण प्रवृत्ति के कारण हैं। सुमेरु के चारों तरफ सूर्य इतनी ही दूर रहता है। जिससे सुमेरु मध्य पर सदा मध्याह्न ही रहे। जहां सूर्य उदय होता है उससे समान सूत्र पर अस्त होता है, और जहां मध्याह्न होता है, उससे समान सूत्र पर आधी रात होती है। जब सूर्य इन्द्रपुरी से चलते हैं तब पन्द्रह घड़ी पीछे यमपुरी पहुंचते हैं। यमपुरी से पीछे वरुणपुरी, फिर सौमपुरी, इन्द्रपुरी में सूर्य पहुंचते हैं। ठीक ५ घड़ी में एक पुर्यन्तर पर सूर्य भ्रमते हैं। अन्य चन्द्र आदि ग्रह ज्योतिष-चक्र में नक्षत्रों के साथ उदय होते हैं और नक्षत्रों के साथ ही अस्त होते हैं। सूर्य रथ का संवत्सर रूप एक

पहिया है, और उसके बारह मास, बारह आरे हैं। छः ऋतु, छः पुट्ठी हैं और सर्दी, गर्मी, बरसात तीन नाभी हैं और सुमेरु का मस्तक धुरी, एक भाग है दूसरा मानसोत्तर पर स्थापित है, जिससे पिरोया हुआ पहिया कोल्हू के समान मानसोत्तर पर घूमा करता है। रथ का प्रथम धुरा सुमेरु और मानसोत्तर तक फैला एक करोड़ सत्तावन लाख पचास हजार योजन का है और दूसरा इससे चौथाई है। इस का ऊपरी भाग ध्रुवलोक में बंधा हुआ है। उसमें बैठने का स्थान छत्तीस लाख योजन लम्बा और इससे चतुर्थांश चौड़ा है। गायत्री आदि छन्दों के नाम के सात घोड़े अरुण नाम सारथी के जोते हुए सूर्य के रथ को खींचते हैं। सारथी सूर्य के आगे बैठता है, परन्तु उसका मुख सूर्य के सन्मुख रहता है। अंगूठे के पोरे के समान साठ हजार बालखिल्य नाम ऋषि अनेक सूक्तों से स्तुति किया करते हैं। साढ़े नव करोड़ एक लाख योजन प्रमाण परिभ्रमण करते हुये सूर्य प्रत्येक क्षण में दो सहस्त्र योजन और दो कोस चलते हैं।

ग्रह की गति का वर्णन

राजा परीक्षित कहते हैं- हे ब्रह्मन् आपने कहा सूर्य सुमेरु और ध्रुव की परिक्रमा करके सब राशियों के सम्मुख बिना प्रदक्षिणा किये सुमेरु को वाम करके चलते हैं सो यह बात विरुद्ध प्रतीत होती है, इसको

समझाकर कहिये। श्रीशुकदेवजी बोले- जैसे चाक घूमता है, उस चाक के साथ उसके ऊपर चींटी आदि जीव दूसरी और चलते हों तो भी उसे चक्र की गति के अनुसार ही दीख पड़ते हैं। वे जीव चाक के भाग को छोड़ दूसरे भाग में आ जाते हैं। यदि सूर्य भी सीधी गति से चलते हों तो एक राशि पर ही नक्षत्र पर सूर्य का रहना है। जैसे कोई मनुष्य किसी ग्राम की प्रदक्षिणा को गया हो तो दूसरा पुरुष ढूंढ़ने को सीधे मार्ग से चलेगा तो पूर्वगत को नहीं पावेगा और उल्टा चलेगा तो उसको पावेगा, इससे सूर्य के विपरीत चलने में राश्यन्तर तथा नक्षत्रातंर पर हो जाना ही सूर्य के उलटे चलने का सबूत है। मेषादिक राशियों के नाम ही महीनों के नाम हैं। यह सब मास संवत्सर के अंग हैं। सब महीने पृथक भांति के होते हैं जैसे चन्द्रमा की गति से दो पक्ष का महीना होता है, सूर्य के सवा दो नक्षत्र भोग करने के समय को एक मास कहते हैं। वह पितरों का एक दिन रात है। सूर्य जितने समय में दो राशियों को भोग लेवे वह समय ऋतु नाम से प्रसिद्ध है। सूर्य अपनी गति से आकाश से अर्धभाग में परिभ्रमण करे उतने समय को अपय कहते हैं। इसी प्रकार सम्पूर्ण आकाश में सूर्य परिभ्रमण करें तो उतने समय को संवत्सर कहते हैं और एक वर्ष में मन्द, शीघ्र व समान गति के भेद से संवत्सर के परिवत्सर, इडावत्सर, अनुत्वसर, वत्सर ये भेद होते हैं। सौरमास गणना से छः दिन बढ़ते हैं, और चन्द्रमास

गणना में छः दिन घटने से ११ दिन का अन्तर पड़ता है इस प्रकार के अन्तर से सौरमास और चन्द्रमास आगे पीछे हो जाते हैं। परन्तु पांच वर्ष में दो अधिकमास हो जाने से हिसाब छटे वर्ष बराबर हो जाता है। फिर प्रतिपदा के दिन संक्रान्ति होने से छठा वर्ष संवत्सर संज्ञक होता है। दूसरा परिवत्सर, तीसरा इडावत्सर चौथा अनुवत्सर, पांचवां वत्सर। इन्हीं के नाम क्रम से सौर; चांद नक्षत्र, बार्हस्पत्य और सावन हैं। इनमें सौर वर्ष के 365, चान्द्र वर्ष 354, नक्षत्र के 324, बार्हस्पत्य के 390 और सावन वर्ष के पूरे 360 दिन होते हैं। सूर्य की किरणों से लाख योजन ऊपर चन्द्रमा है। बारह राशियों को चन्द्रमा दो पक्ष में भोगता है। और सूर्य की एक महीने की भुक्ति को चन्द्रमा सवा दो दिन में भोगता है। जब चन्द्रमा की कला बढ़ती है तब शुक्लपक्ष, और कला क्षीण होने से कृष्ण पक्ष कहा जाता है। पितरों की अहोरात्र को बनाता हुआ अन्नमय, प्राणियों का प्राण यह चन्द्रमा साठ घड़ी में एक नक्षत्र को भोगता है। पितर, भूत, पक्षी, सर्प, लता, झाड़ इन सबको तृप्त करते हैं, इससे चन्द्र को सर्वमय कहा है। चन्द्रमा से तीन लाख योजन ऊपर अश्विन्यादि नक्षत्र है, ये अभिजित सहित अट्ठाईसों नक्षत्र मेरु की दाहिनी प्रदक्षिणा करते हैं। इनसे दो लाख योजन पर शुक्र है यह शुक्र, सूर्य के समान चलता है। यह सबको शुभ फल देने वाला है। वर्षा रोकने वाले ग्रह को यह शान्त

कर देता है। शुक्र से दो लाख योजन ऊपर बुध है, यह चन्द्र पुत्र सबको शुभ फल देता है। जब यह सूर्य से पृथक दूसरी राशि पर हो जाता है, तब शून्य मेघ और अनावृष्टि आदि होने की सूचना करता है। इससे दो-दो लाख योजन ऊपर मङ्गल है यह वक्री न हो तो डेढ़ महीना में एक राशि को भोगता हुआ, बारहों राशियों को भोगता है। प्राय. यह प्राणियों को दुःख देता है। मंगल से दो लाख योजन दूर बृहस्पति हैं, यह वक्री न हों तो राशि को एक वर्ष तक भोगते हैं। बृहस्पति जी ब्राह्मणों के अनुकूल रहते हैं। बृहस्पति से दो लाख योजन पर शनैश्चर प्रकाश करते हैं, एक राशि पर घूमने में शनैश्चर जी को तीस महीने लगते हैं, तीस वर्ष में सब राशियों पर घूमना समाप्त करते हैं, यह प्राणियों को अशान्ति देने वाले हैं। शनैश्चर से ग्यारह लाख योजन दूर सप्त ऋषि हैं, यह ऋषि लोकों को शान्ति देते हुए विष्णु के ध्रुव स्थान की प्रदक्षिणा किया करते हैं।

शिशुमार चक्र वर्णन

श्रीशुकदेवजी बोले- हे राजन्! उससे ऊपर तेरह लाख योजन पर विष्णु पद है जहां श्री ध्रुवजी स्थित हैं। जिनकी चाल कभी रुकती नहीं, वेग वाले सब ग्रह नक्षत्र तारागणों को बांधने वाले एक-एक थम्भ रूप यह ध्रुवजी सदा प्रकाशमान रहते हैं। यह ग्रह आदि नक्षत्र भीतर और बाहर जुड़े हुए इस ध्रुव का ही अवलम्बन

किये हुए हैं। यह ग्रह आदि नक्षत्र भीतर और बाहर जुड़े हुए हैं और कल्प पर्यन्त चारों ओर घूमते रहते हैं। परन्तु वह उन परम पुरुष के अनुग्रह से आकाश में भ्रमण करते हैं। सिर को नीचे कर कुंडली बनाकर बैठे हुए इस ज्योतिष स्वरूप शिशुमार की पूंछ के अग्रभाग में ध्रुवजी हैं। उनसे निकट लांगूल पर ब्रह्मा, अग्नि, इन्द्र, धर्म से स्थित हैं और पूंछ की मूल में धाता, विधाता स्थित हैं। इस शिशुमार-चक्र की दाहिनी कुक्षि पर अभिजित आदि पुनर्वसु उत्तरचारी चौदह नक्षत्र हैं तथा चौदह बांई कुक्षि पर हैं। इस शिशुमार के अवयव दोनों पार्श्वों में समान संख्या वाले हैं। इसकी पीठ पर अजवीयी है जो आकाश में रात्रि के समय दीखती है तथा उदर में आकाश गङ्गा है। चक्र के दाहिने नितम्ब पर पुनर्वसु और बांये नितम्ब पर पुष्य स्थित है। आर्द्रा पिछले दाहिने पांव में है और आश्लेषा पिछले बांये पांव पर है। अभिजित दाहिनी नासिका पर है, उत्तराषाढ़ा नासिका के वाम है, श्रवण दाहिने नेत्र पर है, पूर्वाषाढ़ा बायें पर है, धनिष्ठ दाहिने कान पर, मूल बायें कान पर है। मेधा आदि आठ नक्षत्र उसके वाम पार्श्व की अस्थि में है। मृगशिर आदि उत्तरायणी आठ नक्षत्र उसके दक्षिणी पार्श्व की अस्थियों में उलटे लगे हैं। और शतभिषा दाहिने कन्धे पर, ज्येष्ठा बायें कन्धे पर जानो। ऊपर के ओठ पर अगस्त्य, नीचे के ओठ पर यम, मुख पर मङ्गल, लिंग पर शनि, पृष्ठ अंग पर

बृहस्पति, छाती पर सूर्य, हृदय में नारायण, मन में चन्द्रमा, नाभि पर शुक्र, दोनों स्तनों पर अश्विनी-कुमार, प्राण और अपान में बुध, गले पर राहु सब अंगों में केतु और रोमों में तारागण लगे हुए हैं। यही शिशुमार चक्र भगवान का देवमय स्वरूप है। सन्ध्या समय मौन भगवान के इस स्वरूप का दर्शन योग्य है। यह नक्षत्र, तारामय, अधिदैव रूप, त्रिकाल में मंत्र जपने वालों के पाप नष्ट करने वाले इस शिशुमार चक्र को जो तीनों समय नमस्कार करता है उसके उस समय के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

पातालादि सप्त अधोलोक वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- हे राजन् सूर्य के नीचे दस हजार योजन पर राहु है। असुरों में अधम सिंह पुत्रराहु दैत्य अयोग्य होने पर भी भगवान की कृपा से देव-पद और ग्रह भाव को प्राप्त हो गया है। सूर्य का यह मण्डल हजार योजन है। चन्द्रमा का बारह हजार योजन और राहु का यह मण्डल तेरह हजार का है। अमावस्या तथा पूर्णिमा को सूर्य या चन्द्रमा समसूत्र पर जब राहु को दीखते हैं तभी इनको पकड़ने दौड़ता है। इसको जान इन दोनों की रक्षा के अर्थ विश्व में सुदर्शन चक्र रख छोड़ा है, तब सुदर्शन चक्र को देख दो घड़ी तक उसके सन्मुख रह कांपता हुआ राहु दूर से ही लौट जाता है। जितने समय तक राहु खड़ा रहता है उतने समय का

ग्रहण कहते हैं। राहु से नीचे सिद्ध, चारण, विद्याधरों के स्थान हैं। उनसे यह राक्षस, पिशाच, प्रेत, भूतगण इनके विहार करने का स्थान है। उसी स्थान तक रहने वाला वायु रहता है। उस यक्षादिकों के स्थान के नीचे सौ योजन पर यह पृथ्वी के विकार, हंस, गीध, बाज, गरुड़ आदि पक्षी उड़ते रहते हैं उतनी दूर तक इस लोक भूलोक की सीमा है। पृथ्वी के नीचे सात पाताल हैं। भूमि से दस हजार योजन नीचे अतल, अतल से दस हजार योजन नीचे वितल उससे दस हजार योजन नीचे सुतल इसी क्रम से सब लोक स्थित हैं। अतल, वितल, सतल, तलातल, महातल, रसातल, पाताल ये सातों लोक पाताल स्वर्ग कहलाते हैं। इनमें भी काम, भोग, ऐश्वय, आनन्द, विभूति ये वर्तमान हैं। दैत्य, दानव, नाग ये सब वहां आनन्द पूर्वक भोग विलास करते हुए रहते हैं। इस सब पातालों में मयदानव की रची हुई अनेक पुरियां प्रकाशमान रहती हैं। इनमें देवलोक की शोभा से भी अधिक बाटिका और उपवन हैं। इन पातालों में सूर्य आदि ग्रहों के न होने से दिन रात्रि का विभाग नहीं है। इस कारण काल का भय नहीं है। यहां बड़े-बड़े नागों के सिर की मणियां अन्धकार दूर करती रहती हैं। इनमें रहने वालों की औषधि, रस, रसायन, अन्न, पान व स्थान दिव्य होने के कारण आधि, व्याधि, वृद्धावस्था, श्वेत केश होना, देह की व्यवस्था और विवर्णता, दुर्गन्धिता, पसीना, परिश्रम,

ग्लानि इत्यादि विकार नहीं होते। इन लोगों की मृत्यु भगवान के चक्र के बिना किसी से नहीं होती। अतल लोक में मय का पुत्र बलि रहता है जिसकी उत्पन्न की हुई ९६ मायाओं में से कितनी ही माया अब तक मायावी लोग धारण करते हैं। उसके जंभाई लेने से स्वैरिणी, कामनी और पुश्वली यह तीन प्रकार की स्त्रियां उत्पन्न हुई। वे स्त्रियां उस लोक में गये हुए पुरुष को हाटक रस पिला अपने साथ मिलाप करने योग्य बना उसके साथ रमण करती हैं। उस रस के पीने से दस हजार हाथियों का बल आ जाता है। वह 'मैं ईश्वर हूं', ऐसा अभिमान कर बकता फिरता है। वितल में भूतगणों से मुक्त महादेवजी सृष्टि बढ़ाने को पार्वती सहित मिथुन भाव से विराजमान हैं। इन शिव पार्वती के वीर्य से बनी हुई हाटकी नाम नदी बहती है, जहां अग्नि उस वीर्य को पीती है। उसके थूकने से हाटक नाम सुवर्ण उत्पन्न होता है। उसी के स्त्री पुरुष आभूषण बनाकर धारण करते हैं। सुतल में विरोचन का पुत्र बलि राज करता है। इन्द्र के हित को भगवान् ने वामन अवतार धारण कर त्रिलोकी का राज्य हरण कर बलि को तीसरे पाताल में पहुंचाया। हे राजन्! बलि की महिमा हम क्या वर्णन करें? जिसके द्वार पर नारायण गदा लिए अभी तक पहरा देते हैं। सुतल के दस हजार योजन नीचे तलातल है। उसमें मय दानव निवास करता है। महादेवजी ने इसके तीनों पुर भस्म करके

इसको यह स्थान दिया है। मय महादेवजी से रक्षित होने के कारण सुदर्शन चक्र का भी भय न रख इस लोक में पूजा जाता है। तलातल से नीचे महातल है उसमें सिर वाले क्रद्रू के पुत्र सर्पों का गण रहता है। इनमें कुहकत, क्षक, कालिया और सुषेण आदि मुख्य माने जाते हैं। ये लोग गरुड़जी से निरन्तर उद्विग्न रहा करते हैं। महातल के नीचे रसातल है, उसमें निवातकवच, कालेय, हिरण्यपुर के वासी ये तीन यूथ वाले पणिनाम दैत्य दानव रहते हैं। ये देवताओं के शत्रु हैं, परन्तु भगवान के चक्र से उनका अभिमान खंडन हो जाने से वे सब बिल में सर्प के समान रहते हैं और इन्द्र से भेजी हुई सरमा नाम कुत्ती की कही हुई वाणी को सुन इन्द्र से भय करते रहते हैं। रसातल के नीचे पाताल है उसमें नाग लोक के पति वासुकी आदि नाग रहते हैं। शंख, कलिक, महाशंख, श्वेत, धनञ्जय, धृतराष्ट्र, शंखचूडण, देवदत्त इत्यादि बड़े भारी शरीर वाले और महान् क्रोध वाले नाग हैं। उनके फणों की मणियें महा कान्ति वाली हैं, ये मणियां अपनी ज्योति से उस लोक के अन्धकार को नष्ट कर देती हैं।

शेष नाग नामक भगवान संकर्षण देव का विवरण

श्रीशुकदेवजी ने कहा- पाताल से तीस हजार योजन दूर शेषजी विराजमान् हैं। ये द्रष्टा और दृश्य को खींच

करणी भरणी

Hem Chander Bhargava & Co.
Delhi-6
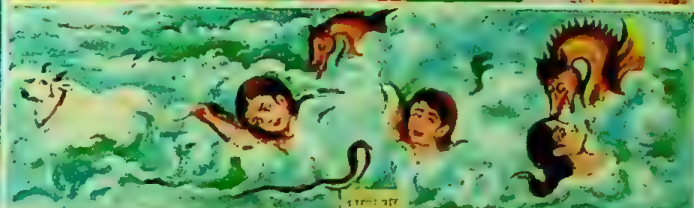
कर मिला देते हैं। इसी से इनको संकर्षण कहते हैं। शेषजी के सिर पर यह पृथ्वी धरी है, जब ये शेष प्रलय काल में जगत के संहार की इच्छा करते हैं तो इनको क्रोध से कुटिल भृकुटियों के मध्य से तीन-तीन नेत्रों से युक्त संकर्षण नाम ग्यारह रुद्र हाथ में त्रिशूल लिये हुए प्रकट होते हैं। अनन्त जिसका वीर्य है और लोगों के हितार्थ लीलामात्र इस धरणी को धारण कर रहे हैं, आप ही अपने आधार हैं, उन्हीं शेषजी का स्मरण करना उचित है। श्री शुकदेवजी कहते हैं कि हे परीक्षित! संसार सुख की इच्छा वाले पुरुष को जो-जो गति अपने कर्मों के अनुसार मिलती है वे सब पाताल से लेकर ध्रुवलोक पर्यन्त कर्म फल अन्य मनुष्यों की गति हैं इससे अधिक नहीं। अब आगे क्या वर्णन करूं?

नरक समूह का विवरण

राजा परिक्षित कहने लगे- हे महर्षे! इस लोक में पुरुष के सुख दुःख की, देव, मनुष्य, पशुआदि जीव की पृथक-पृथक गति परमेश्वर ने क्यों बनाई? श्रीशुकदेवजी बोले- हे राजन्! यहां कर्ता के त्रैविध्य से श्रद्धा भी तीन तरह की होने से कर्म की गति भी पृथक-पृथक होती हैं। जिसका शास्त्र में निषेध किया है उसीको अधर्म कहते हैं। पापी पुरुषों को नरकगति मिलती है, उनमें से मुख्य-मुख्य नरकों का वर्णन करते हैं। राजा परीक्षित ने पूछा, हे भगवन्! किसको नरक

कहते हैं, श्री शुकदेवजी कहने लगे- ये नरक त्रिलोकी के अन्तर्गत दक्षिण दिशा में पृथ्वी के नीचे और जल के ऊपर है। जहां पितरों का राजा धर्मराज अपने दूतों द्वारा मृतकों को बुला कर चित्रगुप्त आदि अपने गणों के साथ उनके दोषों को विचार, दण्ड देता है, सो श्रवण करो। तामिस्त्र, अन्धतामिस्त्र, रौरव, महारौरव, कुम्भीपाक, कष्टसूत्र, असिपत्रवन, शूकरमुख, अन्धकूप, कृमिभोजन, संदेश, तप्तसूर्मि वज्रकंकट, शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अबीचिं अयपान ये इक्कीस नरक हैं, और क्षारकर्दम, रक्षोगण, भोजन, शूलप्रोत, दंदशूक, अवटनिरोधन पर्यावर्तन, सूचीमुख ये सात पृथक हैं, सब मिलकर अट्ठाईस नरक हैं इन अट्ठाईसों की यातना और निमित्त रूप कर्मों का निरूपण कहते हैं। जो पुरुष पराया धन, पुत्र, स्त्री हरण करता है उसको यमदूत तामिस्त्र नरक में पटक देते हैं, इसमें अन्न जल नहीं मिलता और दण्ड ताड़ना होती है। जो पुरुष छल से किसी की स्त्री से सम्भोग करता है वह अन्धतामिस्त्री नरक में पड़ता है वहां जीव पीड़ा से बुद्धि रहित तथा अन्धा हो जाता है। जो पुरुष मैं हूं, मेरा है, ऐसी ममता कर सबसे द्रोह करके अपने ही कुटुम्ब का पालन करता है, वह रौरव नरक में गिरता है। इसी प्रकार महारौरव है, इसमें जो अपने ही शरीर को पालता है वह गिरता है। वहां पर कृब्यादि रुरू उसके मांस को

नोंच कर खाते हैं। जो जीते हुए पशु पक्षियों को पकाता है उसको यमदूत कुम्भी पाक में औटाते हुए तेल में भूनते हैं। जो पिता, ब्राह्मण व वेद से द्रोह करता है वह कष्ट सूत्र में पड़ता है। उसकी भूमि ऊपर से धूप और नीचे से अग्नि से तपा करती है। जो बिना विपत्ति आये वेद-मार्ग को त्याग पाखंड में चलता है, उसको असिपत्र नरक में डाल कोड़ों से पीटते हैं। जो कोई राजा अथवा कर्मचारी निरपराधी को दंड देता है और ब्राह्मण बध का दंड देता है वह शूकर मुख नर्क में गिरता है, उसको कोल्हू में डालकर पेलते हैं। मच्छर व खटमल आदि जीवों को जो मनुष्य पीड़ा देता है वह अन्धकूप नरक में पड़ता है। वहाँ जिनको दुःख दिया है सो वह जीव उसको दुःख देते हैं। जो मनुष्य भोजन करने योग्य उत्तम पदार्थ को दूसरे लोगों को बांट कर दिये बिना, अकेला खा लेता है और पञ्चमहायज्ञ नहीं करता है, उस मनुष्य को कृमिभोजन नरक में पटकते हैं। यहाँ कीड़े के रूप में हुए इस प्राणी को दूसरे कीड़े खाते हैं। जो मनुष्य चोरी से, बलात्कार से, सुवर्ण, रत्न आदि हरण करता है, वह सन्देश नरक में गिरता है वहाँ उसकी खाल को यमदूत लोहे के तपे चिमटे से तोड़ते हैं और जो मनुष्य नहीं रमण करने योग्य स्त्री से रमण करता है, दोनों यमलोक में कोड़ों से पीटे जाते हैं और उस पुरुष को तपाई हुई लोहे की स्त्री से और स्त्री को तपाये हुए लोहे के पुरुष से लिपटाते हैं। इस नरक का सप्तभूर्मि

नाम है। जो पुरुष, पशु आदि के साथ मैथुन करता है उसको बज्रकंटक शाल्मली नरक भोगना पड़ता है, वहां यमदूत कांटों वाले शाल्मली के वृक्ष पर चढ़ कर खींचते हैं। जो राजा या कर्मचारी पाखंडी बन मर्यादा को तोड़ते हैं वे वैतरणी नरक में पड़ते हैं, वह सब नरकों की खाई हैं, जहां जलजन्तु पापियों को भक्षण करते हैं, परन्तु उनके प्राण नहीं निकालते। विष्टा, मूत्र, राध, रक्त, केश, नख, अस्ति, मेद, मांस, चर्बी इनको बहाने वाली उस नदी में पड़े अनेक दुःख पाते हैं। जो मनुष्य इन लोकों में शूद्र के पति होकर शौच, आचार नियम को त्याग कर निर्लज्ज हो वेश्या आदि नीच स्त्रियों से रमण करते हैं, वे पूयोद नरक में गिरते हैं वहां राध विष्ठा, खखार मल से भरे हुए सागर में पड़ कर वही पदार्थ खाना पड़ता है। हे राजन्! जो उस जगत में ब्राह्मणादि वर्ण होकर कुत्ता, गन्धर्व, बकरा पालते हैं और शिकार को खेल मानकर हिंसा करते हैं, प्राणरोध नरक में पड़ते हैं। वहाँ उनको यमदूत बाणों से बींधते हैं और जो पाखण्ड से रचे हुए यज्ञों में पशुओं को मारते हैं, उनको दूत विशसन नरक में पटक कर नाना प्रकार की पीड़ा दे अङ्गों को छिन्न-भिन्न किया करते हैं। जो काम से मोहित हो अपने गोत्र की स्त्री से मैथुन करता है, उनको लाला भक्षण नरक में पटक कर वीर्य की नदी में उसको वीर्य पिलाते हैं और जो इस संसार में चोरी करते हैं, गृह में आग लगा देते हैं, दूसरों को विष

पिला देते हैं, राजा अथवा राजसेना, ग्राम व मेले को लूट लेते हैं ऐसे मनुष्यों पर सात सौ बीस कुत्तों को यमदूत छोड़ते हैं वे कुत्ते आदमी को फाड़कर अस्थियों सहित चबा जाते हैं। जो गवाही देते समय, व्यवहार दान में असत्य बोलता है, वह अर्वीचि नरक में पड़ता है। उसको सौ योजन ऊंचे पर्वत से नीचे को सिर करके पटकते हैं। जहां पाषाण भूमि, जल के समान जान पड़ता है। जो पुरुष अहङ्कार करता है और श्रेष्ठों का आदर नहीं करता वह क्षार कर्दम नरक में नीचे को मुख कर पटका जाता हैं, वहां दुरंत क्लेश भोगने पड़ते हैं। जो किसी पुरुष को मार होम देते हैं वे रक्षोगण भोजन नरक में पड़ते हैं। पूर्व जन्म में मरे हुए मनुष्यों के आकार वाले राक्षस गण प्राणियों को त्रास दिया करते हैं वे दहशूक नरक में पड़ते हैं, वहां पांच मुख अथवा सात मुख वाले सर्प उनको मूसे के समान निगल जाते हैं। जो पुरुष गढ़े, कोठे और गुहादिकों में प्राणियों को बन्द कर पीड़ा देते हैं वे अवटनिरोधन नरक में जाते हैं वहां उनको ऐसे ही बन्द कर विष सहित धुओं से क्लेश प्राप्त कराते हैं। जो मनुष्य गृहस्थ को अतिथि अभ्यागतों पर क्रोध करता है वह पर्यावर्तन नरक में जाता है वहां गीध काक, बटेर आदि उसके नेत्रों को निकाल लेते हैं। जो अभिमानी धन को मद से देखता है, जिसको किसी का विश्वास नहीं होता वह सूचीमुख नरक में पड़ता है। इसके अंगों को दूत छेदन कर डोरी

में पोहते हैं और कहते हैं कि रे दुष्ट! तैने बहुत-सी थैलियां सीम-सीमकर रक्खी ये तिसका फल है। इस प्रकार के हजारों नरक धर्मराज की पुरी में हैं, उनमें से कितने एक नारकियों का वृत्तान्त मैंने कह दिया है, और अनेकों का नहीं कहा है। हे राजन्! जो धर्म करने वाले हैं वे स्वर्ग आदि लोकों में जाते हैं, और वहां वे स्वर्ग नरक में अपने पुण्य पाप फल भोगकर जो कुछ पुण्य पाप शेष रहता है उससे पुनर्जन्म ले पृथ्वी पर आते हैं।

— ० —

★ छठवां स्कन्ध प्रारम्भ ★

अजामिल के उपाख्यान में यमदूत और विष्णु दूत

परीक्षित ने कहा- हे मुने! जिस उपाय से मनुष्य इन पीड़ा वाले नरकों में न जाये, ऐसा उपाय वर्णन करो। श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! जो मनुष्य इस लोक में पापों का प्रायश्चित नहीं करता, वो अवश्य ही इन नरकों में पड़ता है। एक वैद्य था उसने औषधालय खोल यह विज्ञापन लगाया कि हमारे यहां प्रत्येक रोग की चिकित्सा होती है। विज्ञापन को पढ़ कर एक जिज्ञासु वैद्य के पास आ कहने लगा कि पाप रोग की औषधि क्या है? यह सुन वैद्य मौन हो रहा परन्तु एक अवधूत ने उत्तर दिया- सुनो! पहले तू वैराग्य बीज ले, और सन्तोष रूप पत्ते इकट्ठे कर, उनसे विनय रूप हर्र तैयार कर, उसमें धर्म का बहेड़ा और आदर का आंवला मिला, श्रद्धा रूप इमामदस्ते में कूट, विचार की हांडी में भर, उसमें प्रेमजल डाल, उत्सव की आंच दे, जब उफान आवे तब छानकर ईर्षा, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह रूप मल निकाल कर फेंक दे। फिर अज्ञान रूप प्याले में भर भगवद्गुणानुवाद रूप शहद मिलाले, फिर पाप रूप रोग के कंठ में पीजा। पाप रोग दूर हो जायेगा। राजा परीक्षित ने प्रश्न किया- हे ब्रह्मन्! जब मनुष्य देखता है कि पाप किया और इस को राजदण्ड

मिला इसको देखकर भी उसी कर्म को करता है। तब पाप का प्रायश्चित क्यों कर हो सकता है। राजा परीक्षित की शंका सुन श्री शुकदेवजी बोले- प्रायश्चित कर्म करने से पाप निवृत होता है, परन्तु यह पाप समूल निवृत नहीं होता क्योंकि उसका अधिकारी विद्वान नहीं है, इससे विचार करना ही प्रायश्चित है। तप, ब्रह्मचर्य, शम, दम, दान, सत्य, शौच, यम नियम से धीर और धर्मज्ञाता जन किये हुए पापों को भी इस प्रकार नष्ट कर देते हैं जैसे दावानल वृक्षों को भस्म कर देता है। नारायण से विमुख रह जो चाहे कि मैं प्रायश्चित कर पवित्र हो जाऊंगा तो उसको प्रायश्चित पवित्र नहीं कर सकते। जिन मनुष्यों ने एक बार भी भगवान चरणों में मन लगाया है, वे स्वप्न में भी यमदूतों को नहीं देखते। इस पुरातन इतिहास में विष्णु दूत और यमदूतों का सम्वाद है सो तुम श्रवण करो।

कान्यकुब्ज देश में अजामिल नाम ब्राह्मण था। परन्तु वैश्या की संगति से दूषित होने से उसके सदाचार नष्ट हो गये। उसके दस पुत्र थे। उनमें सबसे छोटे का नाम नारायण था। वह माता पिता को बहुत प्यारा था। वृद्ध अजामिल उस बालक पर आसक्त हो उसका खेल देख अति आनन्दित होता था। जब आप भोजन करता तब स्नेह से कहता- अरे नारायण! आ खाले, पानी पीता तो कहता- अरे नारायण! पानी पी ले, सोता तो कहता- नारायण! आ सो जा। इस प्रकार छोटे पुत्र

में मन लगे रहने से कालागमन को वह न जान सका। उसे लेने को आये हुए यम दूतों को देख व्याकुल हो नारायण पुत्र को उसने दबी वाणी से पुकारा- अरे बेटा नारायण! आइयो। अजामिल के मुख से अपने स्वामी नारायण के नाम को श्रवण करते ही भगवान् के पार्षद तुरन्त उसके समीप आ पहुंचे और दासी पति अजामिल की आत्मा यम दूतों से निवारण कर के बोले- तुम लोग इसे मत छूना। तब विष्णु दूतों से धर्मराज के दूत बोले- कि तुम कौन हो, जो हमको दुराचारी, पापी को यमपुरी ले जाने से रोक सकते हो! विष्णुदूत बोले- यदि तुम धर्मराज के आज्ञाकारी हो तो धर्म का लक्षण कहो? पशु तो कर्म करते ही नहीं, करने वाले मनुष्यों में से किस-किस को दण्ड मिलता है और जितने कर्म करने वाले हैं वे सभी दण्ड पाने लायक हैं या कोई भी दण्ड पाने लायक नहीं है। वो कहो! यह सुन यमदूत बोले- हे देवगणो! कर्म करने वालों से शुभ व अशुभ कर्म बनते ही रहते हैं, इसलिये वह कर्म के किए बिना नहीं रहता 'नाहिकश्चत् क्षणामपि जातु तिष्ठेत्यकर्म कृत'। जिसने लोक में जितना धर्म व अधर्म किया हो वह परलोक में उतना ही फल भोगता है। यह जन्म वर्तमान, भूत, भविष्य दोनों जन्म का बोधक होता है। जैसे निद्रा से युक्त हुआ पुरुष स्वप्न देह को ही जानता है, परन्तु जागृत शरीर को स्वप्न के मध्य नहीं जानता, वैसे ही जन्म होने से नष्ट स्मृति जीव, अपने पूर्वाअपर

जन्म को नहीं जानता। वह जीव जिसने काम, क्रोध, मोह, मद, ईर्षा नहीं छोड़े, वो यद्यपि इच्छा नहीं करता है। जैसे रेशम का कीड़ा अपने पूरे हुए रेशम में लिपट कर मर जाता है, वैसे ही यह जीव अपने किए कर्मों से ग्रसकर मोह को प्राप्त होता है। यह अजामिल वेदपाठी ब्राह्मण था और शील स्वभाव वाले गुणों से युक्त था, अहङ्कार रहित हो गुरु, अग्नि, अभ्यागत तथा वृद्धों का सेवक साधु, सत्य बोलने वाला और किसी की निन्दा नहीं करने वाला था। एक समय वह पिता की आज्ञा से वन में गया, वहां से फल, फूल, समिधा, कुशा लेकर लौटा। मार्ग में एक कामी पुरुष को दासी के साथ रमण करते देखा, मद से उन्मत वह वेश्या बेसुध थी। उसकी कमर का वस्त्र ढीला था, उसके साथ वह कामी क्रीड़ा करता हुआ गाता नाचता चलता था। उसकी भुजाओं से लिपटी स्त्री को देख मोहित हो अजामिल काम के वश हो गया। ब्राह्मण में जितना धीरज और ज्ञान था, उसके बल से बिलम्ब तक अपने चित्त को रोका परन्तु कामदेव से कम्पायमान मन को न रोक सका। वैश्या निमित्त काम के कारण इसका अनिष्ट प्रारब्ध उदय हुआ, सो उस काम से ग्रसित हो बेसुध हो गया। न्याय अन्याय से वह विविध पदार्थों को ला लाकर वैश्या को प्रसन्न करने लगा और मूढ़-बुद्धि हो उस कुटुम्बिनी वैश्या के कुटुम्ब को पालने लगा। इस कारण इसको हम यमराज के समीप ले

जायेंगे, क्योंकि इसने अपने पापों का कोई प्रायश्चित नहीं किया, अब दण्ड पाने से शुद्ध हो जावेगा।

दूतों का अजामिल को विष्णु लोक ले जाना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- हे राजन्! इस प्रकार वे विष्णु के पार्षद यमदूतों के वचन सुनकर विस्मय को प्राप्त हो उससे बोले कि बड़े कष्ट की बात है, यमराज आदिकों की सभा में भी अधर्म का स्पर्श होता है। जहां पाप रहित पुरुषों को वृथा दण्ड दिया जाता है। हे यमदूतो! यह अजामिल करोड़ों जन्मों के पापों का प्रायश्चित कर चुका, जो कि हमने भगवान् का नाम उच्चारण किया है। अजामिल पापों का प्रायश्चित कर चुका है, इस कारण तुम इसको पाप करने वाले के लोक में न ले जाओ। यदि कहो कि इसने पुत्र का नाम लिया है, तुम्हारे स्वामी का नहीं जो कि पुत्रादिकों के संकेत से या उपहास्य से, गीत पूर्ति में निन्दा से विष्णु का नाम लिया जाय तो भी पाप दूर होते है। जैसे अति प्रबल औषधि बिना जाने खाई जावे तो भी वह अपना गुण करती है। ऐसे ज्ञान अथवा अज्ञान से लिया हुआ हरिनाम पापों को दूर करता है। हे यमदूतों! इस विषय में यदि तुमको संशय हो तो अपने स्वामी से पूछो! हे राजन्! विष्णु दूतों ने भगवद्धर्मों का निर्णय कर उस अजामिल को धर्मराज के दूतों से छुड़ा दिया। वे

प्रत्युत्तर पाने पर यमपुरी लौटे और यमराज के समीप आकर जो बात हुई थी, सब कह सुनाई। इस प्रकार अजामिल ने यम की फांसी से छूट सावधान होकर उन विष्णु पार्षदों को प्रणाम किया। विष्णु दूतों ने अजामिल का भाव जान लिया, इस कारण उसके सन्मुख से उसी समय अन्तर्ध्यान हो गये। धर्मराज के दूतों के मुख से तीनों वेदों का सगुण धर्म और विष्णु पार्षदों के मुख से भगवत् प्रणीत निर्गुण धर्म सुनकर शीघ्र ही भगवान् में भक्तिमान हुआ। हरि भगवान् के महात्म्य को सुनने से अपने पापों का स्मरण कर वह अजामिल पछताने लगा। अहो! मन वश में नहीं रखने से मुझे कष्ट हुआ, मैंने शूद्रों के गर्भ में पुत्र रूप में आत्मा को उत्पन्न करके अपने ब्राह्मणत्व को डुबो दिया। माता-पिता को त्यागकर नीच के समान काम किया। हाय! उस समय मेरे ऊपर बज्र नहीं गिरा। कुछ काल पहले यह क्या मैं स्वप्न देख रहा था, नहीं स्वप्न नहीं हो सकता, यह सब तो मैंने नेत्रों से देखा था, कई पुरुष फांसी के लिये घसीटे ले जाते थे, इस समय वह कहां चले गये? और अब वे चार सिद्ध पुरुष कहां चले गये! जिनके दर्शनों से हमारे नेत्र तृप्त हो गये, जिन्होंने मुझे फांसी से छुड़ा दिया। मुझ अभागे को उनका दर्शन होने से अनुमान होता है, कि पूर्व जन्म का मेरा पुण्य था और आगे भी कुछ मंगल होने वाला है। कहां मैं पापी, कृतघ्न, निर्लज्ज और कहां भगवान का

नाम 'नारायण'। अब मैं चित्त, इन्द्रिय, प्राण को बस कर ऐसा यत्न करूंगा जिससे फिर आत्मा को अन्धकार नरक में न डुबाऊं। अब मैं अहङ्कार ममता त्यागकर भगवान के कीर्तन से शुद्ध हुए मन को भगवान में लगाऊंगा। हे राजन! साधुजनों को क्षण मात्र संगति होने से ही जब उसके मन में वैराग्य हो गया तब वह स्त्री पुत्र आदिकों में बंधे हुए स्नेह को काट कर गंगा द्वार चला गया। एक देव मन्दिर में बैठ योग समाधि लगा इन्द्रियों को वश में कर अपने मन को आत्मा में लगाया। तब उन्हीं चारों पार्षदों को अपने आगे खड़ा देख सिर झुका प्रणाम किया। उनका दर्शन कर शरीर को गंगा तट पर त्याग पार्षद स्वरूप को प्राप्त हो गया। जब पापी अजामिल हरि नाम लेकर बैकुण्ठ को प्राप्त हुआ तो फिर जो भक्ति से भगवान नाम उच्चारण करते हैं, उनका उद्धार हो जाये तो फिर कहना क्या है।

यमराज द्वारा हरिनाम की महिमा का वर्णन

राजा परीक्षित कहने लगे- हे भगवन्! जब भगवान के पार्षदों ने यमदूतों को पीटकर भगा दिया, तब उन्होंने अपने स्वामी से क्या कहा? अपनी आज्ञा भंग होना सुन यमराजजी ने उनको क्या उत्तर दिया? यमराज के दंड का भंग हो जाना, आज तक हमने नहीं सुना। इस बात से लोगों को बड़ा सन्देह होगा, इस कारण आप

समझाकर कहिये। श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन्! जब भगवान के पार्षदों ने धर्मराज के दूतों का उद्यम नष्ट कर दिया। तब वे स्वामी से जा कहने लगे- हे स्वामिन्! अब हमें आपकी नौकरी नहीं करनी है। सब कर्म करने वालों का एक दंड देने वाला होवे तो ठीक व्यवस्था रहती है। इस समस्त विश्ववर्ती जीवों के अधीश्वर आप ही हो और उनके पुण्य पाप के विवेचन कर दंड देने वाले आप ही हो। परन्तु हमें मालूम हो गया है कि इस समय आपका दिया हुआ दंड नहीं चलता, क्योंकि चार सिद्धों ने आज आपकी आज्ञा को भंग कर डाला। आपकी आज्ञा से हम उस अजामिल को लाते थे तो वहां उन सिद्धों ने उस पापी को छुड़ा दिया ये चार सिद्ध कौन थे सो कहो। यमराज बोले- वे चारों विष्णु के दूत हैं जो भक्तजन की सर्व भांति रक्षा करते हैं। हे पुत्रों! हरि के नामोच्चारण की महिमा देखो कि अजामिल भी मृत्युपाश से छूट गया। भगवान के गुण, कर्म और नामों का संकीर्तन करना बस इतना ही प्रायश्चित पाप दूर करने में बहुत है। हरि नाम लेने वाले मेरे दंड देने योग्य नहीं हैं। समान दृष्टि से भगवान की शरण में प्राप्त होते हैं, पवित्र कथाओं से गाये जाते हैं, सो तुम आज के बाद ऐसे पुरुषों के समीप कभी भी मत जाना। तब यमदूत बोले- महाराज! अब ये कहो कि किस-किस को आपके पास लावें? तब यमराज बोले- जो मनुष्य श्री भगवान के चरणारविन्द से विमुख हैं,

उनको और जो घर में तृष्णा बांधकर बैठे हुए हैं उन लोगों को यहां लाओ। इस प्रकार दूतों को समझाकर श्री भगवान की प्रार्थना करते हैं। हे भगवन्! आप हमारे दूतों से तिरस्कार किये गये हैं इसलिये हम सबको क्षमा करें, आप भक्तों के अपराध को क्षमा कर देते हैं। स्वामी से कही हुई भगवान की महिमा को सुन दूत उनका स्मरण करने लगे, इसके अनन्तर वे दूत भगवान भक्तों के सन्मुख कभी नहीं गए।

दक्ष की सृष्टि और नारद को शाप

परीक्षित कहने लगे- हे मुनीश्वर! आपने जो स्वायम्भुव मन्वन्तर में देवता असुर, मनुष्य, नाग, मृग और पक्षी इनका तृतीय स्कन्ध में संक्षेप से वर्णन किया है अब उसको विस्तार से सुनना चाहता हूं। श्रीशुकदेवजी बोले- हे राजन्! जब राजा प्राचीनबर्हि के प्रचेता नाम दस पुत्र तप कर के समुद्र से निकले तब उन्होंने सब भूमि, वृक्षों से व्याप्त देखी। तब प्रचेताओं ने तप के प्रभाव से वृक्षों को भस्म करने की इच्छा से मुख में से वायु और अग्नि को उत्पन्न किया। उससे वृक्ष भस्म होने लगे, तब वृक्षादिकों के राजा चन्द्र प्रचेताओं का क्रोध शान्त करने को बोले- हे महाभागो! आप हम वृक्षों को क्यों भस्म करने की इच्छा करते हो? जिस मार्ग पर तुम्हारे पिता, पितामह और प्रपितामह चले हैं, उसी पर चलो। अब इन शेष वृक्षों को भस्म

कहा समझ लिया, अब हम जाते हैं, हमारा प्रणाम है। इस प्रकार वे हर्यश्व नारद को प्रणाम का मोक्ष-मार्ग में प्रवृत्त हो सके और ऐसे-मार्ग को गये जहां से लौटकर नहीं आये। कुछ काल व्यतीत होने पर दक्ष ने नारद से सुना कि सब पुत्र अदृश्य हो गये हैं। यह जान दक्ष दुःखित हो पुत्रों के निमित्त शोक करने लगे। ब्रह्माजी दक्ष के समीप आये और विविध वचनों से समझाकर गए। तब दक्ष ने फिर प्रजा रचने की इच्छा से अपनी पांचजनी स्त्री से शबलाश्व नाम एक हजार पुत्र उत्पन्न किये। वे सब पिता की आज्ञा मान प्रजा रचने को नियम धारण कर जहां अपने बड़े भाई सिद्ध हुए थे, उसी तीर्थ के समीप जाकर प्राप्त हुए। वहां वे ओंकार मंत्र का जप करने लगे। ''ॐ नमो नारायण पुरुषाय महात्मने, विशुद्ध-सत्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि'' इस प्रकार तप करते शबलाश्वों के समीप आ नारद ने पहले की नांई उन्हीं कूट वचनों को कह उनसे इतना कहा कि हे दक्ष पुत्रों! तुम अपने भाईयों पर प्रीति रखने वाले हो तो भाईयों के मार्ग का अनुसरण करो। नारदजी केवल इतना ही कह चले गये। उनके आदेशानुसार शबलाश्वगण भी अपने बड़े भाईयों के मार्ग को चले गये। हे राजन्! जब दक्ष ने सुना कि नारद की सम्मत्ति से शबलाश्व भी विनाश को प्राप्त हुए तब पुत्रों के शोक से विह्वल दक्ष क्रोधित हो नारदजी से बोला अरे असाधु? हमारे पुत्र धर्म में प्रवृत थे, तूने उनको भिक्षुकों

के मार्ग का उपदेश दिया। वे तो अभी देवऋण, पितृऋण, ऋषिऋण, किसी से भी नहीं छूटे और उन्होंने कर्म सम्बन्धी विचार भी नहीं किया था। हे पापी! तूने हमारे पुत्रों के दोनों लोक बिगाड़ दिये। विष्णु भक्तों में दुष्ट तू ही है। तेरा यह विचार कि वैराग्य से उपशम और उपशम से स्नेह की फांसी टूट जाती है ये मिथ्या है। क्योंकि ज्ञान बिना तेरे द्वारा मति चलायमान करने से पुरुषों को वैराग्य नहीं हो सकता। जब तक गृहस्थाश्रम के दुःखों को नहीं भोग लेता है तब तक मनुष्य दुःख के हेतु को नहीं जानता। तुम्हारे इस अपराध को एक बार तो हमने सह लिया है, परन्तु तूने दूसरी बार पुत्रों को भ्रष्ट कर अमंगल किया इसलिये तेरा जन्म भटकते ही बीतेगा। नारद मुनि ने दक्ष के शाप को मौन हो अंगीकार कर लिया।

दक्ष की कन्याओं का वंश वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- फिर दक्ष ने ब्रह्माजी की आज्ञा से असिक्नी नामा स्त्री से साठ कन्यायें उत्पन्न कीं। दस धर्म को, तेरह कश्यप को, सत्ताईस चन्द्रमा को और भूत नाम के ऋषि अंगिरा व कृशाश्व को दो-दो कन्यायें दीं, शेष छः कन्यायें ताक्ष्य ऋषि को दान कर दीं। भानु, लम्बा, ककुभ, जामि विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहीर्ता, संकल्या ये धर्म की स्त्री हुईं। भानु के देवऋषभ से इन्द्रसेन पुत्र हुआ। लम्बा के

विद्योत और विद्योत के स्तनयित्नु हुआ। ककुभ के संकट, संकट के कीकट और कीकट के दुर्ग हुए और जामि का स्वर्ग फिर स्वर्ग का नन्दि हुआ। विश्वा के विश्वे देवता पुत्र हुए, इनके सन्तान नहीं हुई, इससे ये प्रजा रहित रहे। साध्य के साध्या नाम देव उत्पन्न हुए। मरुत्वती के मरुत्वान् जयन्त दो पुत्र हुए। मुहूर्ता से मौहूर्तिक देवगण हुए। संकल्प के कामना हुआ, वसु के पुत्र द्रोण, प्राण, ध्रुव, कर्क, अग्नि, दोष, वसु, विभावसु ये आठ वसु हैं। द्रोण की अभिमति स्त्री से हर्ष, शोक, भय आदि हुए। प्राण के उर्जस्वती से सह आयु, पुरोजव ये पुत्र हुए, ध्रुव की धरणी स्त्री से अभिमानी देवता हुए। अर्क की वासना पत्नी से तर्ष, भय आदि अनेक पुत्र हुए। और अग्नि की वसोर्धारानामा स्त्री से द्रविणक आदिक पुत्र हुए और अग्नि के कृतिका से स्कन्ध हुआ स्कन्ध के विशाख आदि हुए, दोष के शअर्वरी से हरि अंश शिशुमार हुआ। वसु के आंगरिसी नाम स्त्री से विश्वकर्मा हुआ। विश्वकर्मा के चाक्षुष मनु हुआ, मनु के विश्वेदेव और साध्यगण हुए। विभावसु उषा नाम स्त्री से व्युष्ट, रोचिष, आतप हुए। आतप के पंचयाम नाम पुत्र हुए। भूत के सरूपा से करोड़ों रुद्र हुए। रैवत, अज, भव, भीम, वाम, उग्र, वृषाकपी, अजैकपाद, अहिर्वुधन्य, बहुरूप, महान् ये ग्यारह रुद्र प्रधान हैं, जो दूसरी स्त्री से प्रकट हुए। प्रजापति अङ्गिरा की स्वधा स्त्री ने पितृगणों

को और सती स्त्री अधर्वांविरस वेदजी को पुत्र मान लिया। कृशास्त्र के अर्चिस से धूम्रकेश और नामवेदशिरा, देवल, वयुन, मनु प्रकट हुए। आक्ष्र्य ने भी बिनता, कद्रू, पतंगी, यामिनी नामक स्त्रियों से गरुड़, नाग, पक्षी और शालध उत्पन्न किये। चन्द्रमा की कृतिका आदि सत्ताईस स्त्रियां थीं, परन्तु चन्द्रमा रोहिणी से प्रेम रखता था, इस कारण अन्य कन्याओं को दुखी देख दक्ष ने चन्द्रमा को शाप दिया, तुझे क्षय रोग हो जावे। शाप के कारण उन पत्नियों से कोई पुत्र नहीं हुआ। बाद में चन्द्रमा की प्रार्थना से प्रसन्न हो दक्ष ने कहा कृष्ण पक्ष में तेरी कला क्षीण होगी और शुक्ल पक्ष में पूर्ण हो जाया करेगी। कला तो मिल गई परन्तु सन्तान नहीं हुई। हे राजन्! कश्यपजी की अदिति, दिति, दनु काष्ठा, अरिष्ठा, सुरमा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सुरमा और तिमि ये स्त्रियां हुईं। इनमें तिमि से जल-जन्तु, सरमा में चर हुए। ताम्रा से विहंगम गण मुनि से अप्सरायें, क्रोधवंशा से दंदशूक सर्प आदि, इला से वृक्ष, सुरमा से राक्षस, अरिष्ठा से गन्धर्व, काष्ठा से एक खुर वाले पशु हुए। दनु से इकसठ पुत्र हुए। उनमें स्वभानु की सुप्रभ कन्या का नमुचि दैत्य ने पाणिग्रहण किया और बृषपर्वा की शर्मिष्ठा के साथ ययाति ने विवाह किया। वैस्वानर नाम दनु पुत्र की चार कन्यायें हुईं। उनमें उपदानवों के साथ हिरण्याक्ष ने, हयशिरा के साथ क्रतु ने और

पुलोमा व कालिमा के साथ कदूयप ने विवाह किया। उनके पौलोम कालकेय नाम साठ हजार दानव उत्पन्न हुए। हे राजन्! तुम्हारे पितामह अर्जुन जब स्वर्ग आये तब उन दानवों को अर्जुन ने इन्द्र को खुश करने को अकेले ही मार डाला। दिति के हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु हुए और सिंहकी नाम कन्या हुई। विप्रचित्त के सिंहकी से पुत्र हुए। उनमें राहु सबसे बड़ा था। अदिति के बारह आदित्य हुए। उनमें विवस्वान् के संज्ञा स्त्री से श्रद्धदेव, मनु, यम और यमुना का जन्म हुआ। वही संज्ञा घोड़ी बनी, तब अश्विनी कुमार हुए। विवस्वान् के छाया से शनैश्चर और सावर्णि मनु दो पुत्र और तपती नाम कन्या हुई। कन्या ने सम्बरण राजा को पति किया। अर्यमा के मात्रका स्त्री से चर्षणी पुत्र हुए, पूषों के संतान नहीं हुई, क्योंकि यह दक्ष द्वारा क्रोध करते महादेवजी को दांत दिखा कर हंसा था, तब इसके दांत तोड़े गये थे। त्वष्टा के साथ दैत्यों की छोटी बहिन रचना विवाही गई। इससे सन्निवेश और विश्वरूप की उत्पत्ति हुई, यद्यपि विश्व रूप शत्रु कन्या का पुत्र था तथापि जब बृहस्पति जी ने देवताओं को त्याग दिया तब देवताओं ने विश्वरूप को पुरोहित बनाया।

विश्वरूप का पौरोहित्य में वरण करना

परीक्षित ने कहा- वृहस्पति ने देवताओं का परित्याग क्यों किया? देवताओं ने ऐसा क्या अपराध किया?

शुकदेवजी बोले- हे राजन्! एक समय इन्द्र मदोन्मत हो गुरु को सभा में आया देख आसन से नहीं उठा। तब बृहस्पति अपने आश्रम को चले आये। जब बृहस्पति चले आये तब इन्द्र गुरु का अपमान हुआ जान अपने को धिक्कारने लगा। इन्द्र के बहुत खोजने पर भी बृहस्पति का पता नहीं लगा। तब इन्द्र को दुःख हुआ। उधर असुर गुरु शुक्राचार्य की सम्मति ले देवताओं से संग्राम करने आये और युद्ध होने लगा। दैत्यों के चलाये वाणों से देवताओं के अंग छिन्न-भिन्न हो गए। तब देवता नीची ग्रीवाकर इन्द्र को साथ ले ब्रह्मा की शरण गये। देवताओं को देख दया युक्त धैर्य दे ब्रह्माजी कहने लगे- हे देवताओं! तुमने बहुत बुरा किया, जो ऐश्वर्य मद से गुरु का सत्कार नहीं किया। उसी का यह फल है। हे इन्द्र! तुम शीघ्र त्वष्टा पुत्र विश्वरूप की सेवा करो। यदि तुम उसका सत्कार करोगे तो वह तुम्हारे मरोरथों को पूर्ण करेगा। ब्रह्मा के आदेशानुसार देवता शान्त चित्त हो विश्वरूप के समीप गये और सत्कार पूर्वक बोले- हे तात! हम तुम्हारे आश्रम में अभ्यागत बन आये हैं तप के प्रभाव से हमारे दुःख दूर करने को आप समर्थ हो, तुम ब्रह्मनिष्ट हो, इस कारण हम आपको गुरु बनाने की इच्छा करते हैं। विश्वरूप उनसे बोले- हे देवगण! यद्यपि धर्मशील इस पुरोहित की निन्दा करते हैं, क्योंकि यह कर्म तेज क्षय करने वाला है तथापि आपकी प्रार्थना से यह कर्म

पुलोमा व कालिमा के साथ कदूयप ने विवाह किया। उनके पौलोम कालकेय नाम साठ हजार दानव उत्पन्न हुए। हे राजन्! तुम्हारे पितामह अर्जुन जब स्वर्ग आये तब उन दानवों को अर्जुन ने इन्द्र को खुश करने को अकेले ही मार डाला। दिति के हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु हुए और सिंहकी नाम कन्या हुई। विप्रचित्त के सिंहकी से पुत्र हुए। उनमें राहु सबसे बड़ा था। अदिति के बारह आदित्य हुए। उनमें विवस्वान् के संज्ञा स्त्री से श्रद्धदेव, मनु, यम और यमुना का जन्म हुआ। वही संज्ञा घोड़ी बनी, तब अश्विनी कुमार हुए। विवस्वान् के छाया से शनैश्चर और सावर्णि मनु दो पुत्र और तपती नाम कन्या हुई। कन्या ने सम्बरण राजा को पति किया। अर्यमा के मात्रका स्त्री से चर्षणी पुत्र हुए, पूषों के संतान नहीं हुई, क्योंकि यह दक्ष द्वारा क्रोध करते महादेवजी को दांत दिखा कर हंसा था, तब इसके दांत तोड़े गये थे। त्वष्टा के साथ दैत्यों की छोटी बहिन रचना विवाही गई। इससे सन्निवेश और विश्वरूप की उत्पत्ति हुई, यद्यपि विश्व रूप शत्रु कन्या का पुत्र था तथापि जब बृहस्पति जी ने देवताओं को त्याग दिया तब देवताओं ने विश्वरूप को पुरोहित बनाया।

विश्वरूप का पौरोहित्य में वरण करना

परीक्षित ने कहा- वृहस्पति ने देवताओं का परित्याग क्यों किया? देवताओं ने ऐसा क्या अपराध किया?

शुकदेवजी बोले- हे राजन्! एक समय इन्द्र मदोन्मत हो गुरु को सभा में आया देख आसन से नहीं उठा। तब बृहस्पति अपने आश्रम को चले आये। जब बृहस्पति चले आये तब इन्द्र गुरु का अपमान हुआ जान अपने को धिक्कारने लगा। इन्द्र के बहुत खोजने पर भी बृहस्पति का पता नहीं लगा। तब इन्द्र को दुःख हुआ। उधर असुर गुरु शुक्राचार्य की सम्मति ले देवताओं से संग्राम करने आये और युद्ध होने लगा। दैत्यों के चलाये वाणों से देवताओं के अंग छिन्न-भिन्न हो गए। तब देवता नीची ग्रीवाकर इन्द्र को साथ ले ब्रह्मा की शरण गये। देवताओं को देख दया युक्त धैर्य दे ब्रह्माजी कहने लगे- हे देवताओं! तुमने बहुत बुरा किया, जो ऐश्वर्य मद से गुरु का सत्कार नहीं किया। उसी का यह फल है। हे इन्द्र! तुम शीघ्र त्वष्टा पुत्र विश्वरूप की सेवा करो। यदि तुम उसका सत्कार करोगे तो वह तुम्हारे मरोरथों को पूर्ण करेगा। ब्रह्मा के आदेशानुसार देवता शान्त चित्त हो विश्वरूप के समीप गये और सत्कार पूर्वक बोले- हे तात! हम तुम्हारे आश्रम में अभ्यागत बन आये हैं तप के प्रभाव से हमारे दुःख दूर करने को आप समर्थ हो, तुम ब्रह्मनिष्ट हो, इस कारण हम आपको गुरु बनाने की इच्छा करते हैं। विश्वरूप उनसे बोले- हे देवगण! यद्यपि धर्मशील इस पुरोहित की निन्दा करते हैं, क्योंकि यह कर्म तेज क्षय करने वाला है तथापि आपकी प्रार्थना से यह कर्म

हमको अंगीकार है। विश्वरूप देवताओं को वचन दे पुरोहिताई करने लगे। दैत्यों की लक्ष्मी यद्यपि शुक्राचार्य जी की विद्या से रक्षित थी, तथापि उसको विश्वरूप ने विष्णुजी नारायण कवच रूप विद्या के प्रभाव से दैत्यों से छीन इन्द्र द्वारा विजय की। इन्द्र दैत्यों की सेना जीत विजय को प्राप्त हुआ।

नारायण कवच

परीक्षित कहने लगे- हे ब्रह्मन्! नारायण कवच किस प्रकार का है, उसकी विद्या क्या है? शुकदेवजी बोले- विश्वरूप का पुरोहिताई में वरण कर इन्द्र ने उनसे कवच पूछा था। इन्द्र के पूछने पर विश्वरूप ने कहा- हे महेन्द्र! हाथ, पांव, प्रक्षालन कर आचमन कर पवित्री पहन, उत्तर की ओर मुख कर बैठ आठ अक्षर वाला 'ऊँ नमोनारायण', और बारह अक्षर वाला, 'ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय', इन मन्त्रों से अंगन्यास और करन्यास कर पवित्र हो वाणी को जीते। जो ऐश्वर्य आदि शक्तियों से युक्त है तथा विद्या, तेज, तप की मूर्ति है उस आत्मा का मैं ध्यान करता हूं। इस प्रकार ध्यान कर नारायण कवच रूप मंत्र का उच्चारण करना चाहिए। कवच का अर्थ है- ओंकार स्वरूप गरुड़ की पीठ पर चरण धरे और आठ भुजाओं में शंख, चक्र, गदा, ढाल, खड्ग, वाण, धनुष और पाश धारण किये हरि हमारी रक्षा करें। मत्स्यरूप भगवान जल ज़ीवों से

और वरुण पाश से मेरी रक्षा करें। वामन रूप भगवान स्थल में मेरी रक्षा करें, विश्वरूप भगवान आकाश में रक्षा करें। श्रीनृसिंह दुर्ग, वन, संग्राम आदि स्थलों में मेरी रक्षा करें, वाराहजी मार्ग में मेरी रक्षा करें और पर्वतों के शिखरों पर परशुराम जी तथा परदेश में लक्ष्मण सहित रामचन्द्रजी हमारी रक्षा करें। नारायण अभिचारी आदि दारुण कर्म और सम्पूर्ण प्रमादों से तथा गर्व से हमारी रक्षा करें। दत्तात्रेय योग भ्रंश से और कपिलदेव बन्धनों से मेरी रक्षा करें। सनत्कुमार कामदेव से, हयग्रीव मार्ग में देवताओं को नमस्कार न करने रूप अपराध से हमारी रक्षा करें, कूर्म नरकों से रक्षा करें। धन्वन्तरी कुपथ्य से ऋषभदेव सुख दुःखादि झगड़ों से हमारी रक्षा करें। यक्ष लोकापवाद से; बलभद्र उपघात से रक्षा करें तथा शेष सर्पों के समूह से हमारी रक्षा करें। वेदव्यास अज्ञान से, बौद्ध पाखंडों से, कल्किजी कलियुग के मल से रक्षा करें। केशव गदा से प्रातःकाल रक्षा करें, नारायण दोपहर से पहले, चक्रधारी मध्याह्न समय, मधुसूदन दोपहर पीछे, माधव सायंकाल में, हृषीकेश प्रदोष समय में पद्मनाम अर्द्धरात्रि में, श्रीवत्स चिन्ह वाले अर्द्धरात्रि पीछे, खंग धारण वाले जनार्दन चार घड़ी के तड़के, दामोदर प्रभात समय और विश्वेश्वर प्रति संध्या हमारी रक्षा करें। हे भगवत्चक्र! तू तीक्ष्ण धार वाला चारों तरफ घूमता हुआ भगवान की प्रेरणा से शीघ्र ही शत्रुओं की सेना

को दग्ध कर दे। हरि के नाम, रूप वाहन और शस्त्र सब वित्तियों से हमारी रक्षा करें। भगवान के पार्षद हमारी बुद्धि, इन्द्रियां व मन और प्राण की रक्षा करें। हे इन्द्र! यह नारायण कवच हमने तुमसे वर्णन किया है। इसको पहन तुम बड़े-बड़े दैत्यों को अनायास जीत लोगे। तब इन्द्र ने विश्वरूप से वह सब विद्या सीख कर दैत्यों को हराया।

वृत्रासुर की उत्पत्ति

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे भारत! विश्वरूप के तीन सिर थे, एक सोम पान करने का, दूसरा मदिरा पीने का, तीसरा अन्न खाने का। विश्वरूप जब यज्ञ करता तब पितृकुल सम्बन्ध को बड़ा समझ, यक्ष देवताओं को साकल्य का भाग देता और माता दैत्य कन्या थी, इसलिए स्नेह से यज्ञ करते समय असुरों को छिपाकर यज्ञ भाग दिया करता था। यह अनुचित आचरण एक दिन इन्द्र ने देख लिया तब क्रोधित हो खड्ग से विश्वरूप को मार दिया। मारने से ब्रह्महत्या हुई। उसको एक वर्ष धारण कर इन्द्र ने चार भाग कर पृथ्वी, जल, वृक्ष और स्त्रियों को बांट दिया। विश्वरूप के मारे जाने के कारण, हे इन्द्र ''शत्रु को शीघ्र मारो'' इस अर्थ वाले मन्त्र का हवन किया। तब दक्षिणाग्नि में से भयंकर रूप वाला एक पुरुष निकला, पुरुष प्रतिदिन चारों ओर से बढ़ता था। उसके मुख में भयानक दाढ़ों को देख

लोग भयभीत हो भाग गये। इस त्वष्टा के पुत्र बृत्रासुर ने लोकों को घेर लिया इसी कारण इसका नाम 'वृत' पड़ा। उसको देखते ही मारने को सेना ले देवता चढ़ आये और उसे मारने लगे, परन्तु उसे मार न सके। वह सब देवताओं के अस्त्र-शस्त्र निगल गया। यह देख देवता विस्मय को प्राप्त हो गये और शोक से अधीर हो, भगवान की स्तुति करने लगे। स्तुति करते-करते भगवान प्रकट हुए। विष्णु के दर्शन कर देवतागण दण्डवत् कर स्तुति करने लगे। हे राजन्! अपनी स्तुति सुन भगवान बोले- मैं अपनी स्तुति सहित ब्रह्म-विद्या सुन बहुत प्रसन्न हुआ। हे इन्द्र! जाओ, तुम दधीचि ऋषि से विद्या, ब्रत, तप से दृढ़ उनके शरीर को मांगो। उनकी हड्डियों का वज्र बनाओ। उससे वृत्रासुर का शिरछेदन करो, तो तुम्हारा कल्याण होगा।

वृत्रासुर के साथ इन्द्र का युद्ध

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! इन्द्र को आज्ञा दे भगवान् अन्तर्ध्यान हो गये। देवताओं ने दधीचि ऋषि से प्रार्थना की कि आप हमें अपना शरीर देवें। तब धर्म की अभिलाषा वाले मुनि बोले- हे देवताओं! प्राणियों को मरण समय में जो असह्य क्लेश होता है, उसको तुम नहीं जानते। जीवित रहने की इच्छा वाले को अपना शरीर प्यारा होता है। विष्णु के मांगने पर भी ऐसा कौन है जो शरीर न दे सकता हो। देवता

बोले- हे ब्रह्मन्! प्राणियों पर दया करने वालों को कौनसी वस्तु दुस्तर है! दधीचि ने कहा- हे देवताओं! हमने तुमसे यही सुनने की इच्छा से निषेध किया था, यह देह हमको छोड़ अवश्य चला जायेगा, इस कारण इसको तुमको प्रसन्न रखने को अवश्य परित्याग करूंगा। इस प्रकार निश्चय कर दधीचि मुनि ने परब्रह्म में अपनी आत्मा को एक कर शरीर त्याग दिया। तदन्तर उसको देवता उठा लाये। उसकी अस्थि ले विश्वकर्मा ने बज्र बना दिया। उसको धारण कर ऐरावत पर चढ़ वृत्रासुर के मारने को चढ़ाई की। फिर देवताओं का असुरों से महा दारुण युद्ध नर्वदा के तट पर हुआ। देवताओं का ऐश्वर्य असुर सहन न कर सके, और क्रोध के आवेग में देव सेना पर टूट पड़े और देवताओं के चारों ओर शस्त्र बरसाने लगे। परन्तु देवों ने उनके हजारों टुकड़े कर डाले। तब असुरों ने देव सेना पर चट्टानें फेंकी परन्तु देवताओं ने उनको भी खण्ड-खण्ड कर दिया। यह देख वृत्रासुर की सेना भयभीत हुई। हे राजन्! उन असुरों का अहंकार नाश हो गया और वे वृत्रासुर को छोड़ भागने लगे। यह देख वृत्रासुर हंसने लगा और कहने लगा- हे शूरवीरों! इस जगत में जो जन्मा है उसकी मृत्यु अवश्य होगी परन्तु जिससे लोक में यश और परलोक में स्वर्ग मिले ऐसी मृत्यु को कौन नहीं चाहेगा?

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे राजन्! उन मूर्ख असुरों ने

फिर भी वृत्रासुर का वचन नहीं माना। भागी हुई सेना देख व सेना द्वारा नष्ट होते देख, वृत्रासुर को महासन्ताप हुआ। फिर क्रोध में भर देवताओं से कहने लगा- हे देवताओ! तुम इन भागते हुओं को क्यों वृथा मारने को दौड़ रहे हो। जो तुमको युद्ध की अभिलाषा हो तो मेरे सामने समर में आओ। ऐसे कह देवताओं को भयभीत करता हुआ वृत्रासुर गरजने लगा। उस सिंहनाद से देवता मूर्छित हो गिर पड़े। पृथ्वी को कंपाता त्रिशूल उठा वह मदोन्मत्त वृत्रासुर नेत्रों को बंद कर देव सेना का मर्दन करने लगा। तब कुपित हो इन्द्र ने गदा चलाई, गदा को उसने बांये हाथ में पकड़ लिया और क्रोध कर ऐरावत के मस्तक में गदा को मारा, जिससे हाथी मुख से रुधिर वमन करते-करते इन्द्र सहित अट्ठाईस हाथ पीछे हट गया। घबड़ाये हुए पर प्रहार करना धर्म नहीं है, ऐसा जान उसने इन्द्र पर अस्त्र नहीं चलाया। तदन्तर इन्द्र अमृत वर्षाने वाले अपने हाथ के स्पर्श से हाथी की पीड़ा दूर कर फिर युद्ध को तैयार हो गये और वज्र को हाथ में उठाया। यह देख वृत्रासुर बोला- हे देवराज! मैं सन्मुख खड़ा हूं तू इस अमोघ बज्र को क्यों नहीं चलाता। यह तेरा बज्र व्यर्थ चला जाएगा ऐसी शंका मत कर। क्योंकि यह हरि के तेज और दधीचि मुनि की तपस्या से तीक्ष्ण है। तुमको पराजित होने की शंका नहीं, क्योंकि जहां भगवान हैं वहीं विजय है। मैं तो शंकर के चरणों में मन लगा तुम्हारे बज्र से शरीर छोड़

योगी-लोगों की गति को प्राप्त होऊंगा। इन्द्र से इस प्रकार कह वृत्रासुर हरि की प्रार्थना करने लगा। हे भगवान! मैं आपके दासों का दास हूं, हमारा मन और वाणी आपका गुण वर्णन करे। जैसे बिना पर के बच्चे अपनी माता की इच्छा करते हैं और भूखे बछड़े दुग्ध पीने की, तथा परदेश गये हुए पति की स्त्री पति को देखने की इच्छा करती है वैसे ही तीनों ताप से पीड़ित हुआ मेरा मन आपके दर्शन की अभिलाषा करता है।

इन्द्र द्वारा वृत्रासुर का वध

श्री शुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! इस प्रकार मृत्यु को श्रेष्ठ माननें वाला वृत्रासुर त्रिशूल उठा इन्द्र पर झपटा। त्रिशूल को आता देख इन्द्र ने अपने बज्र से सरलता पूर्वक दैत्य वृत्रासुर की एक भुजा काट गिराई। तब वृत्रासुर ने इन्द्र की ठोड़ी और ऐरावत पर परिघ से प्रहार किया जिससे इन्द्र के हाथ से बज्र छूट कर गिर पड़ा। बज्र के गिरते ही देवपक्ष में हाहाकार मच गया। वृत्रासुर कहने लगा- हे इन्द्र! बज्र ले, मुझे मार। यह खिन्न होने का अवसर नहीं है। जय-विजय भगवान के आधीन है। हे इन्द्र! देखो मेरा अस्त्र टूट गया और भुजा कट गई तो भी तुम्हारे प्राण हरने की यथाशक्ति चेष्टा किये जाता हूं। यह युद्ध रूप जुवां है, इसमें प्राण तो दांव है, और समर भूमि चौपड़ है। सो इस जुवे में मेरे तथा तुम्हारे प्राणों का दांव लगा है। इस प्रकार वार्ता

करते हुए दोनों में घोर युद्ध होने लगा। वृत्रासुर ने लोहे की परिघ बांये हाथ में ले घुमाकर इन्द्र पर प्रहार किया। तब इन्द्र ने बज्र से परिघास्त्र और दूसरी भुजा को एक ही बार में काट गिराया। तदन्तर वृत्रासुर अपने नीचे के होठ को पृथ्वी से लगा और ऊपर के होठ को आकाश में उठा सर्प समान जीभ निकाल ऐरावत सहित इन्द्र को निगल गया। परन्तु इन्द्र नारायण कवच के प्रताप से उसके पेट में भी नहीं मरा और बज्र से उसकी कोख फाड़ बाहर निकल आया। फिर वृत्रासुर को काटने के लिए बज्र प्रहार किया। इन्द्र बज्र शीघ्र ही वृत्रासुर के शिर के चारों ओर फिरता हुआ उसकी ग्रीवा को काटने लगा। एक वर्ष तक बज्र इसकी गर्दन को रगड़ता रहा तब जाकर इसका सिर कटा। हे राजन्! वृत्रासुर के शरीर से जो भी आत्मरूप ज्योति निकली वह विष्णुलोक में जा भगवान में लीन हो गई।

ब्रह्म-हत्या के भय से इन्द्र का भागना

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- हे परिक्षित! वृत्रासुर के मरने के उपरान्त इन्द्र के सिवाय तीनों लोक सन्ताप रहित हो गये। परिक्षित ने पूछा, हे मुनि! इन्द्र को शान्ति न प्राप्त होने का कारण सुनने की इच्छा करता हूं। शुकदेव जी बोले- जब ऋषियों ने वृत्रासुर को मारने की प्रार्थना की तब इन्द्र ने कहा विश्वरूप को मारने की ब्रह्महत्या को स्त्री, जल, वृक्ष भूमि को बांट अपना पिण्ड छुड़ाया था,

अब वृत्रासुर को मार ब्रह्म हत्या कहां उतारूंगा? इसको सुन ऋषि बोले कि हम अश्वमेघ यज्ञ से तुम्हारा सब पाप दूर करा देंगे। नारायण का नाम लेने से हजारों पाप नाश हो जाते हैं। यद्यपि ऋषियों के समझाने से इन्द्र ने वृत्रासुर को मारा तथापि ब्रह्महत्या पीछे लगी रही। उससे इन्द्र को बड़ा सन्ताप सहना पड़ा। चाण्डाली के रूप वाली, वृद्धावस्था से कांपती हुई, रुधिर से भीगे वस्त्र पहिन अपने पीछे दौड़ती हुई ब्रह्महत्या को इन्द्र ने देखा। इन्द्र देखकर भागा और मानसरोवर में एक कमल की नाल में छिपकर बैठ गया। जल में अग्नि का प्रवेश असम्भव था। इस कारण यज्ञ का भाग अग्नि द्वारा इन्द्र को न पहुंच सका। इससे इन्द्र को भी भोजन नहीं मिला। जब तक इन्द्र यहां पर छिपे रहे तब तक नहुष ने स्वर्ग का राज्य किया। परन्तु अन्त में मदान्ध हो इन्द्राणी से भोग करना चाहा तब इन्द्राणी ने उसे अजगर योनि में पहुंचा दिया। तदनन्तर ब्रह्महत्या का पाप भगवान के ध्यान से विध्वंस हो गया। इन्द्र ब्राह्मणों के बुलाने से स्वर्ग गए। ब्रह्मऋषियों ने अश्वमेघ यज्ञ की इन्द्र को दीक्षा दी। वह हत्या भगवान के पूजन के प्रभाव से नाश हो गई। हे राजन्! इस प्रकार ऋषियों के कराये अश्वमेघ से इन्द्र पहले के समान अपने उसी बड़प्पन को प्राप्त हुए।

चित्रकेतु का शोक

परीक्षित पूछने लगे- रजोगुण व तमोगुण स्वभाव वाले वृत्रासुर की भगवान में ऐसी भक्ति कैसे हुई? शुकदेवजी बोले- हे राजन्! पूर्व समय शूरसेन देश में चित्रकेतु राजा हुआ, उसके प्रताप से पृथ्वी उसको मनवांछित पदार्थ देने वाली थी। चित्रकेतु को सन्तान न होने के कारण सम्पूर्ण सम्पदा, समस्त पृथ्वी की कोई भी वस्तु और चक्रवर्ती राज्य भी प्रीति का हेतु न हुआ। एक समय राजमहल में महर्षि अंगिरा अपनी इच्छा अनुसार विचरते हुए आये। अंगिरा को आया देख राजा ने आतिथ्य सत्कार किया और समीप बैठ गया। महर्षि अंगिरा चित्रकेतु को प्रणाम कर बैठा देख बोले- हे राजन्! तुम्हारे राज्य, अंग और शरीर का मंगल तो है? तुम्हारा मुख चिन्ता से मलीन हो रहा है। चित्रकेतु बोले- हे ब्रह्मन्! आप सब जानते हुए मुझसे पूछते हैं तो मैं अपने मन की बात कहता हूं। पुत्र बिना मुझे ये सब राज लक्ष्मी प्यारी नहीं लगती है। जिस प्रकार मैं सन्तान उत्पन्न कर संसार पार उतर जाऊँ, ऐसा उपाय कीजिए। उसकी विनय से सन्तुष्ट हो अंगिरा उस समय त्वष्टा देवता का शाकल्य तैयार कर पूजन कराने लगे। राजा की बड़ी कृतद्युति नाम रानी थी, उसको अंगिरा जी ने यज्ञ का शेष अन्न समर्पण किया और कहा, हे राजन्! अब इस अन्न को रानी के भोजन करने से तुम्हारे एक

पुत्र होगा। परन्तु वह हर्ष और शोक दोनों को देने वाला होगा। उसके जन्म से हर्ष और मरण से विषाद होगा। यह कह अंगिरा अपने स्थान को चले गये। चित्रकेतु के पुत्र हुआ। पुत्र का जन्म सुन चित्रकेतु आनन्द मग्न हो गया। ब्राह्मणों से आशीर्वाद पा पुत्र का जातकर्म आदि संस्कार कराया। बहुत दिनों में पुत्र प्राप्त होने से राजा का स्नेह प्रतिदिन बढ़ने लगा। कृतद्युति की सौतें पुत्र कामना से सन्तापित हो सौतिया डाह करने लगीं। क्योंकि राजा चित्रकेतु की प्रीति जैसी पुत्र वाली रानी में थी, वैसी दूसरी रानियों में न थी। इस कारण उन दुष्टाओं ने पुत्र को विष खिला दिया। वह बालक विष के खाते ही सो गया। उसकी माता यह समझ कि राजकुमार सो रहा है उसने धाई से पुकार कर कहा हे-कल्याणी! पुत्र को लाओ। यह सुनते ही धाई उस जगह गई जहां राजकुमार शयन कर रहा था। वहां देखा कि बालक की आंखों की पुतली ऊपर चढ़ गई हैं। शरीर में चैतन्यता कुछ नहीं, तब उसको मृतक देख धाई 'हाय मरी' ऐसा कर विलाप करती हुई मूर्छित हो गिर पड़ी। धाई की आर्तवाणी सुन रानी कृतद्युति राजकुमार के समीप गई, अपने पुत्र को मरा देखा तब बारम्बार छाती पीटकर विलाप करने लगी और मूर्छित हो गिर पड़ी। तदनन्तर सब स्त्री पुरुष यह सुन दुखित हो रानी के समीप रोने लगे। हे राजन्! रानी कृतद्युति की सौतें भी कपट से आ रूदन करने लगीं। राजा चित्रकेतु दरबार

में से गिरता पड़ता ठोकरें खाता मन्त्री व ब्राह्मणों सहित महल में आया और शोक से मूर्छित हो गिर पड़ा। उसके बाद रानी राजा तथा सभी रोने लगे। तब अंगिरा और नारद जी वहां आये।

शुकदेवजी कहते हैं कि शोक से व्याकुल हुए राजा को देख उत्तम वचनों से बोध कराते हुए नारद मुनि कहने लगे- हे राजेन्द्र! तुम जिसका शोक करते हो यह तुम्हारा कौन है? पहले जन्म में तुम इसके कौन थे? तथा आगे इसका तुम्हारे से सम्बन्ध क्या होगा? जब तुमको यही खबर नहीं तब शोक व्यर्थ है। यह सब ईश्वर की माया है। इस प्रकार दोनों मुनियों द्वारा समझाया हुआ चित्रकेतु कुछ धीरज धर बोला- आप दोनों कौन हो? जो अवधूत भेष धारण किये हुए गुप्त भाव से यहां आये हो। अंगिरा बोले- हे राजन्! तुमको पुत्र देने वाला मैं अंगिरा हूं और यह नारद हैं। पुत्र शोक में डूबे हुए इस शोक के अयोग्य और हरि का भक्त जान तुम्हारे ऊपर अनुग्रह को हम दोनों आये हैं। तुम भगवद्भक्त हो, तुमको इस प्रकार व्याकुल नहीं होना चाहिए। हम पहले ही तुमको ज्ञानोपदेश देना चाहते थे। पुत्रवानों को कैसे संताप उत्पन्न होते हैं ये अब तुम को विदित हो गया। स्त्री, घर, धन और ऐश्वर्य यह सब ही सन्ताप देने वाले हैं। इसलिए तुम निर्मल मन से आत्मस्वरूप को विचार शान्ति का आश्रय लो। नारद बोले- परम कल्याण देने वाली इस मन्त्र विद्या को तुम सावधान हो

ग्रहण करो, सात रात्रि पर्यन्त इस विद्या के धारण करने से शेष दर्शन करोगे।

चित्रकेतु से नारद का मनोपनिषद् कहना

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! नारद ने मरे हुए उस राजकुमार की जीवात्मा को अपने बल से जीवित कर उससे कहा- हे जीवात्मन्! तुम्हारे माता, पिता और सब सुहृदय बन्धु तुम्हारे शोक से व्याकुल हो रहे हैं। इन्हें देखो राज्य सिंहासन पर बैठो। नारद का वचन सुन जीवात्मा बोला- यह हमारे माता पिता किस जन्म में हुए थे? मैं तो अपने कर्मों से योनियों में भ्रमण करता फिरता हूं। यदि मेरे मर जाने से इनको शोक हुआ, तो मुझको अपना शत्रु समझ प्रसन्न क्यों नहीं होते? जब तक हमारा सत्व इस देह में था, तब तक इनकी ममता थी, अब मृतक हुए, पीछे इससे हमारा कुछ सम्बन्ध नहीं, तब मेरे निमित्त शोक करना व्यर्थ है। फिर उन भाई बन्धु लोगों ने उस मृतक शरीर का दाह कर इसकी परलोक सम्बन्धी क्रिया की और शोक का त्याग कर दिया। हे राजन्! बालक को मारने वाली रानियां ब्राह्मण के कहे अनुसार बाल-हत्या का प्रायश्चित यमुना किनारे करती हुए और श्री अंगिरा के वचन से पुत्रादिकों को हीड़ी दुःख का कारण सुन, पुत्र कामना त्याग दी। राजा चित्रकेतु भी नारद व अंगिरा के उपदेश से ज्ञान प्राप्त कर गृहकूप से बाहर निकला। यमुनाजी

में स्नान तर्पण आदि क्रिया के अनन्तर मौन धार जितेन्द्रिय हो उसने नारद और अंगिरा को प्रणाम किया। नारद चित्रकेतु से प्रसन्न हो अध्यात्म-विद्या का उपदेश दे अंगिरा के साथ ब्रह्म-लोक सिधारे। फिर चित्रकेतु नारद से वर्णन की हुई विद्या को सात दिन जल-पान करके धारण करता रहा। इसके तप से उसको विद्याधरों का आधिपत्य मिला। कुछ दिन उपरान्त शेष के समीप पहुंचा। उनके दर्शन से पाप रहित हो चित्रकेतु शेष की स्तुति करने लगा। हे भगवन्! आपका दर्शन करते ही मेरे अन्तःकरण का मल दूर हो गया। आप जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के स्वामी हैं और योगीजन भेद-दृष्टि होने से जिनके तत्व को नहीं जान सकते, ऐसे परमहंस को मेरा नमस्कार है। चित्रकेतु के स्तुति करने से शेष भगवान प्रसन्न हो अध्यात्म विद्या के उपदेश द्वारा चित्रकेतु के मोहान्धकार को नाश कर वहां से अन्तर्ध्यान हो गये।

उमा के शाप से चित्रकेतु को वृत्रत्व प्राप्ति

श्रीशुकदेवज़ी ने कहा- जिस दिशा में शेष भगवान अन्तर्ध्यान हुए उसी दिशा को नमस्कार कर चित्रकेतु विद्याधर इच्छानुसार विचरने लगा। एक समय विष्णु के दिये विमान पर बैठ वह कैलाश की तरफ चला गया जहां शिवजी विराजे थे। उस समय सभा के बीच पार्वती को गोद में ले भुजा से चिपटाये भोलानाथ के

समीप जाकर चित्रकेतु हंसकर कहने लगा- जो सम्पूर्ण लोकों के गुरु, धर्म वक्ता और शरीरधारियों में मुख्य हैं, 'इनका आरचण तो देखो, भरी सभा में स्त्री को गोद में चिपटाये बैठे हैं।' ऐसा सुन महादेवजी हंसकर चुप हो रहे। परन्तु चित्रकेतु जब उसी प्रकार बारम्बार कहने लगा, तब पार्वती जी न सह सकीं और क्रोध से बोलीं- ''हो! क्या यह चित्रकेतु ही हमारा शिक्षक नियत हुआ है। यह दण्ड योग्य है। हे दुष्ट तू राक्षसी योनि में जा''। इस प्रकार पार्वती से शाप्पित हो चित्रकेतु बोला हे अम्बिके! मैं तुम्हारे शाप को ग्रहण करता हूं क्योंकि सब मेरे पूर्व कर्म का फल है। हे माता! मैं क्षमा मांगता हूं, शाप से छुटकारा पाने को नहीं, अपना अपराध क्षमा कराने को। इस प्रकार चित्रकेतु शिव पार्वती को प्रसन्न कर अपराध माफ करा वहां से चल दिया। तदन्तर पार्षदगणों के सन्मुख शिवजी पार्वतीजी से बोले- ''भगवान के निरपेक्ष और श्रद्धालु भक्तों का जो महात्म्य है तो तुमने देखा पार्वती। जो श्री नारायण में तत्पर भक्त जन हैं वे किसी से नहीं डरते क्योंकि वे स्वर्ग नरक में भी समान दृष्टि रखते हैं। चित्रकेतु भगवान का दास है, इस कारण उसमें ऐसी उदारता है। हे राजन्! शिवजी का सम्भांषण श्रवण कर पार्वती ने विस्मय त्याग चित्त शान्त कर लिया। चित्रकेतु पार्वती को बदले में शाप देने को समर्थ था परन्तु देवी के शाप को उसने मस्तक पर धारण कर लिया, उसकी साधुता

का यह लक्षण था। चित्रकेतु पार्वती के शाप से आसुरी योनि को प्राप्त हो त्वष्टा के यज्ञ में उत्पन्न हो वृत्रासुर नाम से प्रसिद्ध हुआ।

देवगण का वंश कीर्तन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे-हे परीक्षित! अदिति के पांचवें पुत्र की स्त्री प्रशिननाम से सावित्री, व्याहिति व वेदत्रयी तीन पुत्री और अग्निहोत्र, पशुयाग, सोमयाग, चातुर्मास्य और महामुख ये पांच पुत्र हुए। भग आदित्य के सिद्ध से महिमा और विभु दो पुत्र उत्पन्न हुए और आशिष नाम कन्या हुई। धाता आदित्य के कुहू से सायंनामा और सिनी से दर्शनामा हुआ। राका से प्रातः और अनुमति से पूर्णमास हुआ। समनन्तर की क्रिया नाम स्त्री से पुरीष्या नाम पांच अग्नि हुए। वरुण की वर्षणी से भृगु फिर हुए जो प्रथम ब्रह्मा के पुत्र थे और बाल्मीकजी जो कि सर्पों की बांबी से उत्पन्न हुए कहाते हैं और अगस्त्य वशिष्ठ दोनों ऋषि वरुण और मित्र के साधारण पुत्र हुए क्योंकि वरुण और मित्र ने उर्वशी को देख कामवश हो अपना स्खलित हुआ वीर्य एक घड़े में डाला, जिससे दोनों ऋषियों की उत्पत्ति हुई। अदिति के दशवें पुत्र मित्र के रेवती से उत्सर्ग अरिष्ट और पिप्पल हुए। अदिति के ग्यारहवें पुत्र इन्द्र के पौलोमी से जयन्त, ऋषभ और मोढुष तीन पुत्र हुए। वामन भगवान के किर्तिनाम बृहत्श्लोक पुत्र हुआ, उसके सौभव आदि

हुए। अब कश्यप के पुत्रों का वंश वर्णन करते हैं। जिस वंश में प्रहलाद और बलि हुए। दिति के हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष दो सुत दानवों से वन्दनीय हुए जिनकी कथा तीसरे स्कन्ध में कह आये। हिरण्यकशिपु की कयाधु स्त्री से सहलाद, अनुहलाद, हलाद और प्रहलाद चार पुत्र हुए। उनकी सिंहिका बहिन थी जो विप्रचित्त नाम दैत्यों को ब्याही गई, जिसका पुत्र राहु हुआ। सहलाद की कृति स्त्री से पंचजन दैत्य पुत्र हुआ। हलाद के धमनि से वातापी, इल्लब दो पुत्र हुए। इल्लब के अतिथि सत्कार में अगस्त्यमुनि ने इस वातापी को पचाया था। अनुहलाद की पत्नी सूर्म्या के वाष्कल, महिष और प्रहलाद की स्त्री दिति से विरोचन उत्पन्न हुआ जिसका पुत्र बलि की अशना से दो पुत्र हुए उनमें बड़ा बाणासुर हुआ। उनचास पवन भी इसी दिती के पुत्र हैं, उनका नाम मारुत हुआ। ये सब प्रज्ञाहीन हैं और इन्द्र ने इन्हें भाई बना लिया। परिक्षित ने प्रश्न किया- हे गुरु! ये मरुत्गण जन्म सम्बन्धी असुर भाव त्याग इन्द्र द्वारा देवभाव को कैसे प्राप्त हो गये? शुकदेवजी बोले- जब विष्णु ने दैत्यों को मार डाला तब पुत्रों का नाश देख, शोक व क्रोध से जलती हुए दिति विचारने लगी, कि भाईयों का विध्वंश करने वाले इन्द्र का वध करा मैं सुख से सोऊंगी। इसलिए इन्द्र मदनाशन पुत्र जन्मे तो अच्छी बात है। इसलिए पति प्रिय आचरणों को करना

ही श्रेष्ठ है, ऐसा निश्चय कर दिति ने कश्यपजी को मन को वश करने वाले मधुर भाषण मन्द मुसकान आदि उपायों से वश में कर लिया। कश्यप स्त्री द्वारा प्रसन्न हो बोले- हे वोमोरु! तू वर मांग, मैं प्रसन्न हूं। दिति ने कहा- हे ब्रह्मन्! आप नहीं मरने वाला और इन्द्र को मारने वाला एक पुत्र दीजिए, क्योंकि मेरे दो पुत्र इन्द्र ने मार डाले हैं। दिति का वचन सुन कश्यपजी उदास हो चिन्ता करने लगे। कश्यपजी इस प्रकार सोच बोले- हे भद्रे! तू एक वर्ष पर्यन्त व्रत कर सकेगी तो मेरे इन्द्र का वध करने वाला पुत्र उत्पन्न होवेगा। दिति ने कहा- हे ब्रहान्! मैं इस व्रत को अवश्य धारण करूंगी। उस व्रत में जो कर्म करने योग्य हों और जो योग्य न हों से कहिये। कश्यप बोले- प्राणियों की हिंसा न करे, गाली नहीं बोले, असत्य नहीं भावे, नख न कटवावे और अमांगलिक पदार्थ का स्पर्श नहीं करे। जल में गोता मार स्नान न करे, किसी पर क्रोध न करें, दुर्जनों से बात न करें। बिना धोया वस्त्र न पहने, झूठा अन्न, भद्रकाली का नैवेद्य, मांस सहित शूद्र का लाया हुआ अन्न, रजस्वला को छुआ व देखा हुआ अन्न नहीं खावे और अंजली से जल पीवे, झूठे मुख न रहें, सन्ध्या समय बाल न खोलें, शरीर को बिना श्रृंगार किया न रक्खे। नंगा हो बाहर न विचरे और शयन न करें, इस व्रत करने वाले को ये बातें वर्जित हैं। इस व्रत में जो कार्य करने हैं, वे भी कहता हूं- धोये वस्त्र, पवित्र कर

रहे मंगल पदार्थों से युक्त हो, प्रातः समय भोजन से पहले गौ, ब्राह्मण, लक्ष्मी और नारायण का पूजन करे। चन्दन, फूल, नैवेद्य और आभूषण से सौभाग्यवती स्त्रियों का पूजन करें और पति की पूजा करें, जो तुम यह पुत्र दायक व्रत एक वर्ष खण्डित हुए बिना करोगी तो इन्द्र को मारने वाला पुत्र होगा। जब कश्यप ये कह चुके, तब दिति ने ऐसे ही करूंगी कह अङ्गीकार किया और गर्भ धारण कर कश्यप के उपदेशानुसार रहने लगी। इन्द्र सौतेली माता का यह अभिप्राय जान अपना स्वार्थ विचार दिति के समीप आया और भक्ति से उसकी सेवा करने लगा। वह वध का व्रत करती हुई दिति का दोष देखता हुआ कपट भाव से विचरता था। जब व्रत में कुछ दोष न देखा और पूर्ण होने में दो-चार दिन रह गये तब इन्द्र चिन्ता करने लगा। एक समय कुभाग्यवश दिति भविष्य बल से सन्ध्या समय झूठे मुख हो गई। निद्रा से अचेत हो दिति के ऐसे दोषपूर्ण कृत्य हो देख इन्द्र योग माया से दिति के गर्भ में प्रवेश कर गया। फिर गर्भ में जा इन्द्र ने अपने वज्र से उस गर्भ के सात खण्ड कर दिये, तदनन्तर रोते हुए उन सातों को मत रोओ ऐसे कह एक-एक के सात-सात टुकड़े कर दिये। इन्द्र ने जब उस गर्भ के 49 टुकड़े कर डाले, तब भी वे मरे नहीं और हाथ जोड़ बोले- तुम हमें क्यों मारते हो? हम मरुत तुम्हारे भाई हैं, हमें मत मारो। यह सुन इन्द्र ने मरुतगणों से कहा- तुम मत डरो, तुम

लोग हमारे पार्षद भाई होगे। इन्द्र के वज्र से खण्ड-खण्ड हो जाने पर भी वह दिति का गर्भ विष्णु की कृपा से नहीं मरा। विष्णु के साथ मिल के इन्द्र ने 49 मरुत् गण नाम देवता बना दिये। फिर निर्दोष हुई वह दिति उठ इन्द्र सहित उन बालकों को तेजस्वी देख प्रसन्न हुई। तदनन्तर दिति ने कहा, हे इन्द्र! अदिति पुत्र देवताओं को त्रास देने वाले पुत्र की कामना से इस कठिन व्रत को मैंने किया। एक पुत्र होने के अर्थ मेरा संकल्प था, ये 49 पुत्र कैसे हुए। हे इन्द्र! यदि तुम जानते हो तो सत्य कहो। यह सुन इन्द्र बोले- हे अम्बे! मैंने तुम्हारे विचार को जान लिया, इस कारण तुम्हारे व्रत भङ्ग का समय देख रहा था। आज अवसर पा मैंने तुम्हारे गर्भ को खण्ड-खण्ड कर डाला। हे माता! यह हमारी दुर्जनता है, तुम क्षमा करने योग्य हो। फिर उस दिति ने शुद्ध भाव से प्रसन्न हो इन्द्र को आज्ञा दी तब वह इन्द्र दिति को प्रणाम कर मरुतगणों को साथ लिये स्वर्गलोक को चला गया।

— ० —

★ सातवां स्कन्ध प्रारम्भ ★

युधिष्ठिर और नारद का कथोपकथन

श्रीशुकदेवजी बोले- हे राजन्! यद्यपि भगवान प्रकृति से परे निर्गुण हैं और राग द्वेष आदि के कारण सब प्रकार से पृथक हैं, तो भी वे माया के सत्वादि गुणों में प्रवेश कर मित्र शत्रु भाव से देवता और असुर के मरण मारण के हेतु हुए हैं। देखो राजन्! सतोगुण, तमोगुण, रजोगुण ये तीनों माया के गुण हैं, आत्मा के नहीं। जब सत्वगुण की जय का समय होता है तब भगवान देवताओं और ऋषियों को बढ़ाता है जब रजोगुण की जय का होता है, तब असुरों की वृद्धि करता है और जब तमोगुण के जय का होता है तब यक्ष-राक्षसों को बढ़ाता है। इस प्रकार से उस समय भगवान उसी के अनुसार हो जाते हैं। जैसे आकाश एक ही है, परन्तु घट आदिक में उसका भेद प्रतीत होता है, वैसे ही भगवान एक होने पर भी देवता, असुर, यक्ष आदिकों में भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं। जब जीवात्मा को भोग देने को परमेश्वर को शरीरों के रचने की इच्छा होती है तब माया से रजो गुण को पृथक सृजता है, फिर वह जब क्रीड़ा करने की इच्छा करता है, तब सतोगुण को सृजता है और जब संहार की इच्छा करता है तब तमोगुण को बढ़ाता है। हे नरदेव! जब प्रकृति व पुरुषों को निमित्त बना ईश्वर काल को रचाते हैं तब वह सतोगुण

को बढ़ाता है। तब ईश्वर भी देव समूह को बढ़ाते हैं, और दैत्य दानवों को नष्ट करते हैं। हे राजन्! इस विषय में प्रश्न युधिष्ठिर ने नारद से किया था तब नारद ने इस पर इतिहास सुनाया था।

युधिष्ठिर ने अपने राजसूय यज्ञ में शिशुपाल की सायुज्य मुक्ति देख नारद मुनि से यह प्रश्न किया- यह गति तो योगियों को भी दुर्लभ है फिर इस अधम की ज्योति श्रीकृष्ण में कैसे प्रवेश कर गई? नारदजी बोले- हे राजन्! निन्दा, स्तुति सम्मान और अपमान के अर्थ जो यह शरीर ने कल्पना की है सो ये देह प्रकृति और पुरुष के अज्ञान से कल्पित है। उसी देह के अभिमान से प्राणियों में भी विषम बुद्धि बनी रहती है और दण्ड देना, कठोर वचन आदि से देहधारियों को जैसे पीड़ा होती है वैसे ईश्वर को नहीं होती। क्योंकि परमेश्वर कैवल्यरूप सब का आत्मा है, भगवान असुरों को दण्ड देते हैं, यह उनके ऊपर दशा है, शत्रु भाव से नहीं मारते। इस कारण बैर से, भक्ति से, भय से, स्नेह से जो भगवान में मन लगाता है उनको प्रभु भिन्न दृष्टि से नहीं देखते। जैसे मनुष्य बैर से ईश्वर में तन्मय हो जाता है। हे युधिष्ठिर! शिशुपाल और दन्तवक्र विष्णु के पार्षदों में से थे, वह सनकादिकों के शाप से अपने स्थान से भ्रष्ट थे। युधिष्ठिर ने पूछा- भगवान के भक्तों को वह शाप किस प्रकार और क्यों दिया गया? नारदजी बोले- एक समय सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार त्रिलोकी में

विचरते बैकुण्ठलोक गये। वे देखने में पांच छः वर्ष के बालक से थे, परन्तु अवस्था में मारीचि आदि ऋषियों से भी बड़े थे, उनको बालक जान जय विजय नाम पार्षदों ने द्वार पर रोक लिया। तब सनकादि ऋषियों ने क्रोध कर द्वारपालों को शाप दिया तुम दोनों आसुरी योनि में जाओ। इस प्रकार शाप से जब ये बैकुण्ठ से गिरने लगे, उस समय दयालु हो सनकादिकों ने कहा कि तुम तीन जन्म पर्यन्त असुर हो फिर बैकुण्ठ-लोक में आ जाओगे। तब वही पृथ्वी पर आ कश्यप स्त्री दिति के पुत्र हुए। बड़ा हिरण्यकशिपु और छोटा हिरण्याक्ष। इनकी अनीति देख भगवान ने नृसिंह हो हिरण्यकशिपु को मारा और वाराह अवतार धार हिरण्याक्ष को मारा। हिरण्यकशिपु ने पुत्र प्रहलाद को मारने को अनेक यातनायें दे दुःखी किया था। दूसरे जन्म में उन्हीं द्वारपालों ने विश्रया की स्त्री केशिनी ने राक्षस हो जन्म लिया और रावण, कुम्भकर्ण नाम से विख्यात हुए उस जन्म में रामचन्द्र ने दोनों का वध किया। अब वही तीसरे जन्म में शिशुपाल और दन्तवक्र नाम से जन्में हैं। श्रीकृष्णचन्द्र ने सुदर्शन से मार सनकादिकों को शाप से मुक्त कर दिया। बैर भाव करने से रात दिन भगवान का ध्यान कर दोनों फिर पार्षद हो बैकुण्ठ में हरि के समीप पहुंचे हैं। धर्मराज बोले- अपने प्यारे प्रहलाद पर हिरण्यकशिपु का बैर कैसे हुआ और प्रहलाद को हरि भक्ति कैसे हुई, सो कहिए।

हिरण्यकशिपु द्वारा भ्रातपुत्रगण का शोक दूर करना

नारदजी कहने लगे- हे राजन्! वाराह भगवान ने जब हिरण्याक्ष को मार डाला, तब हिरण्यकशिपु रोष, शोक से दुःखी हो सभासदों से बोला- हे दानवों! यद्यपि भगवान सबको समान मानते हैं, तथापि मेरे शत्रु देवताओं ने उनको भक्ति करके सहायक बनाया। उस विष्णु ने 'शंकर रूप धर' मेरे भाई को मार मुझसे बैर किया है। सो जब तक मैं उसके गले को काट उसके रुधिर से भाई को तर्पण कर तृप्ति न कर लूंगा तब तक मेरी व्यथा दूर न होगी। विष्णु के नाश होने से देवता आप ही नाश हो जावेंगे। हे दानवो! तुम ब्राह्मणों का नाश करो। क्योंकि द्विजों की क्रिया ही विष्णु की जड़ है। और देवता, ऋषि, पितृ, भूत व धर्म का बड़ा आश्रय विष्णु ही है। इस प्रकार अपने स्वामी की आज्ञा सिर पर धारण कर दैत्यगण प्रजा का विनाश करने लगे। हिरण्यकशिपु समझाने लगा- हे भौजाई तथा पुत्रों! तुमको उसके मरने का शोक नहीं करना चाहिए, क्योंकि शूरवीरों का मरना सराहना करने योग्य होता है। यह जीव कभी नहीं मरता, उसी नरदेश में सुयज्ञ नाम एक राजा था उसको शत्रुओं ने मार डाला। तब उसके सम्बन्धी विलाप करने लगे। राजा को देख उसकी रानियां दुखित हो, 'हे नाथ! हम सब मर गईं' ऐसे कह अपनी छाती को पीटती उसके चरणों में गिर पड़ीं। 'हे

नाथ! आप बिना हम कैसे जीवेंगीं, इसलिए हमें भी सङ्ग चलने की आज्ञा दो।' रानियां इस प्रकार रो रही थीं और दाह क्रिया नहीं करने देती थीं। तब तक सूर्य अस्त हो गया। उस समय श्री यमराज बालक रूप धार वहां आये और उनसे कहने लगे- बड़ा आश्चर्य है कि ये मनुष्य अवस्था में मुझसे बड़े हैं और संसार में जन्म मरण आदि देखते हैं तो भी इतना मोह क्यों है? क्योंकि यह मनुष्य जहां से आया था वहीं चला गया और अपने को भी एक दिन मरना है, ऐसा जानकर भी तुम शोक करते हो। माता-पिता ने हमको बाल्यावस्था में अकेला छोड़ दिया तो भी हम चिन्ता नहीं करते। हे स्त्रियों! जो परमेश्वर इस जगत को रचता है और पालन व संहार करता है उसी का यह जगत खिलौना है। देखो, एक व्याध बन में जाल बिछाय पक्षियों को लुभाता हुआ विचर रहा था। वहां एक कुलिंग का जोड़ा उड़ता हुआ दिखाई पड़ा, उनमें से कुलिंगनी को उसने शीघ्र ही लुभा लिया, काल वश कुलिंगनी जाल में फंस गई। उसे देख कुलिंग व्याकुल हुआ तथा उसको छुड़ाने में असमर्थ हो अपनी स्त्री को देख स्नेह से वह कुलिंग शोक करता हुआ बोला- विधाता निर्दयी है, अब आधे शरीर वाले मुझ रंडुवे को भी ईश्वर उठा ले, क्योंकि स्त्री बिना मेरे जीने पर धिक्कार है, बच्चों को मैं कैसे पालूंगा? वे माता की बाट देख रहे होंगे! इस प्रकार स्त्री के विरह में विलाप करता हुआ वह जाल के समीप

गया, तब व्याघ्र ने उसको बेधकर गिरा दिया। तब सब सम्बन्धियों व रानियों ने मान लिया कि यह जगत मिथ्या है। यमराज यह कह अन्तर्ध्यान हो गये। तब कुटुम्बी लोगों ने उसकी पारलौकिक क्रिया की। हिरण्यकशिपु कहता है- हे मां! इस कारण तुम शोक न करो। हे राजन्! हिरण्यकशिपु का वचन सुन पुत्रवधू सहित दिति ने शोक का त्याग कर दिया।

हिरण्यकशिपु को ब्रह्मा का वरदान

नारदजी कहने लगे- हे राजन्! हिरण्यकशिपु ने अजय, अमर, शत्रु रहित और चक्रवर्ती बनने की इच्छा की और मन्दराचल पर्वत की कन्दरा में दोनों भुजा उठा, आकाश की ओर दृष्टि कर, एक पांव का अंगूठा टेक खड़ा हो, तप करने लगा। तप के प्रभाव से हिरण्यकशिपु के सिर में से अग्नि की ज्वाला प्रगट हो तीनों लोकों को तपाने लगी। नदी और समुद्र क्षुभित हो गया, सातों द्वीप पर्वतों सहित पृथ्वी कम्पायमान होने लगी और दशों दिशायें जलने लगीं। तब उससे तपायमान हो देवता स्वर्ग छोड़ ब्रह्मा लोक में जा ब्रह्माजी से बोले- हे जगत्पते! हम हिरण्यकशिपु के तप से सन्तप्त हो रहे हैं, इस कारण लोकों का कल्याण चाहो तो तप शान्त करो। तब ब्रह्माजी हिरण्यकशिपु के आश्रम में गए। ब्रह्माजी ने देखा कि दैत्येन्द्र को बांबी और घास ने ढक लिया है तथा चींटे व कीड़ों ने उसकी

देह को खा मिट्टी बना दिया है। तप से तपायमान करते हुए उस दैत्य को देख विस्मित हो ब्रह्माजी बोले- हे कश्यप पुत्र! उठो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारी तपस्या पूर्ण हुई तुम वर मांग लो। ब्रह्माजी ने इतनी बात कह हिरण्यकशिपु की ओर देख जल हाथ में भर उसके शरीर पर छिड़क दिया, उस जल को छिड़कते ही उस कीच के बाल्मीक के भीतर से तेज बल सहित दृढ़ अङ्ग वाला वह दैत्य उठ खड़ा हुआ तथा ब्रह्मा का दर्शन कर स्तुति करने लगा- 'आद्य व कारण रूप, प्राण, इन्द्रिय मन, बुद्धि को धारण करने वाले, आपको मेरा प्रणाम है! मैं आपसे यह मांगता हूं कि किसी प्राणी से मेरी मृत्यु न हो। न भीतर, न बाहर, न दिन में, न रात में, भूमि न आकाश में, देवता, दैत्य, महासर्प इत्यादिक, इनमें से कहीं भी किसी से मेरी मृत्यु न हो, न युद्ध में मुझसे कोई जीते, तथा जगत में मेरा ही राज्य हो। जिस प्रकार आपकी महिमा है, वैसे ही मेरी हो और अणिमा आदिक सिद्धियां भी मुझको प्राप्त होवें।

नारदजी कहने लगे- जब हिरण्यकशिपु ने वर मांगे, तब ब्रह्मा उसको वांछित वर दे और हिरण्यकशिपु से पूजित हो ब्रह्म लोक को चले गये। इधर हिरण्यकशिपु अपने भाई के मरण का स्मरण कर विष्णु से वैर करने लगा। तप के प्रभाव से उसने तीनों लोकों को जीत लिया। स्वर्ग में भी उसने विजय पताका फहरा दी। इन्द्र के सिंहासन पर स्थित हो वह सम्पूर्ण आनन्दों को

भोगने लगा। ऐश्वर्य मद से अन्धा, अभिमानी, शास्त्र को उल्लंघन करने वाला हिरण्यकशिपु इकहत्तर युगों तक राज्य करता रहा। उसके दण्ड से पीड़ित हो देवता भयभीत हो विष्णु की शरण में जा ध्यान करने लगे। उसी समय आकाश वाणी हुई देवताओं! भय मत करो इस दैत्य की कुटिलता मैंने जान ली यह अपने पुत्र प्रहलाद से जब द्रोह करेगा तब इसका नाश करूंगा। भगवान की वाणी सुन देवता उनको प्रणाम कर अपने स्थान को लौट आये। हिरण्यकशिपु के चार पुत्र हुए, प्रहलाद सब से छोटा था परन्तु गुणों में सब से बड़ा और भगवान का भक्त और सबका प्यारा था। हे राजन्! प्रहलाद ने बालपन से कोई खेल नहीं खेला और बैठते, चलते खाते, पीते, सोते और बोलते केवल गोविन्द में एक रूप हो गया था। हे राजन्! ऐसे पुत्र से हिरण्यकशिपु बैर करने लगा। युधिष्ठिर ने पूछा- हे देवर्षि! ऐसे पुत्र से हिरण्यकशिपु ने द्रोह क्यों किया? पिता क्रुद्ध भी हो जाय तो भी शत्रु समान दण्ड नहीं देता। कृपया मेरा भ्रम दूर कर दीजिये।

प्रहलाद के प्राण नाश के लिए हिरण्यकशिपु की चेष्टा

नारद जी कहने लगे- राजा ने प्रहलाद को पाठशाला में पढ़ने बैठा दिया, असुर बालकों के साथ प्रहलाद भी पढ़ने लगे किन्तु गुरु का बताया दुराग्रह उनको न भाता

था। एक दिन हिरण्यकशिपु ने प्रहलाद को गोद में ले लाड़ प्यार से कहा- हे वत्स! तुमको क्या अच्छा लगता है? और तुमने गुरु के यहां क्या सीखा है? प्रहलाद ने उत्तर दिया- पिताजी नरक में डालने वाला अन्धे कुंए के समान घर त्याग, वन जाये, हरि का भजन करे, मैं इसी को सच्ची बात जानता हूं। अपने पुत्र की ऐसी वाणी सुन दैत्य हंसकर कहने लगे- बालकों की बुद्धि दूसरों की बुद्धि से बिगड़ जाती है। तब शंडामर्कों ने प्रहलाद से पूछा- हे पुत्र! सत्य कहना, तुम्हारी बुद्धि सबसे उत्तम है, फिर असुरों से भेद रखने वाली बुद्धि क्यों हो गई? दूसरों ने तुम्हारी बुद्धि पलट दी है अथवा आप ही ऐसी हो गई है? प्रहलाद बोले- अपना, पराया भेद मनुष्य चित्त में परमेश्वर की माया ने कर रक्खा है। परन्तु वह मोह उन्हीं के चित्त को मोहित करता है जिनकी बुद्धि उनकी माया से मोहित है। जब वह परमात्मा पुरुषों के अनुकूल होता है तब बुद्धि भेद दूर हो जाता है। प्रहलाद के वचन सुनते ही गुरु बोले- अरे बालकों! बेंत लाओ, इस प्रकार अनेक उपायों से प्रहलाद को भय दे गुरुजी धर्म, अर्थ, काम, प्रतिपादन करने वाला शास्त्र पढ़ाने लगे। तदनन्तर कुछ काल में गुरु, चारों प्रकार की नीति प्रहलाद पढ़ चुका है, ऐसा जान प्रहलाद को हिरण्यकशिपु के समीप ले गये। वहां पहुंचते ही प्रहलाद गुरु के कहे अनुसार हिरण्यकशिपु के चरणों में गिर पड़ा, तब दैत्य ने प्रसन्न हो आशीर्वाद दे गोद में

बैठाया। सिर सूंघ, प्रेम के आसुओं से मस्तक सींच कहने लगा- हे पुत्र! तुमने जो अपने गुरु से पढ़ा हो सो मुझे सुनाओ। प्रहलाद बोले- विष्णु की कथा सुनना, कथा कहना, स्मरण करना, उनके चरणों की सेवा करना, पूजा करना, वन्दना करना, भगवान का दास बनना, सखाभाव रखना और आत्मा को भगवान में समर्पण करना, यह नव लक्षणों वाली भक्ति सबको पढ़ना उत्तम है। हिरण्यकशिपु पुत्र के मुख से यह सुन क्रोध से गुरु से बोला- हे अधर्मी! तुमने यह क्या किया? तुमने तो इस बालक को शत्रु के पक्ष की बातें सिखा के बिगाड़ दिया है। गुरु बोले- हे इन्द्र शत्रो? यह तुम्हारा पुत्र न तो मेरे सिखाने से कहता है, न दूसरे के सिखाने से कहता है, इसकी यह स्वाभाविक बुद्धि ही ऐसी है। इस प्रकार जब गुरु ने उत्तर दिया, तब वह पुत्र से कहने लगा- हे अमंगल! ऐसी कुमति तुझमें कहां से आ गई? प्रहलाद बोले- गृहस्थी पुरुषों की बुद्धि कृष्ण में नहीं लगती है, क्योंकि घर में फंसे हुए होने से उनकी बुद्धि संसार में फंसी रहती है। जब प्रहलाद चुप हो रहे, तब हिरण्यकशिपु गोद से प्रहलाद को पृथ्वी पर पटक बोला- हे दैत्यों इसको मेरे सामने से ले जाओ और शीघ्र ही मार डालो। इस एक पुत्र के मरने से और सब परिवार को तो सुख होगा। यदि एक का मोह करता हूं तो सारे कुनबे का नाश हो जायेगा। इस प्रकार जब स्वामी जी ने आज्ञा की तब राक्षस हाथ में त्रिशूल उठाये

हुए 'मारो-मारो पकड़ो-पकड़ो' ऐसे कहते हुए प्रहलाद के मर्मस्थलों में त्रिशूलों को भेदने लगे। भगवान प्रहलाद के हृदय में वास कर रहे थे, इस कारण दैत्यों के प्रहार निष्फल हो गये। तब हिरण्यकशिपु ने शङ्का मानी और बड़े दुराग्रह से प्रहलाद के मारने का उपाय किया। हाथियों के पांव तले दबाया, सापों से डसवाया, पर्वतों के ऊपर से गिराया, विष दिया, खाने को नहीं दिया। इस प्रकार भी जब वह असुर अपने पुत्र को न मार सका तब चिन्तायुक्त हो वह विचारने लगा कि मैंने प्रहलाद से कठोर वचन कहे, मारने के अनेक उपाय किये तथापि यह सब मरणादि प्रयोगों से छूट गया इसी के कारण मेरी मृत्यु अवश्य है। कान्तिहीन, हिरण्यकशिपु को देख शुक्राचार्य के पुत्र शंड, अमर्क दोनों बोले- हे नाथ! आपने किसी सहायता बिना, त्रिलोकी को जीत लिया, फिर आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए और इस बालक के गुण दोषों पर ध्यान देने की जरूरत नहीं। जब तक शुक्राचार्यजी न आ जावें तब तक इसको वरुण की फांसी से बांधकर रखना चाहिए जिससे कहीं भाग न ज़ावे। गुरु पुत्रों का उपदेश मान हिरण्यकशिपु ने उनसे कहा तुम ही इसको अपने घर ले जाओ और गृहस्थाश्रम में रहने वाले राजाओं के धर्म सिखाओ। इस प्रकार प्रबन्ध कर वे दोनों ब्राह्मण प्रहलाद को अपने घर ले गये और धर्म, अर्थ, काम का विषय पढ़ाने लगे। एक दिन गुरु अपने किसी काम में लग गये, उस समय अवकाश

पा सब बालकों ने प्रहलाद बुला लिया तब प्रहलाद उनके पास जा हंस कर उपदेश करने लगे।

बालकों के प्रति प्रहलाद का उपदेश

प्रहलाद कहने लगा- दैत्य-बालकों! बुद्धिमान वाल्यावस्था ही से वैष्णव धर्म की उपासना करे, क्योंकि मनुष्य का जन्म मिलना दुर्लभ है, इस कारण मनुष्य को भगवान का भजन करने से कल्याण प्राप्त होता है। यदि कहो कि ज़ब सौ वर्ष पुरुष की आयु है तब बालकपन से ही करने की क्या जरुरत है, सो हे मित्रों! सौ वर्ष की आयु में आधी आयु तो निष्फल जानना क्योंकि इतने वर्ष तक तो मनुष्य निद्रा रूप अन्धकार में पड़ शयन करता है। शेष पचास वर्ष में से बालकपन के समय भोलेपन में और कुमार अवस्था में खेलने में बीस वर्ष हो जाते हैं, बीस वर्ष बुढ़ापे और असमर्थता में व्यर्थ जाते हैं। शेष दस वर्ष का, मोह, क्रोध आदि से दुःख पाय, गृहस्थी से आसक्त रह बेसुध दशा में नष्ट हो जाते हैं। कुटुम्ब की पालना के निमित्त क्षीण होती हुई आयु को और नष्ट हुए पुरुषार्थ को यह मनुष्य नहीं जानता है और तीन पापों से दुःखित हो चित्त के निर्वेद को नहीं प्राप्त होओ। इस कारण हे दैत्य-पुत्रों! विषयों लगे इन दैत्यों के संग को दूर से ही त्याग कर नारायण की शरण प्राप्त करो। जब भगवान प्रसन्न हो जाते हैं तब कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रहता। पूर्व समय में मैंने

यह ज्ञान नारदजी के मुख से सुने थे। दैत्यपुत्र बोले- हे प्रहलाद! शंडामर्क गुरु से हमने और तुमने साथ ही पढ़ा है, फिर यह ज्ञान तुमको कैसे मिला? बाल्यावस्था में जब तुम रनिवास में रहते थे, उस समय महात्माओं का रनिवास में जाना कठिन था, इससे हमारे चित्त में बड़ा सन्देह है।

नारद ने कहा- हे राजन्! प्रहलादजी ज्ञान का स्मरण कर बोले- हे दैत्य बालकों! हमारा पिता जब मन्दराचल पर तप करने चला गया तब देवताओं ने दानवों के प्रति युद्ध करने को बड़ा उद्यम किया। उस समय इन्द्रादि देवता कहने लगे कि इस हिरण्यकशिपु को उसके पाप ने ही खा लिया। ऐसे में इसके घर को चलकर लूट लो इस प्रकार कह देवों ने चढ़ाई की तब उनका उद्यम देख दैत्य सेनापति भाग गए। तब देवताओं ने राज मन्दिर की लूट की और हमारी माता कयाधू को पकड़ इन्द्र ले चला। मार्ग में नारद आते हुए दीख पड़े। नारदजी बोले- हे सुरपते! इस अबला को क्यों लिए जाता है? इसको छोड़ दो। इन्द्र बोले- इससे जो बालक उत्पन्न होगा वो देवताओं का द्रोही होगा। इस कारण तब तक मैं इसे अपने यहां रक्खूंगा, जब बालक होगा तो उसे मार कर छोड़ दूंगा। नारद कहने लगे- हे देवराज! यह विपरीत विचार है, तुम नहीं जानते कि यह गर्भ निष्पाप है। इस गर्भ में महात्मा बालक है, जो भगवद्भक्तों का अनुचर और बलवान होगा। यह बालक तुम्हारे हाथ से

नहीं मरेगा। तब इन्द्र नारद का वचन मान मेरी माता को छोड़कर चले गए। तदनन्तर नारदजी मेरी माता को अपने आश्रम में ला, आशा दे, धीरज बंधा कर बोले-हे पुत्री! जब तक तेरा पति न आवे तब तक तू यहां निवास कर। माता मुनि के वचनों को अंगीकार कर, नारदजी के स्थान में ठहर गई। वहां गर्भिणी माता भक्ति के गर्भस्थ बालक की कुशल पूर्वक उत्पत्ति चाहती हुए नारद की सेवा करने लगी। मुनि ने मेरी माता को धर्म और ज्ञान दोनों सिखाये। उस ज्ञान को मेरी माता तो भूल गई परन्तु मुझको अभी तक स्मरण है 'आत्मा निर्विकार है' देह विकार सहित, 'आत्मा स्वयं प्रकाशवान है' और 'देह दूर से प्रकाशित होता है, 'आत्मा सबका कारण है' और कार्य पदार्थ है, 'आत्मा सर्व व्यापक है' देह एक देश है 'आत्मा संग रहित है' देह संगसंयुक्त है 'आत्मा किसी से आवृत नहीं होती' और देह वस्त्र आदि से आच्छादित हो जाता है। विद्वान पुरुष इन बाहरी लक्षणों द्वारा आत्म स्वरूप को जान अहं को त्याग देवें। आत्मज्ञान के मानने वाले पुरुष देहों में आत्म-योग कर ब्रह्मगति को प्राप्त होते हैं। आठ प्रकृति हैं और सत्व, रज, तम ये तीन गुण हैं, वे इनसे गिने जाते और ग्यारह इन्द्रिय और पंच महाभूत मिलकर सोलह विकार हुए और पुमान आत्मा है वह एक ही है। इन सबों के समूह को देह कहते हैं, इसी देह में यह भी आत्मा नहीं है। ऐसे जड़ वस्तुओं को मिथ्या समझ

त्याग यह आत्मा ढूंढने लायक होता है। घट मिट्टी से जुदा नहीं है परन्तु मिट्टी घट से जुदा है, ऐसे ही देह आत्मा से ज़ुदा नहीं, परन्तु आत्मा देहादिकों से जुदा है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति वृत्तियां बुद्धि की हैं। कर्म उत्पन्न हुए और आत्म धर्म से निरस्त हुए इन तीन वृत्तियों के जाग्रदादि भेदों से आत्मा का स्वरूप जान लेना चाहिए। भगवान के कर्मों को और वत्सलता आदि गुणों को तथा अनेक अवतार से किए चरित्रों को सुन जब रोमावली खड़ी हो जाये और नेत्रों से आंसू बहने लगें, कभी रोने लगे, कभी नाचने लगे और जब इस प्रकार कभी प्रेम लक्षण भक्ति हो जावे। भूत लगे की तरह कभी हंसे, कभी पुकारे, कभी परमेश्वर का ध्यान करे और बारम्बार श्वास में कहे- हे हरे! जगत्पते! जब इस प्रकार आत्मा की निर्लज्ज गति हो तब भक्ति गिनी जाती है। देवता असुर, मनुष्य व यज्ञादि सभी भगवान का भजन करने से कल्याण पाते हैं। यह नहीं समझना कि हम असुर हैं। हमको भगवद् भजन करने का अधिकार नहीं, यदि तुम भजन करोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा। हरि भगवान में निष्कपट भक्ति करो।

भगवान नृसिंह के हाथ से हिरण्यकशिपु का विनाश

नारदजी बोले- उन असुर बालकों ने प्रहलादजी के वचनों को स्वीकार किया और गुरु शिक्षा अंगीकार

नहीं की। हे युधिष्ठिर! जब उन बालकों की बुद्धि नारायण में हुई देखी तब शुक्राचार्य के पुत्र ने भयभीत हो यह हाल हिरण्यकशिपु से कहा। वे प्रहलाद के अप्रिय चरित्र सुन क्रोध में भर हाथ जोड़ सन्मुख खड़े प्रहलाद से कहने लगे- हे दुर्विनीत! मेरी शिक्षा के विरुद्ध चलने वाले! मैं अब यमराज के लोक में तुझे पहुंचाऊंगा। हे मूढ़! मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है और किसके बल से तू निःशङ्क है? प्रहलाद बोले- हे राजन्! जिस परमेश्वर ने जगत को वश में कर रक्खा है, उसी का मुझे ही नहीं आपको तथा अन्य बलवानों का भी वही बल है। हिरण्यकशिपु बोला- हे मन्दमति! अब निश्चय कर लिया कि तू अवश्य मरना चाहता है। तू परमेश्वर बलताला है सो मुझसे अतिरिक्त दूसरा जगदीश्वर कौन है? और जो तूने कहा कि वह सर्वत्र है तो इस खम्बे में क्यों नहीं है? हिरण्यकशिपु खम्भ में परमेश्वर को न देख कहने लगा- मैं तेरा धड़ सिर से जुदा किये देता हूं, तेरा परमेश्वर तेरी रक्षा करे। इस प्रकार क्रोध कर दैत्येन्द्र ने खंग से सिंहासन से कूद खम्भ के बीच जाकर एक घूंसा मारा। हे राजन्! मुष्ठिका लगते ही उस खम्भ से महा भयंकर शब्द निकला, जिससे सारा ब्रह्माण्ड हिल गया। तब पुत्र के मारने में तत्पर असुर उस शब्द को सुन शब्द के उद्गम स्थान को देखने लगा। इतने में प्रहलाद के वचन को सत्य करने अथवा सनकादिकों का शाप सत्य करने या

हिरण्यकशिपु ने जो ब्रह्मा से वरदान मांगा इसको सत्य करने अथवा हिरण्यकशिपु ने कहा कि मेरी मृत्यु कहीं पुत्र विरोध से न हो जाय इसको सत्य करने अथवा नारद ने इन्द्र से कहा कि इस कयाधू के गर्भ से भक्त बालक होगा जो तुमसे नहीं मरेगा, और इसको किसी से भय नहीं है, इसको सत्य करने अथवा भगवान ने कहा मैं अपने भक्तों की रक्षा करता हूं इत्यादि वाक्यों को सिद्ध करने अथवा अपने भक्तों की वाणी कि 'परमात्मा जगत में परिपूर्ण है' इसको सत्य दर्शाने। जो न मनुष्य है, न सिंह ऐसा नृसिंह रूप धार भगवान ने खम्भ फाड़ सबको दर्शन दिया। दैत्येन्द्र खम्भ के बीच से निकला नृसिंह स्वरूप देखते ही विचार करने लगा- अहो! यह न तो पशु है, न मनुष्य, वह इस प्रकार विचार करता ही था कि भयानक नृसिंह स्वरूप प्रत्यक्ष दीख पड़ा। ऐसे स्वरूप को देख हिरण्यकशिपु ने विचारा, माया करने वाले हरि ने क्या मेरे मारने का विचार किया है, इस प्रकार कह हिरण्यकशिपु गदा ले नृसिंह पर झपटा, तब वह असुर नृसिंहजी के तेज में छिप गया। फिर हिरण्यकशिपु ने गदा क्रोध कर नृसिंह की छाती पर मारी तब नृसिंह ने गदा समेत उसको पकड़ लिया। फिर दैत्य भगवान के हाथ से छूट गया। हिरण्यकशिपु भगवान को अपने पराक्रम से भयभीत जान, निर्भय हो ढाल, तलवार ले भगवान से भिड़ गया और ढाल तलवार लिये दांव लगा रहा था। तदनन्तर असुर को

नृसिंहजी ने भय दिखा अपने तेज से उसकी आंख मीच कर पकड़ लिया। पकड़ लेने पर वह असुर आतुरता से तड़फने लगा। भगवान ने निःशंक हो घर की देहली पर बैठ हिरण्यकशिपु को अपनी जंघाओं पर पटक नखों से उसका पेट फाड़ डाला। सम्पूर्ण ग्रह उनकी दृष्टि की कांति से तेजहीन हो गये तथा नृसिंहजी की श्वास से समुद्रों में तूफान आने लगा। स्वर्ग में विमान नृसिंहजी की जटाओं की लपेट से जहां के तहां रह गये, चरणों के भार से पृथ्वी डगमगाने लगी, वेग से पर्वत गिरने लगे। इसके उपरान्त भगवान राज्य सिंहासन पर जा विराजे। उस समय देवांगनायें फूल वर्षाने लगीं। तदनन्तर ब्रह्मा, इन्द्र, महादेव आदि देवगण और ऋषि, पितर, सिद्ध, विद्याधर, नाग, सब दर्शन को आये। सब पृथ्रक-पृथक भाव से भगवान की स्तुति करने लगे। ब्रह्मा बोले- अनन्त शक्तिमान, पवित्र कर्मों वाले, सत, रज, तम से लीला करके जगत को उत्पन्न, पालने व संहार करने वाले, अविनाशी परमात्मा को हमारा प्रणाम है। महादेवजी बोले- आपके कोप करने का समय तो युगान्तर है, इस समय यह एक तुच्छ असुर था सो मार डाला, भला इस समय आपके क्रोध का क्या काम है? इस कारण अब आप शान्ति करो और प्रहलाद की रक्षा करो। इन्द्र बोले- हे नृसिंहजी! आपने असुर को मार मुझे अभय किया है आपको मेरा प्रणाम है। ऋषि लोग स्तुति करने लगे हे शरणागत रक्षक! हमारा ध्यान

और तप इस दैत्य ने लुप्त कर दिया था सो आज आपने फिर उसी तप करने की हमें आज्ञा दी है, ऐसे परमेश्वर को नमस्कार है। विष्णु के पार्षद बोले- हे भगवान! सबको सुख देने वाला यह नृसिंह रूप आज हम लोगों ने देखा था। आपने दास हिरण्यकशिपु को ब्रह्म शाप से छुड़ाने को इसके मारने को नृसिंह अवतार धारण किया है, आपने इसे मार इस पर अनुग्रह ही किया है।

प्रहलाद द्वारा भगवान का स्तवन

नारदजी कहने लगे- जब रुद्र आदि देवता स्तुति करने पर भी श्री नृसिंह को शान्त न कर सके, तब देवताओं ने लक्ष्मी के समीप जा कहा- हे माता! नृसिंह के तेज रूप कोप से सब भस्म होना चाहते हैं सो आप उसको शान्त करवाइये। यह कह उनको नृसिंह भगवान के निकट भेजा। लक्ष्मी जी ने ऐसा रूप न कभी देखा था, न सुना था इस कारण भय की शङ्का से निकट नहीं गईं, तब ब्रह्मा ने प्रहलाद से कहा- हे तात! अपने पिता पर कुपित हुए नृसिंह को शान्त करने को तुम ही समीप जाओ, तब प्रहलाद ब्रह्मा की आज्ञा मान समीप गए और चरणों में गिर स्तुति करने लगे। तब भगवान ने उस बालक को उठा उसके सिर पर अपना हाथ रक्खा। उसके रखने से पापों से रहित प्रहलाद जी ब्रह्मज्ञान को प्राप्त हो, आंखों से आंसू बहाने लगे और एकाग्र मन से हरि की स्तुति करने लगे। ब्रह्म आदि देवगण स्तुति

करते-करते भी जिस भगवान की आराधना को समर्थ नहीं हुए उनकी स्तुति मैं दैत्य जाति किस प्रकार कर सकता हूं क्योंकि भगवान, ग्राह से पीड़ित हुए गजेन्द्र पर केवल भक्ति से ही प्रसन्न हुए थे। हे भगवान! आपकी आज्ञा में रहने वाले ये सब देवता सरीखे असुरों की नांई बैर से आपको नहीं भजते किन्तु भक्ति से भजन करने वाले हैं सो अब ये आपके स्वरूप को देख भयभीत हो रहे हैं, इस कारण आप कोप का शमन करो। हे नृसिंह भगवान! सबलोक इस असुर के मरने से प्रसन्न हैं, आपके इस स्वरूप को देख मुझे भय नहीं है परन्तु हे दीन वत्सल! मैं इस संसार से क्लेशित हूं, असुरों के बीच पड़ा हुआ मैं बन्धन में बंध रहा हूं इससे मेरा मन भयभीत होता है, आप कृपालु हो, आप अपने चरण कमलों की शरण में कब बुलाओगे? बन्धनों से मुक्त हो आपके चरणों में रहने वाले ज्ञानियों का साथ कर आपकी कथाओं का गान करता सहज ही तर जाऊंगा। हे विभो! दुखी पुरुषों के दुःख मिटाने को आप ही समर्थ हो। हे भगवान! आपने जिस प्रकार इस समय मुझे अपना मानकर रक्षा की इसी प्रकार नारदजी ने कृपा की थी। इस प्रकार मैं अपने भक्तों की सेवा को कैसे त्याग सकता हूं? नारद मुझे गर्भ में ही भगवद्भक्ति उपदेश दे गये थे। हे पूज्यतम! नमस्कार, स्तुति, पूजन, समर्पण, स्मरण, कथा श्रवण, ऐसे छः अंग वाली सेवा के बिना मनुष्य को भक्ति कैसे प्राप्त होवे?

और इसके बिना मोक्ष नहीं होता। इसलिये कृपाकर मुझे अपना दास बनाइये। नृसिंह बोले- हे प्रहलाद! मंगल हो, मैं परम प्रसन्न हूं, जो तुम्हारी इच्छा हो, वर मांग लो। शरीरधारी मेरा दर्शन कर फिर किसी सन्ताप सहने योग्य नहीं होता। हे युधिष्ठिर! इस प्रकार श्री नृसिंह भगवान ने प्रहलाद को बुलाया तो भी निष्काम होने के कारण प्रहलाद ने वरदान की इच्छा नहीं की।

भगवान नृसिंह का अन्तर्ध्यान होना

प्रहलाद कहने लगे- हे भगवान! स्वभाव से ही कामनाओं में आसक्त हुये मुझे वरदानों का लोभ दिखा मत लुभाओ मैं तो विषय वासना के संग से भयभीत हो वैराग्य धारण कर शरण आया हूं। इन्द्रिय, मन, प्राण, आत्मा, देह, धर्म धारण, बुद्धि, लज्जा, लक्ष्मी, तेज, स्मृति, सत्य ये सब मांगने की इच्छा से उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाते हैं। नृसिंह भगवान बोले- मुझमें निष्काम भक्ति रखने वाले जो भक्त हैं वे कभी इस लोक तथा परलोक के आषीशों को नहीं चाहते तो भी तुम मेरी आज्ञा से इस लोक में एक मनु के राज्य तक सुखों को भोगो। तुम मेरी कथा को सुनते हुए, व मुझमें आत्म समर्पण करके एक यज्ञेय भगवान का पूजन कर्म करते रहना, और कर्मों के फल की इच्छा न करना, सुख भोग कर पुण्य का आचरण कर, पाप का त्याग करना। फिर काल आने पर शरीर त्याग, मुझको प्राप्त

होगा जो मनुष्य तुम्हारी की हुई स्तुति का पाठ करेगा वह कर्म बन्धन से छूट जाएगा। प्रहलाद जी बोले हे महेश्वर! आपकी आज्ञा से मैं दूसरा वर मांगता हूं कि ईश्वर सम्बन्धी तेज को जान आपकी निन्दा करने वाला मेरा पिता पवित्र हो जाये। श्री भगवान बोले- हे प्रहलाद! तुम्हारा पिता इक्कीस पीढ़ियों सहित पवित्र हो गया। तुम जैसे पुत्र के जन्म लेने से ही उसका कुल पवित्र हो चुका है। इस लोक में जो तुम्हारे अनुवर्ती होवेंगे, वे भी मेरे भक्त होंगे। निश्चिन्त, रहो, तुम्हारा पिता उत्तम लोक को प्राप्त होवेगा। पुत्र का धर्म है, इस कारण तुम्हें पिता का संस्कार करना योग्य है। तुम पिता के राजसिंहासन पर बैठो और ये पण्डितजन जिस प्रकार आज्ञा करें वैसे ही मुझमें मन लगाकर सब कर्म करो। हे राजन्! भगवान के आदेशानुसार प्रहलाद ने अपने पिता की क्रिया की, तदनन्तर ब्राह्मणों ने प्रहलाद को सिंहासन पर बैठा कर तिलक कर दिया। नृसिंह भगवान का प्रसन्नता से प्रफुल्लित मुख देख ब्रह्माजी देवताओं सहित स्तुति करने लगे- हे भूत भावन! यह दैत्य मुझसे वरदान पा मेरी सृष्टि से नहीं मर सकता। इसलिए इसको मार आपने त्रिलोकी को अभय किया है। नृसिंहजी कहने लगे- हे ब्रह्माजी! तुम असुरों को ऐसा वर मत दिया करो। हे राजन्! श्रीनृसिंह भगवान यह कह अन्तर्ध्यान हो गये तब प्रहलाद ने ब्रह्मा, महादेव और सब देवताओं का पूजन किया। इस

प्रकार वे दोनों विष्णु पार्षद शिवि के पुत्र हुये। उसने बैर से हरि को अपने हृदय में धारण किया, इससे भगवान ने उनको मारा। फिर वे ही दोनों कुम्भकरण, रावण नामक दो राक्षस हुए तब रामचन्द्रावतार धार, उनको मारा। अनन्तर वे शिशुपाल और दन्तवक्र हो श्रीकृष्ण से बैर कर सायुज्य मुक्ति को प्राप्त हुये। हे युधिष्ठर! तुम बड़े भाग्य वाले हो क्योंकि तुम्हारे घर में ब्रह्म मनुष्य रूप धार कर विराजमान हो रहे हैं। पहले मयदानव ने शिवजी के यश को नष्ट कर दिया, तब श्रीकृष्ण ने ही सहायता कर महादेव के यश का विस्तार किया। युधिष्ठर पूछने लगे- हे मुनिश्वर! महादेव की कीर्ति को मय ने किस कर्म से कैसे नष्ट किया और श्रीकृष्ण ने शिव कीर्ति को कैसे बढ़ाया, सो कहिए। नारद जी कहते हैं, देवताओं ने सब असुर जीत लिये तब वे असुर मय दैत्य की शरण में गये। तब मय ने सोने, चांदी और लोहे के तीन पुर रचे, जिनके आने जाने का मार्ग कोई नहीं जान सकता था। उन्हीं में असुर रहते थे। हे राजन्! पहले वैर को स्मरण कर सब लोगों को नष्ट करने लगे क्योंकि वे क्षण में आ जाते और क्षण में दीखते थे। तब लोकपालों सहित देवता महादेवजी की शरण में जा कहने लगे- विभु! त्रिपुर निवासी दैत्यों से हमारी रक्षा करो। तब शिवजी ने धनुष पर बाण चढ़ाया तीनों पुरों पर बाण छोड़े। शिवजी तीक्ष्ण बाण चलाने लगे। उन बाणों के समूहों से तीनों पुर दीखने

बन्द हो गये। दैत्य प्राणहीन हो गिर पड़े। उनको मय ने एक माया से बनाये अमृत कूप में गिरा दिया। अमृत का स्पर्श होते ही दैत्य जीवन पाकर फिर लड़ने लगे, यह देख शिवजी का मन उदास हो गया। तब श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी को बछड़ा बनाया और आप गौ बन गये फिर मध्याह्न समय उस त्रिपुर में प्रवेश कर अमृत कूप के रस को पीने लगे। तब मय दानव रस कूप के राक्षसों से बोला- वृथा शोक क्यों करते हो? देवगति का स्मरण करो, तदन्तर श्रीकृष्ण ने धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऋद्धि, तप विद्या, क्रिया आदि शक्तियों द्वारा शिवजी की रथ, घोड़ा, सारथी, धनुष, कवच, बाण आदि सब सामग्री तैयार की, फिर शिव कटिबद्ध हुये और धनुष बाण ले रथ पर जा बैठे। तब महादेव ने बाण छोड़ा। हे राजन्! उस एक बाण से तीनों पुर दग्ध कर दिये, स्वर्ग में नगाड़े बजने लगे, विमानों की भीड़ हो गई और देवता, ऋषि, पितर, सिद्धेश्वर सब जय-जय बोलते हुए फूलों की वर्षा करने लगे। महादेवजी तीनों पुरों को दग्ध कर ब्रह्मादि देवताओं की स्तुति करते-करते अपने धाम को सिधारे।

मनुष्य-धर्म और स्त्री-धर्म वर्णन

प्रहलाद के चरित्र को सुन प्रसन्न हो युद्धिष्ठर बोले- हे मुनिश्वर! मैं मनुष्यों का धर्म सुनना चाहता हूं, उनके वर्ण आश्रम का आचार सहित धर्म वर्णन कीजिये।

कीजिये। नारद जी बोले- हे राजन् धर्म के मूल भगवान हैं, वेद के जानने वालों में स्मृतियां भी वेद की प्रमाण रूप मानी गई हैं, जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो जावे। वह भी धर्म है। सत्य, दया, तपस्या, शौच, तितिक्षा, इच्छा, शम, दम अहिंसा, ब्रह्मचर्य, दान, स्वाध्याय, सरलता, सन्तोष, महात्माजनों की सेवा, मौन, आत्मज्ञान, अन्नादिक भोजन में से दूसरे प्राणियों को यथायोग्य बांटकर देना, प्राणियों में और आत्मा में देवता बुद्धि रखना, श्रीकृष्ण की नवधा भक्ति करना, आत्म समर्पण करना इस प्रकार तीस लक्षणों वाला मनुष्यों का धर्म कहा है जिसके करने से भगवान प्रसन्न होते हैं। यज्ञ करना, वेद पढ़ना, दान देना और वेद पढ़ाना, यज्ञ कराना, दान लेना ये छः कर्म ब्राह्मणों के हैं, इनमें पिछले तीन कर्म जीविका के हैं। क्षत्रिय के दान लिये बिना पांचों कर्म हैं। ब्राह्मण को छोड़ प्रजा से कर लेना राजा की वृत्ति है। खेती करना, वाणिज्य करना आदि वैश्य की आजीविका है, ब्राह्मणों की सेवा करना वैश्य का धर्म है, और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य की सेवा द्वारा आजीविका कर खेती करना, बिना मांगे मिला हुआ अन्न लाना, भिक्षा मांगना ब्राह्मण की आजीविका है। खेत हाट में स्वामी जो अपनी इच्छा से अन्नादि छोड़ दे, उसका ले आना ऋतु है, बिना मांगे मिल जाने को अमृत कहते हैं, भिक्षा लाने को मृत कहते हैं, खेती को अमृत कहते हैं। वाणिज्य व्यवहार

को सत्वामृत कहते हैं और नीचे वर्ण की सेवा को श्ववृत्ति कहते हैं। शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, शान्ति, आर्जव, ज्ञान, दया, भगवान में तत्पर रहना, सत्य बोलना ये ब्राह्मण के लक्षण हैं। शूरता, वीरता, धीरता, तेज, दान, मन जीतना क्षमा, ब्रह्मण्यता, प्रसन्नता और रक्षा, ये क्षत्रिय के लक्षण हैं। देवता, गुरु और ईश्वर में भक्ति करना, त्रिवर्ग धन विषय सुख की वृद्धि करना, आस्तिक्य बुद्धि रखना, उद्यम करना, और निपुणता ये वैश्य के लक्षण हैं। अपने से उत्तम वर्ण को प्रणाम करना, निष्कपट भाव से स्वामी की सेवा करना, नमस्कार मात्र से पञ्चयज्ञ करना, चोरी न करना, सत्य बोलना, गौ ब्राह्मण की सेवा करना ये शूद्र के लक्षण हैं। पति की सेवा कर पति की आज्ञानुसार रहना, पति के बन्धुओं के अनुकूल रहना, सर्वदा पति के नियम धारण करना, ये धर्म स्त्रियों के हैं। जो स्त्री पति को परमेश्वर समझ सेवा करती है वह पति के साथ बैकुंठ लोक में लक्ष्मी की नांई आनन्द भोगती है। हे राजन्! मनुष्य का जो धर्म सत्वादि गुणों के अनुसार कहा गया है वही धर्म लोकों में सुख देने वाला है। जो खेत जल्दी-जल्दी बोया जावे तो वह तो निवीर्य हो जाता है, इससे किसान जहां अन्न अच्छी तरह नहीं उपजता वहां खाद डाला करते हैं। इसी प्रकार मन जब कामनाओं से परिपूर्ण हो जाता है, तब विषयों के कारण उसका चित्त शान्त हो वैरागी हो जाता है। जिस मनुष्य के वर्ण

का जो कर्म है, वही लक्षण दूसरे वर्ण में दीख पड़े तो उसकी भी उसी वर्ण से उत्पत्ति समझना उचित है जैसे ब्राह्मण हो शूद्र कर्म करे तो शूद्र से ही हुआ जानना चाहिए। धर्म के कर्म ही निमित्त हैं।

ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और चारों आश्रमों के धर्मों का वर्णन

नारद कहने लगे- ब्रह्मचारी गुरु के घर जितेन्द्रिय हो निवास करे और गुरु में दृढ़ भक्ति रक्खे। सांय प्रातः गुरु, अग्नि, सूर्य और देवताओं की उपासना करे और दोनों सन्ध्याओं को ब्रह्मगायत्री का जप कर मौन रहे । कमंडल, यज्ञोपवीत धारण किये रहे। दोनों समय जो भिक्षा लावे सो गुरु के आगे रख दे, जब गुरु आज्ञा हो तब भोजन करे। न करे तो उपवास करे। ब्रह्मचारी, स्त्रियों की बात को न सुने। बालों को धोना, उबटन, तेल लगाना इनको कभी न करे। स्त्री अग्नि है, और पुरुष घी, अतएव एकान्त में अपनी कन्या के साथ न बैठे, अपने स्वरूप का ज्ञान होने से जब तक इन्द्रियादिक को मिथ्या जानने में जीव समर्थ नहीं होता तब तक द्वैत बुद्धि नहीं मिटती। ब्रह्मचारी के धर्मों को गृहस्थ और सन्यासी को भी करना चाहिये, यदि गुरु की सेवा बन सके तो करे। ब्रह्मचारी इस प्रकार गुरुकुल में निवास कर वेद के अर्थ को विचारे। फिर सामर्थ्य हो तो गुरुदक्षिणा दे गुरु से आज्ञा मांग, गृहस्थाश्रम में जावे,

या सन्यासी होवे अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो गुरुकुल में बसता रहे। अग्नि, गुरु, आत्मा और प्राणिमात्र में अप्रविष्ट रहे। इस प्रकार रहने वाला ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा सन्यासी और गृहस्थी ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। अब वानप्रस्थ के धर्म कहते हैं। जोती हुई खेती द्वारा पके अन्न को नहीं खाय, अग्नि में भुने अन्न को खाय और फलादि का आहार करें। जिस समय शास्त्र ने यज्ञ करना कहा है, उस समय अन्नादि से चरु, पुरोडास आदि होमों को करे। कन्दरा का आश्रम ले, जाड़ा, वायु, अग्नि, वर्षा, घाम सबको शरीर पर सहे। सिर पर बाल, रोम, नख, दाढ़ी, मूंछ, जटा और कमण्डल सब पदार्थ अपने पास रक्खे, इस प्रकार वन में बारह, आठ, चार, दो अथवा एक वर्ष पर्यन्त आचरण करे। जब बुढ़ापे से पीड़ित हो नैमित्तिक क्रिया करने की समर्थ न रहे, तब अनशन व्रत करे। अनन्तर अहंकार को त्याग अग्नि को धारण करे। तदन्तर देह को उनके कारणों में लय करे। जैसे सब जल जाने के उपरान्त अग्नि अपने आप बुझ जाती है, इसी प्रकार आप ही शान्त हो जावे, अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हो जावे।

सिद्धावस्था वर्णन

नारदजी ने कहा- वानप्रस्थ के धर्मों को समाप्त करे पीछे यदि शरीर में सामर्थ्य रहे तो सन्यास धारण करे, वहां शरीर मात्र को शेष रख कर और वस्तु मात्र का

परित्याग कर देवे। एक गांव में केवल एक रात्रि ठहरे, निदान सर्व प्रकार की लालसा से निरक्षेप होकर पृथ्वी पर विचरता रहे। यदि सन्यासी वस्त्र धारण करे तो केवल एक कोपीन और एक आच्छादन मात्र रक्खे। जो कुछ सन्यास लेते समय त्याग दिया है, फिर ग्रहण न करे। सन्यासी अकेला ही विचरे और अकेला ही भिक्षा मांगे। आत्मा अनुभव में प्रसन्न रहे। किसी के आश्रम में न रहे। सब प्राणी से मित्र भाव बर्ते, स्वभाव शान्त और नारायण में तत्पर रहे। आत्मा में जगत देखे, मृत्यु अवश्य होगी ऐसा जान, मरने की इच्छा न करे और जीवन को चंचल जान जीने की इच्छा न करे। यहां उदाहरणार्थ इतिहास वर्णन करते हैं। एक समय श्री प्रहलादजी मन्त्रियों के साथ लोगों की रीति देखने को देशों में विचरते दक्षिण दिशा में कावेरी पर पहुंचे। वहां उन्होंने पृथ्वी पर सोये धूल धूसरित दत्तात्रेय को देखा। तब उनको नमस्कार कर प्रहलाद बोले- आप पृथ्वी पर सोते रहते हो, उद्यम कोई करते नहीं हो, इसी से आपके पास धन नहीं दीख पड़ता है और धन के बिना तुम्हारा शरीर कैसे पुष्ट है? तब दत्तात्रेय बोले- प्रहलाद! मैं आपको जानता हूं कि आप माननीय हो, प्रवृत्ति व निवृत्त-मार्ग में प्रवृत्त हुए जनों को कैसे फल मिलता है, इसको आप जानते हो। मैं इस संसार में कामनाओं से तृप्त होने वाली तृष्णा से जाना योनियों में डाला गया। अपने कर्मों से भ्रमण करता हुआ इस

लोक में मनुष्य देह को प्राप्त हो गया हूं। मनुष्य जन्म पाकर नर-नारी सुख प्राप्त होने और दुःख दूर करने को नाना कर्म करते हैं, परन्तु इच्छानुसार फल नहीं मिलता, इस वैपरीत्य को देख सब त्याग यहां बैठ गया हूं। सुख इस आत्मा का रूप है, जो सब क्रियाओं से निवृत्त होने पर आप ही प्रकाशमान होता है, सो मैं सबको मन की कल्पना जान उद्यमों को छोड़ शयन करता हूं। जो कुछ प्रारब्धवश प्राप्त हो जाता है उसी में सन्तोष करता हूं। मनुष्य आत्मानुभव सुख को त्याग विषयादि सुखों की खोज करता फिरता है। संसार में शहद की मक्खी, अजगर ये हमारे परम गुरु हैं, जिनकी शिक्षा से हमको वैराग्य और सन्तोष प्राप्त हुए हैं, जैसे कि मक्खी बहुत कष्ट से शहद इकट्ठा करती है और उसको दूसरा हर ले जाता है ऐसे ही लोभी पुरुष धन इकट्ठा करता है, उसको मार अन्य ही उस धन को हर ले जाता है। अजगर से यह शिक्षा मिली कि जैसे अजगर कभी उद्यम नहीं करता, जो मिल जाता है उसी से निर्वाह करता है। कभी रेशमी वस्त्र, कभी मृगचर्म, कभी वल्कल या भोजपत्र, या जैसा मिल जाता है, पहिन लेता हूं। कभी घास पत्तों को बिछाकर, कभी चट्टान पर, कभी राख में और कभी दूसरे की इच्छा से महल में कोमल शय्या, बिछौना, तकिया सहित शयन करता हूं। कभी हाथी घोड़े पर विचरता हूं और कभी दिगम्बर हो फिरता हूं। मैं किसी जन की निन्दा नहीं करता और

स्तुति करता हूं। किन्तु विष्णु में प्रीति चाहता हूं। मन की वृत्तियों में जाति भेद को होम देवे फिर भेदग्राहक वृत्तियों को मन में देख फिर मन को सात्विक अहंकार में होम देवे और अहंकार के महतत्व में हवन करे। फिर उस माया को आत्मानुभव में होमे तब वह सत्य रूप को देखने वाला मुनि आत्म स्वरूप के आनन्द में स्थित हो शान्ति को प्राप्त हो जाता है। हे राजन्! दत्तात्रेय के मुख से इस धर्म को सुन प्रसन्न हुए प्रहलादजी मुनि की पूजा कर अपने घर चले गये।

युधिष्ठिर ने कहा- हे देवऋषि! मुझ सरीखे गृहस्थी जन जिस विधि से बिना परिश्रम सन्यास धर्म को प्राप्त हो सकें सो कहिये। नारदजी बोले- हे राजन्! गृहस्थी पुरुष यथायोग्य कर्म करता रहे, परन्तु उन कर्मों को भगवान को समर्पण कर दे और श्रद्धापूर्वक विष्णु के अवतारों की कथा सुनता रहे। गृहस्थी पुरुष धर्म, अर्थ, काम की अभिलाषा नहीं रक्खे किन्तु देशकाल के अनुसार जितना मिल जावे उतने ही में सन्तोष रक्खे। अतिथि सेवा करे, स्त्री से अपना प्रेम और ममता जिसने त्याग दिया है वह भगवान को जीत लेता है। देव इच्छा से जो अन्नादि मिल जाय, उससे पञ्च महायज्ञ करे, उस यज्ञ से शेष पदार्थ का भोजन करे उपरान्त शेष अन्नादि में अपनी ममता नहीं रक्खे। साधु-सन्तों को समर्पण करे और अपनी आजीविका से जो धन प्राप्त हो उससे देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य, प्राणिमात्र का प्रतिदिन

पूजन पोषण करता रहे। हे राजन्! ब्राह्मणों में, देवों में तथा मनुष्यों में परमेश्वर विराजमान हैं ऐसा समझ भगवान का पूजन करे। द्विज अपनी द्रव्य शक्ति के अनुसार भाद्र मास के शुक्ल पक्ष को पूर्णमासी से आश्विन कृष्ण अमावस्या पर्यन्त यानी कन्यागती में माता पिता का श्राद्ध करना चाहिये। पुंसवान आदि संस्कार व जातकर्म आदि में पुत्र का संस्कार, यज्ञ की दीक्षा आदि अपना संस्कार, प्रेत के दाह आदि कर्म समय, क्षयादिक श्राद्ध तथा अन्य मांगलिक कार्य के समय पुण्यकर्म करना योग्य है। जहां भगवान का स्वरूप हो तथा जहां ब्राह्मण विद्या दया से युक्त निवास करते हों, हरि का पूजन होता हो, वह देश कल्याणों का स्थान है। गंगाजी, मथुरा, काशी आदि तीर्थ तथा पुष्कर आदि क्षेत्र महेन्द्र, मलयागिरि आदि पर्वत, अत्यन्त पवित्र देश हैं। यदि नारायण चार पैसा दे तो तीर्थों की यात्रा करे, क्योंकि इन देशों में जो पुण्य कर्म किया है उसका हजार गुना फल होता है। हे युधिष्ठिर! आपके यज्ञ में देवता, ऋषियों के तथा ब्रह्मा के पुत्र आदि ये सब बैठे हैं परन्तु इनमें मुख्य श्रीकृष्ण ही प्रथम पूजा के योग्य हैं। सम्पूर्ण प्राणियों से भरा यह ब्रह्माण्ड वृक्ष है, उसका मूल रूप का पूजन होने से सबकी आत्मा तृप्त हो जाती है। सब प्राणियों में विष्णु तारतम्य से विराजमान हैं। हे राजेन्द्र! पुरुषों में भी उस ब्राह्मण को सुपात्र समझो, जो तप, विद्या, संतोष करके हरि शरीर रूप वेद को

धारण करता है।

मोक्ष-लक्षण वर्णन

नारदजी कहने लगे- हे राजन्! कोई ब्राह्मण कर्मनिष्ठ, कोई तपोनिष्ठ, कोई वेद पढ़ने और पढ़ाने में तथा ज्ञान व योगभ्यास में निष्ठा रखने वाले होते हैं। मोक्ष की इच्छा रखने वाले गृहस्थी को उचित है कि देव पितृ सम्बन्धी कर्मों में ज्ञाननिष्ठ ब्राह्मण को भोजन करावे व दान देवे यदि वह न मिले तो अन्य को भोजनादि कराना उचित है। देवकार्य में दो और पितृ कार्य में तीन ब्राह्मणों को जिमाना उचित है, अथवा दोनों में एक जिमाये। योग्य देश व काल प्राप्त हो जाये तब मूंग, चावल आदि अन्न को भगवान के समर्पण कर सत्पात्र ब्राह्मण को जिमावे तो वह अन्न अक्षय फल देने वाला हो जाता है। श्राद्ध मासमें भोजन कभी न देवे। विधर्म, परधर्म, आभाष, उपमा और छल ये पांच अधर्म की शाखा हैं। जिस धर्म से अपने धर्म में बाधा पहुंचे वह विधर्म कहलाता है। जो धर्म अन्य जनों का हो वह परधर्म है। जो आश्रम में विधान न किया हो, अपनी रुचि के अनुसार नवीन चलाया हो उसको आभास कहते हैं, जो पाखण्ड से किया जाय उसको उपमा कहा है। शत्रु के वचनों का उलटा अर्थ माना जाय, इसको छल कहते हैं। हे राजन्! संतोषी, इच्छा रहित पुरुष को जो सुख होता है वह काम के लोभ से

तृष्णा से कब प्राप्त हो सकता है? संतोषी तो जलमात्र से ही निर्वाह कर सकता है और असन्तोषी कुत्ते की नांई घर-घर अपमान कराता फिरता है। मनुष्य का लोभ, भोग करके भी शान्त नहीं होता। मनोरथ को त्याग कर, काम को त्यागकर, क्रोध को जीते, धन संचय करने से अनर्थ है ऐसा चिन्तवन कर लोभ जीते और आत्म तत्व के विचार से भय को जीते। आत्म और अनात्म वस्तु के विचार से शोक मोह को जीते, महात्माओं का संग करके दम्भ को जीते, मौन वृत्ति को धार असत्य को जीते, और देहादिक से चेष्टा त्याग हिंसा को जीते। प्राणियों से उत्पन्न दुःख को जीते, उन्हीं पर दया कर स्नेह से जीते, प्राणायाम से देह के कष्ट को जीते और सात्विक से नींद को जीते। सतोगुण से रजोगुण तमोगुण को जीते, शान्ति से सतोगुण को जीते, और इन सबको गुरु में भक्ति कर अनायास जीते। हे राजन्! इन्द्रियों को जीतना ही फल है। जो मन जीतना चाहे वह एकान्तवास करे और भिक्षा में जो मिल जाये उतना ही सन्तोष करे। आसन पर बैठे ओंकार का जप करे। पूरक, कुम्भक, रेचक विधि से प्राण अपान वायु को रोके और नासिका के सामने दृष्टि रक्खे। इस प्रकार मन शान्ति को प्राप्त हो जाता है। कामआदिक से छूट चित्त जब ब्रह्मानन्द को प्राप्त हो जाता है, तब वह कभी ईश्वर से पृथक नहीं होता। जो पुरुष सन्यासी हो गृहस्थाश्रम को ग्रहण कर ले तो वह

निर्जल वमन किये को चाटने वाला कुत्ता कहा जाता है। यदि गृहस्थ हो अपनी क्रिया को त्याग करे, ब्रह्मचारी हो व्रत का पालन न करे, वानप्रस्थ हो गांव में रहे, सन्यासी हो इन्द्रियों को चंचल रक्खे तो ये सब आश्रमों में अधम, और सच्चे आश्रम की विडम्बना करने वाले पाखण्डी जानने चाहिएं। पण्डित लोग इस शरीर को रथ कहते हैं, दसों इन्द्रियां घोड़े हैं और चंचल मन घोड़ों की बागडोर है, शब्द आदिक विषय रूप मार्ग है, बुद्धि सारथी है, विषय-वासना देश-देशान्तर हैं, सबका बंधन चित्त है, ऐसा यह रथ परमेश्वर का रचा हुआ है। तथा इसमें दसों इन्द्रियां त्राणरूपी धुरा है, धर्म अधर्म के दो पहिये हैं। अहंकारी इसमें बैठने वाला है, जीव का धनुष ओंकार है। शुद्ध जीव बाण है, परब्रह्म लक्ष्य है। राग, द्वेष, लोभ, शोक, मोह, भय, मद, मान, अपमान, निन्दा, माया, हिंसा, मत्सरता, रजोगुण, प्रमाद, भूख, नींद ये सब आरूढ़ वाले के शत्रु हैं। जब तक कि इस देह रथ के इन्द्रिय आदि अंग और रथी जीवात्मा अपने वशीभूत है, तब तक गुरु के चरणों की कृपा से तीक्ष्ण खंग ले परमेश्वर रूप ही बल जिसका ऐसा क्रोधादिक सब शत्रुओं के सिर काटकर अपने आनन्द में तुष्ट हो, रथ को छोड़ देता है। यदि परमेश्वर रूप बल न हो तो इस रथ के घोड़े और बुद्धि रूप सारथी प्रमत्त हुए जन को उलटे मार्ग में ले जा रूप चोरों के समीप जा डालते हैं, तब वे लुटेरे घोड़ों सहित उस बल

रूप सारथी को अन्धकारपूर्ण इस जगत कुएं में पटक देते हैं। हे राजन्! प्रवृत्ति निवृत्ति ये दो प्रकार के कर्म वेद में कहे हैं, प्रवृत्ति कर्म से मनुष्य इस जगत में जन्म-मरण पाता है और निवृत्ति कर्म से मुक्त हो जाता है। श्येनयाग आदिक हिंसा, प्रधान यज्ञ पुरोडाश आदि अत्यन्त आसक्त-दायक काम्य, अग्निहोत्र, दस, पौर्ण माश, चातुर्मास्य पशुयाग, सोमयाग, कहलाते हैं, और देवालय, बाग-बगीचा, कुवां गौशाला इत्यादि कर्म पूतयज्ञ कहलाते हैं, ये सब कर्म कामना सहित किये जायें तो प्रवृत्ति-मार्ग देने वाले हैं। हे राजन्! जिससे जिस देश काल में जिसके पास से जिसको जो द्रव्य लेना शास्त्र में वर्जित नहीं है, वह द्रव्य, उस पुरुष को लेना चाहिए। उसी द्रव्य से अपना कार्य सिद्ध करे। वेद में कहे हुए आश्रम सम्बन्धी कर्मों को करके भगवान भक्ति रखने वाला गृहस्थ आश्रम में रहने पर भी परमात्मा की गति है। नारदजी बोले- मैं व्यतीत हुए पहले कल्प में कोई उपबर्हण नाम गन्धर्व था, रूप सुकुमारता, मधुरता और सुगन्धि के कारण स्त्रियों को प्यारा, मुझसे बढ़कर लम्पट और दूसरा नहीं था। एक समय देव सभा में प्रजापतियों ने हरि की गाथा गान करने को गन्धर्व और अप्सराओं के समूह बुलवाये। मैं भी सुन्दर स्त्रियों को साथ लिए गाता बजाता हुआ वहां पहुंचा तब प्रजापतियों ने मुझे शाप दिया कि तुमने हमारा अपमान किया है, इस कारण तुम शूद्रभाव को

प्राप्त हो जाओ। शाप के कारण दासी पुत्र हुआ, वहां ब्रह्मजनों की सेवा करने से फिर दूसरे कल्प में, मैं ब्रह्मा का पुत्र हूं। हे राजन्! मनुष्य लोक में तुम बड़े भाग्य वाले हो क्योंकि श्रीकृष्ण मनुष्य रूप धार तुम्हारे में निवास करते हैं, ये श्रीकृष्ण आपके परमप्रिय, सुहृदय, भाई, पूजा के योग्य, आत्मा तथा आपकी आज्ञानुसार चलने वाले गुरु भी हैं। आओ ऐसे श्रीकृष्ण का हम सब साक्षात् में पूजन करें। हे परीक्षित! नारदजी की आज्ञानुसार युधिष्ठिर ने प्रेम से श्रीकृष्ण का पूजन किया। तदनन्तर नारदमुनि श्रीकृष्ण भगवान और युधिष्ठिर से आज्ञा ले वहां से चल दिये।

— ० —

S. S. BRIJBASI & SONS
32 1 FATEHPURI DELHI 6

173 गजेन्द्र मोक्ष

S. S. BRIJBASI & SONS
59 MIRZA STREET
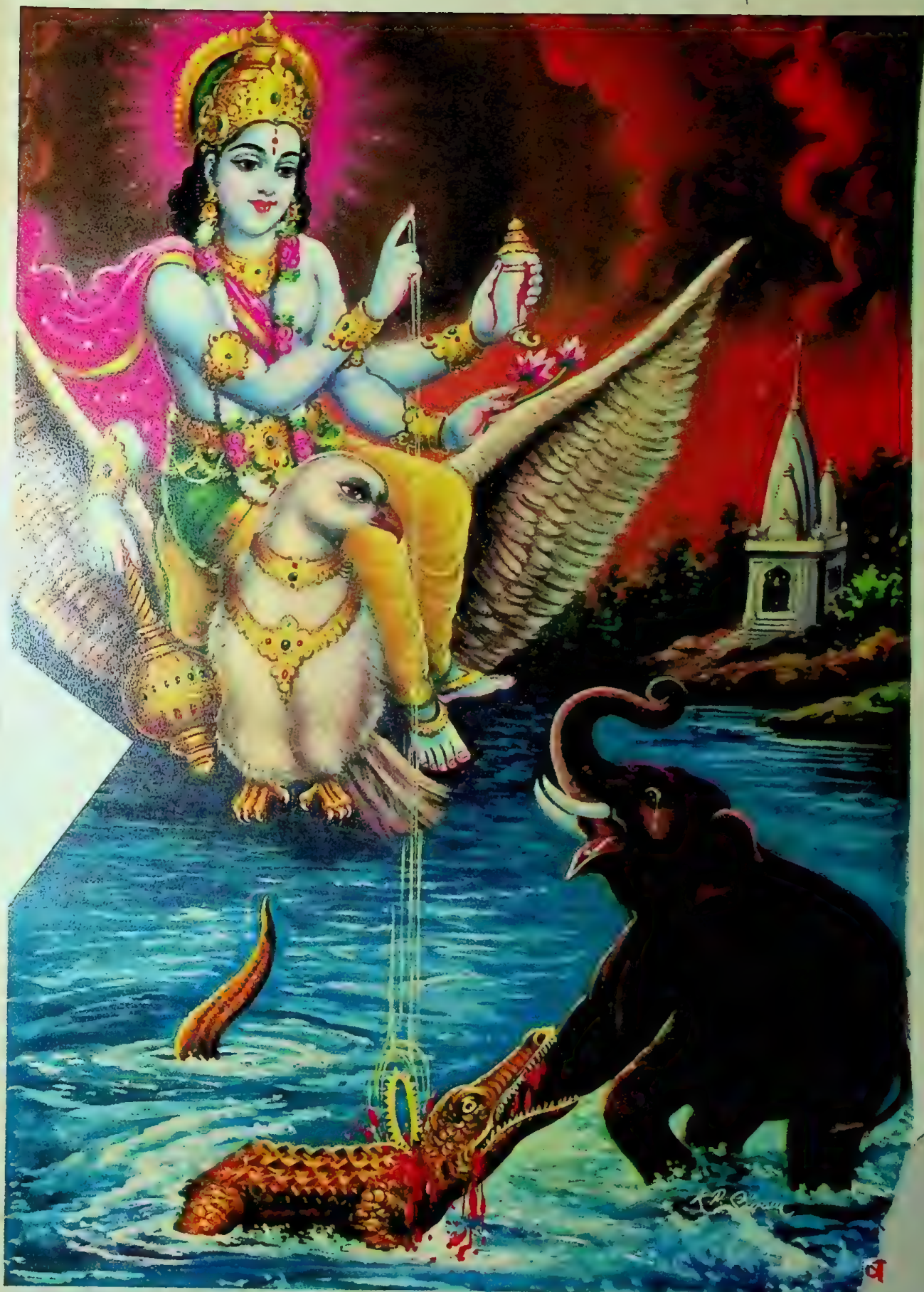
★ आठवां स्कन्ध प्रारम्भ ★

मन्वन्तर वर्णन

परीक्षित बोले- हे गुरो! जिस-जिस मन्वन्तर में हरि के जन्म और कर्मों का वर्णन है उनका वर्णन हमारे सामने कीजिये। शुकदेवजी बोले- इस कल्प में स्वायम्भुव से लेकर छः मनु हो गये हैं, इनमें से पहले मनु का वर्णन तो मैंने सुना दिया उसी स्वायम्भुव मनु का अकूती और देवहूति पुत्रियों में धर्म और ज्ञान के उपदेश के लिए उनके घर में यज्ञ तथा कपिल पुत्र रूप धारण किया था। भगवान कपिल देव का चरित्र हम पहले वर्णन कर चुके हैं, अब यज्ञ भगवान का चरित्र वर्णन करेंगे। शतरूपा के पति स्वायम्भुव मनु सांसारिक भोगों से विरक्त हो तप के लिए स्त्री सहित वन चले। वहां इन्होंने सुनन्दा के किनारे एक पांव से पृथ्वी पर सौ वर्ष तक खड़े रह घोर तप किया। स्वायम्भुव मनु मंत्र रूप उपनिषद को जब कह रहे थे उस समय असुर और यातुधान उनको भक्षण करने को दौड़े। यह देख वह हरियाम नामक देवताओं को साथ ले राक्षसों को मार स्वर्ग का राज्य करने लगे। अब दूसरे मनु को कहते हैं। स्वारोचिष मनु अग्नि का पुत्र, इसके द्युमान्, सुषेण तथा रोचिष्मान् आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए। उस मन्वन्तर में रोचन नाम से तो इन्द्र था, तुषितादिक देवता थे और ऊर्जस्तम्भादिक ब्रह्मवेत्ता सप्तऋषि हुए थे। वेदशिराऋषि

की तुषिता नामक स्त्री से विभु भगवान ने जन्म लिया था। इस बाल ब्रह्मचारी विभु से अट्ठासी हजार मुनियों ने व्रत सीखा था। प्रियव्रत पुत्र उत्तम मनु हुआ इसके पवन सृजंय और यज्ञहोत्रादिक पुत्र हुए। इस मन्वन्तर से प्रमदादिक वसिष्ठ के पुत्र सप्तऋषि तथा सत्यादेव श्रुता और भद्रा देवता हुए और इन्द्र सत्यजित के नाम से हुआ। धर्म की सूनूता नामक स्त्री से भगवान ने सत्यव्रतों के साथ सत्यसेन का अवतार लिया। सत्यजित के मित्र सत्यसेन ने दुष्टों का नाश किया। उत्तम का भ्राता तामस चौथा मनु हुआ। इसके पृथु, ख्याति, नर और केतु आदि दस पुत्र हुए। इस मन्वन्तर में सत्यक, हरि, वीर देवता हुये त्रिशिख इन्द्र हुआ और ज्योतिर्धामादिक सात ऋषि हुए। विधृति के पुत्र वैधृति नाम देवता हुए उन्होंने नष्ट हुए वेदों का अपने तेज से उद्धार किया था। इस मन्वन्तर में हरिमेधा की हिरणी नाम रानी से भगवान ने हरिरूप धारण कर अवतार लिया और ग्राह से गज को छुड़ाया। परीक्षित बोले- हे बादरायण! जिस प्रकार भगवान ने गज को ग्राह से छुड़ाया था, कृपया वह कहिए।

गजेन्द्र का उपाख्यान

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! त्रिकूट नामक बहुत बड़ा पर्वत है इसके चारों और क्षीरोदधि है। इसमें लोहे और सोने के तीन शिखर हैं। इनमें समुद्र, दिशा

और आकाश प्रकाशित होते हैं। उनकी गुफा में किन्नर अप्सरा क्रीड़ा किया करते हैं। उनमें अनेक वृक्ष हैं। वहाँ सरोवर में सुवर्ण-कमल फूल रहे हैं। उन पर भौंरे गुंजार कर रहे हैं। एक दिन एक हाथी बहुत सी हथिनियों को संग लिए कांटे दार बांस और बेंतों की झाड़ी तोड़ता हुआ, तृष्णा से सन्तप्त, सरोवर की पवन को सूंघता हुआ, उसके तीर पर आ गया। निर्मल जल वाले उस सरोवर में स्नान कर जल छिड़कने लगा, इस प्रकार श्रम दूर कर जलपान करने लगा। हे राजन्! उसी में एक ग्राह रहता था, अचानक उसने हाथी का पांव पकड़ लिया। गजपति को ग्राह द्वारा दुःखी देख हथिनियां भी चिंघाड़ मारने लगीं। हे राजन्! इस तरह गजेन्द्र और ग्राह को लड़ते-लड़ते एक सहस्त्र वर्ष व्यतीत हो गये। यह देख देव भी आश्चर्य करने लगे। तदन्तर बहुत दिन जल में खींचा-खांची से हाथी की शक्ति नष्ट हो गई और जल में रहने वाले ग्राह की शक्ति बढ़ गई। जब गजेन्द्र के प्राण-संकट में फंस गये, तब बहुत काल तक सोचते-सोचते उसको बुद्धि सूझी, कि मेरे साथी ये बड़े-बड़े हाथी मुझे नहीं छुड़ा सके तो ये हथिनियां क्या कर सकेंगी? सो अब मैं परमेश्वर की शरण जाऊंगा।

गजेन्द्र मोक्ष

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! इस तरह गजेन्द्र विचार कर पूर्व जन्म में सीखे हुए जप को करने लगा।

जिससे यह विश्व अचेतन भी चैतन्य रूप से जब काल पाकर सम्पूर्ण लोक महत्वादि नष्ट हो जाते हैं और अन्धकार ही रह जाता है उस समय उस अन्धकार से परे विराजमान रहता है उस विभु को मैं प्रणाम करता हूं। हे भगवन्! आप ज्ञानाग्नि रूप हो, आपका मन सृष्टि काल में उन गुणों के क्षोभ से विस्फूर्जित होता है। आप निष्कर्म भाव से विधि निषेध को दूर करने वाले प्रकाश रूप हो, इससे आपको नमस्कार है। आप मुझ सरीखे शरणागतों का बन्धन छुड़ाने वाले स्वयं मुक्त रूप हैं आप अपने अंशों से सम्पूर्ण देहधारियों के मन में प्रतीत होते हो, आप सर्वान्तिर्यामी सर्व द्रष्टा और बड़े हैं। हे नाथ! अब मुझको बन्धन से छुड़ाइये। मैं विश्व के जानने वाले, अजन्मा, परमपद रूप उस ब्रह्म को नमस्कार करता हूं। हे राजन्! इस प्रकार जब गजेन्द्र ने नाम भेद बिना ही स्तुति की तब भिन्न-भिन्न रूपाभामिनी देवता तमाशा देखते रहे। तब सकल देव, गज को दुःखी जान और उसकी स्तुतियों को सुन हरि गरूड़ पर सवार हो वहां आये। सरोवर के भीतर ग्राह से पकड़े हुए गजराज ने जब गरूड़ पर बैठे चक्रधारी को देखा तब एक कमल के फूल को सूंड में ले भगवान को निवेदन कर बोला- हे नारायण आपको नमस्कार है। तब गज को दुःखी देख हरि ने गरूड़ से उतर कर ग्राह मुख चीर हाथी को छुड़ा लिया।

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! जब भगवान ने

गज का उद्धार किया उस समय देवता, ऋषि, गन्धर्व, ब्रह्मा महादेवादि भगवान की स्तुति करके फूलों की वर्षा करने लगे। ग्राह ने उसी समय देवल के शाप से छूट पूर्व रूप धारण किया। यह पहले हूहू नामक गन्धर्व था। परमेश्वर की दया से वह पाप से छूट गन्धर्व लोक को चला गया और ये हाथी भगवान के स्पर्श से अज्ञान बन्धन से छूट पीताम्बर और चार भुजा धार करके भगवत्स्वरूप को प्राप्त हो गया। यह गजराज पूर्व जन्म में द्रविड़ प्रान्तस्थ पांड्य देश का इन्द्रद्युमन नामक राजा था और निरन्तर विष्णु भगवान के व्रत में परायण था। सो एक समय यह राजा मलयाचल में आश्रम बना तप कर रहा था। एक दिन वहां शिष्यों को संग लिए ऋषि अगस्त्यजी चले आये। राजा का नियम था कि जब तक पूजा करे तब तक बोले नहीं। इससे राजा ने अगस्त्यजी को प्रणामादिक कुछ न किया। यह देखकर ऋषि ने क्रोधित हो शाप दिया कि 'तू ब्राह्मणों की अवज्ञा करता है, तू हाथी होकर अन्धतामिस्त्र में प्रविष्ट हो जावेगा'। हे राजन! इस तरह अगस्त्यजी शाप दे शिष्यों को साथ ले चले गये और इन्द्रद्युम्न ने हाथी की योनि पाई। भगवान ने इसी गजेन्द्र को विपद से छुड़ा कर उसे पार्षद बनाया और अपने साथ लेकर चले गये।

****

ब्रह्मा द्वारा भगवान का स्तवन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! अब पञ्चम रैवत मन्वन्तर का वर्णन करता हूं। रैवत मनु, तामस मनु का सहोदर था। अर्जुन और बलि विंध्यादिक इसके दस पुत्र थे। इसमें विभु नाम का इन्द्र हुआ था, भूतरयादिक देवता थे तथा हिरण्य रोमा, वेदशिरा और ऊर्ध्वबाहु आदिक सप्तऋषि हुए थे। इस मन्वन्तर में शुभ्र की पत्नी वैकुण्ठा से वैकुण्ठ भगवान ने जन्म लिया। इन्हीं वैकुण्ठ ने लक्ष्मी की प्रार्थना से वैकुण्ठ-लोक रचा है। चक्षुष का पुत्र छठा चाक्षुष मनु हुआ। इसके पुरु, पुरुष और सुम्नादि दस पुत्र हुए। मन्त्रद्रुम और आप्यादिक देवता हुए, हिवष्मत् और बीरकायिक सप्तऋषि हुए। इसी मन्वन्तर में वैराज की पत्नी समभूति से अजित नाम अवतार हुआ। जिसने समुद्र को मथकर देवताओं को अमृत पान कराया और कच्छप रूप धारण कर मन्दराचल को अपनी पीठ पर धारण किया। परीक्षित ने पूछा- हे ब्रह्मन्! जैसे भगवान ने समुद्र मन्थन किया और जिस तरह देवताओं को अमृत पान कराया उस अद्भुत भगवत चरित्र को मुझे सुनाईये। श्रीशुकदेवजी बोले- हे राजन्! जब संग्राम में असुरों ने देवताओं को मारा तब वे मर मरकर गिर पड़े और फिर न उठे। जब दुर्वासा ऋषि के शाप से इन्द्र श्रीहत हो गये और सब यज्ञादिक क्रिया भी नष्ट हो गई, तब इन्द्र, वरुण आदि देवगण समेत सुमेरु पर ब्रह्मा की

सभा में गये और अपना सब वृतान्त उन्होंने ब्रह्मा से कहा। उनको हतश्री देख ब्रह्मा देवताओं से बोले- हे देवो! मैं और महादेव, सुर और असुर, जिस भगवान के अंश से रचे हैं हमको उनकी शरण में चलना चाहिए। यह कहकर देवताओं के साथ ब्रह्माजी अजित भगवान के स्थान पर गये। वहां सावधान हो दैवी वाणी से उनकी स्तुति करने लगे जो विकार रहित, सत्य, स्वरूप, अनन्त, आद्य, सर्वान्तिर्यामी उपाधिरहित, अग्रतर्क्य मनवाणी से अगम्य और अवरेण्य है। उसी परमात्मा को हम सब प्रणाम करते हैं। आप में अर्पण किये हुए कर्म निष्फल नहीं होते हैं। हे नाथ! आप अनन्त हैं निर्गुण हैं, गुणेश हैं और सदा सत्वगुण में स्थित हैं आपको हम सब प्रणाम करते हैं।

अमृतोत्पादन के लिए देवासुर का उद्योग

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे राजन्! जब देवताओं ने भगबान की स्तुति की तब भगवान प्रादुर्भूत हुए। उनके महाप्रकाश से देवताओं की दृष्टि मन्द पड़ गई। तब महादेव व ब्रह्माजी इस रूप को देख स्तुति करने लगे- आप जन्म, स्थिति और संयम से रहित हैं। निर्गुण मोक्षरूप सुख के समुद्र हैं, आप सूक्ष्म हैं। मोक्ष की इच्छा से आपके रूप का पूजन करते हैं सो आज आनन्द प्राप्त हुआ है। जिस कारण हम सब आपके चरणों में उपस्थित हुए हैं। उस हमारे मनोरथ को आप पूर्ण

कीजिए। ब्रह्मादिकों से स्तुति किये जाने पर भगवान उनका अभिप्राय जान गम्भीर वाणी से बोले- हे ब्रह्मा! शम्भो! तुम जाओ जब तक तुम्हारा समय अनुकूल न आवे तब तक दैत्यों से मेल कर लो क्योंकि उन पर काल का अनुग्रह है। अमृत के उत्पन्न करने का प्रयत्न करो, जिसके पीने से जीव अमर हो जाते हैं। क्षीर समुद्र में सब प्रकार की जड़ी बूटी डालो, मन्दराचल पर्वत की रुई और वासुकी सर्प की नेती बनाओ। तदनन्तर तुम निरालस्य हो समुद्र को मथो। इसमें दैत्य केवल क्लेश के भागी होंगे और अमृत को तुम ही पीओगे। देखो समुद्र से काल कूट विष होगा उससे डरना मत, किसी बात का लोभ मत करना। हे राजन्! इस तरह देवताओं को समझा उन्हीं के बीच में उनके देखते-देखते स्वच्छन्द गति से ईश्वर अन्तर्ध्यान हो गये। इसके अनन्तर महादेव और ब्रह्मा परमात्मा को नमस्कार करके चले गये। फिर सब देवता बलि के पास गए। तब इन्द्र ने बलि को समझाकर कहा "देखो भाई! हम तुम एक के पुत्र हैं, लड़ाई होती ही रहती है अब यदि हम एकत्र हो जावें तो समुद्र को मथ अमृत निकाल उसे पीकर अजर अमर हो जावें।" इन्द्र की बात राजा बलि और शम्बर, अरिष्टनेमि त्रिपुर वासी आदि असुरों को अच्छी लगी। देवता और असुर आपस में बड़ा मेल और सलाह कर अमृत के लिये उद्योग करने लगे। तब देवता और असुर मन्दराचल को उखाड़ कर क्षीरसागर की ओर ले

चले। जब मन्दराचल किसी से न चला, तब भगवान गरुड़ पर सवार होकर आए। पर्वत के गिरने से पिसे हुए देवता और दानवों को देख अपनी दृष्टि से उनको ऐसा कर दिया कि घाव रहा न ब्रह्म रहा। तब फिर सहज ही में भगवान एक हाथ से ही उस पर्वत को गरुड़ पर रख समुद्र तट पर पहुंचे। तब भगवान ने गरुड़ से कहा कि अब तुम चले जाओ यहां नाग वासुकी आवेगा, अमृत पीने के समय तुमको बुला लेंगे।

समुद्र मंथन से कालकूट की उत्पत्ति

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- तदनन्तर सब देवता वासुकी को अमृत का भाग देने की प्रतिज्ञा कर बुला लाये और उसे पर्वत से लपेट कर प्रसन्न हो सावधानी से समुद्र मंथन करने लगे। हरि ने प्रथम वासुकी का मुख पकड़ा और सब देवता भी उसी ओर हो गये। भगवान का यह कार्य दानवों को अच्छा न लगा और कहने लगे कि हम पूंछ को ग्रहण न करेंगे। तब भगवान दैत्यों को देख हंसते हुए अग्रभाग को छोड़ पूंछ की ओर जा लगे। इस तरह स्थान विभाग करके देवता और दानव सावधानी से अमृत के लिये समुद्र को मथने लगे। परन्तु वह पर्वत बड़ा भारी था। निराधार होने के कारण मथते समय में नीचे को धसकने लगा। नारायण ने कछुए का रूप धार जल में घुस पर्वत पीठ पर उठा लिया। तब देव दानव मथने के लिए फिर तैयार हुए।

इस तरह असुर देवताओं को उत्तेजित करने लगे और अबोध रूप से वासुकी नाग में भी प्रविष्ट हो गये और एक रूप से समुद्र जल में भी प्रवेश किया और हजार भुजाओं का रूप धार दूसरे पर्वत की तरह ऊपर से भी उस पर्वत को पकड़ कर स्थित हुए। उस समय आकाश से ब्रह्मा, महादेव और इन्द्रादि सब स्तुति कर फूल वर्षाने लगे। जब सुरासुर समुद्र मथने लगे तब वासुकी के सहस्त्रों नेत्र मुख और श्वास से निकली हुई ज्वाला के धुएं से तेजहीन हुए पौलोम, कालेय, बलि, इल्वल आदि असुर दावाग्नि से दग्ध हुए सरेरों के वृक्षों की तरह काले हो गए। देवता भी जब वासुकी के श्वासों की शिखा से प्रभाहीन हुए तब भगवद्वशवर्ती मेघ बरसने लगे और समुद्र की तरंगों का स्पर्श करती हुई पवनें चलने लगीं। इस तरह देव और दानव के मथने से समुद्र से हलाहल कालकूट विष उत्पन्न हुआ। उस असह्य विष की तरंगों को ऊपर नीचे चारों ओर फैलती हुई देख प्रजा भयभीत हो शिव की शरण गई। प्रजापति से लोग प्रणाम कर बोले- हे भूतभावन! त्रिलोकी के जलाने वाले विष के भय से भयभीत हो शरण आये हैं सो इस विष से हमारी रक्षा कीजिए। हे राजन्! इस तरह उनको दुःखी देख महादेव ने उस विष को हथेली पर रख पी लिया। विष के प्रभाव से महादेवजी का कण्ठ नीलवर्ण हो गया। उसी दिन से नीलकण्ठ कहलाने लगे। विष पान करने के समय जो

हाथ में से कई बूंद टपक पड़ी थीं उनको बिच्छू, सर्प, आदिकों ने ग्रहण कर लिया, जिससे ये सब विषधर हो गए।

भगवान का मोहिनी रूप धारण करना

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! महादेव के विष पान कर लेने पर देव दानवों के गण बड़े वेग से समुद्र मथने लगे तब उसमें सुरभी गौ उत्पन्न हुई। उसे ऋषियों ने ले लिया उससे पीछे श्वेत वर्ण का उच्चैःश्रवा घोड़ा निकला इसके लिए राजा बलि ने इच्छा की, फिर ऐरावत हाथी निकला इसके चार दांत थे। तदनन्तर कौस्तुभ पद्मराग मणि निकली, इसे भगवान ने ग्रहण कर लिया, फिर कल्प वृक्ष और अप्सरायें उत्पन्न हुईं। तदनन्तर लक्ष्मी हुई ये भगवान में अत्यन्त तत्पर थीं, उन्होंने सद्गुणों से युक्त और माया रहित भगवान को पति बनाया। मत्त-भ्रमरों के गुञ्जार से कूजित पद्ममाला को कण्ठ में डाल, लज्जा और हास्य युत नेत्रों से वक्ष-स्थल को देखती हुए लक्ष्मी भगवान को हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई तब भगवान ने उस त्रिलोकी जनकी को अपने वक्षःस्थल में निवास दिया। उस समय ब्रह्मा, रुद्र और अंगदादि विश्व के सृजने वाले भगवान की स्तुति करते हुए फूलों की वर्षा करने लगे। तदन्तर जब फिर दैत्यों ने समुद्र को मथा तब वारुणी उत्पन्न हुई उसे दैत्यों ने ग्रहण किया, तदन्तर फिर समुद्र को मथने लगे

तब एक पुरुष हुआ इसका नाम धन्वन्तरि था, यह आयुर्वेद का प्रवर्तक और यज्ञ के भाग का भोगने वाला था, इसको और अमृत कलश को देख असुर देवों के हाथ से अमृत कलश को छीन ले गये और कहने लगे कि तुम कामधेनु कल्पवृक्ष, ऐरावत, उच्चैःश्रवा आदि चीजें ले चुके हो इसको हम पीवेंगे। इस प्रकार कह, जब वे अमृत कलश ले गये, तब देवता दुखित हो भगवान की शरण में गये। तब भगवान बोले- हे देवो! तुम दुखी मत होओ मैं अभी तुम्हारे मनोरथ पूर्ण करूंगा। इसी अवसर पर भगवान ने अद्‌भुत स्त्री का वेष धारण किया वह रति के समान सौंदर्य बनाकर कटाक्षों से दानवों के चित्त में कामोद्दीपन करने लगी।

अमृत परिवेशन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! वे परस्पर एक दूसरे से सुधा कलश को छीनते झपटते लड़ते हुए उस आती मोहिनी को विस्मय से देखने लगे। तब नवयौवना के कटाक्षों से मदोन्मत्त हो उसके रूप की प्रशंसा कर बोले- हे वामोरु! आप कौन तथा कहां से किसलिए इधर पधारी हैं! हे भामिनी! हम सबों का एक वस्तु पर झगड़ा हो रहा है। आप हमारे बैर को शान्त कीजिए। हम सब कश्यप के पुत्र भाई-भाई हैं और समुद्र मंथन से ये अमृत घड़ा निकाला है। सो आप हमको बांट दो। हे राजन्? स्त्री वेषधारी भगवान

से दैत्यों ने प्रार्थना की तब मोहिनी मुस्करा कर बोला- अरे तुम कश्यप के पुत्र हो, मुझ कुलटा में विश्वास करते हो? उस स्त्री के वचनों से दैत्यों के मन में विश्वास आ गया और अमृत कलश उसे दे दिया तब हरि उस अमृतघट को ले बोले- हे दैत्यगणों! जो फैसला मैं करूं उसे तुम स्वीकार करो तो मैं तुम्हारे झगड़े को निबटाने में कुछ करूं। उसकी बात सुन सब दैत्य बिना परिणाम सोचे, पुकारने लगे कि हमें स्वीकार है। तब मोहिनी बोली- यह ऐसे नहीं पिया जाता। सब दैत्य उपवास रख, स्नान कर, अग्नि में आहुति दे, ब्राह्मणों से स्वास्ति वाचन करा, नये वस्त्रों को पहिन पूर्व दिशा में आगे की ओर बिछे हुए कुश के आसनों पर बैठो, फिर उस सभा में मोहिनी ने अमृत कलश लिये प्रवेश किया। उस समय मोहिनी रूप की खुली हुई केशराशि और उसके मन्द-मन्द हंसने को देख, देव-दानव अपनी सुध भूल गये, भगवान ने सोचा कि इन दैत्यों को अमृत देना सर्प को दूध पिलाने के समान है। इसलिए उनको अमृत न दिया और उनकी अलग पंक्ति कर दी। देवता अलग बैठे और दैत्य अलग। फिर कलश ले बातों से दैत्यों को ठगते हुए दूर बैठे देवताओं को जरा और मृत्यु को दूर करने वाला अमृत पान करा दिया। तब राहु बोला- मुझे तो कुछ दाल में काला दीखता है, मैं तो जाता हूं। ऐसे कह देवताओं का वेष बना देवताओं की पंक्ति में घुस गया, और सूर्य चन्द्रमा के बीच बैठ गया, जब

मोहिनी सबको अमृत पिलाती आयी तब चन्द्रमा और सूर्य ने उसकी सूचना दी तब भगवान ने अमृत पान करते हुए राहु का सिर चक्र से काट डाला। उसका सिर अमर हो गया ब्रह्माजी ने उसे ग्रह बनाया उसी बैर से राहु सूर्य चन्द्र पर अब तक दौड़ता है इसी को ग्रहण कहते हैं। जब सब देवता अमृत पी चुके तब भगवान ने अपना रूप धारण कर लिया। इस तरह यद्यपि सुर और असुर समान थे परन्तु अमृत के प्राप्ति रूप फल में विपरीत रहे। इससे समझना चाहिए कि प्राण, धन, मन, कर्म, वचन से देह और पुत्रादिकों के लिए जो किया जाता है वह असत् है और जो युद्ध भगवन्निमित्त किया जाता है वही फल देने वाला होता है।

देवासुर संग्राम

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! इस तरह यद्यपि दैत्यों ने समान परिश्रम किया था परन्तु भगवान से विमुख होने के कारण उनको अमृत नहीं मिला। अमृत देवताओं को पान कराके भगवान गरुड़ पर चढ़ चले गये। असुरगण देवताओं की इस वृत्ति को न सह सके और लड़ने के लिए चढ़ दौड़े। तब देवता भी अमृत पीने से निःशंक हो लड़ने लगे। समुद्र किनारे घोर युद्ध हुआ जिसका नाम देवासुर संग्राम पड़ा। हे परीक्षित! सेनापति बलि यथेच्छ गामी विमान पर चढ़ आया। विमान के चारों ओर बड़े-बड़े सेनापति थे। तदन्तर

बलि के योद्धागण गरजने लगे उनको उत्तेजित देख इन्द्र को क्रोध आया, तब वह भी ऐरावत पर चढ़ दैत्य दानव एक-एक को पहचान कर द्वन्द युद्ध करने लगे। राजा बलि इन्द्र के संग, तारक, स्वामि कार्तिक के संग, हेति वरुण के संग, प्रहेति मित्र के संग, कालनाग, यम के संग मय, विश्वकर्मा के संग शम्ब, त्यष्टा के संग विरोचन, सूर्य के संग अपराजित नमुचि, बृषपर्वा के संग अश्विनीकुमार, बलि के वाणार्दिक सौ पुत्रों के संग सूर्य देव, राहु के साथ चन्द्रमा, पुलोम के साथ अग्नि, शुम्भ निशुम्भ के साथ भद्रकाली का युद्ध होने लगा। इस तरह दैत्य दानव एक दूसरे को जीतने की इच्छा से एक दूसरे को मारने लगे। बलि ने दस वाण इन्द्र के और तीन ऐरावत के चार पादरक्षकों के और एक महावत के मारे। इन्द्र ने उनको बीच में ही काट गिराया। बलि ने अद्‌भुत चमत्कार को देख एक शक्ति उठाई उसको इन्द्र ने उसके हाथ में ही काट गिराई। फिर शूल प्रास, तोमर, परिधि आदि जो-जो अस्त्र बलि ने उठाये सब इन्द्र ने काट गिराये। तब दैत्य देवताओं की सेना पर पर्वत वर्षाने लगे। तदनन्तर समुद्र मर्यादा छोड़ उछला पवन के वेग से उठी लहरों से भूमि को डुबाता हुआ दिखाई पड़ा। दैत्यों ने जब ऐसी माया रची तब देवसेना दुःखी हो गई। तब उनके द्वारा नारायण का ध्यान करते ही भगवान प्रकट हो गए। भगवान के आने पर मायादूर हो गई। संग्राम में भगवान को देख

कालनेमि ने एक त्रिशूल मारा, भगवान ने उसे पकड़ कर उसके सिंह और कालनेमि दोनों को मार डाला। तदन्तर माली-सुमाली लड़ने के लिए आए। तब भगवान ने अपने चक्र से उनके सिर काट लिए। इतने में माल्यवान् गदा ले गरुड़ को मारने दौड़ा तब भगवान ने चक्र से उसका सिर काट दिया।

शुकदेवजी कहने लगे- इन्द्र ने बलि के मारने को जब वज्र उठाया तब प्रजा हाहाकार करने लगी। इन्द्र ने बलि पर वज्र प्रहार किया तब वह रथ सहित गिरकर मर गया। तब जम्भासुर मित्र को गिरा देख इन्द्र के कण्ठ पर गदा प्रहार कर फिर हाथी की कनपटी पर मारी। गदा के प्रहार से व्यथित हो हाथी ने घोंटू टेक दिये। मातलि सहस्त्र घोड़ों के रथ को ले आया और इन्द्र उसमें बैठ गया। तब जम्भ ने सारथी की प्रशंसा की और मातलि को उस त्रिशूल से मारा। मातलि ने त्रिशूल की वेदना को सह लिया। यह देख इन्द्र ने वज्र से जम्भ का सिर काट डाला। जम्भ का मरण सुन नमुचि, बलि और पाक उसके सजातीय वहां आ इन्द्र के मारने को उपस्थित हो गए। बलि ने सहस्त्र बाणों से घोड़ों को मार डाला। पाक ने मातलि के दो सौ बाण मारे और रथ तोड़ डाला, नमुचि पन्द्रह बाण मार गरजने लगा। उन असुरों ने इन्द्र को रथ और सारथी सहित बाणों से ढक दिया। तदन्तर इन्द्र ने वज्र उठाया और उससे बलि और पाक दोनों का सिर काट डाला। तब नमुचि शोक से

आतुर इन्द्र के मारने को त्रिशूल ले यह कहता हुआ दौड़ा "इन्द्र! अब इस त्रिशूल से तुमको मार लिया।" उस त्रिशूल को आता देख इन्द्र ने उसके टुकड़े कर दिये और फिर उसका सिर काटने को वज्र फेंका। लेकिन उससे नमुचि की त्वचा भी नहीं कटी यह देख इन्द्र दुःखित हो बोला- "आश्चर्य है कि जिस वज्र ने वृत्रासुर को मारा उसी वज्र का नमुचि की त्वचा ने तिरस्कार कर दिया। अब मैं इसको नहीं उठाऊंगा।" जब इन्द्र दुःखित हो रहा था तब आकाशवाणी ने कहा- 'हे इन्द्र! सोच मत कर मेरे वर से यह न गीले में मरेगा और न सूखे में।' 'इसमें इसके मारने का दूसरा उपाय सोचो।' तदन्तर समुद्र का झाग इन्द्र की निगाह में आया उसने सोचा कि ये न सूखा है न गीला। ऐसा विचार झाग को लेकर इन्द्र ने उससे नमुचि का सिर काट डाला। वायु, अग्नि और वरुणादिक ने अनेक दैत्य मार डाले। हे राजन्! दानवों का नाश देख ब्रह्मा ने नारद को देवताओं के पास भेजा तब नारद देवताओं के पास जा कहने लगे, हे देवताओं! नारायण की कृपा से आपको अमृत मिल गया, कीर्ति और लक्ष्मी की वृद्धि हुई अब युद्ध से निवृत्त हो जाओ। तब देवता नारद का वचन मान क्रोध त्याग स्वर्ग को चले गये। तथा नारद के कहने पर दैत्य भी बलि के शरीर को ले अस्ताचल को चले गए। वहां जिन दैत्यों के हाथ पांव नष्ट नहीं हुए थे और सिर विद्यमान थे उनको शुक्राचार्य ने संजीवनी विद्या से

जिला दिया। फिर शुक्राचार्य ने बलि की देह पर हाथ फेरा इससे वह जी उठा। हे राजन्! बलि पराजित होने पर भी खेदित नहीं हुआ क्योंकि वह तत्ववेत्ता था।

मोहिनी रूप देख महादेव को मोह प्राप्त होना

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- जब महादेव ने सुना कि भगवान ने मोहिनी रूप धार दानवों को मोहकर देवताओं को अमृत पान कराया है, तब वे दर्शन के लिए भगवान के समीप पहुंचे। तब भगवान ने महादेव का बहुत आदर किया। महादेव जी भगवान का पूजन कर हंसते हुए कहने लगे- मैंने अनेक अवतार देखे परन्तु अब तो स्त्री रूप धारण किया है उसको देखना चाहता हूं। हे राजन्! जब महादेव ने इस तरह प्रार्थना की तब वे बोले- हे शिवजी! अमृत के घड़े को छीन दैत्यों के छलने के लिए मैंने स्त्री वेष धारण किया था, यदि आपको उस रूप को देखने की इच्छा है तो दिखलाऊंगा। यह कामोत्पत्ति करने वाला है। यह कह भगवान अन्तर्ध्यान हो गये और महादेव-पार्वती खड़े देखते रह गये। थोड़ी देर में रमणीक उपवन में एक स्त्री देखी, वह गेंद से क्रीड़ा कर रही थी, उसकी कमर पर अति सूक्ष्म पीला रेशमी दामन शोभा दे रहा था उसके ऊपर रत्नमय करधनी शोभा दे रही थी। गेंद को पृथ्वी से उठाने में बारम्बार नीचे ऊपर उठने में हारों के भार से

ऐसा मालूम होता था मानो कुचों के बोझ से उसकी क्षीण कटि लचककर दो टुकड़े हो जायेगी। दशों दिशाओं में लुढ़कती हुई गेंद को देखने के लिए जब अपने नेत्रों को घुमाती तो ऐसा दीखता मानो चारों ओर मोती छिटक रहे हैं। मनोहरी बांये हाथ से खिसकते हुए दामन को और खुली वेणी को संभालती गेंद को उछालती संसार को मोहित कर रही थी। उसके कटाक्षों से बिद्ध हो टकटकी लगा महादेवजी को तन मन की सुधि न रही। हाथ के धक्के से जब गेंद दूर चली गई तब उसके लेने को दौड़ी, उस समय दौड़ने के वेग से पवन ने उसकी अति सूक्ष्म साड़ी उड़ा दी। इस प्रकार से उस स्त्री को देख महादेवजी का मन उसी में जा लगा। काम से विह्वल हो लज्जा त्याग पार्वती के देखते ही महादेव उसके पीछे दौड़े वह भी उनको आता देख वस्त्र गिर जाने से लज्जित हुई वृक्षों की आड़ में छिपती और हंसती हुई आगे चल दी। तब महादेवजी भी उसी के पीछे हो लिए। महादेवजी ने उसकी वेणी को पकड़ दोनों हाथों से खींच अपनी छाती से लगा लिया। तब पृथु नितम्ब वाली वह माया जैसे तैसे अपने को छुड़ाकर भागी। महादेव भी उसी के पीछे दौड़े। उस मसय मालूम होता था मानो कामदेव ने आज बदला लिया है। हे राजन् जहां-२ महादेवजी का वीर्य गिरा वहीं चांदी, पारा और सोने की खानें हो गईं। वीर्य स्खलित होने पर महादेवजी ने अपने को जड़ हुआ देखा तब वे

उस खेद से निवृत हो गये। तदन्तर भगवान अपने शरीर को धारण कर बोले। ''हे महादेवजी! बड़े ही सौभाग्य की बात है कि यद्यपि मेरे स्त्री रूप ने आपको छल लिया तथापि आप फिर आत्मनिष्ठ हो गये। आपके सिवाय ऐसा कौन है जो मेरी माया के फन्दे से निकल सके।'' हे राजन्! भगवान से सत्कार किये जाने पर शिवजी अपने गण सहित अपने स्थान को चले गये। महादेवजी प्रसन्न हो पार्वती से बोले- हे भवानी! आपने भगवान की माया को देखा? मैं भी उनकी माया में मुग्ध हो गया। संसारी जीव उस माया के वशीभूत मोहित हो जाये तो क्या आश्चर्य है।

वैवस्वतादि मन्वन्तर वर्णन

शुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! सप्तम् वर्तमान श्राद्धदेव विवस्वत् सूर्य का पुत्र हुआ, अब मैं इसके पुत्रादिकों का वर्णन करता हूं। इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्ति, नाभाग, दिष्ट, करूप, पृष्ध और वसुमान ये दस पुत्र वैवस्वतमनु के हैं, और आदित्य, वसु, रुद्र, विश्वे-देवा, मरुद्गण और अश्विनी कुमार ये इस मनु के देवता हैं और इन्द्र का नाम पुरन्दर है। कश्यप, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि और भारद्वाज ये सात ऋषि हैं। कश्यप के घर में अदिति से भगवान ने जन्म लिया। आदित्यों से छोटा रूप वामन नाम धारण किया है। अब सात मन्वन्तर

का वर्णन किया जाता है। विवस्वत् की दोनों स्त्रियां विश्वकर्मा की पुत्री थीं इनके नाम संज्ञा और छाया थे। संज्ञा के यम और श्राद्धदेव हुए और छाया के सावर्णि पुत्र, तपती कन्या जो सम्बरण राजा को ब्याही थी और इसी छाया के शनैश्चर हुआ तथा बढ़वा नाम सूर्य पत्नी से अश्वनीकुमार हुए। सूर्य का पुत्र आठवां सावर्णिमनु होगा और निर्मोक तथा विरजस्कादि उसके दस पुत्र होंगे और सुतपा, विरजा तथा अमृत-प्रभादेवता होंगे और विरोचन का पुत्र बलि, इनका इन्द्र होगा। यह बलि तीन पग मांगने वाले विष्णु को सब पृथ्वी दे, इन्द्र-पद त्याग सिद्धि प्राप्त करेगा। मालव दीप्तिमान, परशुराम, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, श्रृङ्गी ऋषि और वेदव्यास सात ऋषि होंगे। इस प्रकार मन्वन्तर के सरस्वती गर्भ से भगवान जन्म लेंगे और इन्द्रासन को पुरन्दर से छीन बलि को देंगे। तदन्तर वरुण पुत्र दक्ष सावर्णि नाम से नवां मन्वन्तर होगा। धूमकेतु और दीप्तकेतु आदि इसके दस पुत्र होंगे। पारा और मरीचि गर्भादिक देवता होंगे, अद्भुतनाम इन्द्र होगा, द्युतिमानदि ऋषि होंगे। आयुष्मान की अम्बुधारा स्त्री से ऋषभदेव भगवान होंगे। जिसकी बढ़ाई हुई त्रिलोकी को अद्भुत इन्द्र भोगेगा। इसके पीछे उपश्लोक का बेटा ब्रह्मसावर्णि दसवां मनु होगा। भूरिषेणादि इसके पुत्र होंगे और हविष्मानोदि ऋषि होंगे। सुहावन और विरुद्धादिक देवता होंगे, इन्द्र का नाम शम्भु होगा। भगवान

विश्वक्सेन विश्व सृष्टाओं के घर विषूची से जन्म ले शंभु से मैत्री करेंगे। उसके पीछे धर्मसावर्णि ग्यारहवां मनु होगा इसके अनागत और सत्य धर्मादिक दस पुत्र होंगे। विहंगम, काम गण और निर्वाण रुचि देवता होंगे, वैधाति इन्द्र अरुणादिक ऋषि होंगे। इस मन्वन्तर में भगवान आर्यक की स्त्री वैधृता से धर्मकेतु अवतार धार त्रिलोकी को धारण करेंगे। तदन्तर रुद्र सावर्णि नामक बारहवां मनु होगा, देववान, उपदेव और देव श्रेष्ठादिक इसके दस पुत्र होंगे, तपोमूर्ति, तपस्वी और आग्निध्रादिक सप्तऋषि होंगे। सत्यसहा की सूनृतानाम्नी स्त्री से भगवान सुधामा नाम अवतार धार रुद्रसावर्णि का पालन करेंगे। तदन्तर देवसावर्णि नाम तेरहवां मनु होगा, चित्रसेन और विचित्रादि दस पुत्र होंगे। सुकर्म और सुत्रामादि, देवता, दिवस्पति नाम इन्द्र तथा निर्मोक और सत्वदर्शादि सप्तऋषि होंगे। देवहोत्र वृहति स्त्री से भगवान योगेश्वर अवतार धारण करेंगे। फिर इन्द्र सावर्णि नामक चौदहवां मनु होगा, उरु और गम्भीर बुद्ध आदि पुत्र होंगे। पवित्र और चाक्षुप देवता शुचिनाम इन्द्र तथा अग्निबाहु, शुचि, शुद्ध और मायवादि सप्तऋषि होंगे। सत्रायण की बितानाता स्त्री से बृहद्भानु अवतार ले क्रियाओं का विस्तार करेंगे। हे राजन्! इस तरह भूत भविष्यत, वर्तमान तीनों काल में होने वाले चौदह मन्वन्तरों का वर्णन है, हजार चौकड़ी में ये चौदह मनु बीतते हैं। तब एक कल्प कहलाता है।

बलि द्वारा स्वर्ग-विजय

परीक्षित ने कहा- महाराज! भगवान ने बलि से तीन पैर पृथ्वी क्यों मांगी और मिल जाने पर भी क्यों बांध लिया? शुकदेवजी बोले, देवासुर संग्राम में जब इन्द्र ने राजा बलि की स्त्री और प्राण हर लिये तब शुक्राचार्य ने प्रसन्न हो बलि से विश्वजित यज्ञ कराया और अभिषेक कराया। तदन्तर अग्नि से सुवर्ण रथ निकला जिसमें इन्द्र के घोड़ों के समान घोड़े थे, और सिंह चिह्न की ध्वजा थी तथा दिव्य धनुष तरकस और कवच निकले, प्रहलाद ने एक माला दी जिसके फूल कुम्हलाते न थे और शुक्राचार्य ने शंख दिया। इस तरह ब्राह्मणों ने युद्ध की सामग्री तैयार कर दी और फिर स्वस्तिवाचन किया। तब ब्राह्मणों को नमस्कार कर प्रहलाद की आज्ञा ले भृगु के दिये रथ पर चढ़, माला पहन ली, कवच धारण कर खंग धनुष और तरकस बांध लिया, तदन्तार सेना को ले इन्द्रपुरी पर चढ़ाई की देवपुरी को, घेरकर बलि शुक्राचार्य के शंख को बजा इन्द्र की स्त्रियों में भय उत्पन्न करने लगा। तब इन्द्र देवताओं को साथ ले बृहस्पति के पास जा बोले- हे भगवान! बलि ने बड़ा उद्योग किया है। इस तरह से तो यह मुख से ज़गत को पान कर जायेंगे। बृहस्पति बोले- हे इन्द्र! मैं तेरे इस बैरी की उन्नति का कारण जानता हूं, भृगु ने शिष्य का तेज बढ़ाया है। भगवान के सिवाय कोई

आज इसके सामने खड़ा न हो सकेगा। तुम स्वर्ग को छोड़ जा छिपो और काल की प्रतीक्षा करो जब ये ब्राह्मणों का अपमान करेगा तब बान्धवों सहित नष्ट होवेगा। गुरु की बातों को सुन देवगण स्वर्ग को छोड़ भाग गये। देवताओं के भाग जाने पर बलि ने राज्य ले लिया और त्रिलोकी पर शासन करने लगा। भृगुओं ने अपने शिष्य से सौ अश्वमेघ कराये। तब यज्ञों के प्रभाव से बलि अपनी कीर्ति का दिशाओं में विस्तार करने लगा।

कश्यप द्वारा पयोव्रत कथन

शुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! जब दैत्यों ने स्वर्ग छीन लिया तब देवगण बड़े दुःखी हुए और उनकी माता अदिति को घोर क्लेश हुआ। समाधि त्याग एक दिन कश्यप, अदिति के आश्रम में पधारे, स्वागत होने पर बैठ कर अपनी पत्नी से बोले- हे भद्रे! तुम्हारा मन उदास है इसका क्या कारण है? अदिति बोली- हे ब्रह्मन्! मेरे क्लेश दूर कीजिए, सौतेले असुरों ने मेरे पुत्रों की राज लक्ष्मी और घर बार सब छीन लिया है, उनकी रक्षा कीजिए। शत्रुओं ने मुझे निकाल दिया है इससे मैं दुःख में डूब रही हूं। कश्यपजी हंसकर कहने लगे हे प्रिये, तुम भगवान का ध्यान करो, वे तेरा मनोरथ पूर्ण करेंगे। अदिति बोली- हे ब्रह्मन्! मैं परमेश्वर की उपासना किस रीति से करूं। तब कश्यपजी बोले एक

समय पुत्र की चाहना से यही प्रश्न मैंने ब्रह्मा से किया था तब भगवान के प्रसन्न करने वाला व्रत उन्होंने मुझे बतलाया- फाल्गुन सुदी प्रतिपदा से द्वादशी पर्यन्त बारह दिवस वह व्रत होता है इसका पयोव्रत नाम है। इसमें भक्ति से भगवान का पूजन करे। शूकर की खोदी हुई मिट्टी अमावस के दिन ला तब शरीर में उस मृतिका को लगाकर स्नान करे। "हे धरणी! रसातल में जा जल के ऊपर स्थापना की इच्छा से वाराहजी ने रसातल से तुम्हें निकाला है तुम मेरे पापों को दूर कीजिए मैं नमस्कार करती हूं।" इस तरह आह्निक कर्म से निवृत हो एकाग्र चित से मूर्ति, सूर्य, जल, अग्नि व गुरु में इन अधिष्ठानों में से कही भगवान का पूजन करने को प्रवृत होवे। पूजा करते समय निम्नलिखित मन्त्रों का उच्चारण करे- हे भगवान! आप घट-घट वासी सर्वद्रष्टा हैं, आप अव्यक्त सूक्ष्म और प्रधान पुरुष हैं और चौबीस तत्वों के ज्ञाता और सांख्यवेत्ता हो आपको नमस्कार है। हे शिवरूप, हे रुद्ररूप, हे शक्तिधर! आपको नमस्कार है। इन मन्त्रों से भगवान का आवाहन कर गन्धमाला चढ़ा दूध से स्नान करावे। फिर 'आ३म् नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र से पूजन करे और जो विभव हो तो दूध में पके हुए चावलों से मिष्ठान मिला खीर का भोग धर और द्वादशाक्षर मन्त्र से गुड़ और घृत मिला हवन करे। इस प्रसाद को देवे या स्वयं लेवे फिर आचमन कराके रोली अक्षत से पूजन कर ताम्बूल निवेदन करे। उक्त

मन्त्र को एक सौ आठ बार जपे और स्तुति कर फिर प्रदक्षिणा करे अत्यन्त प्रसन्नता से दण्डवत् करे। तदनन्तर प्रसाद को मस्तक पर चढ़ा, देव को विसर्जन करे और दो से अधिक ब्राह्मणों को यथेष्ट भोजन करावे, तब शेष प्रसाद को कुटुम्ब सहित भोजन करे, रात्रि में ब्रह्मचर्य से रहे। फिर प्रातःकाल स्नान कर भगवान को दूध से स्नान करा पूजन करे। इसी तरह प्रतिदिन इस पयोव्रत को बारह दिन करे। इसी से ईश्वर प्रसन्न होता है। तू यत्न पूर्वक इस व्रत को कर, भगवान प्रसन्न हो तेरी मनोभिलाषा पूर्ण करेंगे।

अदिति के गर्भ से भगवान का जन्म

शुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! स्वामी के आदेशानुसार अदिति ने इन्द्रियों को बुद्धि के वश में करके भगवान का ध्यान करते हुए, इस व्रत का अनुष्ठान किया तब भगवान अदिति के सम्मुख प्रगट हुए उनको देख अदिति दण्डवत कर प्रेम से विह्वल हो गई और स्तुति करने लगी। हे अच्युत, हे दुःख विनाशक! मेरा कल्याण कीजिए। अदिति की विनती सुन भगवान बोले- हे देवमाता! आपकी अभिलाषा मैंने जान ली है। किन्तु हे देवी! अभी असुरों को जीतना कठिन है क्योंकि देव और ब्राह्मण उन पर अनुकूल हैं। तथापि मैं कोई न कोई उपाय ढूंढूगा। मैं तेरा पुत्र बन तेरे पुत्रों की रक्षा करुंगा। तुम अपने पति

की सेवा करो, जैसा इस समय तेरा रूप है वैसा ही तुम पति का ध्यान करती रहना। इस बात को कोई पूछे तो भी किसी को मत कहना क्योंकि देवताओं के गुरु मन्त्र गुप्त रहने से ही सिद्ध होते हैं। हे राजन्! यह कर भगवान अन्तर्ध्यान हो गये और अदिति हरि का दुर्लभ जन्म अपने में पा कश्यपजी की सेवा करने लगी। कश्यपजी ने समाधि योग से जान लिया कि भगवान मुझमें प्रविष्ट हुए हैं, यह सोच बहुत दिन का संचित वीर्य अदिति में स्थापन किया। अदिति के गर्भ से भगवान को आये देख ब्रह्माजी कश्यपजी के आश्रम में स्तुति करने लगे। हे उरुगाय! हे त्रिगुणात्मन्, हे पृश्निगर्भ, हे वेदगर्भ! आपको नमस्कार है, आप जीव के उत्पन्न करने वाले हैं देवताओं के आप आश्रय हैं।

बलि के यज्ञ में भगवान का आगमन

शुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! ब्रह्मा के स्तुति करने पर भगवान अदिति से प्रकट हुये। भाद्रपद शुक्ल पक्ष में द्वादशी के दिन श्रावण नक्षत्र और अभिजित् मुहूर्त में मध्याह्न के समय भगवान को देख जय-जय करने लगे। चैतन्य-स्वरूप भगवान शस्त्र आभूषणादि धारण किये जिस रूप से प्रकट हुये सो माता-पिता के देखते-देखते उस स्वरूप को बदल वामन रूप हो गये। उस वामन रूप को देख सब प्रसन्नता से कश्यप को आगे कर जाति कर्मादि संस्कार करने लगे, यज्ञोपवीत

के समय सूर्य ने गायत्री का उपदेश किया, तदनन्तर वामन जी ने सुना कि शुक्राचार्य ने बलि को बहुत से अश्वमेघ यज्ञ कराये हैं इससे सम्पूर्ण बलों से युक्त ही वामन जी यज्ञशाला में पधारे। यह यज्ञ नर्मदा के उत्तर तट पर भृगु कच्छ तीर्थ पर हो रहा था। वहां शुक्राचार्यादि सब वामनजी को देख तर्क वितर्क करने लगे कि यह सूर्य का सा प्रकाश क्या चला आता है! इतने ही में वामनजी दण्ड, छत्र कमण्डल लिए आ ही पहुंचे। जटाधारी वामन ब्रह्मचारी को आते देख उनके तेज से आहत हो अग्नि और शिष्यों सहित भृगुजी ने उनको अभ्युस्थान दिया। बलि ने उनका स्वागत कर चरणों को धो वामनजी का पूजन किया। फिर बलि बोले हे ब्रह्म! आपके आने से बड़ा आनन्द हुआ। आज हमारे पितृगण तृप्त हो गये। आपके पधारने से आज हमारा यज्ञ भी सफल हो गया है। आप किसी याचना के लिए यहां आए हैं तो जो इच्छा हो सो मांगिए यदि आप कहें तो किसी ब्राह्मण की बौनी कन्या से आपका विवाह करा दूं।

वामन द्वारा बलि से तीन पैर भूमि की प्रार्थना

शुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! बलि के वचनों को सुन वामनजी बोले- हे बलि! तुम्हारे वाक्य सत्य और तुम्हारा कुल योग्य है। क्योंकि लौकिक कर्मों के

उपदेश शुक्राचार्य और पारलौकिक उपदेश पितामय प्रहलादजी करने वाले हैं। तुम्हारे कुल में सब दानी हुए हैं, तुम्हारे ही कुल में हिरण्याक्ष वीर रस का अवतार प्रगट हुआ। प्रहलाद पुत्र, तेरा पिता विरोचन ऐसा प्रिय-भक्त था कि देवता ब्राह्मणों का भेष धर आए और उसको मालूम हो गया तब भी उनके मांगने से अपनी आयु दे दी। इस लिए हे श्रेष्ठ! मैं तीन पैर पृथ्वी मांगता हूं, मैं ही स्वयं उसको अपने पांवों से नापूंगा। बलि बोले- हे ब्राह्मण कुमार, आपका वचन वृद्धों के समान है, परन्तु बुद्धि मूर्ख बालकों के समान है। ब्राह्मण! चाहो तो मैं एक द्वीप दे सकता हूं। इसलिए वामनजी बोले- हे नृप! जो तीन पैर पृथ्वी से सन्तुष्ट नहीं हुआ है वह वन खण्ड मिलने से भी सन्तुष्ट नहीं हो सकता। अतः जो मिल जाये उसी पर सन्तोष करना मुक्ति का हेतु होता है। इसलिए हे वरदर्षभ! मैं तीन ही पैर पृथ्वी मांगता हूं। हे राजन्! तब बलि वामनजी के वचनों को सुन हंसकर बोला अच्छा जितनी इच्छा है उतनी भूमि ले लीजिए, यह कह वामनजी को भूमि दान करने को जान बलि से शुक्राचार्य ने कहा- हे असुराधीष! ये विष्णु भगवान हैं, कश्यप के घर में अदिति से उत्पन्न हुए हैं। तैने इनको भूमि देने की प्रतिज्ञा कर ली, यह अच्छा नहीं किया। यह मायावी हरि वामन रूप धर, तेरे स्थान, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, तेज और यज्ञ को तुझसे छुड़ा इन्द्र को देगा। यह विश्वकाय

तीन ही पैर में तीनों लोक नाप लेगा। जिस दान से जीविका नष्ट होती है वह दान प्रशंसा योग्य नहीं है। हे दैत्येन्द्र! आत्मा रूपी वृक्ष का फल और फूल सत्य है जो यह देह नष्ट हो जाएगी तो फल फूल कहां से लगेंगे। शरीर वृक्षों की मिथ्या भाषण ही जड़ है। सो जड़ न होने से वृक्ष सूख कर गिर पड़ता है उसी तरह झूंठ न होने से शरीर का नाश हो जाता है। जिस पदार्थ को 'हां' कर ली जाती है देने वाला उससे शून्य हो जाता है। परन्तु सब जगह झूठ बोलना दूषित नहीं है जैसे- स्त्रियों से हास्य में, विवाह में, जीविका में, प्राण-संकट में तथा गौ ब्राह्मण के प्राण बचाने में।

विश्व रूप दर्शन

शुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! गुरु की बात सुन बलि कहने लगा- हे गुरु! आपका कथन ठीक है, गृहस्थियों का यही धर्म है परन्तु प्रहलाद के वंश में ही धन लोभ से अपनी की हुई प्रतिज्ञा को कैसे मेंट सकता हूं। गुरुजी! असत्य से परे कोई अधर्म नहीं है क्योंकि बोझ में तो इस ब्रह्मचारी की इच्छा पूर्ण करूंगा ही। यदि ये विष्णु हैं तो क्या डर है? यज्ञों द्वारा जिसका पूजन करते हैं सो विष्णु मेरे यहां मांगने आया है तब चाहे शत्रु हो मैं अवश्य दान दूंगा। इस पर भी यदि मुझे यह बांधेगा तो मैं भी इसको न मारूंगा क्योंकि इसने शत्रु होकर भी डर के ब्राह्मण का शरीर धारण किया है।

जब बलि ने गुरु का कहना न माना तब गुरु ने कुपित हो श्राप दिया। "अरे, अज्ञानी! मेरी उपेक्षा करता है, इससे तेरी सम्पत्ति शीघ्र ही नष्ट हो जायेगी।" इस तरह गुरु श्राप से भी वह अपनी सत्य प्रतिज्ञा से चलायमान न हुआ जल लेकर भूमि का संकल्प छोड़ दिया। उसी समय बलि की विन्ध्यावली रानी सोने के कलश में जल भर चरण धोने आई। यजमान ने अपने हाथों वामन के चरण धोकर चरणोदक अपने सिर पर छिड़क लिया उस समय दैत्यराजन पर देवगणों ने फूलों की वर्षा की, तब वामनजी ने अपना त्रिगुणात्मक रूप ऐसा बढ़ाया कि उसी विराट देह में बलि की भूमि, आकाश, दिशा, स्वर्ग, समुद्र, पक्षी, नर, देवता ऋषि, ऋत्विक, आचार्य सभासदों सहित विश्वगत प्राणों, इन्द्रिय अर्थ तथा उनकी पगस्थली में रसातल, चरणों में भूमि, जंघाओं में पर्वत, घुटनों में पक्षी और उरुओं में पवन के गण, नेत्रों में सन्ध्या गुह्यस्थान में प्रजापति, जंघाओं में स्वयं आप, नाभि में आकाश, कुक्षि में सातों समुद्र, वक्षस्थल में नक्षत्र मंडल,हृदय में धर्म, स्तनों में ऋतुसत्य, मन में चन्द्रमा, वक्षस्थल में कमलहस्ता लक्ष्मी और कण्ठ में सामवेद, भुजाओं में इन्द्रादि देवता, कानों में दिशा, मूर्धा में स्वर्ग, केशों में मेष, वेद, जिह्वा में वरुण, भृकुटियों में निषेध और विधि, पलकों में दिन रात, ललाट में क्रोध, ओष्ट में लोभ, स्पर्श में काम, वीर्य में जल, पीठ में अधर्म, पाद विक्षेप में यज्ञ,छाया में मृत्यु,

हास्य में माया, रोमों में औषधि, नाडियों में नदी, नखों में शिला, बुद्धि में ब्रह्मा, प्राणों में देव और ऋषिश्वर तथा गोत्र में सब स्थावर जंगल दिखाई दिये। हे राजन्! भगवान में सम्पूर्ण लोक को देख असुरगण खेद को प्राप्त हुए। तदन्तर वामनजी बोले- हे राजन्! मैं नापता हूं, राजा ने कहा नापो, सो एक पांव में पृथ्वी, शरीर से आकाश और भुजाओं से दिशा तथा दूसरे पांव से स्वर्ग नाप लिया, तीसरे पांव के रखने से लिये कुछ भी बाकी न रहा।

विष्णु द्वारा बलि का बन्धन

शुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! जब वामनजी का चरण सत्य लोक में पहुंचा तब ब्रह्माजी और मरीच्यादि तथा सनकादि योगी गण वेद, यम, नियम, इतिहास शिक्षा आदि वेदांगपुराण संहिता आदि उस चरण का पूजन करने लगे, स्तुति करने लगे। हे नरेन्द्र! ब्रह्मा के उस कमण्डल का जल वामन के चरण धोने से पवित्र हो गंगा बन गई जो तीनों लोकों को पवित्र करती है। तब भगवान ने वृहद्विराट रूप को छिपा लिया और वामन रूप हो गये, तदन्तर जामवन्त ने तीनों लोकों में डोंडी फेर दी कि आज से बलि का हुक्म प्रवृत्त हुआ। जब असुरों ने देखा कि सभी भूमि हर ली तब क्रोध कर कहने लगे- ''अरे! यह तो मायावी विष्णु है। इसका वध करना हमारा धर्म है।' इस हेतु वे सब शस्त्रों को

S. S. BRIJBASI & SONS
69, MIRZA STREET BOMBAY 3

160 BRAHMA VISHNU MAHESH (Standing)

S. S. BRIJBASI & SONS
32/1, FATEHPURI DELHI-6.

ले क्रोध करके बलि की बिना इच्छा वामनजी को मारने के लिए उद्यत हुए तब भगवान के पार्षदों ने उन्हें रोक लिया। शुक्राचार्य के शाप को याद कर बलि ने भी रोक दिया और अपने सेना नायकों से बोला- हे वयचित्त, राहो, हे नेमे! मेरी बात सुनो, युद्ध मत करो, जो काल पहले तुम्हारे अनुकूल था वही अब विपरीत है। जब हम पर देव प्रसन्न होगा तो हम इनको जीतेंगे। लड़ना छोड़ दो।' अपने स्वामी की बात सुन दैत्य रसातल को चले गये। तदन्तर भगवान की इच्छा देख गरूड़ ने यज्ञ से सोमाभिषेक के दिन बलि को वरुणापाश से बांध लिया। वामन भगवान बोले- अरे असुर! तैंने मुझे तीन पैर देने की प्रतिज्ञा की थी दो तो मैंने नाप लिये अब तीसरा पैर कहां नापूं? यदि तू तीसरा पैर न देगा तो नरक में पड़ेगा इससे तू उसी नरकमें थोड़े वर्ष निवास कर जिसका तेरे गुरु ने अनुमोदन किया था।

भगवान का द्वारपाल होना स्वीकार

शुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! भगवान के धिक्कारने पर बलि बोला- हे उत्तम श्लोक! मेरे वचन को मिथ्या न मानिये अपना तीसरा पैर मेरे सिर पर धरकर नाप लीजिए क्योंकि जब मेरे बाहुबल से अर्जित भूमि आपके लिए दो पैर हो गई तो क्या मेरा शरीर आपके एक पैर भी नहीं हो सकता है। मैं नरक जाने से नहीं डरता हूं, मुझे केवल आपसे इस झूठे कहे का बहुत

डर है। मेरे पितामह प्रहलादजी कहते थे कि जब जीव अन्त में ये देह छोड़कर जाता है तो उस देह से क्या प्रयोजन है? और मरने पर धन के हरने वाले भाई रूप चोरों से, तथा इस संसार में बन्धन रूपी स्त्री से भी क्या प्रयोजन है? इन विचारों को दृढ़ करके मेरे पितामह को अगाध बोध हो गया और आपके पादपंकजों में भक्ति प्राप्त हुई। मेरी भी देव ने लक्ष्मी हर मुझको आपके पास ला डाला है यह भी अहोभाग्य है। आपने मुझको उस सम्पत्ति से हटा दिया है जिससे मदान्ध हो प्राणी मृत्यु के समीप पहुंच अपने जीवन को अनित्य समझता है। हे राजन्! बलि के कहने पर प्रहलाद जी वहां आये। तब वरुणापाश बद्ध बलि ने प्रहलाद को नमस्कार नहीं किया, केवल सिर झुका दिया, नेत्रों में आंसू भर आये और लज्जा से मुख नीचा कर लिया, तब प्रहलाद ने भगवान को देख प्रणाम किया। प्रहलादजी बोले- 'हे प्रभो! आप ही ने तो बलि को इन्द्र के ऊपर गौरव दिया और आप ही ने ले लिया यह बड़ा ही अनुग्रह किया क्योंकि यह मदान्ध हो आपको भूल गया था।' हे राजन्! इस तरह प्रहलाद हाथ जोड़ खड़े थे उसी समय पति को बंधा देख बलि की स्त्री हाथ जोड़ वामनजी से बोली- हे महाराज! आपने क्रीड़ा के लिए यह जगत रचा था सो मूर्ख लोग अपने को इसका स्वामी कहते हैं। इसकी उत्पत्ति पालन और संहार करने वाले आपको कोई क्या दे सकता है? ब्रह्माजी बोले- देव!

जो कुछ इसने संचय किया था वह सर्वस्व आपको दे चुका। देते समय इसके मन में कुछ भी विचार न हुआ। जो शठ बुद्धि को छोड़ आपके चरणों में जल और दूर्वांकुर मात्र भी समर्पण करताहै वह भी उत्तम गति पाता है फिर इसने तो त्रिलोकी और अपनी देह भी समर्पण कर दी फिर यह क्लेश क्यों पावे, इस कारण इसे छोड़ दीजिए। भगवान बोले- हे ब्रह्मा! जिस पर मैं अनुग्रह करता हूं उसका सर्वस्व छीन लेता हूं। इसलिये यह देवताओं में भी दुर्लभ स्थान पावेगा और आगे होने वाले सावर्णि मन्वन्तरों में यही मेरा आश्रय भूत इन्द्र होगा। हे बलि, अपने जाति वर्गों को ले सुतल लोक में जा निवास करो। लोकपाल भी तुमको पराभव न कर सकेंगे। मैं तेरी रक्षा करता हुआ तेरे दरवाजे पर मूसल ले खड़ा रहूंगा।

बलि का सुतल गमन

शुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! उस समय बलि हाथ जोड़ आंसू भर भगवान से बोला- 'हे भगवन्! कैसा आश्चर्य है जो देवों को भी न मिला वह अनुग्रह आज आपने अपना चरण मेरे सिर पर रखकर किया।' यह कह भगवान ब्रह्मा और महादेव को प्रणाम कर बलि बन्धन से छूट असुरों को साथ ले सुतल-लोक चला गया। इस तरह भगवान ने इन्द्र को राज्य दे अदिति को मनोरथ पूर्ण किया। बन्धन से छूटे नाती को

देख प्रहलादजी बोले- आपने ऐसी प्रसन्नता ब्रह्मा, लक्ष्मी व महादेव पर भी नहीं की है। हमारे अहोभाग्य हैं जो अपने असुरों की द्वारपाली स्वीकार की। भगवान बोले- ''हे वत्स प्रहलाद! तुम्हारा कल्याण हो, अपने पौत्र को ले सुतल लोक जाओ। मुझे गदा लिये वहां नित्य देखोगे। हे राजन्! भगवान की आज्ञा से प्रहलाद बलि को साथ ले सुतल लोक चला गया। तदन्तर समीप ही शुक्राचार्य से नारायण बोले- हे ब्रह्मन्! यज्ञ करने वाले तुम्हारे शिष्य के कर्म में जो छिद्र रह गया है उसे तुम पूर्ण करो। शुक्राचार्य बोले- जिस कर्म के आप ईश्वर हैं उसमें विषमता कैसे रह सकती है। मन्त्र, तन्त्र, देश और काल से जो छिद्र हो जाते हैं वे आपके नाम संकीर्तन से पूर्ण हो जाते हैं। मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा, इस तरह हरि आज्ञा से शुक्राचार्य ने बलि यज्ञ की न्यूनता पूर्ण कर दी। हरि ने वामन रूप धर, बलि से पृथ्वी को मांग, स्वर्ग शत्रुओं से छीन, इन्द्र को दे दिया। देव, ऋषि, दक्ष, भृगु, अंगिरा, सनत्कुमार तथा शिवजी को साथ ले प्रजापति ब्रह्मा ने कश्यप और अदिति की प्रसन्नता के लिए वामनजी को सब लोकों का पति उपेन्द्र बनाया। फिर ब्रह्मा की आज्ञा से वामनजी को विमान में बैठा स्वर्ग ले गया। हे कुरु नन्दन! वामनजी का चरित्र मैंने आपके सामने वर्णन किया जिसके सुनने से मनुष्य के सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

मत्स्य चरित्र का कथन

परीक्षित पूछने लगे- हे भगवान्! मैं हरि के मत्स्यावतार की कथा सुनना चाहता हूं। ईश्वर होकर भी जीव की तरह भगवान ने मछली का रूप क्यों धारण किया? शुकदेवजी बोले- हे राजन्! गौ, ब्राह्मण, देवता, वेद और धर्म, अर्थ की रक्षा करने की इच्छा से भगवान शरीर धारण करते हैं। कल्पान्त में जब ब्रह्मा की निद्रा से संसार का प्रलय हुआ था तब सब लोक समुद्र में डूब गये थे और उसी समय ब्रह्मा के मुख से निकले हुए वेदों को हयग्रीव हर ले गया। उस असुर के मारने को भगवान ने मछली का रूप धारण किया। सत्यव्रत नाम राजऋषि जल पान कर नारायण में एकाग्रबुद्धि लगा तप करता था। यह सूर्य पुत्र हो श्राद्धदेव मनु के नाम से विख्यात है। एक दिन यह राजा कृतमाल नदी तट पर बैठा तर्पण कर रहा था तब उसकी अंजली में एक मछली आ गई। सत्यव्रत ने हाथ में आई उस मछली को नदी में छोड़ दिया तब मछली कहने लगी- हे दीनानाथ! मैं सजातियों के डर से आपकी शरण आई थी सो आप मुझे इस नदी में क्यों छोड़ देते हो? राजा ने उस मछली की रक्षा का विचार किया। तब उसे कलश के जल में रख अपने आश्रम में ले आया। वह उसमें एक रात में ही इतनी बढ़ गई कि उसके रहने को जगह न रही तब राजा से बोली- हे

राजन्! मुझको कलश मे बड़ा कष्ट है, कोई बड़ा स्थान बताओ। तब राजा ने उसको किसी जल कुण्ड में डाल दिया उसमें जाते ही वह दो घड़ी में तीन हाथ हो गई। फिर वह राजा से कहने लगी- हे राजन्! यह जलाशय भी मेरे योग्य नहीं है, तब राजा ने उसे एक सरोवर में डाल दिया और वहां सरोवर का भी जल उससे ढक गया। वह बोली- हे राजन्! यह सरोवर भी ठीक नहीं है। जहां-२ भी बड़े जलाशय मिले राजा उसे डालता रहा परन्तु वह कहीं नहीं समाई तब समुद्र में डालते ही वह बोली- हे राजन्! तुम इसमें मत डालो क्योंकि इसमें मकरादिक मेरा भक्षण कर लेंगे। इस प्रकार मछली की वाणी से विमोहित राजा ने पूछा आप कौन हैं जो हमको मोह रही हो। हमने तो ऐसा जीव कभी नहीं देखा है। आप निश्चय ही भगवान हैं। हे विभो! प्राणियों के कल्याण के निमित्त ही आप लीलावतार हैं। हे राजन्! सत्यव्रत के वचन सुन मत्स्य रूपधारी भगवान बोले- हे अरिविन्दम्! आज के सातवें दिन ये भूभुवादिक तीनों लोक प्रलय जल में डूब जायेंगे। तब मेरी भेजी एक नाव आ उपस्थित होगी। उसी समय तुम सब छोटी बड़ी औषधियों के बीजों को सप्तऋषि और सब प्राणियों को ले नाव में चढ़ एक निरालोक समुद्र में ऋषियों के तेज से विचरोगे। उस नाव को वासुकी सर्प से मेरे श्रृंङ्ग में बांध देना। मैं ऋषियों और नाम सहित तुमको ब्रह्मा की रात्रि तक समुद्र में खेंचता हुआ

विचरूंगा यह कह भगवान अन्तर्ध्यान हो गये तब राजा प्रतीक्षा करने लगा। तदन्तर घोर वृष्टि के कारण समुद्र मर्यादा का उल्लंघन कर इतना बड़ा दिखाई दिया कि पृथ्वी डूबी दिखाई देने लगी। इतने ही में एक नाव आई राजा उस पर सप्तऋषि और औषधियों के बीजों को लेकर चढ़ गया। तब ऋषि प्रसन्न हो राजा से कहने लगे- हे राजन्! केशव का तुम ध्यान करो वही हमारे संकट को दूर करेंगे। तदन्तर राजा के ध्यान करने पर उसमें एक सींग वाला सुवर्ण मत्स्य दिखाई दिजा जिसका विस्तार एक लाख योजन का था। तब राजा हरि की आज्ञा के अनुसार वासुकि सर्प से नाव को सींग में बांध भगवान की स्तुति करने लगा। हे भगवान! आप हमारे गुरु हैं हमारे हृदय की ग्रन्थि को काट डालिये। आपके अनुग्रह से प्राणी अज्ञान से उत्पन्न हुए मल को त्याग देता है। हे अव्यय, हे ईश, आप हमारे उपदेष्टा हूजिये। हे ईश्वर! मैं आपकी शरण आया हूं। हम अपना स्वरूप जानने के लिए आपको अपना गुरु बनाते हैं। ये मनुष्य को असत् उपदेश देता है जिससे ये दुरत्यय अन्धकार में फंस जाता है। आप अव्यय हैं और उस अव्यय अमोघज्ञान का उपदेश देते हो जिसके प्रताप से मनुष्य आपकी शरण में पहुंच जाता है। आप सब लोकों के सुहृद, ज्ञान और अभीष्ट सिद्ध हो तो भी विषय वासनाओं में बंधे हुए मनुष्य हृदय में विराजमान होने पर भी आपको नहीं जान सकते हैं। राजा की

प्रार्थना से प्रसन्न हो मत्स्यरूपी भगवान राजा को तत्व का उपदेश करने लगे। उनके मुख से राजा ने सांख्ययोग की क्रिया से युक्त अत्यन्त गुह्य मत्स्य पुराण सुना था। इन्हीं मत्स्य रूप भगवान ने प्रलय के अन्त में हयग्रीव को मार कर सोकर उठे हुए ब्रह्म के लिये वेद ला दिये। वही सत्य-व्रत राजा ज्ञान-विज्ञान से युक्त विष्णु की दया से कल्प में वैवस्वत मनु हुआ।

— ० —
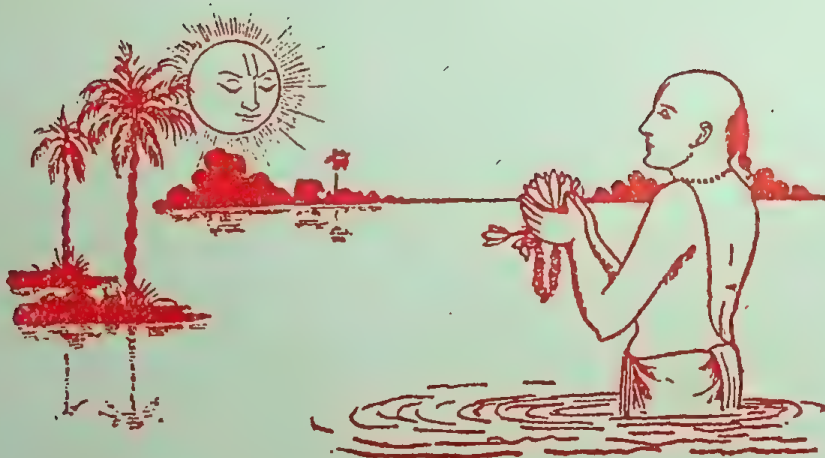
★ नौवां स्कन्ध प्रारम्भ ★

सुद्युम्न का स्त्रीत्व प्राप्ति वृत्तान्त

परीक्षित कहने लगे- मुनिवर! सब मन्वन्तर और उनमें हरि के किये चरित्र सुने। सत्यव्रत राजर्षि ने मत्स्यरूप की आराधना कर उनसे पहले कल्प में ज्ञान प्राप्त किया। वही इस कल्प में विवस्वान का पुत्र हो वैवस्वतमनु हुआ और उसके इश्वाकु आदि पुत्र हुये उनका वर्णन सब सुना। हे ब्राह्मन्! अब उनके वंश के राजाओं के चरित्रों का वर्णन कीजिये। श्रीशुकदेवजी बोले- हे परंतप! परम पुरुष कल्पान्त में विश्व रूप हुआ था और उसकी नाभि से हिरण्यमय कमल हुआ और उसमें चतुर्मुख ब्रह्मा हुआ। ब्रह्मा से मरीचि हुआ, मरीचि से कश्यप तथा कश्यप से दक्ष की अदिति नामक पुत्री से सूर्य हुआ। सूर्य श्राद्धदेव की श्रद्धारानी से इक्ष्वाकु, नृग, शर्याति, दिष्ट, घष्ठ, कुरुषक,नरिष्यन्त पृषध्र नभग और कवि ये वंश पुत्र हुए। मनु से पहिले सन्तान निमित्त वशिष्ठजी ने मित्रावरण का यज्ञ कराया था। पयोव्रत धारे मनु की श्रद्धा पत्नी ने होता के पास आ पुत्री के लिए प्रार्थना की। तब अध्वर्यु के कहने से होता ने पुत्री का ध्यान कर पूजन किया और बष्टकार शब्द कर अग्नि में आहुति दी। होता के इस अपराध से इला नाम की कन्या हुई उसको देख मनु दुःखी हो गुरु से बोले- हे ब्रह्मन्! यह क्या हुआ! ब्रह्मवादियों का यह

कर्म अन्यथा कैसे हो गया? वशिष्ठजी बोले संकल्प में यह विषमता होता के अपराध से हुई है तथापि तेजोबल से इस कन्या को पुत्र बना देंगे। हे राजन्! ऐसा विचार वशिष्ठ जी ने इला को पुरुष बनाने की इच्छा से भगवान की स्तुति की। भगवान ने प्रसन्न हो वर दिया और इला सुद्युम्न नामक पुरुष बन गई। एक दिन सुद्युम्न सिन्धुदेश के घोड़े पर बैठ मित्रों के साथ बन में विचरता हुआ मृगों को बेधता उत्तर की ओर चला गया। सुमेरु की तलहटी के वन में पहुंचा जहां महादेवजी पार्वती के साथ विहार करते थे। हे राजन्! उस स्थान में प्रवेश करते ही सुद्युम्न स्त्री हो गया और घोड़ा घोड़ी हो गया। उसके सब साथी भी स्त्री बन गये। परीक्षित ने पूछा- हे भगवान! इस देश में ऐसा वह क्या गुण है? शुकदेवजी बोले- एक समय ऋषि महादेव के दर्शन को गये। उनको देख पार्वती नग्न होने के कारण लज्जित हुई और पति की गोद से उठ झटपट अधोवस्त्र धारण करने लगीं। और शाप दिया कि 'जो इस स्थान में आवेगा वह स्त्री हो जायेगा। इसी कारण स्त्री रूप सुद्युम्न वन-वन घूमने लगी। आश्रम के समीप ही सखियों के साथ उस स्त्री को विचरती देख चन्द्र पुत्र बुध के मन में उसकी अभिलाषा हुई। वह भी बुध को पति के लिये इच्छा करने लगी और दोनों के संयोग से पुरूरवा हुआ। स्त्री होने पर भी सुद्युम्न वशिष्ठजी का स्मरण करता रहा। वशिष्ठजी उसकी दशा देख उसको फिर पुरुष बनाने की

इच्छा से शंकर की अराधना करने लगे। शिवजी ने प्रसन्न हो कहा कि तुम्हारा शिष्य एक महीने स्त्री और एक महीने पुरुष रहा करेगा। इस प्रकार कुलगुरु के अनुग्रह से पुरुष हो राज्य करने लगा। इसके उत्कल, गये और विमल तीन पुत्र हुए, ये दक्षिण में राज्य करने लगे। सुद्युम्न वृद्धावस्था में पुरूरवा को राज्य दे वन चला गया।

करूषादिक पंचपुत्र का वंश वृत्तान्त

श्रीशुकदेवजी बोले- सुद्युम्न के वन जाने पर वैवस्वतमनु ने पुत्र की इच्छा से यमुना तट पर सौ वर्ष तक तप किया। तप से इसके आत्मदृश्य इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र हुए। गुरु ने मनु के पुत्र को पृषध्र की गौओं की रक्षा को नियत किया। एक दिन रात्रि में मेह बरस रहा था इतने में एक व्याघ्र खिड़की में घुसा, उसके डर से गायें इधर-उधर भागने लगीं। उनमें से एक गौ को बाघ ने पकड़ लिया वह डकारने लगी उसकी ध्वनि सुन पृषध्र दौड़ा। रात्रि के अन्धकार में बाघ की शंका से गौ का सिर काट डाला, बाघ भी कानों के कट जाने पर भाग गया। पृषध्र ने विचारा कि बाघ मर गया परन्तु दिन में जब गौ मरी देखी तब बड़ा दुखी हुआ। वशिष्ठजी ने पृषध्र को शाप दिया 'तू शूद्र होगा।' पृषध्र गुरु के शाप को अंगीकार कर ब्रह्मचर्य व्रत से मुनि धर्म पालने लगा। इस नियम से वन में दावाग्नि से मर गया

और ब्रह्मा से जा मिला। मनु के पुत्रों में छोटा कवि बचपन में ही विषय-वासनाओं को त्याग, ब्रह्म को हृदय में रख वन में जाकर परमात्मा से मिल गया। करूष के करुष नाम के क्षत्रियों की जाति हुई और उत्तर दिशा में राज्य करने लगे। धृष्ट से आर्ष्ट नाम के क्षत्री हुए जो पृथ्वी में ब्राह्मण बन गये। नृग के वंश में सुमति हुआ इसका पुत्र भूतज्योतिका वसु, वसु का प्रत्रीक, प्रत्रीक का ओधवान् ओधवान् का औधवान और औधवती कन्या भी जो सुदर्शन को ब्याही गई। मनु के पुत्र नरिष्यन्त के चित्रसेन, इसके ऋक्ष, ऋक्ष के मीढ़वान, मीढ़वान के कूर्च, कूर्च के इन्द्रसेन के वीतिहोत्र, इसके सत्वश्रवा, इसके उरूश्रवा, इसके देवदत्त, देवदत्त के अग्निवेश्य हुए इन्हीं को जातूकर्ण्य और कानीन भी कहते हैं। हे राजन्! इन्हीं ब्रह्मकुल को अग्नि वेश्यायन कहते हैं यह नरिष्यन्त का वंश हुआ। अब दिष्ट के वंश का वर्णन करते हैं। दिष्ट के पुत्र का नाम नाभाग था वह कर्म से वैश्य हो गया, फिर नाभाग का भलनन्दन, इसके वत्सप्रीति इसके प्रान्शु, इसके प्रमति, प्रमति के चाक्षुष और इसका विविंशति हुआ। विविंशति का रम्भ, रम्भ का खनिनेत्र, इसका करन्धम हुआ। करन्धम के अवीक्षित और अवीक्षित के मरुत हुआ। फिर मरुत के दम और दम के राज्यवर्धन, इसके सुधृति और सुधृति के नर हुआ। नर का केवल, केवल का वन्धुमान, और इसका बेगमान हुआ, बेगमान का बन्धु

और बन्धु का तृणविन्दु और तृणविन्दु से सेलम्बुषा अप्सरा ने विवाह किया इससे कई पुत्र हुए और इडविडा नाम की कन्या हुई। इससे विश्रवा के कुवेर हुआ इसने अपने पिता से अन्तर्ध्यान होने की विद्या प्राप्त की थी। तृगाविन्दु के विणाल, भून्यबन्धु और धूम्रकेतु तीन हुए, इनसे विशाल वंश चला और इसने बैशाली नामक पुरी बसाई थी। विशाल का हेम चन्द्र, इसका धूम्राक्ष, उसका समय हुआ इसके कृशाश्व और सहदेव दो हुए। कृशाश्व का सोमदत्त हुआ जिसने अश्वमेघ कर भगवान को सन्तुष्ट किया। सोमदत्त का सुमति और सुमति का जन्मेजय हुआ इस तरह ये विशाल वंश के राजा हुए।

मनु तनय शर्याति का वंश वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- मनु के शर्याति ब्रह्मनिष्ठ पुत्र हुआ जिसने अंगिराओं को यज्ञ के द्वितीय दिवस का कर्त्तव्य कर्म सुनाया था। इसके एक कन्या हुई जिसका नाम सुकन्या था। इसको लेकर वे वन में च्यवन के आश्रम में गये। कन्या सखियों के साथ वृक्षों को देखती थी इतने में एक बांबी से दो ज्योति चमकती हुई देखीं। कन्या ने एक कांटा दोनों ज्योतियों को बिना जाने छेद दिया जिससे रूधिर बह आया तथा सेना के लोगों का मलमूत्र बन्द हो गया। यह देख राजा ने पूछा कि तुममें से किसी ने च्यवन ऋषि का तो अपराध नहीं

किया है? हमको विदित होता है कि किसी ने आश्रम दूषित किया है। सुकन्या पिता से कहने लगी कि एक बांबी में दो तारे चमक रहे थे उनको मैंने छेद दिया। बेटी की बात सुन शर्याति भयभीत हो ऋषि को धीरे-धीरे प्रसन्न करने लगा। फिर उनके अभिप्राय को समझ कन्या उसको अर्पण कर दी और आप निर्मुक्त हो चला आया। सुकन्या च्यवन ऋषि को पति पा उनकी इच्छानुकूल सेवा कर प्रसन्न रखने लगी। एक दिन अश्विनी कुमार आश्रम में आये उनका सत्कार कर च्यवन ऋषि ने कहा आपको यज्ञ में भाग नहीं मिलता है, उसका मैं यत्न करूंगा। आप मेरी अवस्था और रूप ऐसा कर दो कि स्त्रियां रीझने लगें। यह सुन उन्होंने कहा- ऐसा ही होगा, आप इस सिद्ध सरोवर में स्नान कीजिए। यह कह उन्होंने देह सरोवर में प्रविष्ट कर दी। उसमें से रूप और अवस्था में समान तीन पुरुष निकले। उन तीनों को रूपवान देख सुकन्या न पहचान सकी कि मेरा पति कौन सा है, इस हेतु अश्विनी कुमारों से प्रार्थना करने लगी। तब उसके पतिव्रत धर्म से प्रसन्न हो उन्होंने पति बता दिया और आपक विदा हो स्वर्ग को गए। इसी अवसर में यज्ञ की इच्छा से शर्याति च्यवन ऋषि के आश्रम में आया और अपनी बेटी के पास सूर्य समान पुरुष को बैठा देखा। बेटी ने प्रणाम की परन्तु वह बिना आशीर्वाद दिए ही उससे बोला- यह तूने क्या किया मुनि का तिरस्कार कर और पुरुष का

सेवन करती है? हे सत्कुल संभवे! तेरी मति कैसी हो गई, यह बात कुल कलंक की है। पुत्री बोली- ''हे तात! ये आपके जमाता भृगु-नन्दन ही हैं।'' जिस तरह उनको यह अवस्था मिली वह पिता से कह दिया। पिता ने प्रसन्नता से बेटी को हृदय से लगाया। तदन्तर च्यवन ने राजा से सोमयज्ञ करा जाति बहिष्कृत करा अश्विनी कुमारों को सोमपान कराया। इस पर इन्द्र ने ऋषि को मारने को वज्र उठाया। च्यवन ने इन्द्र की वज्र सहित भुजा को वहां ही स्तम्भित कर दिया। तब इन्द्र की भुजा छूटने के निमित्त, जो अश्विनी कुमार वैद्य होने के कारण सोम की आहुति से बाहर निकाल दिये गये थे उन्हीं को सब देवगण सोम का पात्र समझने लगे।

शर्याति के उत्तानवर्हि, आनर्त और भूरिषेण तीन पुत्र हुए और आनर्त के रेवत हुआ। रेवत के ककुद्मी सौ पुत्र हुए और ककुमी रेवती को लेकर वर पूछने को ब्रह्मा के पास गया। ब्रह्मा बोले हे राजन्! जिन राजाओं को आपने कन्या देने का विचार किया था सब काल ने नष्ट कर दिए अब उनके पुत्र पौत्र, नाती और गौत्रादि का पता नहीं है। अब भगवान के अंश से महाबली बलदेव पैदा हुए हैं। बलदेव को यह कन्या रत्न दीजिए, यह आज्ञा पाकर ककुमी अपने नगर आया तो क्या देखता है कि उसके भाई यक्षों के डर से अन्य दिशाओं में भाग गये हैं यह देख कन्या का विवाह कर, आप तप करने बद्रिकाश्रम चला गया।

नाभाग और अम्बरीष का वृतान्त

श्रीशुकदेवजी बोले- नभ का बेटा नाभाग विद्या पढ़ने गुरु के घर गया था। उसके जाने पर बाकी भाइयों ने पिता का धन आपस में बांट लिया सोचा कि वह सदा ब्रह्मचारी ही रहेगा। जब नाभाग आया तब उसने अपना भाग मांगा। वे कहने लगे कि तुम्हारे भाग में पिता आया है। यह सुन पिता से बोला- आप मेरे भाग में आये हैं? पिता ने कहा कि उन्होंने तुझे यह धोखा देने को कहा है क्योंकि मैं द्रव्य के समान नहीं हूं। तथापि उन्होंने मुझे दिया है तो मैं तुझे जीवन निर्वाह का उपाय बताता हूं। अंगिरा के गोत्रज द्वादशाह नाम यज्ञ करते हैं, ये छठे दिन के कर्त्तव्य कर्म भूल जाते हैं। तुम वहां जा उनको दो सूक्त पढ़ा दो जब वे स्वर्ग जाएंगे तब शेष धन दे जायेंगे। यह सुन उसने वैसा ही किया और वे यज्ञ का शेष धन उसे दे गये। जब वह धन इकट्ठा कर रहा था तब कृष्ण वर्ण मनुष्य उत्तर दिशा से आकर कहने लगा, यह मेरा है। नाभाग बोला कि मेरा है। वह मनुष्य बोला- हमारे झगड़े का निबटारा तेरा पिता करेगा, नाभाग ने पिता से पूछा। तब पिता ने कहा यज्ञ में शेष रहा धन रुद्र का है। ऐसा ऋषियों ने निर्णय दिया है। तब नाभाग कहने लगा हे प्रभो- यह द्रव्य आपका है, मेरे पिता ने कहा है। यह सुन वह बोला तू सत्य बोलता है इसलिए तुझे ब्रह्म का

साक्षात्कार हो। यह द्रव्य भी तुझ को देता हूं। यह कह रुद्र अन्तर्ध्यान हो गए। नाभाग का पुत्र अम्बरीष हुआ। परीक्षित ने पूछा हे मुनिवर! मैं उस राजर्षि का चरित्र सुनना चाहता हूं। शुकदेवजी बोले हे महाभाग! अम्बरीष को सातों द्वीप, अक्षय लक्ष्मी और वैभव मिला था उसने भगवान की भक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं किया। उसकी सेवा दास्य भाव की थी। इसकी शक्ति से प्रसन्न हो भगवान ने रक्षा को सुदर्शन नियत कर दिया। अपने तुल्य रानी के साथ इसने एक वर्ष के एकादशी व्रतों का संकल्प किया। तत्पश्चात साठ करोड़ ब्राह्मणों की आज्ञा से राजा पारायण खोलने ही को था कि दुर्वाषा ऋषि आ गये। राजा ने उठ अर्घ्य पाद्य देकर आसन दिया और भोजन के लिए प्रार्थना की। राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ऋषि मध्यान्ह सन्ध्या करने के लिए गए और पारायण खोलने को घड़ी भर रही थी, इससे राजा धर्मसंकट में पड़ गया और विचार करने लगा। हे ब्राह्मणो! ब्राह्मण अतिक्रमण में दोष है अथवा द्वादशी में पारायण न खोलने में दोष है! इन दोनों में क्या दोष है? इन दोनों में से यह बतलाइये, जिससे अधर्म स्पर्श न करे, मेरी समझ से जल से पारायण खोलना आता है क्योंकि जल भोजन में नहीं है इस तरह राजर्षि जल से पारायण खोल दुर्वासा की प्रतीक्षा करने लगा। इतने में दुर्वासा नित्य कर्म से निश्चिन्त हो आए। उसी समय क्रोध से दुर्वासा ने

कहा- देखो इस वैभव उन्मत राजा ने अतिथि निमन्त्रण देकर बिना मुझे भोजन कराए भोजन कर लिया। यह कह एक बाल उखाड़कर उसने एक कृत्या उत्पन्न की। परन्तु भगवान ने भक्त की रक्षा की सुदर्शन पहले ही नियत कर लिया था, इसने कृत्या को जला दिया। अपने प्रयोग को निष्फल और चक्र को पीछे आता देख दुर्वासा भागे, चक्र भी उनके पीछे चला। ब्रह्मा तथा शिव किसी ने शरण नहीं दी और कहा कि जिनका यह अस्त्र है उन्हीं की शरण जाओ। महादेव कहने लगे- तब दुर्वासा बैकुण्ठ में गए। उस शस्त्र की ज्वाला से जलते हुए उनके चरणों पर पड़ और कहने लगे हे भगवान! मैं अपराधी हूं मेरी रक्षा करो। भगवान बोले- हे द्विज! मैं भक्तों के आधीन हूं। हे विप्र! मैं उपाय बताता हूं वही करो, जिस का तूने अपराध किया है उसी के पास जाओ। तप और विद्या ये दोनों ब्राह्मणों के लिए श्रेयस्कर हैं परन्तु दुर्विनीति के लिए अमंगल स्वरूप हैं।

दुर्वासा की प्राण रक्षा

शुकदेवजी कहने लगे- चक्र की पीड़ा से दुर्वासा भगवान की आज्ञानुसार अम्बरीष के पास गए और उसके पाँव पकड़ लिए। उनके कष्ट को देखकर राजा चक्र की प्रार्थना करने लगा- "हे चक्र! आप ही अग्नि हो, आपको नमस्कार है। आप इस ब्राह्मण की रक्षा

करो, नहीं तो ब्रह्म हत्या से हमारी अपकीर्ति और कुल का नाश होगा।'' हे राजन्! जब राजा ने प्रार्थना की तब सुदर्शन शान्त हो गया। जब दुर्वासा शाप से छूट गए तब आशीर्वाद दे राजा की प्रशंसा करने लगे। तुम करुणावान् हो, तुमने मेरे पाप को पीठ पीछे करके प्राणों की रक्षा की है। राजा ने उनके आने की आकांक्षा से भोजन नहीं किया था इसलिए उनके चरणों को पकड़ प्रसन्न कर भोजन कराया। आदरपूर्वक आतिथ्य सत्कार से भोजन कर दुर्वासा राजा से कहने लगे- तुम भी भोजन करो। तुम्हारे दर्शन, स्पर्श, सम्भाषण और अतिथ्य-सत्कार से मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। दुर्वासा राजा की प्रशंसा कर ब्रह्मलोक को चले गए। चक्र के डर से भागे हुए मुनि एक वर्ष में आए थे और राजा ने उनके दर्शन की अभिलाषा में केवल जलपान कर समय व्यतीत किया था। दुर्वासा के चले जाने पर भोजन कर अम्बरीष प्रसन्न हुए। ऐसे अनेक गुणों से युक्त राजा अम्बरीष वासुदेव के भक्त थे। फिर अपने ही समान गुणयुक्त पुत्रों को राज्य दे वन को चले गए और संसार से मुक्त हो गए।

अम्बरीष का वंश वर्णन

शुकदेवजी बोले- विरूप, केतुमान् और शम्भु ये अम्बरीष के पुत्र थे। विरूप का पृषदश्व और इसका पुत्र रथीतर था। रथीतर के कोई सन्तान नहीं थी।

अंगिरा की प्रार्थना से उसके तीन पुत्र उत्पन्न हुए ये उनको अंगिरिस कहने लगे। ये रथीतरों में मुख्य हुए। छींक लेते समय नासिका से इक्ष्वाकु उत्पन्न हुआ, इसके सौ पुत्र थे। इनमें से विकुक्षि, निमि और दण्डक बड़े थे। एक दिन इक्ष्वाकु ने अष्टका श्राद्ध करने को पुत्र को आज्ञा दी कि हे विकुक्षे! तुम मांस ले आओ। वह वन में श्राद्ध के योग्य मृगों को मारते-मारते थक गया और थकावट से बेसुध हो गया और एक ग्रास को स्वयं खा गया। शेष ला कर पिता को दिया। जब श्राद्ध करने बैठे तो आचार्य ने कहा कि माँस अपवित्र है। गुरु मुख से पुत्र के कर्म को सुन इक्ष्वाकु ने उसको अपने देश से निकाल दिया। तदन्तर इक्ष्वाकु ने वशिष्ठ से संभाषण कर योगी हो प्राण त्याग दिया। पिता के मरने पर विकुक्षि वन से आ राज करने लगा और यज्ञों द्वारा हरि का पूजन कर शशाद नाम से विख्यात हो गया। विकुक्षि के एक पुत्र हुआ उसको कर्मों के अनुसार पुरंजय, इन्द्र वाहन और ककुत्स्थ इन नामों से पुकारने लगे। इन्द्र ने इससे युद्ध में सहायता मांगी थी। इसने कहा कि इन्द्र मेरा वाहन होगा तो मैं दैत्यों से लड़ूंगा। इन्द्र ने यह स्वीकार किया परन्तु भगवान के कहने से बैल का रूप धारण कर लिया तब राजा बैल के कन्धे पर चढ़ बैठा। विष्णु के तेज से पश्चिम दिशा में जा राजा ने दैत्यों की पुरी को घेर लिया तब उनका घोर संग्राम हुआ, उसमें राजा ने दैत्यों को मार कर सदेह

यमलोक पहुंचा दिया। सम्पूर्ण धन और पुरी जीत कर इन्द्र को दी, इसने दैत्यपुरी जीती थी इसलिए पुरंजय, इन्द्र पर चढ़ा था इसीलिए इन्द्र वाहन और बैल के कन्धे पर बैठा था इसलिए ककुत्स्थ नाम हुआ। पुरंजय के अनेना, इसके पृथु, इसके विश्वधी व इसके इन्द्र और इसके युवनाश्व हुआ। युवनाश के शावस्त, इसने शावस्तापुरी बनाई इसके बृहदश्व और बृहदश्व कुवलयाशव हुआ। इसने उतंग ऋषि का हित करने को इक्कीस हजार बेटों को साथ ले धुन्धुमार को मार गिराया। इसलिए इसका नाम धुन्धुमार हो गया परन्तु मरते समय इस राक्षस के मुख से ऐसी ज्वाला निकली कि इसके सब पुत्र जल गये। केवल तीन दृढ़ाश्व कपिलाश्व और भद्राश्व बचे थे। दृढ़ाश्व के हयश्व, इसके निकुम्भ हुआ। निकुम्भ के बर्हणाश्व इसके कृशाश्व, और इसके सेनजित हुआ। सेनजित के यौवनाश्व हुआ यौवनाश्व पुत्रहीन था। इसलिए वह अपनी सौ रानियों को संग ले वन चला गया वहां ऋषि ने प्रसन्न हो पुत्रोत्पत्ति को इन्द्र यज्ञ किया। राजा को रात्रि में प्यास ने सताया तो चुपचाप उठ ब्राह्मणों को सोते देख अभिमन्त्रित जल को पी गया। ऋषियों ने देखा तो घड़े में जल नहीं, तब पूछने लगे कि पुत्र उत्पत्ति करने वाला जल किसने पी लिया है। जब उनको विदित हुआ कि जल राजा ने पिया है तब बोले ईश्वर की माया प्रबल है। फिर समय पूरा होने पर यौवनाश्व

की दाहिनी कोख फाड़ चक्रवर्ती पुत्र हुआ। तब यह सन्देह हुआ कि यह बालक किसके स्तन पान करेगा, तब इन्द्र बोला इसे दूध मैं पिलाऊंगा और तर्जनी अंगुली उसके मुख में दे दी। विप्र देवों की कृपा से पिता भी न मरा और उसी जगह तप कर परम पद को प्राप्त हो गया। हे राजन्! इन्द्र ने इसका नाम त्रसदस्यु रखा क्योंकि इसके भय से दस्यु कांपते थे। यह युवनाश्व का बेटा मांधाता चक्रवर्ती हुआ। शशबिन्दु की बेटी बिन्दुमती से इस राजा के पुरूकुस, अम्बरीष और मुचुकुन्द तीन पुत्र हुए थे। इसकी पचास बहिन सौभरि ऋषि को ब्याही गई थीं, यह ऋषि यमुना जल में बैठ तप करते थे, एक दिन मच्छ-मच्छियों को मैथुन करते देखा तब इनको विवाह की उत्कंठा हुई और राजा से कन्या मांगी। यह सुन राजा ने कहा हे ब्रह्मन्! जो कन्या स्वयंवर में आपको वर ले, उसी को ले लीजिए राजा ने ऐसा इसलिए कहा कि वृद्ध को देख मेरी कन्या न वरेगी। सौभरि ऋषि ने विचारा कि मैं अपना ऐसा रूप बनाऊंगा जिसको देख देवाङ्गना भी मोहित हो जायें। जब उस रूप को धार ऋषि अन्तःपुर में गये तब सब कन्या बोल उठीं हम वरेंगी। जब उनमें झगड़ा होने लगा तब सौभरि बोले- लड़ो मत, सब चली आओ। वे ऋषि उन कन्याओं को ले जा ऐसे स्थान में रमण करने लगे जिसमें उनके तपोबल से प्रत्येक वस्तु संचित थी। सौभरि ऋषि के गार्हस्थ्य भोगविलास को देख

मान्धाता अपने सातों द्वीप के राज्यों को तुच्छ समझने लगा। यद्यपि घर में अनुरक्त सौभरि अनेक प्रकार के भोगों को भोगता था परन्तु उसकी तृप्ति नहीं हुई। एक दिन बैठे-बैठे सौभरि को ज्ञान हुआ जो ब्रह्मस्वरूप था, वह विस्मृत हो गया। एक समय था कि मैं अकेला ही जल में तप करता था, अब मेरे पचास स्त्री हुईं और इनके ५००० सन्तान हुईं तथापि मेरे इस मनोरथ का अन्त नहीं आता है। माया के गुणों से मेरी बुद्धि नष्ट हो गई है। इस तरह गृहस्थ के सुखों को भोगते हुए विरक्त हो सौभरि ऋषि वन चले गए। तब उनकी पतिव्रता स्त्रियां उनके पीछे चली गईं। ऋषि ने जितेन्द्रिय हो शरीर को सुख देने वाला घोर तप किया और आत्मा को परमात्मा में मिला दिया। हे राजन्! वे स्त्रियां अपने पति की अध्यात्म गति देख उसके प्रभाव से आप भी उसके पीछे चली गईं।

हरिश्चन्द्र का उपाख्यान

शुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! मांधाता के पुत्र अम्बरीष को उसके बाबा युवनाथ ने गोद लिया था। अम्बरीष का बेटा हारीत हुआ, यह अम्बरीष और यौवनाश्व मांधाता के कुटुम्ब में प्रवर था। सर्पों ने पुरुकुत्स को अपनी बहिन नर्मदा विवाह दी। वासुकी के कहने से नर्मदा पति को रसातल ले गई, वहां पुरकुत्स ने बध के योग्य गन्धर्वों को मारा। इस पर

प्रसन्न हो सर्पों ने वर दिया कि जो इस चरित्र को पढ़ेगा उसको सर्पों से भय न होगा। इसके त्रसदृस्यु हुआ, और इसके अनरण्य हुआ। इस अनरण्य के हर्यश्व हुआ इसके अरुण और अरुण के निबन्धन हुआ इसके सत्यव्रत हुआ जिसको त्रिशंकु कहने लग गये थे। इसने ब्राह्मण को विवाह होते समय हर लिया था इसलिये क्रुद्ध हुए वशिष्ठ के शाप से चांडाल हो गया था और विश्वामित्र तेजोबल से सदेह स्वर्ग गया। वहां से देवताओं ने उसे औंधा फेंका परन्तु विश्वामित्र ने वहीं रोक दिया। इसी त्रिशंकु का पुत्र हरिश्चन्द्र हुआ, हरिश्चन्द्र के पुत्र नहीं हुआ इससे वह खिन्न हो नारद के कहने से वरुण की शरण गया और कहने लगा- हे प्रभो पुत्र हो, ऐसा उद्योग करो। यदि मेरे पुत्र होगा तो इसी पुत्र द्वारा मैं आपका पूजन करूंगा, जब राजा ने ऐसा प्रण किया तब वरुण के कहने से रोहित नाम पुत्र हुआ। तब वरुण ने कहा- हे राजन्! पुत्र हो गया, तू मेरा पूजन कर। हरिश्चन्द्र ने कहा यह दस दिवस में शुद्ध होगा। ग्यारहवें दिन वरुण ने फिर कहा, अब पूजन करो तब राजा ने कहा- दांत निकलने पर पवित्र होगा। दांत निकलने पर वरुण ने फिर कहा- अब पूजन करो तब राजा ने कहा- दांत गिरने पर पवित्र होगा। दांत निकलने पर दांतों के गिरने पर, फिर कहा पूजन करो, राजा ने कहा- जब नये दांत आ जायेंगे तब पवित्र होगा। इस तरह स्नेह से राजा धोखा देकर काल को

बिताता रहा और वरुण भी प्रतीक्षा करता रहा। जब रोहित को मालूम हुआ कि मुझ ही से वरुण यज्ञ होगा तब प्राण बचाने के लिए धनुष वाण ले वन चला गया। तब यज्ञ होने में निराश वरुण ने हरिश्चन्द्र के पेट में जलोदर रोग उत्पन्न किया। जब रोहित ने सुना तब वह नगर को आने लगा परन्तु इन्द्र ने रोक दिया। इन्द्र के समझाने पर रोहित एक वर्ष वन में रहा। इसी तरह हर साल जब रोहित घर आने लगता तब ही इन्द्र आकर समझाता रहा। इस तरह छठा वर्ष व्यतीत कर अजागर्त के विचले पुत्र शुनशेफ को मोल ले पुरी में आया और अपने बदले शुनशेफ नाम पशुपिता को दे नमस्कार किया। तब हरिश्चन्द्र ने पुरुषमेध करके वरुणादिक देवताओं का पूजन किया और उदर रोग से छूट गया। इस यज्ञ में विश्वामित्र होते थे, जमदग्नि अध्वर्यु थे, वशिष्ठ ब्रह्मा हुए और अगस्त्यमुनि उद्‌गाता थे। इस यज्ञ से इन्द्र प्रसन्न हो हरिश्चन्द्र को सुवर्ण रथ दे गया। शुनशेफ का महात्म्य आगे वर्णन करेंगे। राजा रानी दोनों को सत्यवक्ता और धैर्यवान् देख विश्वामित्र ने ज्ञान उपदेश किया जिससे राजा को मोक्ष प्राप्त हुआ।

सगर वंश वर्णन

शुकदेव कहने लगे- रोहित के हरित, हरित के चंप हुआ जिसने चंपापुरी बसाई। उससे सुदेव और सुदेव से विजय हुआ विजय के भरुक, भरुक के बृक, बृक के

बाहुक हुआ इनकी भूमि शत्रुओं ने छीन ली इसलिए स्त्री को साथ ले वन चला गया। जब वृद्ध हो मरा तब इसकी रानी सती होने लगी किन्तु उसको गर्भवती समझ अन्य रानियों ने विष दे दिया, तब वह बालक विष सहित उत्पन्न हुआ। इसी से उसका नाम सगर पड़ा, यह सगर चक्रवर्ती हुआ। इसके पुत्रों ने सागर बनाया। इसने गुरु की आज्ञा से तालजंघ, यवन, शक, हैयह और बर्बरों का बध किया। और्व ऋषि के कहने से अश्वमेध यज्ञों से हरि का पूजन किया। यज्ञ के लिए जो घोड़ा छोड़ा उसको इन्द्र हर ले गया। पिता के आज्ञाकारी साठ हजार पुत्र ढूंढ़ने को निकले और पृथ्वी खोदने लगे। खोदते-खोदते पूर्वोत्तर दिशाओं में कपिल देव के पास घोड़े को बंधा देखा और कहने लगे कि यह चोर है और मारो-मारो कहते हुए दौड़े। तब मुनि ने आंखें खोलीं। कपिल ऋषि की दृष्टि पड़ते ही वे तत्क्षण भस्म हो गये। सगर की केशिनी नाम दूसरी रानी थी। इसके असमंजस हुआ और इसके अंशुमान हुआ। अंशुमान अपने बाबा का आज्ञाकारी हुआ। असमंजस पूर्व जन्म में योगी था कुसंग से योग भ्रष्ट हो इस जन्म में ऐसे निन्दित कर्म करता था। इन कुलक्षणों के कारण पिता ने निकाल दिया। अपने बाबा के कहने से अंशुमान घोड़े को ढूंढ़ने निकला और उसी मार्ग में गया जो उसके पुरुखों ने खोदा था। वहां भस्म की ढेरी के पास उसने घोड़े को बंधा देख, वहां कपिल मुनि को

बैठा देख हाथ जोड़ स्तुति करने लगा हे परमात्मन्! आपको ब्रह्म भी नहीं देख सकता है। आप सत् और असत् दोनों से पृथक हैं, केवल ज्ञानोपदेश के लिये ही आपने यह देह धारण की है। हे पुराण पुरुष! मैं नमस्कार करता हूं आपने माया से यह लोक रचा है, सर्व भूतान्तार्यामिन! आपके दर्शन से आज हमारे सब बन्धन कट गये। शुकदेव जी कहने लगे कि कपिल भगवान इस प्रार्थना को सुन अंशुमान् से बोले- हे पुत्र तू अपने बाबा के घोड़े को ले जा और ये तेरे पुरुखों की भस्म है, यह गंगाजल से तरेंगे। तब अंशुमान कपिलदेव की परिक्रमा दे सिर नवाकर घोड़े को ले आया और सगर ने यज्ञ समाप्त किया। तदन्तर राजा सगर अंशुमान को राजगद्दी दे और्व ऋषि के उपदेश के अनुसार परमगति को प्राप्त हो गया।

भागीरथ द्वारा गंगा अवतरण

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- अंशुमान ने गंगा पृथ्वी पर लाने के लिए तप किया पर कोई फल न हुआ और अन्त में उसे काल ने ग्रस लिया। इसी तरह इसका पुत्र दिलीप बहुत दिन तप करने के पश्चात् गंगा के लाने में असमर्थ हो कालग्रस्त हो गया। तब उसका पुत्र भागीरथ घोर तप करने लगा तब गंगा ने प्रसन्न हो दर्शन दिया और कहने लगी 'वर मांग', तब इसने प्रणाम कर अपना अभिप्राय प्रकट किया। गंगाजी

बोलीं- हे राजन्! मैं जब नीचे उतरूंगी तो मुझे धारण करने की शक्ति शिव में है। इस लिए उन्हें प्रसन्न करो। भागीरथ ने शिव का तप किया। थोड़े ही काल में शिवजी प्रसन्न हो गये। और शिव ने राजा के कहे हुए को अंगीकार कर गंगाजल को सिर पर धारण कर लिया। तब भागीरथ गंगा की धार को वहां ले गया जहां पितरों की भस्म के ढेर लग रहे थे। ब्रह्मशाप से मरे हुए सगर के पुत्र गंगाजल से अपनी देह की भस्म का केवल स्पर्श हो जाने से स्वर्ग चले गये। भागीरथ के श्रुतमान पुत्र हुआ, श्रुतमान का सिंधुद्वीप, सिंधुद्वीप का अयुतायु, इसके ऋतुर्पण, ऋतुर्पण के पुत्र का नाम सर्वकाम था। सर्वकाम के सुदास और सुदास के सौदास हुआ यह मदयन्ती का पति था कोई इसे मित्रशह कोई कल्माषांघ्र भी कहते थे। इसको वशिष्ठजी ने शाप दिया था, इससे राक्षस हो गया और निःसन्तान मर गया था। परीक्षित ने पूछा- सौदास को गुरु के शाप का क्या कारण था? शुकदेवजी बोले- सौदास ने एक दिन शिकार में एक राक्षस को मार डाला और उसके भाई को छोड़ दिया, ये राजा से बदला लेने को प्रयत्न करने लगा और रसोइया का रूप धर राज भवन में रहने लगा। एक दिन वशिष्ठजी को भोजन कराने के लिए मनुष्य का मांस पकाकर ले आया। वशिष्ठ ने उस अभक्ष्य मांस को देख क्रुद्ध हो शाप दिया, हे राजा तू राक्षस हो जाएगा। जब वशिष्ठजी को मालूम हुआ

कि यह कर्म राक्षस का किया हुआ है, राजा ने नहीं किया, तब अपना वाक्य असत्य न होने को शाप बारह वर्ष पर्यन्त रहेगा, ऐसा कह दिया। राजा ने राक्षस रूप में घूमते हुए एक दिन वनवासी ब्राह्मण-ब्राह्मणी को मैथुन करते देखा। यह भूख से व्याकुल था सो खाने को ब्राह्मण को पकड़ लिया, ब्राह्मणी गिड़गिड़ा कर कहने लगी- आप राक्षस नहीं, आप तो इक्ष्वाकु कुल-महारथी हैं। ब्राह्मणी का कहना न मान सौदास ने ब्राह्मण को खा लिया। तब उस पतिव्रता ने क्रोधित हो राजा को शाप दिया- तुमने मुझ काम पीड़ित का पति खा लिया है, इससे हे नीच! तेरी भी मृत्यु स्त्री के समागम काल में होगी। इस तरह सौदास को शाप दे, ब्राह्मणी पति की हड्डियों को इकट्ठा कर चिता पर रख भस्म हो पतिलोक चली गई। बारह वर्ष पीछे शाप से छूट राजा मैथुन करने को उद्यत हुआ तब ब्राह्मणी के शाप के कारण रानी ने रोक दिया। तब से राजा स्त्री सुख परित्याग निःसन्तान रह गया। तब राजा की आज्ञा से वशिष्ठ ने मदयन्ती में गर्भ रखा। परन्तु सात वर्ष तक बालक ने जन्म न लिया। तब वशिष्ठजी ने रानी के उदर में पत्थर मारा तब पुत्र हुआ इससे उसका नाम अश्मक पड़ा। अश्मक के पुत्र को स्त्रियों ने छिपाया था इससे इसका नाम नारी कवच हो गया। यह क्षत्री हीन भूमि में क्षत्रियों के वंश का मूल हुआ इससे उसे मूलक कहने लगे। इसके दशरथ, दशरथ के

ऐडविड, ऐडविड के विश्वसह इसके खटवांग हुआ। देवताओं ने इस राजा से प्रार्थना की तब इसने दैत्यों को मार भगाया और जब इसे मालूम हुआ, मेरी आयु की दो घड़ी रह गई हैं, तब अपने पुर में आ परमेश्वर में मन लगा दिया। और कहने लगा मुझे ब्राह्मण के वंश से अधिक न प्राण, न पुत्र, न लक्ष्मी, न पृथ्वी, न राज्य, न रानी प्यारी है। बाल्यावस्था में मेरी रुचि कभी अधर्म में नहीं लगी, मैं भगवान के सिवाय किसी वस्तु को नहीं देखता हूं। देवता ने मुझको अभीष्ट देने के लिए कहा परन्तु मैंने परमेश्वर का निवास मन में होने से वर न मांगा भगवान की कृपा से तोड़कर शरण जाता हूं। इस प्रकार खटवांग देहादि में मिथ्या अभिप्राय का परित्याग कर आत्म भाव में लीन हो गया।

श्री रामचन्द्र का चरित्र वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- खटवांग का पुत्र दीर्घबाहु, दीर्घबाहु का रघु और पृथुश्रवा, रघु का अज और अज का पुत्र दशरथ हुआ। दशरथ के घर भगवान अपने अंशांश के चार रूपों में प्रकट हुए। इन चारों के नाम राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हुए। उनका चरित्र बाल्मीकादि मुनीश्वरों ने वर्णन किया है। उन्होंने विश्वामित्र के यज्ञ में मारीचादि राक्षसों को मार गिराया। उन्हीं ने सीता के स्वयंवर की यज्ञ भूमि में रक्खे हुए धनुष को, जो तीन सौ आदमियों से उठता था,

खींच कर तोड़ डाला। इस तरह सीता को जो लक्ष्मी का अवतार है, विवाह कर चले। तब मार्ग में परशुरामजी का गर्वखण्डित कर दिया, जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से हीन कर दिखाया था। स्त्री के वशीभूत सत्यपाश से बंधे पिता की आज्ञा से राम, राज्य को छोड़, सीता को साथ ले वन को चले गये। मार्ग में रावण की बहिन शूपर्णखा ने आ घेरा। तब उसके नाक, कान काट कुरूप कर दिया। उसने अपनी कथा भाइयों से कही। तब खर, त्रिशिरा और दूषणादि चौदह सहस्त्र राक्षस चढ़ आये, उन सबको मार भगाया। सीता की प्रशंसा सुन रावण ने मारीच को भेजा। वह कपट का रूप धर राम को दूर ले गया, वहां राम ने उसको मार गिराया। इस अवसर में रावण सीता को अकेली देख हर ले गया। राम अपनी प्यारी के वियोग में विकल हो, भाई को साथ ले उसे वन में ढूंढने लगे। रावण से सीता को बचाने के लिए जिस जटायु ने अपने प्राण दिये, उसका दाह किया फिर कबन्ध को मार आगे बढ़े और बन्दरों से मित्रता कर बालि को मार बंदरों द्वारा सीता की खोज कराई और समुद्र तट पर आ गये। राम ने तीन दिन निराहार व्रत धार समुद्र के बुलाने को तप किया परन्तु समुद्र न आया तब भृकुटी चढ़ा लीं। उस समय भय के मारे जन्तुओं के श्वास रुक गये समुद्र का शब्द बन्द हो गया तब भयभीत हो समुद्र भगवान के चरणों में गिर कहने

लगा- हे भूमन् हमारी जड़ बुद्धि है, आप आदि पुरुष ईश्वर हैं, आपको नहीं जान सकते हैं, आप इच्छा अनुकूल जाइये और रावण को मार सीता को ले आइये, मेरे जल पर पुल बांधिए इससे आपका यश विपुल हो जाएगा। यह कह समुद्र चला गया और राम की आज्ञा से बड़े-बड़े बन्दरों ने समुद्र में पर्वतों के शिखर डाल दिए। इस तरह पुल बांध सुग्रीव, नील, हनुमानादि सेनापतियों के साथ विभीषण की बुद्धि अनुसार बन्दरों की सेना लंका में घुस गई, लंका को हनुमानजी पहले जला गए थे। जब रावण ने यह दशा देखी तब उससे कुम्भकरण को युद्धस्थल में भेजा। जब यह दुर्जन सेना चली तब सुग्रीव, लक्ष्मण, हनुमान, अंगद, जामवन्त आदि शूरवीरों को ले राम भी जा पहुंचे। राम की सेना के यूथपाल रावण के सैन्य जनों को वृक्ष, पर्वत गदा और वाणों से मारने लगे। जब रावण ने सेना को नष्ट होते देखा तब क्रुद्ध हो पुष्पक विमान में बैठ रामचन्द्र के सन्मुख आया। इधर इन्द्र ने अपने सारथी मातलि के साथ अपना रथ रामचन्द्र के लिए भेज दिया था, इस पर राम बैठ गए। रावण बड़े पैने तीरों का प्रहार करने लगा। राम उससे बोले- हे राक्षस! तू कुत्ते की तरह शून्य स्थान में घुस पिछाड़ी से सीता को हर ले गया उस निन्दित कर्म का फल मैं अभी देता हूं। तदन्तर धनुष पर वायु तुल्य बाण चढ़ा कर रावण के मारा जिससे उसका हृदय फट गया और दशों

सेतुबन्ध रामेश्वर

Hem Chander Bhargava & Co.
Delhi-6
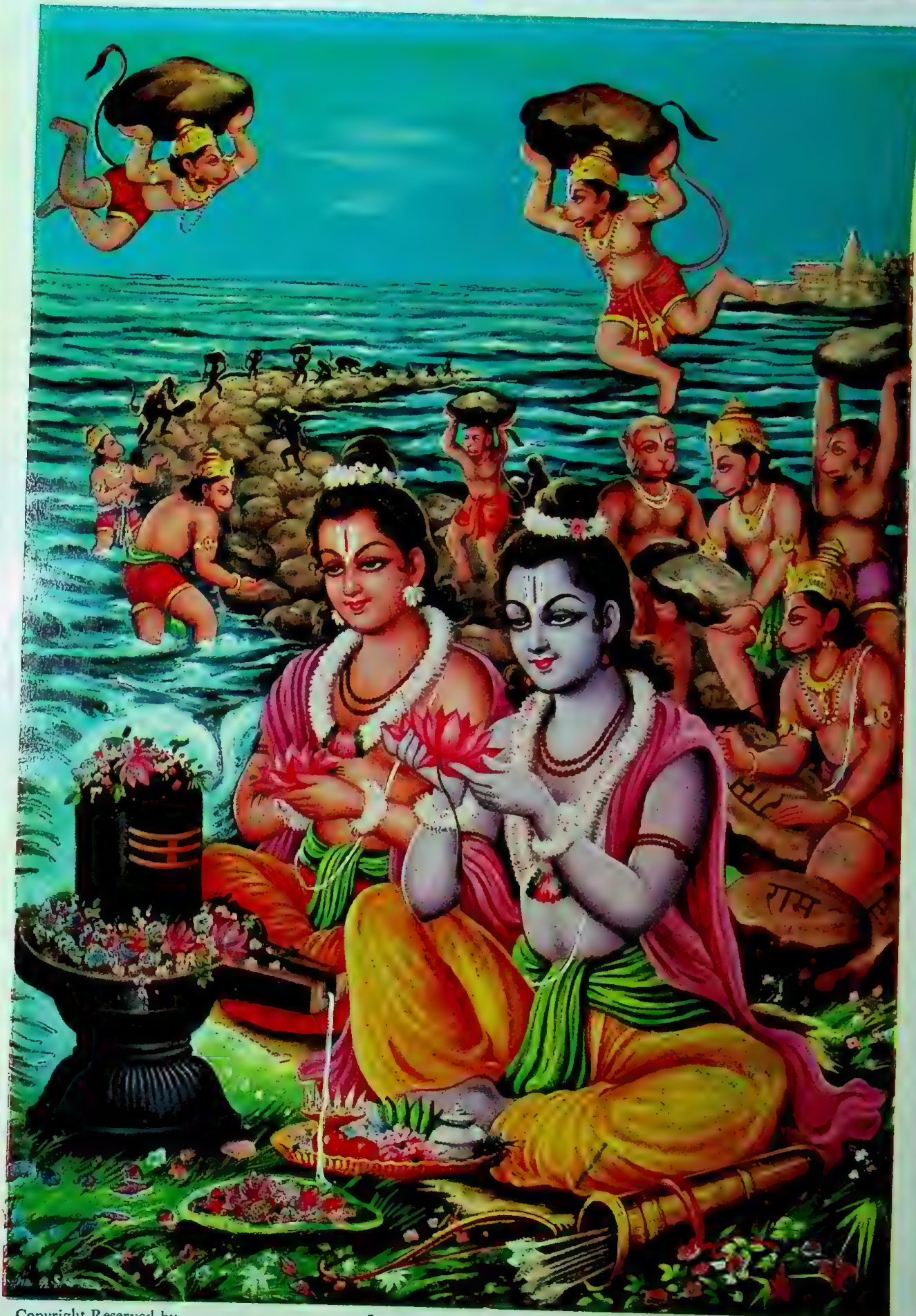
मुखों से रुधिर डालता हुआ विमान से गिर कर मर गया। उसके मरने पर सहस्त्रों राक्षसियां मन्दोदरी के साथ रुदन करती हुईं युद्ध स्थल में आईं और लक्ष्मण के बाणों से मरे हुए अपने-अपने कुटम्बियों को देख रोने लगीं। हे रावण! आपके भय से सम्पूर्ण लोक रोते थे। हे नाथ! अब हमारा बड़ा अनर्थ हो गया है। अब यह लंका आपके बिना किसकी शरण जायेगी? शुकदेवजी बोले- रामचन्द्र की आज्ञा से विभीषण ने राक्षसों की पारलौकिक क्रिया की। फिर राम ने अपने दर्शन से सीताजी के मुरझाये मुख को खोल दिया और पुष्पक विमान में सीता तथा लक्ष्मण, सुग्रीव और हुनमानादि को बैठा विभीषण को लंका का राज्य दे बनवास की अवधि पूर्ण होने पर अयोध्या को आये। उस समय ब्रह्मादि देवता आदि गुण गान कर रहे थे परन्तु राम ने सुना कि भाई भरत गोमूत्र में रांधकर जौ खाता है, वृक्षों की छाल पहनाता है, जटा धारण किये हुए है और पृथ्वी पर सोता है तो बहुत दुखी हुए और जब भरत ने सुना कि राम आ रहे हैं तब भाई से मिलने के लिए पुरजन, मन्त्री, पुरोहित को साथ ले सिर पर राम की पादुकाओं को धर वह नंदिग्राम से राम के सम्मुख आये। भरतजी श्रीराम के पैरों पर जा पड़े फिर पादुकाओं को आगे रख हाथ जोड़ नेत्रों में आंसू भर खड़े हो गये। तब राम ने भरत को छाती से लगा लिया उस समय राम के नेत्रों से जल की वर्षा हुई। तदन्तर

बड़ों को नमस्कार किया, सब प्रजा ने उनको नमस्कार किया। बहुत दिनों में आये हुए अपने स्वामी को देख सब आनन्द में मग्न हो गए। लोग फूलों की वर्षा करते हुए नाचने लगे, भरत ने पादुका लीं, विभीषण ने चमर, सुग्रीव ने बीजना, हनुमान ने छत्र, शत्रुघ्न ने धनुष और तरकस तथा सीता ने कमण्डल लिया। अंगद ने धनुष, जामवंत ने ढाल ली। उस समय स्त्रियों सहित बन्दी गण प्रशंसा कर रहे थे। पुष्पक में बैठे रामचन्द्र की अपूर्व शोभा हो रही थी। इस तरह भाइयों के सम्मान के साथ राज भवन में जा कैकेयी से मिले और सीता और लक्ष्मण भी यथायोग्य सबसे मिले। फिर माता अपने अपने पुत्रों से मिलने लगीं तदन्तर वशिष्ठजी ने कुलवृद्धों के साथ श्रीराम का विधिवत् अभिषेक किया। भरत के प्रणाम करने से राम ने प्रसन्न हो राज्य ग्रहण किया। राम पिता की तरह सबका पालन करने लगे। धर्मनिष्ठ राम के राज्य में सब प्राणी सुखी हो गये। राम गृहस्थ के धर्मों को स्वयं करने लगे तथा औरों को दिखाने लगे और सीता ने प्रेम, सेवा, शीलता, नम्रता, लज्जा, बुद्धि आदि से अपने पति का भाव जान उनको अपने वश कर लिया।

श्रीरामचन्द्रजी का यज्ञादि अनुष्ठान

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- रामचन्द्रजी ने उत्तम सामग्रियों से युक्त यज्ञ का प्रारम्भ करने का विचार

किया। तब होता को पूर्व दिशा, ब्रह्मा को दक्षिण दिशा, अर्ध्वयु को पश्चिम दिशा और उद्गाता को उत्तर दिशा दे दी। दिशाओं के मध्य की सब भूमि आचार्य को दे दी। इसी तरह सीता ने भी सौभाग्य सूचक वस्त्राभरणों के अतिरिक्त कुछ न रक्खा। वे सब ब्राह्मण राम का अपने ऊपर वात्सल्य भाव देख बड़े प्रसन्न हुए और लिया हुआ राज्य श्री रामचन्द्र को दे कहने लगे- हे भगवान्! ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो आपने न दी हो। एक दिन अन्धेरी रात में राम भेष बदले प्रजा की दशा देखते फिरते थे। उस समय कोई अपनी स्त्री से अप्रसन्न हो कह रहा था, कि तू दुष्टा और असती है, मेरी आज्ञा बिना तू पराये घर चली गई, मैं तुझे अप कदापि नहीं रक्खूंगा, स्त्री का लोभी राम है, वह सीता को भले ही रख ले परन्तु मैं तुमको नहीं रख सकता। लोगों के मुख से इस दुरापवाद को सुन रामचन्द्र ने सीता को त्याग दिया और वह बाल्मीकि के आश्रम में चली गई। सीता गर्भवती थी, समय पर दो पुत्र हुए। ये लव और कुश के नाम से विख्यात हुए, इनके नामकरणादि सब बाल्मीकि ने स्वयं किये थे। लक्ष्मण के पुत्रों का नाम अंगद और चित्रकेतु, भरत के पुत्रों के नाम लक्ष और पुष्कल, शत्रुघ्न के पुत्र सुबाहु और श्रुतसेन हुए। भरत की दिग्विजय ने करोड़ों गन्धर्वों को मार गिराया। उनका धन लाकर रामचन्द्र को दिया, शत्रुघ्न ने लवणासुर को मार मथुरापुरी बसाई।

रामचन्द्रजी से निकाली हुई सीता बाल्मीकि को दोनों पुत्र दे पति के चरणों में ध्यान लगा पृथ्वी में घुस गई, रामचन्द्र ने यह समाचार सुन अपनी बुद्धि से शोक को रोका। परन्तु जब उसके गुणों की याद आई तब शोक न रोक सके। सीता के पृथ्वी में प्रवेश होने के पश्चात रामचन्द्रजी ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया। तेरह सहस्त्र वर्ष अग्निहोत्र जपते रहे। फिर आत्मज्योति में लीन हो गए। जिन रामचन्द्र ने अवतार धारण किया उनका प्रभाव सामान्य नहीं था। जो मनुष्य रामचन्द्र के यश को सुनता है वह कर्मबन्धनों से छूट जाता है। परीक्षित ने पूछा- हे प्रभो! रामचन्द्र ने भाइयों के साथ कैसा बर्ताव किया। श्रीशुकदेवजी बोले- राम ने भाइयों को दिग्विजय की आज्ञा दी। स्वयं भी लोगों से मिलने भेंटने पुरी देखने जाया करते थे। जहां-जहां रामचन्द्र जाते थे वहां-वहां पुरवासी भेंट ले जाते और आशीर्वाद देते थे। अपने स्वामी को बहुत दिन पीछे आया जान स्त्री पुरुष घर छोड़ छज्जों पर चढ़कर फूलों की वर्षा कर, नेत्रों की तृष्णा बुझाते। तदुपरान्त अपने पूर्वजों के साथ राज भवन में आते। ये महल ऐसे बने हुए थे कि इनमें मूंगों की देहली थी, वैदूर्य मणि के स्तम्भ थे, मरकत मणि के स्वच्छ स्थल, स्फटिक मणियों की भीति थी। इस तरह धर्म का पालन करते हुए रामचन्द्र बहुत दिनों तक भाइयों सहित अनेक भोगों को भोगते रहे और सब प्रजा जन उनके चरणों का ध्यान करती रही।

श्रीराम-तनय कुश का वंश विवरण

श्रीशुकदेवजी ने कहा- कुश के पुत्र का नाम अतिथि था, इनके निषध और निषध के नभ हुआ, नभ के पुण्डरीक और पुण्डरीक के क्षेमधन्वा हुआ। क्षेमधन्वा के देयनीक, इसके अनीह के पुत्र का नाम पारियात्र, इसके बल, के स्थल, स्थल के वज्रनाभ हुआ। वज्रनाभ के सुगण, सुगण के विधृति, इसके हिरण्याभ हुआ। हिरण्याभ के पुष्प और इसके ध्रुवसंधि, ध्रुवसंधि के सुदर्शन, सुदर्शन के अग्निवर्ण, अग्निवर्ण के शीघ्र, शीघ्र के मरु हुआ। यह योग द्वारा सिद्ध हो कलापगांव में है और कलयुग के अन्त में सूर्यवंश को फिर उत्पन्न करेगा। मरु के प्रसुश्रुत, इसके संधि, संधि के अमर्षण, अमर्षण के सहस्वान्, सहस्वान् के विश्वबाहु, विश्वबाहु के प्रसेनजित् और प्रसेनजित् के तक्षक हुआ। तक्षक के वृहद्वल हुआ जिसे तेरे पिता अभिमन्यु ने मारा था। ये इक्ष्वाकु वंश के राजा हैं, जो हो गये हैं, अब होने वालों के नाम सुनिये। वृहद्वल का पुत्र बृहद्रण होगा, इसके उरुक्रम और उरुक्रम के वत्सबृद्ध होगा। इसी तरह प्रतिव्याम, भानु, दिवाकर, वाहिनी पति, सहदेव, वीर, बृहदश्व, भानुमानु, प्रतिकाश्व, सुप्रतीक, मरुदेव, सुनक्षत्र, पुष्कर, अन्तरिक्ष, सुतषा, अतित्रजित, बृहद्भानु, बर्हि, कृतंजय, रणंजय, संजय, शाक्य, शुद्धोद, लांगल, प्रसेनजित, क्षुद्र, कारण, सुरथ, सुमित्र

ये सब राजा उत्तरोत्तर एक दूसरे के पुत्र वृहद्बल के वंश में होंगे। इक्ष्वाकु वंश सुमित्र राजा के संग नष्ट हो जायेगा, उससे आगे इस वंश में कोई राजा न होगा।

इक्ष्वाकु पुत्र निमि का वंश विवरण

श्रीशुकदेवजी बोले- हे राजन्! इक्ष्वाकु के पुत्र निमि ने यज्ञ आरम्भ कर वशिष्ठ को ऋत्विज बनने को कहा। वशिष्ठ बोले मुझे पहले इन्द्र ने वरण किया है, इसलिए जब तक उस यज्ञ को पूर्ण न कर आऊं तब तक उस समय की प्रतीक्षा करो। यह सुन निमि चुप हो गया और वशिष्ठ चले गये। निमि ने गुरु की प्रत्तीक्षा न कर ऋत्विजों को बुला यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। इन्द्र के यज्ञ को करा जब वशिष्ठ आये तब शिष्य का अन्याय देख शाप दिया कि तू बड़ा अभिमानी है, तेरा देहपात हो जायेगा। निमि ने भी अधर्म रत गुरु को शाप दिया, तू लोभ से धर्म को नहीं जानता है, इससे तेरा भी देह नष्ट हो जायेगा। इस तरह अध्यात्म ज्ञानी निमि ने अपना देह त्याग दिया और वशिष्ठ ने देह त्याग कर मित्राबरुणी द्वारा उर्वशी में जन्म लिया। उन मुनि लोगों ने निमि की देह को सुगन्धित वस्तुओं में रख यज्ञ समाप्त कर दिया और देवताओं से कहने लगे- प्रभु वर्ग! जो आप प्रसन्न हों तो राजा का देह जिला दीजिए। देवताओं ने कहा 'तथास्तु' तब निमि बोला कि मुझे देह बन्धन में मत डालो। देव बोले- 'हे विदेह'! तुम शरीर धारियों के नेत्र

में वास करो।'' किसी राजा के न रहने से मनुष्यों को भय होने लगा। तब सब मिलकर निमि के देहकोमथने लगे, मथने से एक कुमार उत्पन्न हुआ। जिसे जनक कहने लगे। मृत देह से उत्पन्न होने के कारण इसका विदेह नाम पड़ा, मथने से मिथिला कहलाया। इसने अपने नाम से मिथिलापुरी बसाई। हे राजन्! जनक के उदावसु, उदावसु के नन्दिवर्धन, नन्दिवर्धन के सुकेतु, सुकेतु के देवरात, के ब्रहद्रथ, बृहद्रथ के महावीर्य, महावीर्य के सुवृति, सुवृति के धृष्टकेतु, धृष्टकेतु के हर्यश्व के देवमीढ़, देवमीढ़ के विश्रुत, विश्रुत के महाधृति, महाधृति के कृतिरात, कृतिरात के महारोमा, महारोमा के स्वर्णरोमा; स्वर्णरोमा के हस्वरोमा इसके सीरध्वज हुआ। इसने यज्ञ के लिए पृथ्वी में हल चलाया था तब हल के अग्र से सीता उत्पन्न हुई इसी से इसको सीरध्वज कहने लगे। इसके कृतध्वज और मितध्वज दो पुत्र हुए। इनमें से कृतध्वज के केशिध्वज और मितध्वज के खाण्डिय हुआ। केशिध्वज के भानुमान् और भानुमान् के शतद्युम्न पुत्र हुआ। शतद्युम्न के शुचि इसके सनद्वाज, सनद्वाज के अर्ध्वकेतु, अर्ध्वकेतु के पुरुजित हुआ। पुरुजित् के अरिष्टनेमि, अरिष्टनेमि के श्रुतायु इसके सुपार्श्वक, सुपार्श्वक के चित्ररथ और इसके क्षेमधी हुआ। क्षेमधी के समरथ, इसके उपगुरु और इसके उपगुप्त हुआ। उपगुप्त के वस्वनत, वस्वनत के युयुधान, युयुधान के सुभाषण,

सुभाषण के जय, जय के विजय और विजय के ऋतु हुआ। ऋतु के शुनक, शुनक के वीतहव्य, वीतहव्य के दृति, दृति के बहुलाश्व, बहुलाश्व के कृति हुआ। यह मिथिला वंशी राजाओं का वर्णन है।

सोम वंश का विवरण

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन् अब चन्द्रवंश का वर्णन करते हैं। सहस्त्रशीर्ष नारायण की नाभि से कमल हुआ। उससे ब्रह्मा ने जन्म लिया, ब्रह्मा के अत्रि हुआ। इसी अत्रि के नेत्रों से चन्द्रमा हुआ। फिर इसने तीनों लोकों को जीत राजसूय यज्ञ किया और बृहस्पति की स्त्री तारा को ले आया। बृहस्पति ने कितनी बार तारा को मांगा पर उसने न दी। इसी बात पर देव दानवों में संग्राम हुआ। बृहस्पति से बैर होने के कारण शुक्राचार्य ने दैत्यों को साथ ले चन्द्रमा का पक्ष लिया और महादेव ने बृहस्पति के पिता से विद्या पढ़ी थी इससे उसका पक्ष ले सब भूतगणों को साथ ले आये। इन्द्र भी गुरु की ओर हो गया। तारा के निमित्त होने वाले युद्ध में देव और दानवों का बहुत नाश हुआ तथापि तारा को चन्द्रमा ने नहीं दिया। तब बृहस्पति ने ब्रह्मा से कहा तुम बीच बचाव कराओ। तब ब्रह्मा ने चन्द्रमा को धमकाकर तारा बृहस्पति को दिला दी परन्तु वह गर्भवती थी। यह देख बृहस्पति ने कहा- हे दुर्बुद्धि! तू अन्य से वीर्य ले आई है, इसको त्याग दे। दूसरी सन्तान मैं

उत्पन्न करना चाहता हूं, इससे तुझे नहीं मारूंगा। इस बात पर तारा ने लज्जित हो गर्भ को त्याग दिया परन्तु वह बालक सुवर्ण के समान कीर्तिमान था। इससे बृहस्पति और चन्द्रमा दोनों उसको लेने की इच्छा करने लगे। इसके लिए वाद-विवाद होने लगा। ऋषि और देवताओं ने तारा से पूछा यह किससे उत्पन्न हुआ? परन्तु लाज से तारा ने उत्तर न दिया। तब कुपित हो बालक ने कहा- हे दुराचारिणी! स्पष्ट क्यों नहीं कहती? ब्रह्मा ने तारा को एकान्त में समझाकर पूछा तब उसने कह दिया यह चन्द्रमा से है। यह सुन चन्द्रमा ने ले लिया उस बालक की बुद्धि गम्भीर थी इससे ब्रह्मा ने इसका नाम बुध रखा। बुध से इला के उदर में पुरूरवा उत्पन्न हुआ। इसकी प्रशंसा नारद ने इन्द्र लोक में की। उसको सुन उर्वशी पुरूरवा के पास आई। मित्रवरण के शाप से उर्वशी मनुष्य लोक में उस पुरुषोत्तम को कामदेव से समान रूपवान सुनकर गई, राजा भी उसके सौन्दर्य को देख बहुत प्रसन्न हुआ। उर्वशी ने शर्त रखी कि मैं घी का भोजन करूंगी और मैथुन के सिवाय आपको कभी नग्न न देखूंगी, देखूंगी तो चली जाऊंगी। उर्वशी ने ये भी कहा- तुम्हें मेरे दो भेड़ के बच्चों की रक्षा करनी होगी। राजा ने इन सबकी प्रतिज्ञा कर ली। फिर उर्वशी को ले पुरूरवा देवताओं के विहार करने के चैत्ररथाति स्थानों में विहार करने लगा। गन्धर्वों ने एक दिन अन्धेरी रात में दोनों मेंढ़े चुरा लिये। जब गन्धर्व

उनको चुराकर लिये जाते थे तब उनका चिल्लाना सुन उर्वशी कहने लगी कि इस कुनाथ वीरभानी नपुंसक ने मेरा सर्वनाश कर दिया। मैं इसके विश्वास में आ नष्ट हो गई, मेरे पुत्रों को गन्धर्व ले गये। इसके कटु वचनों से विद्ध हो राजा रात्रि ही में कृपाण ले नंगा दौड़ा चला गया। इसको आते देख गन्धर्वों ने मेंढ़े तो छोड़ दिये परन्तु प्रकाश कर दिया। जब वह मेंढ़ों को ला रहा था तब उर्वशी ने नग्न देखा, इससे वह राजा को त्याग चली गई। राजा उर्वशी के बिना दुःखित होकर उन्मत्त की तरह पृथ्वी पर घूमने लगा। एक बार कुरुक्षेत्र में उर्वशी सरस्वती पर स्नान करने आई तब उसने उसे देख कहा-हे प्रिये! ठहर, तू मुझको अधर में छोड़ के मत जा, हे देवि! तू मुझ पर कृपा न करेगी तो यह देह, यहीं गिर जावेगी और स्यार व गिद्ध इसे खा जायेंगे। यह सुन उर्वशी कहने लगी- राजा तू देह त्याग मत कर। तू पुरुष है, स्त्री किसी की मीत नहीं होती है। कुछ दिन पीछे एक रात मेरा सहवास होगा। जिससे आपके और भी पुत्र होंगे। इससे यह सूचित किया था कि मैं गर्भिणी हूं। तदन्तर उर्वशी को गर्भवती देख राजा घर चला आया और कुछ दिन पीछे वहां जा उर्वशी से मिला और प्रसन्न हो रात्रि भर उसके पास रहा। जब इसको विरह से व्याकुल देखा तब उर्वशी बोली तू इन गन्धर्वों से प्रार्थना कर ये मुझे दे जायेंगे। राजा की स्तुति से प्रसन्न हो गन्धर्वों ने उसे एक अग्निस्थली दी, इसको पुरुरवा

उर्वशी समझ विचरने लगा। फिर स्थली को वन में छोड़ घर आ उसका ध्यान करता रहा। तदन्तर त्रेतायुग के आरम्भ में उनके मन में वेदत्रयी उत्पन्न हुई। तब फिर उस स्थान पर गया जहां स्थली छोड़ी थी। वहां जा देखा कि इसमें तो छीकर के भीतर पीपल लगा हुआ है और तब उसमें से दो अरणी बना उर्वशी के लोक में जाने की इच्छा से मथने लगा। नीचे की अरणी में उर्वशी का ध्यान ऊपर की में अपना और मध्य में पुत्र का ध्यान करके मथने लगा। इस मंथन से अग्नि उत्पन्न हुई, यह अग्नि आहवनीय, गाहपत्य और दक्षिणाग्नि इन तीन प्रकार की हुई। इसको पुरूरवा ने अपना पुत्र ठहराया। इससे उर्वशी के लोक में जाने की इच्छा से अधोक्षज भगवान का भजन किया। प्रथम एक ही वेद था, सर्व वाणियों से युक्त एक ही ऊँकार मंत्र था, एक ही नारायण देव था, एक ही अग्नि और एक ही वर्ण था। त्रेता के आरम्भ में इसी पुरूरवा ही से वेदत्रयी हुई है और पुरूरवा इस ही को अपना पुत्र समझता था। उसी के द्वारा वह गन्धर्व लोक चला गया।

परशुराम द्वारा कार्त्तवीर्य्यार्जुन वध

शुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! उर्वशी के गर्भ से पुरूरवा के आयु, श्रतायु, सत्यायु, रथ, विजय और जय छः पुत्र हुए थे। श्रुतायु के वासुनान और सत्यायु

के श्रुतंजय था। रथ के पुत्र का नाम अमिता था। विजय के भीम, भीम के कांचन इसके होत्रक और होत्रक के जन्हु हुआ। यह जन्हु गंगा को एक चुल्लू में पी गया फिर वह जंघा में से निकली इसलिए गंगा को जान्हवी कहते हैं। फिर जनहु के पुरु, पुरु के बलाहक और बलाहक के अज, अज के कुश, कुश के कुशाम्बु, मूर्त्तय, वसु और कुशनाभ हुए तथा कुशाम्बु के गाधि हुआ। इस गाधि की पुत्री सत्यवती थी। उसको ऋचीक ने मांगा। परन्तु गाधि ने वर कन्या अनुरूप न देख ऋचीक से कहा कि यदि तुम कन्या से विवाह चाहते हो तो श्वेत रंग के और जिनके एक कान काले हैं ऐसे एक सहस्त्र घोड़े दो। राजा का भाव समझ वह वरुण के पास गया और एक सहस्त्र घोड़े ला राजा को दे कन्या से विवाह कर लिया। फिर इस ऋषि से सत्यवती और इसकी माता ने पुत्र की इच्छा की इसलिये वह ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों मंत्रों से चरु को अभिमंत्रित कर स्नान करने चले गए। मुनि को आने में देर हो गयी तब माता ने सत्यवती का चरु उत्तम समझ पुत्री से मांग खा लिया। मुनि ने जब यह वृत्तान्त सुना तब स्त्री से बोले, तैंने बड़ा दुष्कर्म किया है, तेरे दण्डधारी पुत्र होगा और माता के ऐसा पुत्र होगा जो ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ होगा। इस पर सत्यवती ने हाथ जोड़ ऋषि को प्रसन्न कर लिया। ऋषि बोले अच्छा तेरा पुत्र दण्डधारी न होगा तो नाती अवश्य होगा तब सत्यवती के जमदग्नि

हुआ और सत्यवती कौशिकी नदी हो गई और जमदग्नि ने रेणुका से विवाह किया। इसके वसुमनादि पुत्र हुए इनमें सबसे छोटे का नाम राम था परसा धारण करने से परशुराम कहलाए। इनको भगवान का अंश कहते हैं। परशुराम क्षत्रियों को ब्राह्मणों का अभक्त, अधर्मी और पृथ्वी का भार समझते थे इसलिए थोड़े से अपराध पर क्षत्रिय कुल का नाश कर दिया। परीक्षित ने पूछा राजाओं का ऐसा क्या अपराध था? श्रीशुकदेवजी बोले- कार्तवीर्य्यार्जुन नाम का राजा बड़ा पराक्रमी था जिसने रावण को भी बाँध लिया था। एक दिन वह शिकार खेलता हुआ जमदग्नि के आश्रम पर पहुंचा, ऋषि ने राजा की सेना का कामधेनु द्वारा सत्कार किया। अपने से भी अधिक ऋषि के प्रभाव को देख राजा कामधेनु लेने की इच्छा करने लगा तथा बलपूर्वक कामधेनु ले गया। राजा के जाने पर राम आश्रम में आए और राजा की दुष्टता सुन क्रोध में फुंकार मारने लगे और सहस्त्रबाहु पर दौड़े। जब राजा ने देखा कि धनुष वाण, परसा आदि शस्त्रों के लिए भृगुकुलदीपक नगर में घुस आए हैं, तब उसने अस्त्रों से सुसज्जित कर सत्रह अक्षौहिणी सेना भेजी, वह अकेले ही परशुरामजी ने काट गिराई। परशुरामजी के परसे और वाणों से मरी हुई सेना के रुधिर से कींच हो गई। तब राजा क्रोध कर स्वयं रण भूमि में आया और पांच सौ धनुषों से बाण परशुराम पर चलाने लगा। परशुराम अपने एक

ही बाण से सबको काट-काट गिराने लगे। फिर राजा हाथों से पर्वत और वृक्ष ले लेकर परशुराम पर डालने लगा तब परशुरामजी ने परसे से उसके हाथ काट डाले। जब उसके बाहु कट गए तब उसका सिर काट लिया। डर के मारे उसके दस सहस्त्र पुत्र भाग गए। परशुराम ने शत्रु के खेंचने के कारण दुखित हुई बछड़ा सहित कामधेनु ला पिता को दे दी और अपने पिता भाइयों के सामने अपने किए हुए कर्म का वर्णन कर दिया। उसे सुन जमदग्नि कहने लगा- हे राम! तुमने अधर्म किया कि तुमने राजा को वृथा ही मार डाला। राजा का वध करना ब्रह्महत्या से भी अधिक है। इसलिये किसी तीर्थ का सेवन कर इस पाप को दूर कर दो।

विश्वामित्र का वंश वर्णन

शुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! पिता के उपदेश से परशुरामजी एक वर्ष तक तीर्थ सेवन कर, फिर अपने आश्रम में आए। एक समय परशुराम की माता रेणुका गंगा पर जल लेने को गईं, वहां उसने गन्धर्वों के राजा चित्ररथ को अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते देखा। उसके देखने में वह ऐसी तत्पर हुई कि होम के समय को भूल गई। चित्ररथ की ओर रुचि भी फिर गई। विलम्ब देख मुनि के शाप से डरने लगी और जल का कलश रख हाथ जोड़ खड़ी हो गई। मुनि इसका

मानसिक व्यभिचार देख कुपित हो पुत्रों से कहने लगे कि इसे मार डालो परन्तु उन्होंने न मारा। तब परशुराम ने पिता की आज्ञा से भाइयों समेत माता को मार डाला। इससे प्रसन्न हो जमदग्नि ने कहा वर मांगो, तब इसने यह वर मांगा कि सब मरे हुए जी पड़ें। तब ऋषि के अनुग्रह से वे सब जीवित हो गए। भागे हुए सहस्त्रबाहु के पुत्र परशुराम से पराजित हो पिता के वध को नहीं भूले थे। एक दिन परशुराम अपने भाइयों को ले वन गये, अपना बैर साधने की इच्छा से सहस्त्रबाहु के पुत्रों ने ध्यानावस्थित मुनि का सिर काट डाला। परशुराम की माता ने सिर मांगा भी परन्तु वे नीच सिर को ले गये। रेणुका दुःख से छाती पीटने लगी और हे राम! हे तात! कह चिल्लाने लगी इस आर्तनाद को सुन परशुराम आश्रम में आये तो क्या देखते हैं कि पिता मरा पड़ा है। यह देख शोक से मोहित हो कहने लगे हे पिता! तुम हमें त्याग चले गये। इस तरह विलाप कर पिता के देह को भाइयों के पास रख क्षत्रियों के नाश का संकल्प किया। परशुराम ने माहिष्मती में जा उन क्षत्रियों के नाश का संकल्प किया। परशुराम ने माहिष्मती में जा उन क्षत्रियों के शिर काट कर चिन दिये और उनके रक्त से भयंकर नदी उत्पन्न की। हे राजन्! जब क्षत्रिय अन्याय करने लगे तब पिता के वध को निमित्त कर परशुरामजी ने इक्कीस बार क्षत्रिायें को मार स्यमंत पंचक नाम देश में रुधिर के नौ तालाब बनाये।

फिर पिता का शिर धड़ से जोड़ यज्ञ द्वारा भगवान की पूजा में प्रवृत्त हुए और होता को पूर्व दिशा, ब्रह्म को दक्षिण दिशा, अर्ध्वंयु को पश्चिम दिशा और उद्‌गाता को उत्तर दिशा दे दी। अन्य ऋषियों को कोण की दिशा दी। कश्यप को मध्य प्रदेश दिया, उद्रष्टा को आर्यवर्त और उससे आगे की भूमि सभासदों को दी। फिर यज्ञांत में स्नान से पापों को दूर करने को सरस्वती में स्नान किया। जमदग्नि देह पा सप्त-ऋषियों के मण्डल में विराजने लगे और परशुराम ने उनकी पूजा की। आगामी मन्वन्तर में जमदग्नि के पुत्र परशुराम भी सप्त ऋषियों के मण्डल में विराजेंगे अब भी परशुरामजी दण्ड त्याग महेन्द्राचल पर निवास करते हैं। इस तरह भगवान ने भृगुवंश में जन्म ले असंख्य क्षत्रियों को मार पृथ्वी का भार दूर कर दिया। गाधि से विश्वामित्र का जन्म हुआ। ये अपने तपोबल से क्षत्रीत्व को छोड़ ब्रह्मार्षि हो गये। इनके एक सौ पुत्र हुए, बीच के पुत्र का नाम मधुच्छन्द था। भृगुकुल में उत्पन्न हुए अजीगर्त के देवरात इस दूसरे नाम से प्रसिद्ध शुनःशेष नाम वाले पुत्र को अपना बेटा बनाकर विश्वामित्र अपने सब पुत्रों से कहने लगे- इसको तुम बड़ा भाई मानो। हरिश्चन्द्र को यज्ञ में क्रय किया गया, इसको पुरुष पशु बना बलि देने का विचार था तब यह अपने जीवित छूटने के निमित्त विश्वामित्र की शरण गया, और उनके उपदेश के अनुसार ब्रह्मादिकों की स्तुति की जिससे बन्धन से छूट

गया। इस भृगुवंशी शुनःशेष ने देवताओं की स्तुति की थी, इससे वह गाधि वंश में देवरात नाम से विख्यात हो गया। मधुच्छन्द आदि से लेकर विश्वामित्र के उन्नचास पुत्र उसको बड़ा नहीं मानते थे इसलिए विश्वामित्र ने उनको शाप दिया कि मलेच्छ हो जाओ। छोटे पचासों को ले मधुच्छन्द ने कहा- हे पिता! जैसा आप कहते हो वैसा ही करेंगे। यह कहकर मन्त्रद्रष्टा देवरात को उसने बड़ा भाई मान लिया तब विश्वामित्र कहने लगे हे कुशिक वंशियों! इस देवरात को कुशिक वंश ही समझो, इसकी आज्ञा में चलो इसके पीछे अष्टक, हारीत् जय, ब्रतुमान आदि और पुत्र विश्वामित्र के हुए। इस तरह विश्वामित्र के पुत्रों ने कौशिक वंश के अनेक भेद कर दिये, इस सब में देवरात बड़ा माना गया। यह भृगुवंशी था तो भी इससे कौशिक गोत्र को ही प्रवर भेद माना गया है।

क्षत्रबृद्धादि का वंश वर्णन

शुकदेवजी बोले- पुरूरवा का जो आयु नाम पुत्र था उसके नहुस, क्षत्रबृद्ध, रजी, रम्भ और अनेमा हुए। क्षत्रबृद्ध के सुहोत्र, सुहोत्र के काश्व, कुश और गृत्समद हुए, गृत्समद के शुनक के शौनक हुआ। कश्य, काशि, काशि के राष्ट्र, राष्ट्र के दीर्घतम के धन्वन्तरि हुआ। धन्वन्तरि के केतुमान और केतुमान के भीमरथ हुआ। भीमरथ के दिवोदास, दिवोदास के द्युमान था,

इसको प्रदन शत्रुजित, वत्स ऋतध्वज, कुवलयाश्व नामों से पुकारते थे फिर इसके अलर्दािदक पुत्र हुये। अलर्क के संतति, संतति के सुनीथ, सुनीथ के सुकेतन, सुकेतन के धर्मकेतु, धर्मकेतु के सत्यकेतु और सत्यकेतु के धृष्टकेतु, धृष्टकेतु के सुकुमार, सुकुमार के वीतिहोत्र, वीतिहोत्र के मार्गभूमि हुआ। ये सब काशिराज की सन्तान थे। ये क्षत्रबृद्ध के वंश का वर्णन है। रम्भ के रभस, रभस के गम्भीर और गम्भीर के अक्रिय हुआ। इसके वंश में ब्राह्मण हुए। अब अनेमा के वंश का वर्णन करते हैं। अनेमा के शुद्ध, शुद्ध के शुचि, शुचि के त्रिककुद् हुआ जो धर्म सारथि नाम से प्रसिद्ध हुआ। धर्म सारथि के शान्तरथ हुआ, रज के पांच सौ पुत्र हुए। देवताओं ने रज से प्रार्थना की तब रज ने दैत्यों को मार स्वर्ग इन्द्र को दिया, इन्द्र ने रज के चरण पकड़ स्वर्ग का राज्य दिया। प्रहलाद आदि बैरियों के डर से आप भी उसकी शरण में रहने लगा, रज के मरने पर उसके पुत्रों से स्वर्ग मांगा परन्तु इन पुत्रों ने नहीं दिया और यज्ञ का भाग मांगने लगे। तब उनकी बुद्धि विचलित करने को बृहस्पति से यज्ञ करा उनका नाश कर दिया। एक भी जीवित न रहा। शत्रबृद्ध का पोता कुश, इसके प्रति हुआ, प्रति के संजय और संजय के जय हुआ। जय के कृत, कृत के हर्यवन, हर्यवन के सहदेव, सहदेव के अहीन और अहीन के जयसेन हुआ। जयसेन के संस्कृति, संस्कृति के जय, जय के

धर्मक्षेत्र, धर्मक्षेत्र के महारथ हुआ। अब नहुष वंश कहते हैं।

ययाति का विवरण

श्रीशुकदेवजी बोले- राजा नहुष के यति, ययाति संयाति, आयुति, वियुति और कृति हुए थे। ये सब नहुष के आधीन थे। यति ने राज्य ग्रहण नहीं किया क्योंकि वह जानता था कि राज्य में प्रविष्ट हो आत्म ज्ञान नहीं होता। जब इन्द्राणी के अपराध करने से अगस्तयादि ने नहुष को स्वर्ग भ्रष्ट कर दिया और अजगर हो गया तब ययाति राजा हुआ। इसने अपने छोटे भाइयों को चारों दिशाओं का स्वामी बना दिया और आप शुक्राचार्य और वृषपर्वा की पुत्री से विवाह कर पृथ्वी के पालन में तत्पर हुआ। राजा परीक्षित ने पूछा- महाराज! शुक्राचार्य तो ब्राह्मण थे और ययाति क्षत्री था यह सम्बन्ध कैसे हुआ? तब शुकदेवजी बोले- एक दिन वृषपर्वा की पुत्री शर्म्मिष्ठा अपनी सहस्त्र सखी और गुरु पुत्री देवयानी के साथ पुरी सरोवर की वाटिका में वस्त्र उतार स्नान कर रही थी। इतने में महादेव-पार्वती उधर आ निकले। उनको देख वे झटपट जल से निकल लज्जित हो कपड़े पहनने लगीं। जल्दी के मारे बिना जाने शर्म्मिष्ठा ने गुरु पुत्री देवयानी के वस्त्र पहन लिये। तब देवयानी कुपित हो कहने लगी- देखो दासी की बात, हमारे पहरने के वस्त्रों को पहनती

है। तब शर्म्मिष्ठा क्रोध में गाली देती हुई गुरु पुत्री से बोली- ''हे भिक्षुकी! तू हम लोगों के घरों में श्वान व कौवे की तरह फिरा करती है।'' ऐसे वचनों से गुरु पुत्री का तिरस्कार कर वस्त्र छीन उसे कुएं में ढकेल दिया। जब वह घर चली गई तब ययाति शिकार खेलता हुआ प्यास का मारा कुएं पर चला आया, उसने उसमें देवयानी को देखा। तब वस्त्र हीन देवयानी को अपना दुपट्टा दे राजा ने उसका हाथ पकड़ कुएं से खींच लिया तब वह प्रेम भरी वाणी से कहने लगी- हे शत्रु निपूदन! आपने मेरा हाथ पकड़ लिया है। इसी से मैं अब तुम्हारे सिवा दूसरे से पाणिग्रह करना नहीं चाहती। ययाति की इच्छा न थी परन्तु दैव की प्रेरणा से उसका मन उसमें लगा और देवयानी का वचन स्वीकार कर लिया। राजा के जाने पर रोती हुए देवयानी पिता के पास आई और जो शर्म्मिष्ठा ने सुनाया इस पर शुक्राचार्य खिन्न हो पुरोहिताई की निन्दा कर बेटी को लेकर चले गये। जब वृषपर्वा ने यह सुना तब वह उनके चरणों पर जा गिरा। तब शुक्राचार्य बोले- हे राजन्! जो देवयानी कहे सो ही करो। वृषपर्वा ने स्वीकार कर लिया, तब देवयानी कहने लगी कि मैं यही चाहती हूं कि पिता की दी हुई जहां मैं जाऊं वहीं शर्म्मिष्ठा अपनी सखियों के संग मेरी दासी बनकर चले। तब शर्म्मिष्ठा सहेलियों के साथ देवयानी की सेवा टहल करने लगी। शुक्राचार्य ने देवयानी के संग

शर्म्मिष्ठा ययाति को दे उससे कहा- "हे राजन्! तू अपनी सेज पर शर्म्मिष्ठा को मत रखना।" देवयानी को सन्तान समेत देख शर्म्मिष्ठा राजा की इच्छा किया करती थी। एक समय स्त्री धर्म अनुसार एकान्त में बोली- जब राज पुत्री ने सन्तान की प्रार्थना की तब राजा ने शुक्र के वचन स्मरण कर उचित काल में उससे सहवास किया। देवयानी के यदु और तुर्वसु हुए। और शर्म्मिष्ठा के द्रुह्यु, अनु और पुरु हुए। जब देवयानी को मालूम हुआ कि मेरे पति से शर्म्मिष्ठा के गर्भ की स्थिति है तब वह क्रुद्ध हो पिता के घर चली गई। राजा भी प्रार्थना करता हुआ उसके पीछे गया और चरण पकड़ लिए। शुक्राचार्य ने क्रुद्ध हो कहा- हे स्त्री लोलुप! बुढ़ापा तुझ में प्रवेश करे। ययाति बोले- हे ब्रह्मन्! मैं अभी आपकी बेटी के सहवास से तृप्त नहीं हुआ। तब शुक्र बोले जो तेरे बुढ़ापे को लेकर तरुणाई दे दे, उससे बदला कर ले। ययाति ने अपने पुत्र यदु, तुवस, द्रुह्यु तथा अनु आदि से यौवन मांगा लेकिन किसी ने न दिया। पुरु ने पिता का बुढ़ापा ले लिया तब पिता ने पुत्र की तरुणावस्था से विषय भोगना प्रारम्भ किया। ययाति प्रजा को पालने लगा और भोगों को भोगता रहा। देवयानी भी अपने प्यारे को आनन्द देने लगी। राजा ने यज्ञों में दक्षिणा देकर यज्ञ पुरुष का पूजन किया। इस तरह सहस्त्र वर्ष ययाति भोगों को भोगता रहा परन्तु उसकी तृप्ति न हुई।

ययाति को आत्मज्ञान

शुकदेवजी कहने लगे- ययाति बहुत दिवस तक स्त्री में आसक्त रह भोगों को भोगता रहा। जब इसने देखा कि इन भोगों से मेरी आत्मा नष्ट हो गयी है तब वैराग्य युक्त हो अपनी प्यारी से कहने लगा हे प्राण प्रिये! तुझ सरीखे आचरण वालों की कथा सुन। किसी वन में एक बकरा अपने प्रिय पात्र को ढूंढता था। कर्म वश उसने कुएं में एक बकरी को देखा। वह कामी उसे चाहने लगा। बकरी ने भी निकल कर उसी से स्नेह किया तब और बकरियां उससे मोह करने लगीं। वह एक ही साथ बहुत सी बकरियों से रमण करने लगा। और काम में आत्मा को भूल गया। जब उस कुएं वाली बकरी ने औरों के साथ रमण करते देखा तब उसे बुरा लगा। वह उस बकरे को छोड़ स्वामी के पास चली गई, तब बकरा उसके पीछे गया परन्तु उसे प्रसन्न न कर सका। वहां किसी ब्राह्मण ने क्रोध से उसके अण्डकोश काट डाले परन्तु उसी ने फिर जोड़ दिए। अण्डकोशों के जुड़ने से वह कुएं वाली बकरी से रमण करता रहा, परन्तु तृप्ति न हुई। हे सुभ्रु! ऐसे ही मैं तेरे प्रेम में बंधा हूं और आत्मा को भूल गया हूं। मैंने सहस्त्र वर्ष विषय का सेवन किया है तथापि चाहना बढ़ती ही जाती है। इसलिए मैं सब त्याग कर ब्रह्म में चित्त लगा निर्द्वन्द हो विचरूंगा। इस प्रकार ययाति स्त्री को समझा, पुरु को

उसकी तरुणावस्था दे और वृद्धावस्था ले निःस्पृह हो गया। पूर्व में द्रुह्य, दक्षिण में यदु, शेष भूमण्डल का राज्य पुरु को दे बड़े भाइयों को उस के अधीन कर वन को चला गया। वन में राजा आत्मा के अनुभव से त्रिगुणात्मक देह को त्याग ब्रह्म में चित्त लगाये भगवद् गति को प्राप्त हो गया। देवयानी ने समझा कि यह बात हंसी की है, परन्तु पीछे उसे भी ज्ञान हो गया और सोचने लगी कि पथिक जनों की तरह संसार को स्वप्नवत् समझ सब त्याग कर श्री कृष्ण में मन लगा देवयानी ने भी देह त्याग दी।

पुरु वंश का विवरण

शुकदेवजी ने कहा- अब हम पुरु के वंश का वर्णन करते हैं जिससे तुम हुए। पुरु के जन्मेय, जन्मेय के प्रचिन्वन्, प्रचिन्वन् के प्रवीर, प्रवीर के नमस्यु के चारुपाढ हुआ। चारुपाढ के सुद्युम्न, सुद्युम्न के बहुगब, बहुगब के संयाति, संयाति के अहंयाति, अहंयाति के रौद्राश्व हुआ। इस प्रकार रौद्राश्व के ऋतेयु, कुक्षेयु, स्थिण्डिलेयु, कृतेयु, जलेयु, संततेयु, धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु और सब में छोटा वनेयु दस पुत्र घृताचा अप्सरा से हुए। इसमें से ऋतुयु के रान्तिभार, रान्तिभार के सुमति, ध्रुव और अप्रतिरथ तीन पुत्र हुए इसमें अप्रतिरथ के कण्व, कण्व के मेधातिथि, मेधातिथि के प्रस्कण्वादि हुआ। सुमति के रैभ्य, रैभ्य के दुष्यन्त हुआ। यह

दुष्यन्त एक दिन खेलता हुआ कण्व के आश्रम में गया वहां एक स्त्री को बैठा देख कर राजा मोहित हो गया। राजा उससे बोला हे कमलाक्षि! तू किसकी पुत्री है? तब वह शुकन्तला बोली- मैं विश्वामित्र की पुत्री हूं, मेरी मां मेनका है मेरा नाम शकुन्तला है। शकुन्तला के स्वीकृति देने पर दुष्यन्त ने गान्धर्व रीति से शकुन्तला का पाणिग्रहण कर लिया। उस शकुन्तला से दुष्यन्त के भरत नाम का पुत्र हुआ। पिता के मरने पर भरत चक्रवर्ती हुआ। इसके दाहिने हाथ का चक्र और चरणों में कमल चिन्ह थे। इसने महाभिषेक द्वारा भगवान का पूजन किया और महाराजाधिराज हो गया। इसने यज्ञ करने को गंगातीर पर मामतेज को पुरोहित बना पचपन यज्ञ किये तथा यमुना किनारे अठहत्तर अश्वमेघ यज्ञ किये। एक स्थान में अग्निचयनकर्म किया इसमें सहस्त्र ब्राह्मण लगाये थे। इस कर्म में इतनी गौ बांटी गईं कि प्रत्येक ब्राह्मण पर १३०४८ गौ आईं। एक सौ तेंतीस अश्वमेघों को देख सब आश्चर्य करने लगे। भरत ने कर्म ऐसे किये कि भूत भविष्यत् का कोई राजा इसको नहीं कर सकता। इसने दिग्विजय में किरात, हूण, यवन, अन्ध, अंक, खश, शक अबह्लण्य राजा और म्लेच्छों को विजय किया था। पहले असुर देव स्त्रियों को रसातल ले गये थे, उनको जीत उनकी स्त्रियां फिर ला दीं। उसके राज्य में प्रजा सुख से रहती थी और पृथ्वी में सम्पूर्ण रस उत्पन्न होते थे। वह सत्ताईस सहस्त्र

वर्ष राज्य करता रहा। फिर चक्रवर्ती राजा सबको झूठा समझ वैराग्य में निरत हो गया। इसके विदर्भ की तीन रानियां थीं। राजा ने कहा जो तुम्हारे पुत्र हुए हैं, वे मेरे अनुरूप नहीं हैं। तब रानियों ने भयातुर हो सोचा राजा हमको त्याग न दे इससे अपने पुत्र मार डाले। जब राजा का वंश नष्ट हो गया तब वंश वृद्धि के लिए इसने मरुत्स्तोम यज्ञ किया तब मरुत ने भरद्वाज पुत्र दिया। वृहस्पति ने अपने भाई की गर्भवती स्त्री से मैथुन करना चाहा तब गर्भस्थ बालक ने कहा- ऐसा मत करो यहां जगह नहीं है। वृहस्पति ने उसे शाप दिया कि अन्धा हो जा और अपना वीर्य डाल दिया। बालक ने एड़ी मार उसे निकाल दिया परन्तु वीर्य गिरते ही वह बालक बन गया। स्त्री को भय हुआ मेरा पति मुझे त्याग देगा इसलिये उसको छोड़ जाने लगी तब वृहस्पति बोले- हे मूढ़! यह मेरे-तेरे दोनों के संयोग से हुआ है, तो तू ही पोषण कर। जब दोनों भरद्वाज-२ कहते छोड़ गये तो इसका नाम भरद्वाज हो गया। तब मरुतों ने बालक उठा लिया और बालक बड़ा किया जब भरत वंश का नाम होने लगा तब वही बालक भरत को दे दिया।

श्रीशुकदेवजी ने कहा- यह बालक वंश नष्ट होने पर दिया गया था इससे उसे वितथ कहते थे। इस वितथ के मन्यु हुआ और मन्यु के बहुत्क्षेत्र, जय, महावीर्य, नर और गर्ग पांच पुत्र हुए। नर के संकृति, संकृति के गुरु और रन्ति देव दो पुत्र हुए थे। यह रन्तिदेव ऐसा

हुआ-कि बिना परिश्रम जो धन मिल जाता उसी में निर्वाह करता। एक समय कुछ नहीं रहा इससे कुटुम्ब सहित दुःखी हुआ। उस समय इसे अड़तालीस दिन निराहार हो गये। उन्नचासवें दिन दैवयोग से घृत, खीर और जल आप उपस्थित हुआ। जब भोजन तैयार हुआ और भोग लगाने को तैयार थे कि एक अतिथि आ गया। रन्तिदेव ने उसका आदर कर उसको भोजन करा दिया। जब वह चला गया, फिर शेष सबने आपस में बांट लिया। इतने में एक शूद्र आ गया। राजा ने अपने भाग का अन्न उसे दे दिया। शूद्र के जाने पर एक अतिथि बहुत से कुत्तों को ले आ गया और बोला हम बड़े भूखे हैं। राजा ने सम्मान से शेष अन्न उनको दे कुत्ते और स्वामी को प्रणाम किया। इसके पीछे उनके पास इतना पानी बचा जिसे पी एक मनुष्य की प्यास बुझ जाए। जब पीने लगा तब एक चाण्डाल कहने लगा, महाराज! मैं प्यासा हूं। राजा ने कहा कि मैं ईश्वर से अणिमादिक अष्ट सिद्धियां व मोक्ष नहीं मांगता हूं परन्तु मैं केवल यही मांगता हूं कि जीवों के दुःख मैं भोगूं और उनको मुझसे सुख मिले। इस प्राणी को जल देने से मेरे भूख, प्यास, परिश्रम, दीनता, क्लान्ति, शोक विशाद और मोह सब दूर हो गये हैं। इस तरह राजा ने कहकर पानी चाण्डाल को दे दिया। उस समय ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रकट हो राजा के सन्मुख आये। राजा ने उनको नमस्कार कर भक्ति पूर्वक

भगवान में चित्त लगा दिया। हे राजन्! इसने सबको छोड़ भगवान ही में चित्त लगा दिया था इससे इसकी माया स्वप्न की तरह नष्ट हो गई। रन्तिदेव के प्रसंग से उनके सब सहवासी गण नाग वर्णाश्रम योगी हो गये। गर्ग से शिनि, शिनि से गार्ग्य हुआ, इसके ब्रह्मकुल की उत्पत्ति हुई। महावीर्य से दुरितक्षयक, त्रष्यारुणि, कवि और पुष्करारुणि ये तीन पुत्र हुए, ये भी ब्राह्मण हो गये। वृहत्क्षण के हस्ती था इसी ने हस्तिनापुर बनाया। हस्ती से अजमीढ़, द्विमीढ़ और पुरीमीढ़ हुये। अजमीढ़ में वृहदिषु वंश में होने वाले प्रियनेधादिक ब्राह्मण हो गये, तब अजमीढ़ में बहदषु, उसके वृहद्धनु, वृहद्धनु के वृहत्काय और वृहत्काय में जयद्रथ हुआ। जयद्रथ के विशद, विशद के सेनाजित, इसके रुचिराश्व, दृढ़वनु और काश्य तीन पुत्र हुए। रुचिराश्व के पार, पार के पृथुसेन तथा नीप दो पुत्र हुए। इसने शुक्र की कन्या कुन्बी से ब्रह्मदत्त नामक पुत्र उत्पन्न किया। ब्रह्मदत्त ने सरस्वती के विष्वक्सेन, इसने जैगीषश्य योगी के उपदेश से एक योग ग्रन्थ रचा था। विष्वक्सेन के उदवस्वन और उदवस्वन के भल्लाद हुआ। द्विमीढ़ से यवीनर, यवीनर से कृतिमान्, कृतिमान के सत्यधृति, सत्यधृति के दृढ़नेमि और उसके सुपाश्र्व हुआ। सुपाश्र्व के सुमति, सुमति के संमतिमान् उसके कृति हुआ। कृति ने हिरण्यनाम से योगविद्या सीख अपने शिष्य को प्राच्य सामवेद की छः संहिता विभाग करके पढ़ाई थीं। कृति

से नीप, नीप से उग्रायुध, उग्रायुध से क्षेम्य, क्षेम्य से सुव्रीर, सुवीर से रिपुंजय हुआ। रिपुंजय के नहुरथ हुआ तथा पुरमीढ़ के सन्तान नहीं हुई। अजमीढ़ के नलिनी से नील हुआ नील के शान्ति हुआ। शान्ति के सुशान्ति हुआ और सुशान्ति के पुरुज, पुरुज के अर्क, अर्क के भर्म्याश्व हुआ। इस भर्म्याश्व के मद्गलादिक पांच पुत्र हुए थे। भर्म्याश्व ने अपने पुत्रों से कहा- तुम मेरे देश की रक्षा करने योग्य हो इन पांचों ने देश के पांच भागों की रक्षा की इससे उसका नाम पांचाल है। मुद्गल से ब्रह्मकुल प्रवृत्ति हुई और उनका मौद्गल्य गोत्र हुआ। मुद्गल के जुड़वां हुआ इसके पुत्र का नाम दिवोदास और पुत्री का नाम अहिल्या हुआ इस कन्या के गौतम के संयोग से शतानन्द हुआ। शतानन्द के धनुर्वेदज्ञ सत्यधृति हुआ इसके शरद्वान् हुआ। शरद्वान का वीर्य उर्वशी को देख सरकण्डों में गिर पड़ा, उससे शुभ नाम जोड़ला हुआ। राजा शान्तनु शिकार को गये। वहां उन्हें देख दया करके उठा लाए इनमें बालक का नाम कृपाचार्य और कन्या का नाम कृपी था वह द्रोणाचार्य को ब्याही गई।

जरासन्ध युधिष्ठिर और दुर्योधन का विवरण

शुकदेवजी बोले- दिवोदास से मित्रेयु, मित्रेयु से च्यवन, च्यवन के सुदास, सुदास का सहदेव, सहदेव का

सोमक, सोमक का जन्तु हुआ। इस जन्तु के सौ पुत्र थे जिनमें छोटे का नाम पुषत था, पुषत का द्रुपद, द्रुपद के धृष्टद्युम्नादिक पुत्र हुए और पुत्री द्रौपदी थी। धृष्टन्युम्नादि के पुत्र का नाम धृष्टकेतु था। ये भर्म्याश्व वंश के राजा पांचाल देश में हुए। अजमीढ़ के दूसरे पुत्र का नाम ऋक्ष था, इस ऋक्ष का संवरण हुआ। इस संवरण से सूर्य की पुत्री तपती से कुरुक्षेत्र का स्वामी कुरु हुआ। कुरु के परीक्षित, सुधनु, जन्हु और निषधाश्व हुए, इनमें से सुधनु का सुहोत्र, सुहोत्र का च्यवन, च्यवन का कृति, कृति का उपरिचर, उपरिचर का वसु और वसु के वृहद्रथ, वृहद्रथ का कुशाग्र और कुशाग्र का ऋषभ, ऋषभ का सत्यहित, सत्यहित का पुष्पवान्। वृहद्रथ के एक और स्त्री थी उससे ऐसा बालक पैदा हुआ जिसकी दो फांके थीं। माता ने उसे बाहर डाल दिया, तब जरा राक्षसी ने उसे जोड़ा इससे उसका नाम जरासंध पड़ा। इससे सहदेव, इससे सोमापि, सोमापि से श्रुतश्रवा परीक्षित हुआ। इसके सन्तान नहीं हुई, जन्हु का सुरथ, सुरथ का विदूरथ, विदूरथ का सार्वभौम, सार्वभौम का जयसेन, जयसेन का राधिका और राधिका का अयुतायु, अयुतायु का क्रोधन, क्रोधन का देवातिथि, देवातिथि का ऋष्य, ऋष्य का दिलीप और दिलीप का प्रतीप हुआ। प्रतीप के देवापि, शान्तुन और बाल्हीक तीन पुत्र थे। देवापि राज्य छोड़ वन चला गया। उस समय शान्तनु को राज्य

से नीप, नीप से उग्रायुध, उग्रायुध से क्षेम्य, क्षेम्य से सुवीर, सुवीर से रिपुंजय हुआ। रिपुंजय के नहुरथ हुआ तथा पुरमीढ़ के सन्तान नहीं हुई। अजमीढ़ के नलिनी से नील हुआ नील के शान्ति हुआ। शान्ति के सुशान्ति हुआ और सुशान्ति के पुरुज, पुरुज के अर्क, अर्क के भर्म्याश्व हुआ। इस भर्म्याश्व के मद्गलादिक पांच पुत्र हुए थे। भर्म्याश्व ने अपने पुत्रों से कहा- तुम मेरे देश की रक्षा करने योग्य हो इन पांचों ने देश के पांच भागों की रक्षा की इससे उसका नाम पांचाल है। मुद्गल से ब्रह्मकुल प्रवृत्ति हुई और उनका मौद्गल्य गोत्र हुआ। मुद्गल के जुड़वां हुआ इसके पुत्र का नाम दिवोदास और पुत्री का नाम अहिल्या हुआ इस कन्या के गौतम के संयोग से शतानन्द हुआ। शतानन्द के धनुर्वेदज्ञ सत्यधृति हुआ इसके शरद्वान् हुआ। शरद्वान का वीर्य उर्वशी को देख सरकण्डों में गिर पड़ा, उससे शुभ नाम जोड़ला हुआ। राजा शान्तनु शिकार को गये। वहां उन्हें देख दया करके उठा लाए इनमें बालक का नाम कृपाचार्य और कन्या का नाम कृपी था वह द्रोणाचार्य को ब्याही गई।

जरासन्ध युधिष्ठिर और दुर्योधन का विवरण

शुकदेवजी बोले- दिवोदास से मित्रेयु, मित्रेयु से च्यवन, च्यवन के सुदास, सुदास का सहदेव, सहदेव का

सोमक, सोमक का जन्तु हुआ। इस जन्तु के सौ पुत्र थे जिनमें छोटे का नाम पुषत था, पुषत का द्रुपद, द्रुपद के धृष्टद्युम्नादिक पुत्र हुए और पुत्री द्रौपदी थी। धृष्टन्युम्नादि के पुत्र का नाम धृष्टकेतु था। ये भर्म्याश्व वंश के राजा पांचाल देश में हुए। अजमीढ़ के दूसरे पुत्र का नाम ऋक्ष था, इस ऋक्ष का संवरण हुआ। इस संवरण से सूर्य की पुत्री तपती से कुरुक्षेत्र का स्वामी कुरु हुआ। कुरु के परीक्षित, सुधनु, जन्हु और निषधाश्व हुए, इनमें से सुधनु का सुहोत्र, सुहोत्र का च्यवन, च्यवन का कृति, कृति का उपरिचर, उपरिचर का वसु और वसु के वृहद्रथ, वृहद्रथ का कुशाग्र और कुशाग्र का ऋषभ, ऋषभ का सत्यहित, सत्यहित का पुष्पवान्। वृहद्रथ के एक और स्त्री थी उससे ऐसा बालक पैदा हुआ जिसकी दो फांके थीं। माता ने उसे बाह्हर डाल दिया, तब जरा राक्षसी ने उसे जोड़ा इससे उसका नाम जरासंध पड़ा। इससे सहदेव, इससे सोमापि, सोमापि से श्रुतश्रवा परीक्षित हुआ। इसके सन्तान नहीं हुई, जन्हु का सुरथ, सुरथ का विदूरथ, विदूरथ का सार्वभौम, सार्वभौम का जयसेन, जयसेन का राधिका और राधिका का अयुतायु, अयुतायु का क्रोधन, क्रोधन का देवातिथि, देवातिथि का ऋष्य, ऋष्य का दिलीप और दिलीप का प्रतीप हुआ। प्रतीप के देवापि, शान्तुन और बाल्हीक तीन पुत्र थे। देवापि राज्य छोड़ वन चला गया। उस समय शान्तनु को राज्य

मिला, पूर्व जन्म में शान्तनु का नाम महाभिष था। इसके शासन काल में बारह वर्ष वर्षा न हुई। तब ब्राह्मणों ने शान्तनु से कहा कि तुम बड़े भाई के होते राजा हो यह ठीक नहीं। यदि राज्य वृद्धि चाहते हो तो राज्य बड़े भाई को दे दो। यह सुन शान्तनु ने वन में जा भाई को समझाया। परन्तु शान्तनु के मंत्रियों ने ब्राह्मणों द्वारा ऐसा करा दिया कि वह वेद की निन्दा करने लगा। तब शान्तनु को ही राज्य करना पड़ा परन्तु दोष मिट जाने से वर्षा हुई। देवापि योगी हो कलाप ग्राम में बसने लगा। कलियुग में जब चन्द्रवंश नष्ट हो जाएगा तब देवापि वंश का प्रवर्तक होगा। बाल्हीक से सोमदत्त, सोमदत्त से भूरि, भूरिश्रवा और शल हुए तथा शान्तनु के गंगा से भीष्म का जन्म हुआ। वीरों में अग्रणी इन्होंने युद्ध में परशुराम को भी पराजित कर दिया था। शान्तनु से कन्या सत्यवती में चित्रांगद और विचित्रवीर्य हुए और चित्रांगद को एक गन्धर्व ने मार डाला। उसी सत्यवती से, जब वह कुमारी थी पाराशर के अंश से भगवान के अंश व्यास का जन्म हुआ, इन्हीं से मैंने यह भागवत पढ़ी है। विचित्रवीर्य ने काशीराज की बेटियों से विवाह किया। अम्बा, अम्बालिका दोनों बहनें भीष्मजी स्वयंवर से जीतकर लाये थे, इनमें अत्यन्त आसक्त हो जाने से विचित्रवीर्य को राजयक्ष्मा हो गया और मर गया। जब भाई के सन्तान न हुई तब सत्यवती की आज्ञा से विचित्रवीर्य की स्त्रियों से व्यासजी ने

धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर तीन पुत्र उत्पन्न किये। धृतराष्ट्र ने गांधारी से विवाह किया इससे १०० पुत्र हुए, इनमें बड़ा दुर्योधन था। एक कन्या हुई उसका नाम दुःशाला था। शाप के कारण पाण्डु ने स्त्री संगम त्याग दिया। इससे धर्म, पवन और इन्द्र से युधिष्ठिर भीम और अर्जुन, कुन्ती के पुत्र हुए थे। और दूसरी रानी माद्री के अश्विनी कुमार के संयोग से नकुल और सहदेव हुए। इन पांचों ने द्रौपदी से विवाह किया। द्रौपदी के पांच पुत्र हुए। युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्त, भीमसेन से श्रुतसेन, अर्जुन से श्रुतिकीर्ति, नकुल से शतानीक और सहदेव से श्रुतकर्मा हुआ। इन पांचों ने पृथक-पृथक स्त्रियों से भी विवाह किये थे। युधिष्ठिर की पौरवी रानी ने देवकी, भीमसेन की हिडम्बा से घटोत्कच दूसरी काली से सर्वगत हुआ। सहदेव के विजया से सुहोत्र, नकुल की करेणुमती से नरमित्र अर्जुन की उलूपी से इरावन् तथा मणिपुर की राज पुत्री से वभ्रूवाहन हुआ इसको नाना ने गोद लिया इससे मणिपुर का राजा कहलाया। अर्जुन की सुभद्रा से तेरा पिता अभिमन्यु हुआ, यह बड़ा पराक्रमी था। उसी से उत्तरा के गर्भ से आपका जन्म है कौरवों के नष्ट होने पर अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र चलाया उससे तुम्हारी मृत्यु हो जाती परन्तु तुम कृष्ण के प्रभाव से जीवित रहे। हे परीक्षित! तेरे जनमेजय, श्रुतसेन, भीमसेन, और उग्रसेन हुए हैं। तुम्हारा पुत्र जनमेजय, तुम्हें तक्षक द्वारा मरा

जान क्रोध कर सर्पों का हवन करेगा। यह जनमेजय कावषेय के पुत्र तुर को पुरोहित बना पृथ्वी को जीत अश्वमेघ यज्ञ करेगा। जनमेजय का शतानीक होगा, यह याज्ञवल्क्य से वेदत्रयी पढ़ेगा और शौनक से अस्त्रज्ञान। शतानीक का सहस्त्रानीक, सहस्त्रानीक का अश्मेधज, अश्मेधज का असीम कृष्ण और असीम कृष्ण का नेमिचक्र होगा। जब हस्तिनापुर डूब जाएगा तब नेमिचक्र कौशाम्बी में वास करेगा। नेमिचक्र का चित्ररथ, चित्ररथ का कविरथ, कविरथ का वृष्टिमान्, वृष्टिमान् का सुषेण, सुषेण का सनीथ, सनीथ का पूर्व, पूर्व का तिमि, तिमि का वृहद्रथ, वृहद्रथ का सुदास, सुदास का शतानीक, शतानीक का दुर्दमन, दुर्दमन का बहीनर, बहीनर का दंडपाणि, दंडपाणि का निमि, निमि का क्षेमक होगा। यह ब्रह्मक्षेत्र का वंश है। कलियुग में क्षेमक राजा के होने पर वंश नष्ट हो जाएगा।

152 कृष्ण गोकुल गमन

S. S. BRIJBASI & SONS
59, MIRZA STREET BOMBAY-3.

S. S. BRIJBASI & SONS
32/1, FATEHPURI DELHI-6.

★ दसवां स्कन्ध प्रारम्भ ★

कंस द्वारा देवकी के छः पुत्रों का वध

परीक्षित ने कहा- हे महाराज! नवम् स्कन्ध में आपने चन्द्र वंश और सूर्य वंश का विस्तार पूर्वक वर्णन किया। महाराज यदु के वंश में अवतार लेकर श्रीकृष्णचन्द्र ने जो लीलायें कीं सो वर्णन कीजिए। ज्ञानी, मुमुक्षु, विषयी, तीनों प्रकार के मनुष्यों को कृष्ण भगवान के चरित्र प्यारे हैं। ज्ञानियों को परमेश्वर के चरित्र सुनने से संसार से छूट जाने की आशा है। मुमुक्षजनों के लिए यह संसार रूपी रोगों के दूर करने की औषधि है, विषयी मनुष्यों के मन को आनन्द देने वाला यही विषय है।

कौरवों-पांडवों के युद्ध में अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र के तेज से दग्ध हो मेरी माता उत्तरा जब अति कष्ट को प्राप्त हो श्रीकृष्ण की शरण गईं तब श्रीकृष्णजी ने चक्र लेकर मेरी माता की कुक्षि में प्रवेश कर के मेरी रक्षा की। सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर बाहर प्रकाश करने वाले, संसार से मुक्ति दिलाने वाले, दुष्टात्माओं को मृत्यु देने वाले तथा भक्तों पर कृपा करके मनुष्य रूप धारण करने वाले, श्रीकृष्णचन्द्र की लीला हमारे आगे वर्णन करो। परीक्षित की अविचल भक्ति की सराहना करके शुकदेवजी बोले- हे राजेन्द्र! धन्य है तुम्हारी बुद्धि को जिसकी श्रीकृष्ण कथा में अति उत्कट प्रीति हुई है।

भगवान की कथा कहने, सुनने वाले और पूछने वाले तीनों पुरुषों को पवित्र करती है। हे राजन्! दुष्टों के भार से पीड़ित हो पृथ्वी गौ रूप धारण कर ब्रह्माजी के निकट गई और अपना दुःख निवेदन किया। पृथ्वी का दुःख सुनकर ब्रह्माजी सम्पूर्ण देवताओं व शिवजी को साथ ले क्षीरसागर गए जहां नारायण शेष शय्या पर सो रहे थे। ब्रह्माजी ने समाधि लगाई। उस समय आकाशवाणी हुई, उसको सुनकर ब्रह्मा बोले हे देवताओं! मुझको जो भगवान की आज्ञा हुई है सो सुनो और शीघ्र ही वैसा करो। नारायण ने पृथ्वी के दुःख को दूर करने का विचार कर लिया है। जब तक भगवान पृथ्वी का भार उतारने को मनुष्य रूप धारण न करें तब तक तुम यदुवंश में जाकर जन्म लो। भगवान वसुदेव के घर में आकर प्रकट होंगे। उन भगवान के साथ विहार करने के अर्थ देवताओं की स्त्रियां भी ब्रज में जाकर जन्म धारण करेंगी। और हजार मुख वाले शेषजी बलभद्र नाम से पहले ही वसुदेवजी के घर जन्म लेंगे। भगवान की माया देवकी के गर्भ को खींच कर रोहिणी के उदर में रखने के लिए प्रकट होकर, पीछे वह भी अपने अंश सहित यशोदा के घर प्रकट होवेगी। राजन्! ब्रह्माजी, देवताओं और पृथ्वी को समझा बुझा अपने सत्यलोक चले गये। यादवों के राजा शूरसेन ने मथुरापुरी में बस कर मथुरा और शूरसेन देशों का राज्य किया। मथुरापुरी में शूरसेन के पुत्र वसुदेवजी विवाह

करके देवकी को साथ ले अपने घर जाने को रथ पर बैठे। उग्रसेन का पुत्र कंस अपनी बहिन देवकी का रथ हांकने के लिए बैठ गया। जिस समय मथुरा से बाहर कुछ दूर बारात निकली, उस समय आकाशवाणी हुई- अरे मूर्ख कंस! जिसको तू पहुंचाने जाता है, इसी के आठवें गर्भ से उत्पन्न हुआ बालक तुझको मारेगा। यह आकाशवाणी सुनते ही कंस बहिन के मारने को हाथ में खड़्ग ले एक हाथ में उसके सिर के केश पकड़ कर बोला, इस वृक्ष को जड़ से ही उखाड़ डालूं, उसमें फल फिर क्यों कर लगेगा? तब कंस को समझा-बुझा तथा उसकी प्रशंसा करके वसुदेवजी कोमलता से बोले- हे महावीर कंस! आप योद्धा हैं। इस कारण आप अपनी बहिन को मत मारो। यह तुम्हारी बहिन है, इस कारण आपका इसको मारना उचित नहीं। हे परीक्षित! इस प्रकार वसुदेवजी ने कोमल वचनों से बहुत कुछ समझाया, परन्तु दुष्ट कंस ने एक बात न मानी। जब वसुदेवजी ने देखा कि देवकी की मृत्यु समीप है, तब उन्होंने अपने मन में विचार किया कि बुद्धिमान पुरुष को जहां तक हो सके वहां तक मृत्यु को हटाना चाहिए। यह विचार कर वसुदेव कंस से इस प्रकार बोले- आकाशवाणी से उत्पन्न भय को आप अपने मन से दूर कीजिए। जिन पुत्रों से आप भय मानते हैं, उन पुत्रों को मैं आपको लाकर समर्पण करूंगा। वसुदेवजी के वचन को मान कर कंस ने देवकी को मारने से छोड़

दिया। वसुदेव जी प्रसन्न हो देवकी को साथ लिए घर पहुंचे। तदन्तर देवकी ने आठ पुत्र तथा एक कन्या नौ बालक एक-एक वर्ष के अन्तर से उत्पन्न किये। पहला कीर्तिमान नाम पुत्र हुआ। उसको वसुदेव जी ने अति दुःखित हो कंस को समर्पण कर दिया। साधु लोग प्रतिज्ञा भंग नहीं करते हैं और विद्वानों को किसी बात की अभिलाषा नहीं रहती। देवकी ने मन में विचारा जो इसका काल समीप है तो कौन बचा सकता है? हे परीक्षित! वसुदेवजी को सत्य में स्थित देखकर कंस हंसकर बोला- यह बालक आप अपने घर ले जाओ इससे हमको कुछ भय नहीं है। तुम दोनों से जो आठवां पुत्र होगा उससे निश्चय ही मेरी मृत्यु कही है। वसुदेवजी पुत्र को अपने घर ले आए। जब यह समाचार नारद ने सुना तो उसी समय वे आकर कंस से बोले- महाराज! ब्रज में जो गोप हैं और उनकी स्त्रियां हैं, जितने यादव और जितनी स्त्रियां हैं, वे सब देवता ही हैं। इनके जाति के सम्बन्धी, भाई, बन्धु व मित्र जो तुम्हारे समीप रहते हैं ये सभी देवता हैं। देवताओं ने पृथ्वी के भार रूप दैत्यों के वध करने का उद्योग किया है। नारदजी के चले जाने पर कंस ने यादवों को देवता मान और देवकी के गर्भ से उत्पन्न बालकों को विष्णु के अंश जानकर देवकी और वसुदेव को बन्दीगृह में बन्द कर पावों में बेड़ी डाल दी। इनके पुत्रों को विष्णु का अंश मान कर मारने लगा। अपने पिता राजा उग्रसेन को पकड़ कर

कैद में रखकर कंस स्वयं राज्य भोगने लगा।

देवकी के गर्भ में भगवान का आविर्भाव

शुकदेवजी कहने लगे- प्रलम्बासुर, बकासुर, चाणूर, वाणासुर, आदि को साथ लेकर और मगध के राजा जरासन्ध, अपने ससुर के बल से पापी कंस यादवों को नष्ट करने लगा। तब यादव पीड़ित हो कर अन्य देशों में जा बसे। बहुत से यादव अक्रूर आदि, कंस की ही सेवा करने के कारण से रह गये। जब कंस ने देवकी के छः बालक मार डाले तब भगवान देवकी के सातवें गर्भ में आकर स्थित हुए। यह गर्भ देवकी के हर्ष व शोक को बढ़ाने वाला हुआ। भगवान ने अपनी योग माया को आज्ञा दी कि तुम ब्रज जाओ। वहां गोकुल में वसुदेवजी की स्त्री रोहिणी है, जो उसके उदर में है सो देवकी के उदर में रख दो। मैं देवकी के गर्भ से जन्म लूंगा और तुम नन्द की स्त्री यशोदा के उदर से जन्म लेना। तब योग माया ने देवकी के उदर से बालक ले जाकर रोहिणी के पेट में पहुंचाया। योगमाया का भेद किसी को नहीं जान पड़ा।

अपने भक्तों को निर्भय करने वाले भगवान वसुदेव के मन में आकर बसे तब वसुदेवजी में सूर्य के समान तेज हो गया। उस समय उनके सन्मुख कोई नहीं जा सकता था। भगवान जो पहिले ही से देवकी के मन

में विराजमान थे उनको वसुदेवजी ने अपने मन में स्थित किया। तब देवकी ने भगवान को भली भांति अपने मन में और अपनी देह में धारण कर लिया।

साक्षात् भगवान को अपने गर्भ में मानकर भी देवकी शोभा को प्राप्त नहीं होती थी। एक दिवस देवकी वसुदेवजी से कुछ बात कर रही थी कि इतने में कंस आ गया। देवकी के गर्भ का प्रकाश देख कर बोला कि इसकी गर्भ गुफा में मेरे प्राणों को हरने वाला आ बैठा है। देवकी में इतना तेज पहले नहीं था। कंस अपने मन में विचार करने लगा कि अब मुझको क्या करना उचित है? अब इस समय जो मैं देवकी को मारूं तो स्त्री जाति, दूसरे हमारी बहिन, तीसरे गर्भिणी, इस कारण इसके मारने से यश, लक्ष्मी और आयु सब क्षीण हो जावेंगे। वह कंस इस प्रकार घोरतम पाप से आप ही हट गया और गर्भ से बालक के उत्पन्न होने की बाट देखने लगा। बैठते, उठते, सोते, जागते, खाते-पीते, पृथ्वी पर विचरते भगवान ही का ध्यान करता हुआ सब जगत को कृष्ण रूप देखता था। देवकी के समीप ब्रह्मा, शिव, नारदादि, मुनीश्वरों व देवताओं के साथ आकर मधुर वचनों से गर्भ में स्थित भगवान की स्तुति करने लगे- हे कृष्ण! यह ब्रह्माण्ड एक आदि वृक्ष है, जो आपकी माया से उत्पन्न होकर आप ही के आश्रय में रहता है। उस वृक्ष में सुख दुःख दो फल हैं। सत, रज, तम उसकी जड़ हैं। धर्म, अर्थ,

काम, मोक्ष चार रस हैं। नेत्र, मुख, नासिका, कर्ण, उपस्थ पांच उसमें अंकुर हैं, जिनसे ज्ञान होता है। राग, द्वेष, भूख, प्यास, लोभ, मोह, छः स्वभाव हैं। रक्त, मेद, स्नायु, अस्थि, मज्जा, रेत सात धातु हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार शाखा हैं। नेत्र, मुख, नाक, कान, उपस्थ, गुदा के उसमें नव छिद्र हैं। प्राण, अपना, ब्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृतल, देवदत्त, धनञ्जय दश उसमें पत्ते हैं। जीव, ईश्वर दो पक्षी उस वृक्ष पर रहते हैं। ऐसे जगत की उत्पत्ति, पालन और संहार करने वाले आप ही हो। तुम्हारी माया से मोहित होकर अज्ञानी लोग संसार को अपने से पृथक मानते हैं और आपको ब्रह्मा, शिव आदि भेद से देखते हैं परन्तु ज्ञानी आपका एक ही रूप मानते हैं। ब्रह्मा होकर इस संसार को रचते हो, विष्णु होकर पालते हो, शिव होकर संहार करते हो। पापियों को दण्ड देने के अर्थ अनेक स्वरूप धारण करके दण्ड देते हो। आपके चरण कमल से भूमि का सब भार एक ही बार में उतर जाएगा। आप अजन्मा हो, फिर आपका जन्म होना कैसे सम्भव है? हे यदुत्तम! मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, बाराह, नृसिंह, रामचन्द्र, परशुराम, वामन अवतार धारण करके आपने जैसे त्रिलोकी की रक्षा की, ऐसे ही अब हमारी रक्षा करो और भूमि का भार उतारो। देवता, देवकी से कहने लगे- हे माता! साक्षात् भगवान हम लोगों के कल्याण के निमित्त

तुम्हारे उदर में आकर उपस्थित हुए हैं अब कंस का इन्हीं हाथों मरण होगा। तुम्हारा पुत्र यदुवंशियों की रक्षा करने वाला होगा। तत्पश्चात् सब देवता, ब्रह्माजी और शिवजी को आगे करके स्वर्ग को सिधारे।

श्रीकृष्ण का जन्म

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन् जब श्रीकृष्ण जन्म का समय आया, तब चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्र पर आया, और सम्पूर्ण तारागण शान्त और शुभ ग्रह युक्त हो गये। कंस आदि राक्षसों के सिवाय साधुजनों के मन प्रसन्न हो गये। भगवान के जन्म को सूचित करने वाले नगाड़े बजने लगे। देवता ब्रज के ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे। आनन्द से समुद्र लहराने लगा। मेघों के बीच दामिनी दमकने लगी। भादों मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी बुधवार को रोहिणी नक्षत्र में आधी रात के समय देवकी की कोख से विष्णु, सोलहों कला से इस प्रकार प्रकट हुए जैसे पूर्व दिशा में पूर्ण चन्द्रमा उदय होता है।

अपने पुत्र रूप से भगवान को अवतार लिया जानकर, वसुदेवजी के नेत्र प्रफुल्लित हो गये। हे परीक्षित! उस बालक की कान्ति से अंधेरा नहीं रहा। वसुदेवजी स्तुति करने लगे- हे भगवान्! मैं आपको जानता हूं। आप साक्षात् भगवान् हो, केवल अनुभव और आनन्द स्वरूप हो। आप सर्वरूप, सर्वात्मा हो,

व्यापक हो, व्यापक और परमार्थ वस्तु हो, बाहर भीतर भाव आपके नहीं हैं, इस कारण परिच्छेद रहित हो। अन्तर्यामी स्वरूप से जगत में प्रवेश होना सम्भव नहीं फिर गर्भ से प्रवेश होना कैसे घटित हो सकता है। हे विभो! विश्व की रक्षा करने की अभिलाषा से आप हमारे घर में प्रगट हुए हो। दुष्ट कंस ने हमारे घर में आपका जन्म सुनकर आपके बड़े भाई मार डाले हैं। उसके सेवक जब आपका अवतार होना सुनेंगे तो वह सुनते ही हाथ में शस्त्र लेकर दौड़ता हुआ यहां आ पहुंचेगा। वसुदेवजी के बाद देवकी स्तुति करने लगी- हे भगवान्! मनुष्य मृत्यु से डरकर सब लोकों में भागता फिरता है, परन्तु इसको कोई स्थान नहीं प्राप्त होता। जब भाग्योदय से आपके चरणों की शरण में आता है तब सुख पूर्वक सोता है और उसकी मृत्यु उससे दूर भाग जाती है तब वह मोक्ष को प्राप्त होता है। आप भक्तों के दुःख दूर करने वाले हो इस कारण इस कंस से मेरी रक्षा करो। यह जो अलौकिक और दिव्य, शंख, चक्र, गदा, पद्म, तथा श्रीवत्स चिन्ह से सुशोभित चार भुजा वाला स्वरूप है, इसे आप छिपा लो।

भगवान बोले- तुमको अपने पूर्व जन्म का स्मरण नहीं है। पूर्व जन्म में तुम प्रश्नी थी और वसुदेवजी सुतपानाम प्रजापति थे। जब ब्रह्माजी ने तुम दोनों को प्रजा रचने की आज्ञा दी तो इन्द्रियों को रोक कर आपने परम तप किया। मुझसे वरदान पाने की इच्छा से आप

दोनों ने मेरी आराधना की। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुआ और तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करने की इच्छा से मैं प्रकट होकर तुमसे कहने लगा- वर मांगो। तब तुमने वरदान मांगा कि तुम्हारे समान स्वरूपवान् पुत्र हमारे हो। आपने विषय भोग नहीं भोगे थे और तुम्हारे सन्तान भी नहीं थी इस कारण तुमने मुक्ति नहीं मांगी। तुम वर पाकर अपने विषयों को भोगने लगे। प्रश्न गर्भ नाम से प्रसिद्ध होकर मैं भी तुम्हारा पुत्र हुआ। फिर अदिति रूप तुम्हारे विषे कश्यपजी के वीर्य से उपेन्द्र नाम से तुम्हारा पुत्र हुआ। बावन अंगुल का शरीर होने के कारण हमारा नाम बावन अवतार प्रसिद्ध था। अब तीसरी बार मैंने तुम्हारे घर में अवतार धारण किया है। हे मात! पूर्व जन्म का स्मरण कराने के अर्थ हमने तुमको यह स्वरूप दिखाया है। तुम चाहे मुझको पुत्र जानकर स्नेह करो, चाहे परमेश्वर मान कर ध्यान करो। जिस प्रकार स्नेह करोगे, उसी प्रकार की भावना से मोक्ष को प्राप्त होगे।

भगवान देवकी को समझा कर मौन हो गये और माता पिता के देखते-२ शीघ्र साधारण बालक हो गये। तदन्तर वसुदेवजी ने उस बालक को प्रसूतिका घर से उठा कर जिस समय बाहर जाने की इच्छा की उसी समय यशोदा ने योगमाया को उत्पन्न किया। उस योगमाया ने ऐसी माया फैलाई कि उसके प्रभाव से सबकी सुधि बुधि जाती रही। द्वारपाल तथा पुरवासी

सब सो गये। हाथ पांवों की हथकड़ी, बेड़ी खुल गई। जब कृष्ण को लेकर वसुदेवजी चले, द्वार अपने आप खुल गये। यमुनाजी चढ़ रही थीं। चारों ओर जल ही जल दीख पड़ता था। वसुदेवजी अपने मन में बहुत घबराने लगे। फिर जैसे रामचन्द्र जी को समुद्र ने मार्ग दिखाया, उसी प्रकार यमुना जी ने वसुदेव को मार्ग दिया। वसुदेव ब्रज में नन्द के घर पहुंचे वहां अपने पुत्र को यशोदाजी की शय्या पर लिटाकर उसकी पुत्री को लेकर लौटे। वसुदेवजी ने यह कन्या देवकी की शय्या पर सुलादी और हथकड़ी, बेड़ी पहले की तरह पहन कर बैठ गये।

यशोदा ने माया के हट जाने पर जाना कि मेरे बालक उत्पन्न हुआ है। योगमाया ने पहले से ही निद्रा के वशीभूत कर दिया था, जिससे यह सुधि नहीं रही कि पुत्र हुआ अथवा कन्या उत्पन्न हुई।

असुर गणों की मन्त्रणा

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! तब द्वार पहले की तरह बन्द हो गये। बालक के रोने की ध्वनि सुनकर रखवाले चौंके और कंस के समीप दौड़े गये और देवकी के गर्भ से बालक उत्पन्न होने का समाचार सुनाया। बालक होने का समाचार सुनते ही कंस घबड़ाकर उठा और हाथ में खड्ग लिए गिरता पड़ता प्रसूतिका गृह में देवकी के समीप पहुंचा। उसने कन्या

को देवकी से छीनना चाहा तब देवकी करुणा पूर्ण वचन बोली- हे भैया! यह कन्या तुम्हारी भान्जी है और यह मेरी पेट की पोंछनी है, इसे मत मारो। मेरे छः बालक तुमने मार डाले हैं उनका ही दुःख मुझे बहुत सता रहा है। याचना करने पर भी दुष्ट कंस ने झपट कर देवकी के हाथ से कन्या को छीन लिया। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए नवजात कन्या के दोनों चरण पकड़ कर ज्यों ही कंस ने चाहा कि पत्थर की शिला पर दे पटके, त्योंहि वह कन्या उसके हाथ से छूटकर आकाश में अपना स्वरूप दिखाकर बोली- रे अधम! मुझको पटकने से तुझे क्या फल मिला? तेरा बैरी तो कहीं और जन्म ले चुका है। वह अवश्य तुझको मारेगा। यह कह कर योगमाया अन्तर्ध्यान हो गई। तब कंस विस्मित हुआ और देवकी व वसुदेव के समीप आ हथकड़ी बेड़ी छुड़ाकर कहने लगा, हे देवकी-वसुदेव जी! मैंने बड़ा पाप किया और तुम्हारे अनेक पुत्रों को मार डाला। देवता भी झूठे हैं। आकाशवाणी ने कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ से पुत्र होगा सो कन्या हुई। ऐसी असत्य आकाशवाणी का विश्वास करके मैंने अपनी बहिन के पुत्र मारे। हे महाभागियो! कर्म का लिखा कोई मेंट नहीं सकता। मैंने जो तुम्हारे पुत्रों को मारा है, उनका सोच न करो। यह जगत दयाधीन होकर अपने प्रारब्ध कर्म को भोग रहा है। साधुजन दीनों पर दया करते हैं, इससे तुम मेरे अपराध को क्षमा

करो। यह कहकर नेत्रों में आंसू भर कर कंस देवकी और वसुदेव के चरणों में गिर पड़ा। तब देवकी बोली- हे भैया! मैंने तुम्हारा अपराध क्षमा किया। तुम अपने मन में किसी बात का भय मत करो। तब वसुदेवजी हंसते हुए बोले- हे कंस! देह धारियों के अज्ञान से उत्पन्न अहंकार वाली बुद्धि होती है जिससे 'मैं हूं' 'मेरा है' 'दूसरा है' 'दूसरे का है' ऐसा भेद उत्पन्न हो गया है। हे राजन्! वसुदेवजी के कहने के उपरान्त कंस उन दोनों से आज्ञा लेकर अपने घर आया। राजसभा में आकर, कंस से योगमाया ने जो कहा था कि तेरा बैरी कहीं और जन्म ले चुका है, यह सब वृत्तान्त कह सुनाया। कंस के वचनों को सुनकर उसके मंत्री बोले- हे यादवेन्द्र! यदि ऐसा है तो भी आप कुछ चिन्ता न कीजिए। केवल आज्ञा दीजिए। हम सब स्थानों में जाकर दस दिन तक के बालकों को आज ही मार डालेंगे। उनमें जो आपका बैरी होगा वह भी नष्ट हो जायगा। देवताओं की जड़ विष्णु है, विष्णु के जड़ सनातन धर्म है और सनातन धर्म की जड़ गौ, ब्राह्मण, तप, यज्ञ और दक्षिणा है। इस कारण, हे राजन्! वेदपाठ, ब्रह्मवादी, तपस्वी और यज्ञ के उपयोगी घी, दूध आदि पदार्थों को देने वाली गौओं को हम अवश्य मारेंगे। ब्राह्मण, गौ, वेद, तप, सत्य, दम, शम, श्रद्धा, दया, क्षमा और यज्ञ विष्णु के अंग हैं। विष्णु ही देवताओं का अधिपति है और असुरों का शत्रु है। उस विष्णु के मारने का यही

उपाय है कि ऋषियों का वध किया जाए। हे परीक्षित! काल के फंदे में फंसे हुए उस दुष्ट बुद्धि कंस ने इस प्रकार की ब्रह्महत्या से अपना कल्याण चाहा। वह मायावी दानवों को साधुसन्तों के मारने की आज्ञा देकर महलों को चला गया।

नन्द और वसुदेव का समाचार

श्रीशुकदेवजी कहते हैं- हे राजन्! वृद्धावस्था में पुत्र होने के कारण नन्दरायजी ने अति आनन्द माना। प्रातः होते ही ज्योतिषियों को बुलाया, स्नान कर पवित्र हो आसन पर जा बैठे। ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन पढ़ा कर, पुत्र का जात कर्म संस्कार किया। फिर गायें ब्राह्मणों को संकल्प कीं, ब्राह्मणों को दान दिये। ब्राह्मण स्वस्ति करने लगे, मागधगण वंश विरुदावली बखान करने लगे। भाट बन्दी यश बखानने लगे, गन्धर्व गाने लगे और नर्तक नाचने लगे। जब गोपियों ने सुना कि यशोदा के पुत्र उत्पन्न हुआ है, तब बालायें थालों में भेंट लेकर नन्दरायजी को बधाई देने चलीं। सब गोपियां नन्दजी के आंगन में आकर बालक को आशीर्वाद देने लगीं, हे नन्दरानी! तुम्हारा पुत्र चिरंजीव रहे, परमात्मा इस बालक की सदैव रक्षा करे। इस प्रकार वचन कह हल्दी को पीसकर उसमें जल, तेल मिलाकर एक दूसरे पर आपस में छिड़कती हुईं तथा उसी जल से लोगों को भिगोती हुईं, धूम मचा रही थीं। गोपगण भी प्रसन्न हो

दही, दूध, घी, जल, माखन, हल्दी मिलाकर एक दूसरे पर छिड़कने लगे। उदार चित्त नन्दजी ने बन्दीजन आदि याचकों को वस्त्र, आभूषण, गौ, धन दान दिया। जिन-जिन याचकों ने जिस वस्तु की इच्छा की उनको वही वस्तु देकर इच्छा पूर्ण की। रोहिणी जी अनेक आभूषण धारण किये इस महोत्सव में यशोदाजी के आंगन में विचरती हुई घर का काम काज कर रही थीं।

कृष्ण के आगमन से लक्ष्मीजी ब्रज में विहार करने लगीं। एक समय नन्दजी गोपों को गोकुल की रक्षा के निमित्त नियुक्त करके कंस को वार्षिक कर देने मथुरा गये। तब नन्दजी के आने का समाचार सुनकर वसुदेवजी उनसे मिलने गये। वसुदेवजी को देखकर नन्दरायजी उठ खड़े हुए और अति प्रेम में विह्वल हो दोनों भुजा पसार कर उनसे भेंटे। हे राजन्! आदर सत्कार के उपरान्त दोनों सुखपूर्वक बैठ गये। फिर प्रेम भाव से वसुदेवजी से इस प्रकार पूछने लगे, हे नन्दजी! तुम्हारी सन्तान नहीं थी और वृद्धावस्था के कारण सन्तान की आशा आपने त्याग दी थी सो परमात्मा की दया से तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ। यह बड़े आनन्द का दिन है। मित्र का दर्शन होना इस जगत् में परम दुर्लभ है। हे भाई! हमारा पुत्र बलराम भी अपनी माता सहित आपके ब्रज में रहता है, सो तो आनन्द से है। यह सुन नन्दजी बोले- बड़े खेद की बात है कि तुम्हारे बहुत से पुत्र कंस ने मार डाले, पीछे एक कन्या हुई, सो भी स्वर्ग

को चली गई। मित्र! मनुष्य प्रारब्ध में निष्ठा करने वाला है, इस कारण प्रारब्ध ही मुख्य हैं। क्योंकि जब प्रारब्ध उदय होता है, तब सब आ मिलते हैं और प्रारब्ध हीन होने से बिछुड़ जाते हैं। प्रारब्ध ही सुख दुःख का कारण है। प्रारब्ध को जो जानता है, वह मोह को नहीं प्राप्त होता। वसुदेवजी बोले- हे मित्र! आजकल यहां बहुत उत्पात हो रहे हैं। गोकुल में भी उत्पात होने की संभावना है इसलिये आप यहां से शीघ्र चले जाइये। तदन्तर नन्दरायजी रोहिणी, बलराम की कुशल कहकर गोकुल को चले गए।

पूतना वध

शुकदेवजी ने कहा- हे परीक्षित! नन्दजी मार्ग में विचार करते जाते थे कि वसुदेवजी का वचन मिथ्या नहीं होता। वे नारायण का स्मरण करने लगे। कंस की भेजी हुई पूतना राक्षसी एक दिन गोकुल पहुंची और सुन्दर स्त्री का रूप धारण कर नन्दजी के मन्दिर में घुस गई। पूतना जब नन्द मन्दिर में पहुंच गई तो वहां कृष्ण शयन कर रहे थे, उनको पूतना ने देखा। भगवान ने पूतना को अपने समीप आया जानकर नेत्र बन्द कर लिये, तब उस दुष्ट ने भगवान को गोद में उठा लिया। बड़े प्रेम से उसने कृष्ण को अपनी गोद में उठा मुख चूमकर यशोदा से प्रेम भरी बातें करके, विष लगे स्तन को भगवान के मुख में दिया। जब प्राण सहित

दुग्ध-पान करने पर पूतना को पीड़ा हुई तब वह चिल्लाने लगी और बारम्बार हाथ-पांव पटकने लगी। वह पुर के बाहर यमुना किनारे को भागी, जहां उसके प्राण पखेरू उड़ गये। उसके गिरने के महागम्भीर शब्द से पृथ्वी कांपने लगी। हे परीक्षित! गिरने पर भी उसके शरीर ने दो कोस के वृक्षों को चूर्ण कर दिया। कृष्ण को उसकी छाती पर क्रीड़ा करते देखकर गोपियों ने झट से उठाकर हृदय से चिपका लिया। यशोदा ने कृष्ण को दूध पिलाकर घर में छिपाकर शय्या पर सुला दिया। तब नन्द आदि भी गोकुल आ पहुंचे। वहां पूतना के शरीर को देखकर आश्चर्य करने लगे- अहो! श्री वसुदेव तो निश्चय कोई योगेश्वर जान पड़ते हैं, क्योंकि उन्होंने जो कहा था, वही उत्पात देखने में आया। इसके अनन्तर ब्रजवासियों ने पूतना का शरीर कुल्हाड़ों से काट कर चिता में जला डाला। श्रीकृष्ण के स्तन पान कर लेने के कारण उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो गये थे। राक्षसी पूतना यद्यपि भगवान को स्तन पान कराकर मारना चाहती थी, तो भी भगवान ने उसको उत्तम गति दी।

शकट भंजन और तृणावर्त वध

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! बहुत दिन उपरान्त श्रीकृष्ण जी ने करवट लिया। उस समय जब ब्रज युवतियां बधाई ले-लेकर नन्द महल में आईं, यशोदा ने बाजे बजवाये, गीत गवाये, ब्राह्मणों को

बुलाया, स्वस्तिवाचन कराया और बालक का अभिषेक किया। नन्द रानी ने ब्राह्मणों को अभीष्ट पदार्थ व गौओं का दान किया। फिर ब्राह्मणों से आशीर्वाद पा स्नान के श्रम से श्रीकृष्ण को निद्रा आती देखकर पालने में शकट के नीचे शयन करा दिया। इतने में कृष्ण भूखे होकर जाग पड़े और स्तनपान करने को अपने पाँव के अंगूठे को मुख में देकर रोने लगे। किसी ने उनका रोना नहीं सुना। रोते-रोते कृष्ण ने अपने दोनों पैर उठा लिये और एक ऐसी लात मारी कि छकड़ा गिर पड़ा और कंस का भेजा हुआ शकटासुर जो छिपकर बैठा था वह परमधाम चला गया। शकट की धुरी निकल गई, जुवा टूट गया, गाड़ी के टूटने और बर्तनों के फूटने का ऐसा शब्द हुआ जिसको सुनते ही यशोदा को साथ ले सब ब्रज युवतियां दौड़ी आईं। नन्द आदि गोप इस अद्भुत चरित्र को देखकर परस्पर कहने लगे कि आप ही यह शकट कैसे टूटकर गिर गया? वहां खेलने वाले बालकों ने उन विस्मय युक्त गोप-गोपियों से कहा कि हम सबने अपनी आंखों से देखा कि कृष्ण ने रोते-रोते अपने पांव की ठोकर से शकट को गिरा दिया है। यशोदा ने रोते हुए बालक को गोद में उठा लिया।

एक दिन यशोदाजी बैठी हुई श्रीकृष्ण को गोद में लिये लाड़-प्यार कर रही थीं। श्रीकृष्ण जी ने अपने शरीर का इतना बोझ बढ़ाया जिसे नन्दरानी न सह सकीं। भार से पीड़ित होकर यशोदा ने श्रीकृष्ण को

भूमि पर उतार दिया। फिर घर के काम धंधों में लग गई। उस समय कंस का भेजा हुआ तृणावर्त नामक असुर वायु के बबूले का स्वरूप बनाकर आया और कन्हैया को उठा ले गया। यशोदाजी कृष्ण को न पाकर सोच करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ीं। यशोदाजी को विलाप करते सुनकर सब गोपियां दुःखित होकर रोने लगीं, सबके नेत्रों से आंसुओं की धारा बहने लगी। पवन चलने से रुक गई, वर्षा का वेग शान्त हो गया, तो भी श्रीकृष्ण नहीं मिले। तृणावर्त दैत्य श्रीकृष्ण के भार को न सह सका। तृणावर्त ने ऐसा समझा कि मैं किसी भारी पत्थर को उठा लाया हूं। इस कारण उस बालक को छुड़ाने लगा, तो भी श्रीकृष्ण ने उसका कण्ठ ऐसा पकड़ लिया था कि किसी प्रकार वह अपने को छुड़ा न सका। गला घुटने से उसकी आंखें निकल आईं, बोल नहीं सका और मरकर श्रीकृष्ण सहित गोकुल में गिर पड़ा। वह दैत्य शिला पर गिरा, गिरते ही इसके सब अंग टूट गये। उस तृणावर्त की छाती पर श्रीकृष्ण को निःशंक क्रीड़ा करते देख गोपियों ने झट दौड़ कर उठा यशोदा की गोद में दे दिया। नन्दजी गोकुल में बहुत से उत्पात देखकर वसुदेवजी के वचन स्मरण करके आश्चर्य मानने लगे। उस असुर को घसीट कर यमुना में डाल दिया गया और बहुत सा दान पुण्य किया। एक दिन यशोदाजी मन मोहन को गोद में लेकर बड़े चाव से दूध पिलाने लगीं। दूध पिलाकर

यशोदाजी श्रीकृष्ण को प्यार करने और हंसाने लगीं और बारम्बार मुख चुम्बन करने लगीं। मनमोहन ने मन्द मुस्कान करके जँभाई ली तो हे राजन! जँभाई लेने से यशोदाजी ने कृष्ण के मुख में वह सम्पूर्ण जगत् देखा। इस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड को श्रीकृष्ण के मुख में देखकर यशोदाजी कांपने लगीं और मारे डर के अपने दोनों नेत्र बन्द करके आश्चर्य में डूब गईं।

श्रीकृष्ण की बाललीला

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! श्रीगर्गाचार्य गोकुल में नन्दजी के घर गये। गर्ग मुनि को देखते ही नन्द उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर प्रणाम किया। अनन्तर आदर-सत्कार पूर्वक चरण धोए और आसन पर बिठाकर पूजन किया। नन्दजी ने कहा- हे ब्रह्मन्! आपका सत्कार हम क्या कर सकते हैं? आप ब्रह्मवादियों में श्रेष्ठ हो और सब संस्कार के करने योग्य हो। आप हमारे दोनों बालकों का नामकरण संस्कार कीजिये। मुनि बोले- मैं यदुवंशियों का आचार्य प्रसिद्ध हूं। इस कारण हमारे द्वारा संस्कार होने से कंस इसको देवकी का पुत्र मानेगा क्योंकि कंस भली भांति जानता है कि तुम्हारी और वसुदेव की मित्रता है तथा देवकी के आठवें गर्भ से कन्या का जन्म नहीं होना चाहिये। जब से उस कन्या के मुख से कंस ने सुना है कि तेरा मारने वाला प्रगट हो चुका है, तब ही से कंस विचारता रहता

है कि यदुवंशियों में कोई बालक जीता न बचने पावे। जो शंका से यहां आकर इन पुत्रों को मार डाले तो बड़ा अन्याय होगा। नन्दराय कहने लगे- हे गर्ग जी! एकान्त में जिससे कोई न जाने, ऐसे स्थान में नाम संस्कार कीजिये। जब नन्दजी ने यह प्रार्थना की तब गर्ग मुनि ने एकान्त में दोनों बालकों का नामकरण किया। मुनिजी बोले- रोहिणी का पुत्र अपने गुणों से सुहृदय जनों का स्मरण करावेगा, इससे राम कहा जायेगा। अधिक बलवान होने से बलदेव व यादवों से पृथक न रहने के कारण इस बालक को सब संकर्षण नाम से पुकारेंगे। तुम्हारा पुत्र युग-युग में अवतार लेता है। इस समय कृष्ण वर्ण होने के कारण कृष्ण नाम से प्रसिद्ध होगा। पहिले वसुदेव के यहां जन्मा, इससे ज्ञानी पुरुष इसको वासुदेव भी कहेंगे। तुम्हारे पुत्र के नाम और रूप अनेक हैं, जो गुण और कर्मों के अनुसार हैं, जिनको हम और दूसरे लोग भी नहीं जानते हैं।

यह पुत्र गोप, गोपी, गौ व तुमको आनन्द देने वाला होगा तथा तुम्हारा सब प्रकार से भला करेगा। हे ब्रजराज! तुम्हारा पुत्र गुण, कीर्ति, लक्ष्मी और प्रताप में नारायण के समान है। सावधानीपूर्वक तुम इसकी रक्षा करना। हे राजन्! इस प्रकार उपदेश देकर गर्ग मुनि अपने घर चले गये। कुछ दिन व्यतीत होने पर कृष्ण बलदेव घुटनों के बल चलने लगे और बाललीला करते हुए सबों को सुख देने लगे। मार्ग में जो पथिक जाते

इनके पीछे-पीछे घुटनों-घुटनों कुछ दूर चले जाते जब वे इनकी ओर देखते तो डरकर अपनी माता के पास आ जाते। उनकी मातायें उनको उठा हृदय से लगाकर दूध पिलाने लगतीं। राम, कृष्ण नाना प्रकार की क्रीड़ा करते। कभी बछड़ों की पूंछ पकड़ खींचते, जब बछड़े भागें तो उनके पीछे-पीछे खिंचते चले जाएँ। गोपियां अपने घर का काम-काज छोड़ इनकी बाललीला देखकर हंस-हंस कर परमानन्द को प्राप्त होती थीं।

हे परीक्षित! कुछ काल व्यतीत होने पर बलराम, श्रीकृष्ण चरणों से चलने लगे। घनश्याम और बलराम ग्वालबालों के साथ ब्रज युवतियों को आनन्द देने वाली क्रीड़ा करने लगे। गोपियां बाललीला की चपलता देख यशोदा के पास आयीं और उलाहना देने लगीं। हे यशोदा जी! तुम अपने बालक को मनाओ, हमारे घर जाकर द्वन्द मचावे है। हमारे दूध दुहने के पहिले बछड़े छोड़ देवे हैं। जब हम उनको मना करती हैं, तब ये हंसने लगते हैं। चोरी से दूध, दही, माखन और मीठे पदार्थ चुराकर खा जाते हैं। बचा हुआ बन्दरों को खिला देते हैं। कदाचित दूध, दही, माखन न मिले तो क्रोधकर हमारे बालकों को रुलाकर भाग जाते हैं। यदि ऊपर रखा हो तो उपाय करके उतार लेते हैं। छींके पर धरे हुए पात्रों में छेद करके नीचे मुख लगाकर गोरस पी जाते हैं। कभी सखा के कन्धे पर चढ़कर उतार लेते हैं। आप खाते ग्वालबालों को खिलाते हैं, बाकी बचे को

लुटा देते हैं। हमारे लिपे-पुते घर को मैला कर देते हैं, और ग्वालबालों को संग ले चोरी की चिन्ता में फिरते हैं। तुम्हारा कन्हैया बड़ा ढीठ है, इसके पेट में सैकड़ों छल भरे हैं। परन्तु मुंह का मीठा है, तुम्हारे सम्मुख दीन की नाईं साधु बन गया है। ब्रज बालाओं की सब बातें सुनकर यशोदा हंस पड़ीं। एक दिन बलरामादि के साथ श्रीकृष्ण ने मांटी खाई, मांटी खाते देख कर सब ग्वालबालों ने यशोदा से जाकर कहा कि श्याम ने मांटी खाई है। तब यशोदा चंचल नयन करके कृष्ण से कहने लगीं- हे चंचल बालक! तैने मांटी किस कारण खाई? यशोदा ने सांटी लेकर कृष्ण को धमकाया। कृष्णजी कहने लगे- हे मैया! मांटी नहीं खाई, ये सब वृथा दोष लगाते हैं, जो इनका कहना सत्य जान पड़ता है तो मेरा मुख देख लो। यह सुनकर यशोदा बोली- मैं तेरी बात का विश्वास नहीं मानती, तू अपना मुख फैलाकर दिखा। भगवान ने यशोदा के आगे अपना मुख फैला दिया। तब यशोदा ने कृष्ण के मुख में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड, इस पृथ्वी मण्डल और ब्रज भूमि सहित अपने शरीर को देखा। उनके मन में बड़ी शंका उत्पन्न हुई। यह विचारने लगीं कि यह जो कुछ मैं देख रहीं हूं क्या परमेश्वर की माया है? यदि माया होती तो अन्य लोग भी देखते। यदि परमेश्वर की माया नहीं तो क्या यह मेरी बुद्धि का भ्रम है या मेरे कृष्ण का यह कोई स्वाभाविक ऐश्वर्य है। यह सारा जगत मन, कर्म और

वचन यथावत् विचार में नहीं आता। वह जिसके आश्रय है और जिसके द्वारा तथा जिससे प्रतीत होता है उस चिन्तनीय स्वरूप परमेश्वर के चरणारविन्द को मैं प्रणाम करती हूं। वही परमेश्वर मेरा पुत्र रूप है। जब श्रीकृष्ण में इस प्रकार यशोदा जी की ईश्वर बुद्धि हो गई, तब श्रीकृष्ण भगवान ने पुत्र स्नेह को बढ़ाने वाली वैष्णवी माया को फैलाया। वैष्णवी माया के फैलते ही यशोदा का ज्ञान जाता रहा। परीक्षित ने प्रश्न किया- हे ब्रह्मन्! नन्दजी ने ऐसा कौन सा पुण्य किया था कि जिसके प्रभाव से उनका ऐसा भाग्य उदय हुआ? और यशोदा ने कौन श्रेष्ठ पुण्य किया कि जिससे भगवान ने स्तनपान किया। भगवान के वाले चरित्रों का सुख वसुदेव और देवकी को प्राप्त नहीं हुआ। इसमें क्या कारण है? श्रीशुकदेवजी बोले- हे राजन्! द्रोण वसु ने अपनी धरा स्त्री सहित श्रीब्रह्माजी की आज्ञा से गौवों का पालन किया। अनन्तर ब्रह्माजी को प्रसन्न कर दोनों ने यह वर मांगा कि भगवान में हमारी ऐसी परम भक्ति होवे कि जिससे हम तर जावें। वही द्रोण वसु ब्रज में नन्द नाम से प्रसिद्ध हुए और वह धरा यशोदा नाम से प्रसिद्ध हुई। हे राजन्! नन्द, यशोदा की भगवान में बहुत भक्ति हुई।

श्रीकृष्ण का ऊखल बन्धन

श्रीशुकदेवजी बोले- एक दिन यशोदा जी भोर होने

पर हाथ से दही मथने लगीं। इतने में श्रीकृष्ण जाग उठे और 'मां-मां' कहकर रोने लगे। जब किसी ने न सुना तब आप ही यशोदाजी के समीप चले आए और कहा कि मुझे दूध पिला दे। यशोदा श्रीकृष्ण को गोद में लिटाकर दूध पिलाने लगीं। इतने में औटता दूध उफनने लगा उसको देख कन्हैया को गोद से उतार दूध को उतारने दौड़ी। कृष्ण ने क्रोध करके सब बर्तन फोड़ डाले और माखन का बर्तन उठाये वे एकान्त में जा कर ग्वालबालों के साथ मक्खन खाने लगे। जब यशोदा लौटकर आईं तो देखा कि गोरस फैला पड़ा है, बर्तन टूटे पड़े हैं, मक्खन के पात्र का कहीं पता नहीं। पुत्र का किया काम जान यशोदाजी हंसने लगीं। ऊखल को औंधाये उस पर ग्वालबालों के बीच बैठे माखन को श्रीकृष्णचन्द्र जी खा रहे थे और भय से इधर-उधर देखते जाते थे। माता को आती हुई देख श्रीकृष्ण भागे, पीछे-पीछे यशोदा जी भी दौड़ीं परन्तु पकड़ नहीं पाईं। माता को थकित जानकर कृष्ण ने अपने आप को पकड़ा दिया। जब यशोदा ने श्रीकृष्ण को पकड़ लिया तब कृष्ण विह्वल हो गए रो-रोकर काजल लगे हुए नेत्रों को अपने हाथों से मलने लगे। और हा-हाखाकर यशोदा से बोले- मैया! मुझको छोड़ दे! ऐसे कहकर भयपूर्वक चंचल नेत्रों से देखने लगे। तब यशोदा कृष्ण को डांटने लगी कि तेरे सिवाय मेरे घर में दूसरा माखन चोर कौन है? यशोदा ने लाल को भयभीत देखकर

हाथ की छड़ी को फैंक दिया और रस्सी लेकर उनको ऊखल से बांधने लगीं, बांधने के समय रस्सी दो अंगुल ओछी पड़ी, यशोदाजी ने उसमें दूसरी रस्सी जोड़ी, यह भी रस्सी दो अंगुल कम हुई तो तीसरी बार और भी रस्सी जोड़ी, तो वह भी दो अंगुल ओछी हुई। ऐसे जितनी भी रस्सी जोड़ीं सब कम होती गईं। तब यशोदा ने घर भर की रस्सी इकट्ठी करके कृष्ण को बांधना चाहा परन्तु कृष्ण न बंधे। तब गोपियों और यशोदा जी को विस्मय हुआ। माता को परिश्रम युक्त देखकर श्रीकृष्ण दया करके आपही आप बंध गए। हे राजन्! जिसके वश में यह सम्पूर्ण जगत् है और स्वतन्त्र हैं, ऐसे भगवान ने दिखाया कि जो भक्त मुझको बांधना चाहे तो भक्त के वशीभूत होकर बंध भी जाता हूं। श्रीकृष्ण को बांधकर यशोदा घर के काम-काज में लग गईं। तब बंधे हुए श्रीकृष्ण ने यमुलार्जुन नाम वाले दो वृक्ष जो पूर्व जन्म में कुबेरजी के पुत्र गुह्यक थे, शाप से छूटने का समय विचार उनकी ओर देखा। पहले यह दोनों नलकूबर, मणिग्रीव नाम से प्रसिद्ध थे। उनको नारद मुनि ने शाप दिया था। जिससे वे वृक्ष योनि को प्राप्त हुए।

यमलार्जुन उद्धार

परीक्षित बोले- हे भगवान्! नलकूवर, मणिग्रीव के शाप का वर्णन कीजिए। श्रीशुकदेवजी बोले- कुबेर के

पुत्र नलकूवर और मणिग्रीव महादेवजी के अनुचर हो मद से उन्मत कैलाश पर्वत की पुष्पवाटिका में विचर रहे थे। तदन्तर गंगाजी के बीच जल में घुसकर स्त्रियों के साथ क्रीड़ा करने लगे। हे राजन्! वहां अनायास देवर्षि नारद आ गए और उन दोनों को क्रीड़ा करते देख जाना कि ये लक्ष्मी के मद से अन्धे हो रहे हैं। नारदजी को देखकर लज्जित हो उन स्त्रियों ने झट अपने वस्त्र पहन लिये। परन्तु वे दोनों गुह्यक नंगे ही खड़े रहे। इन दोनों को मद से अन्धे देखकर श्रीकृष्ण दर्शन कराने की इच्छा से शाप देते हुए नारदजी बोले- ये दोनों अज्ञान में डूब रहे हैं। अपने नंगे शरीर की भी सुधि जिनको नहीं है। अतएव ये वृक्षयोनि में भी इनको मेरी कृपा से इस जन्म की सुधि रहे। सौ वर्ष उपरान्त वासुदेव भगवान के दर्शन पाकर हमारी कृपा से भगवद्भक्ति को प्राप्त हो स्वर्ग में जाकर देवता रूप हो जावेंगे। हे राजन्! इस प्रकार कहकर नारद चले गये और नलकूवर, मणिग्रीव यमलार्जुन नामक वृक्ष हुए। नारदजी के वचनों को सत्य करने के निमित्त श्रीकृष्ण धीरे-धीरे उन यमलार्जुन वृक्षों के समीप पहुंचे। वे वृक्षों के बीच में होकर निकले और ऊखल को तिरछा कर दिया। फिर भगवान ने रस्सी से बंधे हुए ऊखल को झटका देकर ऐसा खेंचा कि उसी समय वे दोनों वृक्ष जड़ से उखड़ कर भूमि पर गिर पड़े। उन वृक्षों में से मूर्तिमान अग्नि के समान दो सिद्ध निकले और श्रीकृष्ण को प्रणाम कर

हाथ जोड़कर कहने लगे- हे कृष्ण! तुम ही आद्य परम पुरुष हो। ब्रह्म देवता, स्थल, सूक्ष्म रूप, हम जगत को तुम्हारा ही रूप जानते हैं। हे वासुदेव! हम आपके दासानुदास हैं। नारद ऋषि की कृपा से हमको आपका दर्शन प्राप्त हुआ है। तब रस्सी से बंधे हुए भगवान गुह्यकों से हंसकर कहने लगे- ये यक्षो! लक्ष्मी के मद से तुमको अन्धे देखकर दयालु नारदजी ने शाप दिया और मद से निवृत्त करके तुम्हारे ऊपर कृपा की यह बात मैंने पहिले ही जान ली थी। मेरे विषे चित रखने वाले समदर्शी साधुजनों के दर्शन से पुरुष का बन्धन कट जाता है। तुम हमारे भक्त होकर अपने स्थान को जाओ, तुम्हारी मुझमें सर्वदा भावना रहेगी। अब तुम्हारा जन्म मरण छूट गया। हे राजन्! तब परिक्रमा करके कृष्ण भगवान से आज्ञा लेकर वे दोनों उत्तर दिशा को चले गये।

बत्सासुर और बकासुर वध

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे कुलश्रेष्ठ! यमलार्जुन वृक्षों के गिरने का शब्द सुनकर यशोदा नन्द आदि वहां दौड़े आए। वहां देखा कि वृक्ष उखड़े पड़े हैं। वे आपस में कहने लगे कि न आंधी आई, न वज्र गिरा परन्तु यह दोनों वृक्ष आप ही कैसे गिर पड़े? रस्सी से बंधे हुए बालक श्रीकृष्ण को ऊखल खेंचते हुए देख कर भी सब कहने लगे कि यह किसी राक्षस का कर्म है। इस

प्रकार बातचीत करते हुए गोकुलवासी भयभीत हो गए। वहां खेलने वाले बालकों ने कहा कि इस श्रीकृष्ण ने ऊखल को तिरछा कर वृक्षों के बीच में से दूसरी ओर जाकर ऐसा झटका मारा कि वृक्ष उखड़ पड़े। दो पुरुष उसमें से निकले कि जिनको हमने अपनी आंखों से देखा। बालकों के कहने पर किसी ब्रजवासी ने विश्वास नहीं किया। उनमें से बहुत से ब्रजवासी सन्देह युक्त हो गए कि कदाचित् ऐसा हुआ तो क्या आश्चर्य है। तदन्तर श्रीकृष्ण को देखकर नन्दजी ने हंसकर बन्धन खोल दिया। गोपियों के बढ़ावा देने पर कभी श्रीकृष्ण बालकों की नाईं नाचने लगते, कभी ऊँचे स्वर में गाने लगते। एक दिन मालिन के फल बेचने का शब्द सुनकर श्रीकृष्ण फल लेने को अन्न लेकर मालिन के पास दौड़े गए। तब मालिन ने अन्न को लेकर कृष्ण के दोनों हाथ फलों से भर दिए। श्रीकृष्ण का दिया हुआ अन्न रत्न हो गया। एक बार श्रीकृष्ण ग्वालबालों के साथ खेलते-खेलते यमुना के तट पर पहुंचे। रोहिणी जी पुकारने गईं और कृष्ण से बोलीं- हे कृष्ण! आज तुम्हारा जन्म नक्षत्र है, चलकर स्नान करके पवित्र होकर, ब्राह्मणों को गौओं का दान करो। इस प्रकार बुलाने पर श्रीराम कृष्ण दोनों भाई खेल छोड़कर न आए। यशोदा जी ने रोहिणीजी को दोनों के निमित्त भेजा। यशोदा जी बलदेव और कृष्ण को एक साथ पुकारने लगीं। हे कृष्ण! हे कृष्ण! बस

अब मत खेलो, तुमको भूख लगी होगी। हे राम! अपने छोटे भैया कन्हैया को साथ लेके शीघ्र आओ। जब यशोदा ने साथ खेलने वाले बालकों से कहा कि हे बालको! तुम सब अपने-अपने घर जाओ। हे परीक्षित! तब यशोदा जी श्रीकृष्ण का हाथ पकड़कर घर ले आयीं और स्नान करा कर दूध देने वाली सुन्दर गऊओं का दान कराया। तदनन्तर नन्द जी ने कहा कि अब यहां बड़े उत्पात हो रहे हैं। पूतना, शकट, तृणावर्त से परमेश्वर ने रक्षा करी है। इस कारण अब हम सब बालकों को ले कर परिवार सहित हम दूसरी ठौर जा बसें। वृन्दावन पशुओं का हितकारी है जिसमें नवीन बाग बगीचा और पुष्प वाटिका हैं, वहां गोप व गौओं के रहने योग्य उत्तम स्थान है। वहीं चलने की तैयारी करो, विलम्ब मत करो। नन्दजी का वचन सुनकर सब गोपिगणों ने एक बुद्धि होकर वृन्दावन जाने का विचार किया। हे परीक्षित! पहले सब सामग्री को गाड़ियों में भर, फिर उनके ऊपर वृद्ध, बालक और स्त्रियों को बैठा सब गोकुलवासी वृन्दावन को चल दिए। गोपियां रथ में बैठी कृष्णलीलाओं का गान करती जा रही थीं। यशोदा और रोहिणी उनकी लीलाओं को सुन-सुनकर प्रसन्न होती थीं। वृन्दावन पहुंचकर गोओं के रहने का एक खिरका बनाया। हे राजन्! वृन्दावन, गोवर्धन पर्वत और यमुना जी का सुन्दर तट देखकर बलराम और श्रीकृष्ण प्रसन्न हुए अनन्तर ग्वालबालों को साथ

लिए राम-कृष्ण, बछड़ा चराते और भांति-भांति के खेल खेलते। ग्वालवालों के संग खेल में कभी घुंघरू बांधकर नाचते, कभी परस्पर युद्ध करते। इस प्रकार साधारण बालकों की तरह वन-विहार करते थे। एक दिन यमुनाजी के तट पर राम-कृष्ण को मारने की इच्छा से असुर आया। बछड़े का स्वरूप बना बछड़ों के झुण्ड में बत्सासुर को आया देख कृष्ण धीरे-धीरे उसके समीप आये। श्रीकृष्ण ने वत्सासुर के पिछले पांव पूंछ सहित पकड़ घुमाकर ऐसा मारा कि उसके प्राण निकल गए। यह असुर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब उसको मरा देख सब ग्वालबाल विस्मय युक्त हो श्रीकृष्ण की प्रशंसा करने लगे। देवता प्रसन्न होकर आकाश से फूल बरसाने लगे। एक दिन वे जलाशय के पास पहुंचे, वहां बछड़ों को जल पिला कर आपने भी जल पान किया। वहां उन ग्वालबालों ने मुख फैलाए हुए एक पक्षी को देखा। इतने ही में श्रीकृष्ण के पास आ शीघ्रतापूर्वक चोंच उठा कर, बकासुर कृष्ण को निगल गया। श्रीकृष्ण को बकासुर से निगला देखकर सब ग्वालबाल रो-रोकर विलाप करने लगे। ग्वालबालों को विकल जानकर श्रीकृष्ण ने अपने को अंगारे के समान जलाया तब उसने श्रीकृष्ण को तुरन्त उगल दिया और क्रोध करके चोंच से कृष्ण को मारने दौड़ा। तब श्रीकृष्ण ने उसकी चोंच के दोनों भागों को, दोनों हाथों से पकड़ तृण के समान चीर डाला। देवताओं ने ऊपर

से फूलों की वर्षा की, ग्वालबाल बकासुर के मुख से निकले हुए श्रीकृष्ण को देख प्रसन्न हुए और यह बात सबने कही कि आज कृष्ण ने बकासुर दैत्य को मारा था। यह बातें सुनते ही गोपें और गोपी परस्पर कहने लगे- अहो! इस बालक के ऊपर विपत्तियां आईं परन्तु जो मारने आया वह उलटा आप ही मर गया। पंडितों की वाणी कभी असत्य नहीं होती, क्योंकि जो बातें गर्गाचार्य कह गए हैं, वे सब बातें सत्य होती जाती हैं। नन्द आदि गोप कृष्ण बलराम की रसीली बातें कहकर प्रसन्न होते और सुख पाते थे। बाल-चरित्र करके श्रीकृष्ण-बलराम ने कुमार अवस्था को व्यतीत किया।

अघासुर वध

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! एक दिन भोजन करने के विचार से अपने मित्र ग्वालबालों के साथ बछड़ों को आगे कर श्रीकृष्ण ब्रज से निकले। बछड़ों को चराते हुए ग्वालबाल लीला करके जहां-तहां विहार करने लगे। जब श्रीकृष्ण वन की शोभा देखने को दूर चले जाते तब सखा एक दूसरे से यह कहकर दौड़ते कि श्रीकृष्ण को पहले मैं छुऊंगा। इस प्रकार दौड़कर श्रीकृष्ण को छूने में प्रसन्न होते थे। बालकों को खेलते देखकर अघासुर राक्षस वहां आया। पूतना और बकासुर का छोटा भाई अघासुर श्रीकृष्ण आदि ग्वालबालों को देखकर अपने मन में विचार करने लगा

S. S BRIJBASI & SONS

132 SHRI KRISHNA LEELA

S. S. BRIJBASI & SONS

कि श्रीकृष्ण ने मेरे भाई और बहिन को मार डाला है उन दोनों के बदले आज इन बालकों और बछड़ों सहित वासुदेव को मारूंगा। इस प्रकार निश्चय कर एक योजन लम्बा मोटा अजगर सांप का रूप धर कर कन्दरा के समान मुख फैलाकर सबको निगल जाने की इच्छा से मार्ग में स्थित हो गया। उसने ऊपर का होंठ आकाश में फैला दिया उसके मुख में अन्धकार के कारण जीभ ऐसी देख पड़ती थी मानों लम्बा चौड़ा मार्ग चला गया हो। इस प्रकार का स्वरूप देखकर सखा उसको वृन्दावन की शोभा मानकर खेल करते हुए अजगर के मुख की फैलावट को निरख-निरख कहने लगे- मित्रो! बताओ जो हमारे सम्मुख पड़ा है सो कोई मनुष्य है, पक्षी है अथवा कोई मायाधारी है? सूर्य की किरणों से लाल जो दीख पड़ता है सो सर्प का ऊपर वाला होंठ है और परछाई से पृथ्वी लाल दिखाई देती है वह नीचे की ठोड़ी। उधर पर्वत की गुफा के समान जो अन्धकार जान पड़ता है, वह सांप के मुख का अन्त है। शिखर के समान अजगर की दाढ़ें दीख पड़ती हैं, यह लम्बा चौड़ा मार्ग मानों सांप की जिह्वा है। अन्धकार ऐसा जान पड़ता है मानो भीतर का भाग हो। जो गर्म पवन आ रहा है सो विषधर सर्प की श्वांस के सामन जान पड़ता है। अग्नि में जलते हुए मांस की दुर्गन्धि आ रही है। जो हम सब इसके मुख में घुस जावें तो क्या यह हमको निगल जायेगा जो कदाचित हमको निगल भी

जायेगा तो बकासुर की नाईं क्षण भर में श्रीकृष्ण नाशकर सकते हैं या नहीं? इस प्रकार बातचीत करते हुए हंसते-हंसते सब ग्वालबाल बछड़ों समेत उस अघासुर के मुख में घुस गये। श्रीकृष्ण के मुख में आने की बाट देख उसने उन्हें निगला नहीं। सोच विचार कर श्रीकृष्ण उस राक्षस को मारने का निश्चय कर उसके मुख में घुसते गये। उस समय देवता हा-हाकार करने लगे। हा-हाकार को सुनकर श्रीकृष्ण उस राक्षस के मुख में बढ़ने लगे। जब उसके मुख, कण्ठ आदि का मार्ग रुक गया तब मरे हुए ग्वालबाल और बछड़ों को अपनी अमृतमयी दृष्टि से जिलाकर उनके मुकुन्द भगवान उस राक्षस के मुख से बाहर निकल आए। अजगर रूपी राक्षस से निकली हुई निर्मल ज्योति श्रीकृष्ण के मुख में प्रवेश कर गई। देवताओं ने प्रसन्न होकर फूलों की वर्षा की। हे राजन्! उस अजगर का शरीर वृन्दावन में पड़ा-पड़ा सूख गया, फिर वह बालकों से खेलने के निमित्त गुफा हो गया। जिसमें बहुत दिनों तक बालकों का खेल होता रहा। श्रीकृष्ण ने ये सब काम पांच वर्ष की अवस्था में किए, परन्तु यह समाचार एक वर्ष बाद ग्वालबालों ने ब्रज में आश्चर्यपूर्वक सुनाया। परीक्षित ने पूछा, हे ब्रह्मन्! एक वर्ष का अन्तर पड़ जाने का क्या कारण है? हे शौनक जी! जब परीक्षित ने प्रश्न किया तब श्रीकृष्ण भगवान का स्मरण आते ही श्रीशुकदेवजी प्रथम तो नारायण में लीन हो

गए फिर नेत्र खोलकर इस प्रकार कहने लगे।

ब्रह्मा का मोह नाश

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- राजन् यह कथा परम गूढ़ होने पर भी मैं तुम्हारे सामने वर्णन करता हूं। इस प्रकार अघासुर से बछड़ों और ग्वालबालों की रक्षा करके उनको यमुना के तट पर ले जाकर श्रीकृष्ण बोले- यहां बैठकर कलेवा कर लो, क्योंकि दिन बहुत चढ़ आया है और हमें भूख भी लग रही है। श्रीकृष्णजी का वचन मानकर सब ग्वालबालों ने बछड़ों को घास में छोड़ दिया, फिर अपनी-अपनी छाक परोस श्रीकृष्ण के साथ कलेवा करने बैठे। वे सब ऐसे मदमस्त हो रहे थे, कि बछड़ों की सुधि किसी को न थी। बछड़े हरी-हरी घास चरते दूर निकल गए। तब ग्वालबाल अपने मन में घबराने लगे। उन बालकों को भयभीत देखकर भगवान बोले- हे मित्रो! भोजन करते रहो, मैं सब बछड़ों को घेरकर अभी लिए आता हूं। श्रीकृष्ण पर्वत की कन्दराओं, वनों, कुञ्जों और घने स्थानों में बछड़ों को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते दूर पहुंच गए। उसी समय ब्रह्माजी भगवान की माया देखने के लिए ग्वालों को और बछड़ों को चुराकर अन्तर्ध्यान हो गए। श्रीकृष्ण को जब कहीं बछड़े न मिले तब लौट आये और देखा कि वे बालक भी अपने स्थान पर नहीं हैं। तब सर्वज्ञ भगवान ने जान लिया कि यह काम ब्रह्माजी का है।

श्रीकृष्ण ने भी अनेक रूप बनाए। आप भी निज रूप ग्वालबालों द्वारा निजरूप बछड़ों को घेरकर अपने खेलों को खेलने लगे और खेलते हुए ब्रज पहुंचे। बछड़े यूथ में से पृथक होकर अपने-अपने खिरकों में जा घुसे। बालक अपने-अपने घरों को चले गए। उन बालकों की मातायें उठकर अपने-अपने बालकों के हाथ पकड़-पकड़ कर हृदय से लगाने लगीं और स्तनों से अमृत समान मधुर दुग्ध को परब्रह्म भगवान में ही पुत्र भाव मानकर पिलाने लगीं। तदन्तर उनकी मातायें अपने-अपने पुत्रों को स्नान कराकर, चन्दनादिलेप कर आभूषण पहिराने लगीं। इस प्रकार ब्रज युवतियां अपना पुत्र मान श्रीकृष्ण को लाड़ लड़ाती थीं और श्रीकृष्ण अनूठे खेल करके उनको प्रसन्न करते थे। गायें वन से चरकर रंभाती हुई आतीं, जब बछड़े समीप जाते तो दुग्ध को बड़े प्रेम से पिलातीं और बारम्बार हित मानकर चाटती थीं। श्रीकृष्ण इस प्रकार बछड़े और बालकों के रूप में अपने ही स्वरूप में एक वर्ष पर्यन्त ब्रज में विहार करते रहे। जब वर्ष पूर्ण होने में पांच छः रात्रि शेष रहीं, तब एक दिन श्रीकृष्ण बलराम बछड़े चराने वन में गये। वहां देखा कि गोवर्धन पर्वत पर जो गायें चर रही थीं उन्होंने ब्रज के समीप बछड़ों को चरते देखा, वह गायें गोवर्धन पर्वत से नीचे उन बछड़ों को दूध पिलाने लगीं और ऐसे चाटने लगीं मानो निगल जायेंगी। फिर उन गोपों ने गौओं को बहुत घेरा परन्तु

गौवें नहीं घिरीं। तब नीचे आकर बछड़ों के साथ अपने पुत्रों को देखने लगे। उन्हें देखते ही गोप प्रेम में मग्न हो गये, जिससे सब क्रोध शान्त हो गया। अपने बालकों को उठाकर हृदय से लगाकर और गोद में बिठाया तो परम आनन्द को प्राप्त हुए। वह गोप अति कठिनता से बालकों के समीप से चले परन्तु उनके स्नेह से गोपों के नेत्रों में जल भर आया उन बालकों पर बिना कारण ब्रजवासियों का बहुत स्नेह देखकर बलरामजी अपने मन में विचार करने लगे। जैसा प्रेम ये ब्रजवासी श्रीकृष्ण पर करते थे ऐसा अद्‌भुत प्रेम अपने पुत्रों पर प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इन्हीं का नहीं वरन् हमारा भी प्रेम इन ग्वालबालों और वत्सपालों पर बढ़ता ही जाता है। इसका क्या कारण है? यह माया कहां से आई? जान पड़ता है कि यह माया श्रीकृष्ण की है। इस प्रकार विचार करके बलरामजी ने ज्ञान दृष्टि से देखा सब ग्वालबाल और बछड़े कृष्ण देखने में आये। तब बलदेवजी ने पूछा हे स्वामिन्! सब देवता ग्वालबाल बने हैं, ऋषि मुनि बछड़े हैं, यह मैं जानता हूं। अब सब आप ही दीख पड़ते हैं? यह सुन श्रीकृष्ण बलदेवजी को समझाने लगे। यहां एक वर्ष बीता है परन्तु ब्रह्माजी का एक ही पल बीता है। तब ब्रह्माजी को स्मरण आया तो ब्रज में आकर देखा कि पहले की नाईं ग्वालबाल बछड़ों को साथ लिए श्रीकृष्ण खेल खेल रहे हैं। यह देख ब्रह्माजी अपने मन में विचारने लगे कि बालक और

बछड़े तो मेरी मायारूपी निद्रा में पड़े सो रहे हैं, फिर यह जो ग्वालबाल बछड़े चर रहे हैं सो कहां से और कैसे यहां आ गए। विष्णु को ब्रह्मा माया से मोहित करना चाहते थे परन्तु वे अपनी माया में आप ही मोहित हो गए। देखते-देखते क्षण मात्र में सब ग्वालबाल व बछड़े मेघ समान श्याम वर्ण, सुन्दर पीताम्बर धारण किए चतुर्भुज रूप धारे, वनमाला और मोतियों के हार धारण किए, श्रीवत्स चिन्ह से शोभायमान अपने भक्तों की पालना करते जान पड़े। तो ब्रह्माजी की इन्द्रियाँ शिथिल हो गईं और आश्चर्य में निश्चल हो गए। यह दशा देखकर श्रीकृष्ण ने ब्रह्माजी के हृदय से मोह माया का परदा हटा लिया। नेत्र खोलकर ब्रह्मा ने आत्मा के साथ जगत को देखा। सब दिशाओं में देखा तो सम्मुख ही नाना प्रकार के वृक्षों से भरपूर वृन्दावन दीख पड़ा। ब्रह्माजी ने वहां पहले की नाईं श्रीकृष्ण को अपने सखा ग्वालबालों और बछड़ों को चारों ओर ढूंढ़ते हुए देखा। भगवान को देखकर ब्रह्माजी ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया तथा आनन्द भरे आंसुओं के जल से श्रीकृष्ण को स्नान कराया फिर खड़े हो नेत्रों से आंसू पोंछ, सिर झुकाकर हाथ जोड़, भगवान की स्तुति करने लगे।

धेनुका वध

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- कुमार अवस्था व्यतीत हो जाने के उपरान्त युवा अवस्था में दोनों भाई गौवें चराने

के योग्य हुए। अपने सखाओं के साथ वे गायें चराते हुए वृन्दावन को पवित्र करने लगे। वे दोनों भाई परस्पर नाचते, गाते, कूदते और युद्ध करते हुए हंसकर गोपालों की प्रशंसा करते थे, कभी मल्लयुद्ध करते जब हार जाते तब थकावट दूर करने की इच्छा से वृक्ष की जड़ के सहारे अथवा पत्तों की शय्या पर गोपों की गोदी का तकिया बना कर शयन करते थे। एक समय बलदेव और कृष्णजी के सखा सुदामा, सुबल, कृष्णादिक प्रेम पूर्वक कहने लगे। हे राम! हे कृष्ण! यहां से थोड़ी दूर पर ताल के वृक्षों का एक सघन वन है, उस वन में बहुत से फल टूट कर गिर पड़े हैं, परन्तु धेनुकासुर दैत्य वहां उन फलों को न आप खाता है, न किसी और को खाने देता है। वह असुर बड़ा बली है, और गधे का स्वरूप धारण किये रहता है। वह असुर जहां कहीं मनुष्य को देख लेता है वहीं उसको खा जाता है। इस कारण उसके भय से मनुष्य और पक्षियों ने उस वन को त्याग दिया है। मित्रों के वचन सुनकर दोनों भाई गोपों के साथ तालवन को चल दिए। वहां पहुंच कर बलरामजी ताल के वृक्षों को हिलाकर पृथ्वी पर फलों के ढेर लगाने लगे। फलों के गिरने का शब्द सुनकर गदर्भ रूप धेनुकासुर पृथ्वी को कम्पायमान करता हुआ बलराम जी के पास आया। महाबली धेनुकासुर ने वासुदेवजी की छाती में एक दुलत्ती मारी और रैंकता हआ चारों ओर दौड़ने लगा। फिर असुर ने

क्रोध से बलदेवजी पर दोनों पांव चलाये, तब बलराम जी ने एक हाथ से दोनों पिछले पैर पकड़ कर घुमाया। जब घुमाते-घुमाते उसके प्राण निकल गये तब एक तालवृक्ष के ऊपर से पटका। जब धेनुकासुर मर गया, तब उसकी जाति के असुर रूपी गधे क्रोध करके कृष्ण बलराम पर झपटे। उन दोनों भाइयों ने वह गधे तालवृक्षों पर फेंक दिये। यह महान चरित्र देख कर देवताओं ने फूल वर्षाये। इसके अनन्तर निर्भय होकर सब ग्वालबाल फलों को खाने लगे। सब ग्वालबाल श्रीकृष्ण बलराम सहित ब्रज में आये। श्रीकृष्ण के मुख रूप मधु का नेत्र रूप भौरों से पान कर ब्रज की स्त्रियों ने दिन के विरह का ताप दूर किया। जब स्नान और मर्दनादिक से दोनों भाइयों का परिश्रम मिट गया तब सुन्दर वस्त्र और दिव्य माला पहिन चोवा, चन्दन लगा कर, मिष्ठान्न भोजन कर सुन्दर शय्या पर शयन करने लगे। हे राजन्! एक दिन बलरामजी के बिना सब सखागणों को साथ ले भगवान यमुनाजी पर पधारे। मार्ग में अत्यन्त व्याकुल हो कालीदह में जाकर विष से दूषित यमुना जल पान किया। हे महाराज! विष जल का स्पर्श करते ही सब मूर्छित हो जल के समीप गिर पड़े। श्रीकृष्ण ने उन सबको अपनी अमृत वर्षा वाली दृष्टि से जिलाया। वे सब गोपाल की सुध आ जाने पर जल के समीप से खड़े हो कर परस्पर एक दूसरे को देखते हुए परम विस्मित हुए।

कालिया दहन

श्रीशुकदेवजी ने कहा राजन्! भगवान ने जल को शुद्ध करने के अर्थ उस काली नाग को दह से निकाल दिया। परीक्षित ने पूछा- हे ब्रह्मन्! भगवान ने जल के बीच घुस कर उस सर्प को कैसे पकड़ा और वह सर्प वहां किस कारण रहता था? श्रीशुकदेवजी बोले- यमुना में काली नाग का एक कुण्ड था जिसमें उसके विष की अग्नि से जल खौलता रहता था और उसके ऊपर उड़ने वाले पक्षी विष के ताप से संतप्त होकर जल में गिर पड़ते थे। जो कोई उस कुण्ड के समीप भूल कर चले जाते वे तड़प-तड़प कर मर जाते थे। कालिनाग को देख और उससे दूषित हुई यमुना नदी की ओर दृष्टि करके श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ विहार करते-करते कांछ कसकर ऊंचे कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ उस विष वाले कुण्ड में कूद पड़े। हे राजन्! श्रीकृष्ण जब जल में लीला करने लगे तब अपने घर का विनाश समझकर काली नाग दौड़ा आया। श्रीकृष्ण को मर्म स्थान में डसने के अर्थ उसने अपने शरीर से उनको लपेट लिया। सब ग्वालबाल व्याकुल होने लगे। वे गोप अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े। ब्रज में अति दारुण उप्तपात होने लगे। उन उत्पातों को देखकर नन्द आदि गोप अतिशय व्याकुल हो गये। जान गये कि आज बलरामजी को साथ लिए बिन कृष्ण वन में गौ चराने अकेले ही गये हैं। हे राजन्! गोप कृष्ण को ढूंढ़ते

मार्ग से यमुना जी के तट को चले जब वे कालीदह पहुंचे तो दूर ही से देखा कि काली नाग कृष्ण के शरीर से लिपट रहा है कृष्ण चेष्टा रहित हो गए हैं, ग्वालबाल मूर्छित पड़े हैं और पशु रंभा रहे हैं। यह देखकर सब महाशोक को प्राप्त हुए यशोदा मैया कृष्ण के पीछे जल में गिरने लगीं तो गोपियां नेत्रों से आंसू बहाती हुईं पकड़ने को दौड़ीं। नन्द गोप जब उस दह में गिरने लगे, तो उनको बलराम ने रोक लिया। श्रीकृष्ण ने सबको अपने निमित्त दुःखित देखकर उस सर्प के बन्धन से छूटने की इच्छा की। भगवान ने अपना शरीर बढ़ाया जिससे काली नाग का शरीर व्यथित होने लगा। अंगों के बन्धन ढीले हो गए। कृष्ण अवसर देखने लगे कि मैं काली नाग के मस्तक पर नृत्य करूँ और नाग इस घात में था कि मैं इसे निगल जाऊं। जब घूमते-घूमते काली नाग का पराक्रम घट गया, तब फण को नीचे दबाया, श्रीकृष्ण उसके फण पर चढ़े। यद्यपि उसका सिर चलायमान था तथापि भगवान उसके सिर पर नाचने लगे। भगवान ने जिस समय नाचना प्रारम्भ किया, उस समय देवांगनायें फूल वर्षाने लगीं। हे राजन्! सौ मस्तक वाला कालीनाग जिस मस्तक को ऊपर उठाता उसी को भगवान अपने चरण से दबा देते थे। उसके मुख व नासिका से रुधिर की धारें बहने लगीं। देह के बन्द ढीले हो गए तब श्रीकृष्ण को नारायण जान कर अपने मन से उनकी शरण ली। नाग

पत्नियां नारायण की शरण आईं और साष्टांग प्रणाम किया।

नाग पत्नियों ने कहा- हे नाथ! नाग को जो आपने दण्ड दिया, सो इस पर कृपा की, क्योंकि आपके दण्ड से अपराधी का अपराध दूर हो जाता है। आपका क्रोध भी कृपा रूप ही है। हे भगवान्! एक बार हमारे पति का अपराध आप क्षमा कीजिए, क्योंकि ये मूढ़ है, आपको नहीं जानता है, आप हम अबलाओं पर कृपा करके प्रतिरूप प्राण प्रदान कीजिए। हे परीक्षित! तब भगवान ने कालीनाग को छोड़ दिया। काली नाग सचेत होकर भगवान से निवेदन करने लगा- हे नाथ हम जन्म से ही तमोगुणी व महान क्रोधी हैं। आप की माया को हम किस प्रकार जान सकते हैं! अब आप जैसा उचित समझो वैसा करो। श्रीकृष्ण कहने लगे हे सर्प! अब तू शीघ्र रमणीक द्वीप को चला जा, जिस गरुड़ के भय से रमणीक द्वीप को त्याग कर यहां आया था। वह गरुड़ तुमको हमारे चरणों से चिह्नित देखकर अब नहीं खाएगा। अब हम जल विहार किया करेंगे। और इस स्थान का नाम काली कुण्ड हुआ। जो पुरुष मेरे इस जल से देवता पितरों का तर्पण करेगा और उपवास करके हमारा स्मरण व पूजन करेगा वह सब पापों से छूट जायेगा। हे राजन्! तब नाग और नाग पत्नियां प्रसन्नता पूर्वक भगवान का पूजन करने लगीं। उसी समय से यमुना जी का जल अमृत के समान निर्मल हो गया।

दावाग्नि पान करना

परीक्षित पूछने लगे- कालियानाग रमणीक द्वीप को छोड़कर यमुनाजी में क्यों रहा था? गरुड़ का क्या अपराध किया था? शुकदेवजी बोले- नागों ने गरुड़ की पीड़ा दूर होने के अर्थ प्रतिमास गरुड़ के निमित्त एक सर्प रखने का नियम कर रखा था। सब नाग अपनी-२ वारी से गरुड़ के भोजनार्थ भेंट रख आया करते थे। प्रत्येक पूर्णमासी को गरुड़ अपना भक्षण पा जाता था। कालीनाग एक दिन गरुड़ का भक्षण आप ही खा गया। हे राजन्! इस बात को सुनकर गरुड़ क्रोध करके काली को मारने की इच्छा से उस पर झपटा। काली नाग गरुड़ के सामने आया तथा अपने दांतों से गरुड़ को काटने लगा। तब गरुड़ ने बड़े क्रोध से उसे पंखों और चोंच से आहत कर दिया। कालीनाग व्याकुल हो गया और भागकर यमुनाजी के कुण्ड में प्रविष्ट हो गया, जहां गरुड़ नहीं आ सकता था। क्योंकि एक समय जलचर जीवों को भक्षण करने की इच्छा से गरुड़ वहां आया तो सौभरि ऋषि ने मना किया परन्तु क्षुधा से पीड़ित हो उसने वचन नहीं माना और सबसे बड़ी मछली को मार खाया। तब सौभरि ऋषि ने महा क्रोधित होकर गरुड़ को शाप दिया अब तू यहां आकर मछलियों को खायेगा तो तुरन्त मर जाएगा। सौभरि ऋषि के शाप को केवल कालिया नाग ही जानता था। इस कारण उसके भय से यहां रहता था।

श्रीकृष्णजी ने उसे निकालकर रमणीक द्वीप भेज दिया। तदन्तर श्रीकृष्ण दह से बाहर निकले। उनको दह से बाहर निकला देखकर ब्रजवासी परमानन्द से मग्न हो, श्रीकृष्ण को भेटने लगे। यशोदा, रोहिणी, नन्द, गोपी, गोप सब श्रीकृष्ण से मिलकर पूर्ण मनोरथ वाले हुए। बलरामजी कृष्णजी से हंस कर मिले। यशोदाजी ने श्रीकृष्ण को अपनी गोद में बिठाकर बारम्बार हृदय से लगाया और नेत्रों से प्रेम के आंसू बहाने लगीं। थकावट के कारण उस रात को सब वहीं सो गए। उस समय वन को दावानल दैत्य ने अग्नि रूप बनकर जलाना प्रारम्भ किया और सब ब्रजवासियों को चारों ओर से घेर लिया तब सब ब्रजवासी जाग उठे और व्याकुल होकर चिल्ला उठे, हे कृष्ण! हे राम! यह महा भयानक दावानल हमको भस्म किये डालता है। आप रक्षा कीजिए इस प्रकार अपने जनों को दुःखित देख श्रीकृष्णजी उस महाघोर अग्नि को पान कर गए।

प्रलम्ब वध

श्रीशुकदेवजी बोले- हे राजन्! दावाग्नि पान करने के अनन्तर गौवों के समूह से सुशोभित भगवान ब्रज में पधारे। गायें चराने के निमित्त कृष्ण बलराम दोनों भाई ब्रज में विहार करते थे तो एक बार बलराम-कृष्ण को हर ले जाने की इच्छा से प्रबल असुर गोप का वेष बनाकर खेल में मिल गया। तब श्रीकृष्ण ने उनको

मारने का विचार कर उनकी प्रशंसा की और कहा- अहोमित्र! भले समय पर आ गये। तुम तो सब प्रकार के खेल जानते ही हो। यह कह सब ग्वालबालों को बुला कर कहा- हे मित्र! हम दो टोली बनाकर खेलेंगे। एक ओर का बलराम को प्रधान बनाया दूसरी ओर कृष्ण नायक बने। दोनों ओर आधे-२ ग्वालबाल बंट गए। सबको कह दिया कि जो जीते, सो हारे की पीठ पर चढ़े। हारा हुआ जीते हुए को अपनी पीठ पर चढ़ाकर भाण्डीर बट तक पहुंचाए। इस प्रकार खेल खेलने लगे। जो हारते थे वे चढ़ाकर ले जाते और जो जीतते वे चढ़ते थे। इस प्रकार चढ़ते-चढ़ते श्रीकृष्ण आदि सब गोपाल भाण्डीरक बट के समीप पहुंच गए। हे महाराज! जब बलरामजी की ओर गोप जीत गए, तब कृष्ण ने श्रीदामा को, भद्रसेन ने बृषभ को प्रलम्बासुर ने बलरामजी को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। प्रलम्बासुर श्रीकृष्ण की दृष्टि बचा कर नियत स्थान से भी दूर बलरामजी को लिए चला गया। जब उसने असुर रूप धारण किया तो उस अद्‌भुत स्वरूपधारी दैत्य को देखकर बलरामजी डरे कि यह कैसा गोप है? पीछे बलरामजी को स्मरण आया कि यह तो असुर है, तब क्रोध करके बलरामजी ने उस असुर के मस्तक पर एक मुष्टिक मारा। मुष्टिक लगते ही दैत्य का सिर ककड़ी से समान खिल गया, दांत टूट गए मुख से रुधिर की वमन होने लगी, जीभ और दोनों नेत्र

निकल कर बाहर आ पड़े, हाथ पांव फैल गए, महाघोर शब्द करके मुख पसार, अचेत हो भूमि पर गिर पड़ा। श्रीबलराम के हाथ से प्रलम्ब असुर को मरा हुआ देख कर सब ग्वालबाल चकित हो गये। उस समय सब ग्वालबाल और नन्दलाल बलदेवजी की सराहना करने लगे।

गोपियों का वस्त्र हरण

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! मार्गशीर्ष मास में सब गोप कन्यायें कात्यायनी देवी का व्रत और पूजन करने लगीं। अरुणोदय होने के समय यमुनाजी में स्नान कर, तट पर कात्यायनी देवी की प्रतिमा बनाकर चन्दन, सुगन्धित पुष्प, फल, धूप, दीप, नैवेद्य, अक्षत और छोटी बड़ी उत्तमोत्तम सामग्री से उसका पूजन किया करती थीं।

गोप कुमारियों ने श्रीकृष्ण में अपना मन लगाकर एक मास पर्यन्त देवी का पूजन किया। एक दिन यमुनाजी के तट पर अपने वस्त्र उतार कर स्नान कर रही थीं, इतने में ही श्रीकृष्ण उनका मनोरथ सिद्ध करने के अर्थ यमुना के तीर पर आये व उनके चीर को उठाकर कदम्ब पर चढ़ गये और कहने लगे हे अबलाओं! चाहे तुम एक-२ करके अपने वस्त्र ले जाओ, मैं असत्य नहीं कहता हूं। श्रीकृष्ण की हंसी देखकर गोपियां प्रेम में मग्न हो गईं। कण्ठ तक शीतल जल में खड़ी-खड़ी

बोलीं- हे मनमोहन! ऐसी अनीति मत करो। कृपा करके हमारे वस्त्र दे दीजिए, हम जाड़े के मारे जल में कांप रही हैं। हम आपकी दासियां हैं, जो कहोगे वही करेंगे। श्रीकृष्ण बोले- यदि तुम हमारी दासी हो और हमारा कहना अंगीकार करती हो तो जल से निकल यहां आओ। अपने मन को समझा सब गोपियां दोनों हाथों से गुप्तांगों को छिपाकर जल से बाहर निकल आईं। श्रीकृष्ण उनके शुद्ध भाव को देख प्रसन्न हुए और प्रेमपूर्वक कहने लगे- तुमने व्रत धारण करके, नग्न हो यमुना में स्नान करके वरुण देवता का अपराध किया है। उस अपराध को दूर करने के अर्थ हाथ जोड़ पृथ्वी को प्रणाम करके अपने-अपने वस्त्र पहन लो। ब्रज बालाओं ने श्रीकृष्ण का यह वचन सुनकर, अपने व्रत को खण्डित हुआ जानकर, सब कर्मों के फलस्वरूप भगवान को नमस्कार किया। तब श्रीकृष्ण ने गोपियों की अधीनता देखकर उनके चीर दे दिये। वे श्रीकृष्ण से ऐसी वशीभूत हो गईं कि वस्त्र पहन कर भी वहां से जाने को सामर्थ नहीं हुईं। तब सब सर्वान्तर्यामी भगवान उनसे बोले- हे सुशीलाओं! तुम्हारा मनोरथ हमने जान लिया। तुम सबने हमारे ही निमित्त पूजन किया, सो तुम्हारे पूजन से हम बहुत प्रसन्न हुए। हे पतिव्रताओं! आगे आने वाली शरद ऋतु में हमारे साथ रास विलास करना परन्तु इस समय तुम अपने-अपने घर जाओ। हे राजन्! भगवान की आज्ञा पा वे गोप

कन्यायें अपने-अपने घर चली गईं। तदन्तर श्रीकृष्ण, बलराम, गोपों की मण्डली के साथ गौवों को चराते हुए वृन्दावन से भी दूर चले गये। निर्मल जल गौओं को पिलाया और आप भी पिया। वन में गौवों को चराते हुए गोपों को जब भूख लगी तब क्षुधा से पीड़ित हो ग्वालबाल कृष्ण बलदेव के सम्मुख आकर इस प्रकार कहने लगे।

याज्ञिक ब्राह्मणों की पूजा

गोप बोले- हे बलराम! हे कृष्ण! भूख बहुत सता रही है, इसको शान्त करने का कोई उपाय आप कीजिए। तब श्रीकृष्ण ने भक्तवती ब्राह्मणियों पर प्रसन्नता प्रकट करने इच्छा से कहा- हे सखाओ! तुम यज्ञ में जाओ, वहां जाकर कहना हम राम-कृष्ण के भेजे तुम्हारे पास भात मांगने आये हैं। गोप यज्ञ में जाकर ब्राह्मणों से भोजन मांगने लगे- हे ब्राह्मणों! हम श्रीकृष्ण के आज्ञाकारी गोप हैं। वे दोनों भाई गौवों को चराते हुए यहां आ गए हैं। इस समय वे बहुत भूखे हैं, यदि आपकी श्रद्धा हो तो दोनों भाइयों को भात दीजिए। आपके यहां पशु होम हो चुका है इस कारण आपका भात खाने में कुछ भी दोष नहीं है। गोपों के समझाने पर भी उन लोगों ने भगवान की याचना को नहीं सुना। तब सब गोप निराश होकर लौटे। तब भगवान हंसकर बोले- अब तुम जाकर उन ब्राह्मणों की स्त्रियों से कहो

कि बलराम कृष्ण गायें चराते हुए यहां तुम्हारे समीप आ गये हैं और भूखे हैं। वे तुमको मुंह मांगा पदार्थ देंगी। यह सुन गोप वहां से चले और उनके निकट पुहंचकर बोले- हे विप्र पत्नियों! श्रीकृष्ण और बलदेव गौयें चराते इतनी दूर आ गए हैं। और उनको भूख लगी है आप कृपा करके भोजन दीजिए। हे राजन्! श्रीकृष्ण को निकट आया सुनकर ब्राह्मणों की स्त्रियां बहुत प्रसन्न हुईं। तुरन्त भोजन लेकर मनमोहन के दर्शन को चलीं। उन ब्राह्मणियों के पति, भाई, बन्धु और पुत्रों ने बहुत कुछ रोका परन्तु वे नहीं रुकीं। उन ब्राह्मणियों ने यमुना जी के तट पर बलराम और ग्वालबालों के साथ विचरते हूए श्रीकृष्ण को देखा। श्रीकृष्ण को नेत्रों द्वारा अपने हृदय में स्थापन कर बहुत देर तक आलिंगन कर उन स्त्रियों ने ताप को शान्त किया। ब्राह्मणियों से भगवान कहने लगे- हे महाभाग्यवती स्त्रियों! तुम्हारा आना बहुत अच्छा हुआ। तुम कृतार्थ हो चुकीं, यज्ञशाला में जाओ क्योंकि बिना तुम्हारे गये यज्ञ पूर्ण न होगा। विप्रपत्नियों ने कहा- हे नाथ! आपही ने वेदों में कहा है कि भगवान का भक्त आवागमन से छूट जाता है, इस अपनी प्रतिज्ञा को सत्य करो। हे भगवान! हमारी यही अभिलाषा है कि आप ही के चरण कमलों में हमारे शरीर पड़े रहें। श्रीकृष्ण बोले- हमारी आज्ञा से अपने स्थान को जाओ। तुम अपने घर में ही रहकर मुझमें मन लगाओ तो अतिशीघ्र मुझको प्राप्त करोगी।

हे राजन्! इस प्रकार समझा देने पर वे विप्र पत्नियां यज्ञ शाला में लौट गईं। वहां ब्राह्मणों ने उनसे कुछ न कहा, निर्दोष, निरपराध, समझ उनके साथ प्रसन्नता पूर्वक यज्ञ समाप्त किया। भगवान ने विप्र पत्नियों के लाये हुए भोजन को गोपों को बांट दिया। वे ब्राह्मण अपने किये हुए अपराध को स्मरण करके पश्चाताप करने लगे। श्रीकृष्ण में अपनी स्त्रियों की अलौकिक भक्ति देख और अपने को उस भक्ति से रहित देखकर सन्ताप को प्राप्त हो अपने को धिक्कारने लगे- भगवान की माया योगी, जनों को मोह लेती है। हम मनुष्यों के गुरु होकर भी स्वार्थ में मोहित हो रहे हैं। हे कृष्ण! अज्ञान में फंसे हुए हम सबों का अपराध आप क्षमा करें। हे राजन्! वे ब्राह्मण राम-कृष्ण के दर्शनाभिलाषी होने पर भी कंस के भय से श्रीकृष्ण के पास नहीं जा सके।

इन्द्र यज्ञ भंग

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! कुछ काल व्यतीत हुए तो श्रीकृष्ण ने गोपों को इन्द्र पूजा की तैयारियां करते देखा। तब श्रीकृष्ण नन्द आदि वृद्ध गोपों के समीप जाकर पूछने लगे, हे पिता! आज घर में क्या हो रहा है? किस देवता का आगमन है? इससे क्या फल मिलेगा? नन्दजी बोले- हे तात! मेघ इन्द्र हैं। वे जल वर्षाते हैं। हम इन्द्र का पूजन करते हैं। केवल पुरुषार्थ से क्या हो सकता है? क्योंकि मनुष्य के खेती

आदि पुरुषार्थ को मेघ ही उत्पन्न करते हैं। नन्दजी के वचन सुनकर इन्द्र का गर्व दूर करने के लिए श्रीकृष्ण अपने पिता से कहने लगे- हे पिता! कर्म से जीव जन्मता है, कर्म से ही मरता है। सुख, दुःख, भय, क्षेम सब कर्म से होते हैं। यदि कर्म का फल देने वाला कोई ईश्वर है तो वह भी कर्त्ता के अधीन रहता है। यदि कोई काम न करे तो उसको ईश्वर क्या फल दे सकता है? फिर इन्द्र से क्या प्रयोजन है? पूर्व जन्म के संस्कार को इन्द्र कभी नहीं पलट सकता। हम लोगों की गौ रक्षा ही मुख्य जीविका है। इसी कारण हमारा नाम गोप तथा हमारे स्थान का नाम गोकुल है। इन्द्र इसमें क्या करेगा? हे पिता! केवल बन ही हमारा घर है। इस कारण गौ व ब्राह्मण की सेवा और पर्वतों का पूजन करना हम लोगों को उचित है जिससे हमारी और गौवों की रक्षा हो। जो सामग्री इन्द्र के यज्ञ के अर्थ इकट्ठी की है इसी सामग्री से गोवर्धन पर्वत के यज्ञ का प्रारम्भ करो। ब्राह्मणों द्वारा अग्नि में हवन कराओ और नाना प्रकार का अन्न दान, गौदान, दक्षिणादान अपने हाथ से करो। श्रीकृष्ण के वचनों को नन्द आदि गोपों ने अंगीकार किया। जिस प्रकार कृष्ण ने कहा, उसी प्रकार सामग्री तैयार करा, ब्राह्मणों द्वारा स्वस्तिवाचन कराकर पर्वत को यथा योग्य बलि देकर गौवों को भोजन कराया। सब ब्रजवासी गिरिराज की परिक्रमा करने लगे। तब श्रीकृष्ण ने दूसरा स्वरूप धारण किया

और पर्वतराज मैं ही हूं ऐसे कहते हुए उस गोवर्धन के बीच से बहुत बड़ा शरीर प्रकट किया। उस स्वरूप को आप ही श्रीकृष्ण ने सर झुकाकर प्रणाम किया। उनको देख ब्रजवासियों ने भी नमस्कार किया। फिर वे बोले- देखो, यही पर्वतराज की मूर्ति है, पर्वतराज अपना अपमान करने वाले को यथेष्ट रूप धारण करके मार डालते हैं। इस प्रकार कृष्ण के कथानुसार पर्वतराज का पूजन अच्छी प्रकार करके गौ, ब्राह्मणों को प्रसन्न करके वे गोप ब्रज में आ पहुंचे।

गोवर्धन धारण

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! ब्रज में अपनी पूजा का लोप होने पर देवराज इन्द्र ने मुख्य मेघों को बुलाकर आज्ञा दी- जिन्होंने कृष्ण का आश्रय लेकर मेरा अपमान किया है, तुम उनके घमण्ड को दूर करो। मैं भी ऐरावत पर चढ़कर मरुद्गणों को साथ लिए गोकुल का नाश करने की इच्छा से ब्रज को आता हूं। इन्द्र की आज्ञा पाकर मेघों ने वर्षा से गोकुल को पीड़ित कर दिया, जिससे सम्पूर्ण ब्रज की पृथ्वी डूब गई। तदन्तर सब गोप व गोपियां शीत से व्याकुल होकर भगवान की शरण में जाकर बोले- हे कृष्ण! आप ही गोकुल के स्वामी हो। इन्द्र से हम सबकी रक्षा करो। भगवान ने जान लिया कि यह काम इन्द्र का है। श्रीकृष्ण ने एक ही हाथ से पर्वत हो उखाड़ कर बायें

हाथ की कनिष्ठका अंगुली पर धारण कर लिया। तदन्तर भगवान गोपों से कहने लगे- हे ब्रजवासियों! तुम सब अपनी गौवों, बछड़ों व बाल-बच्चों को ले इसके नीचे आ जाओ। श्रीकृष्ण के कहने पर गोप गण अपनी-२ गौवों व बछड़ों आदि को साथ लेकर पर्वत के नीचे घुस गये। भगवान सात दिन तक उस पर्वत को धारण किए एक ही ठौर पर खड़े रहे। श्रीकृष्ण के योगबल का प्रभाव देखकर इन्द्र परम आश्चर्य मानने लगा, उसका सब अभिमान जाता रहा। तब वह मेघों से बोला- अब वर्षा मत करो, यहां तुम्हारा पराक्रम निष्फल जाएगा। थोड़ी देर में बादल छिन्न-भिन्न हो गए सूर्य नारायण उदय हुए, और वर्षा थम गई। यह देखकर श्रीकृष्ण ने कहा- हे गोपो! स्त्री धन और बालकों सहित पर्वत के नीचे से बाहर निकल जाओ। सब गोप पर्वत के नीचे से निकल आये। तब श्रीकृष्ण ने उस पर्वत को जहां का तहां रख दिया। यशोदा, रोहिणी, नन्द, बलराम आदि ने प्रेम से मग्न होकर श्रीकृष्ण को हृदय से लगाकर बहुत आशीर्वाद दिये। गोपियां मन मोहन के मनोहर चरित्र गान करती हुईं अपने-अपने घर आईं।

इन्द्र का घमण्ड चूर

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! श्रीकृष्ण ने गोवर्धन को उठाकर जब ब्रज की रक्षा की तब गौ लोक

से सुरभी गौ और इन्द्र श्रीकृष्ण के समीप आये। इन्द्र भगवान के चरणों में प्रणाम करके बोला- हे नारायण! आप ही इस त्रिलोकी के पिता गुरु ईश्वर तथा अविनाशी काल-रूप हो। प्राणियों के कल्याण का निमित्त और और हम सरीखों के अभिमान को दूर करने के अर्थ आप लीला करते हो। हे प्रभो! फिर कभी मेरी ऐसी दुष्ट बुद्धि नहीं हो, यही मेरी प्रार्थना है। तब श्रीकृष्ण हंस के गम्भीर वचन बोले, तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करके तुम्हारा यज्ञ भंग किया है, क्योंकि तुम मदोन्मत्त हो रहे थे। हे इन्द्र! तुम अपने स्थान को जाओ, अभिमान त्याग कर हमारी आज्ञा का पालन करना। अनन्तर सुरभी गौ श्रीकृष्ण के सम्मुख आ प्रणाम कर बोली- हे कृष्ण! आपसे हम सनाथ हैं, आपने हमारी रक्षा की। आप ही हमारे इन्द्र हो। ब्रह्माजी की आज्ञा से सब आपका अभिषेक करेंगी क्योंकि भूमि का भार उतारने का आपने अवतार लिया है। हे परीक्षित! इस प्रकार कहकर कामधेनु अपने दुग्ध और ऐरावत द्वारा लाये हुए आकाश गंगा के जल से भगवान का अभिषेक करने लगीं। इन्द्र ने नारद आदि देवर्षियों सहित भगवान का अभिषेक किया और उनका नाम गोविन्द रखा। हे राजन्! श्रीकृष्ण का अभिषेक होने के उपरान्त जीवों का वैरभाव दूर हो गया।

वरुणालय से नन्द जी को लाना

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे परीक्षित! नन्दजी ने एकादशी का व्रत किया। द्वादशी के दिन अरुणोदय से पहले स्नान करने के लिए ज्योंही जमुनाजी के जल में घुसे त्योंही वरुण का एक सेवक नन्दजी को पकड़कर ले गया। ज्योंही कृष्ण ने सुना त्योंही वे वरुण के समीप गये। भगवान को आया देख वरुण उनकी पूजा करके कहने लगा- हे प्रभु! आज आपके दर्शन से हमारा शरीर सफल हुआ। हे भगवान! मेरा सेवक आपके पिता को ले आया है। अतः दया करके अपराध क्षमा कीजिए। हे परीक्षित! श्रीकृष्ण तब नन्दजी को साथ ले, ब्रज में आये। ब्रज में आकर नन्दजी ने वरुण लोक का समाचार कह सुनाया। तब वे गोप श्रीकृष्ण को परमेश्वर मानकर विचारने लगे कि भगवान हमको ब्रह्मस्वरूप का दर्शन करायेंगे। गोपों के इस मनोरथ को जानकर भगवान ने सब ब्रजवासियों को अपना ब्रह्मरूप दिखाकर बैकुण्ठ लोक का दर्शन कराया। ब्रह्मरूप के देह में पहुंचते ही सब आनन्द मग्न हो गये।

रास लीला

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे राजन्! शरद ऋतु की सुन्दर रात्रियों को देख श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ रास

विलास करने का विचार किया। सुख देने वाली किरणों से ताप व ग्लानि को दूर करता हुआ कांतिवान चन्द्रमा उदय हुआ। अरुण चन्द्र की और उसकी कोमल किरणों से सुशोभित वन में श्रीकृष्ण ने स्त्रियों के मन को हरने वाली रास-लीला की।

अपने प्रियतम के विरह को सहने के कारण गोपियों के सब पाप नष्ट हो गये और परम सुख भोगने से सब पुण्य पुष्ट हो गये। यद्यपि ये परमात्मा श्रीकृष्ण को सासांरिक बुद्धि से प्राप्त हुई थीं तथापि उनके सब बन्धन कट गए और त्रिगुणमय शरीर छूट गया। परीक्षित ने पूछा- हे मुने! श्रीकृष्ण को वे गोपियां केवल लौकिक मानती थीं। फिर विषय वासना वाली गोपियों को मोक्ष कैसे सम्भव है? श्री शुकदेवजी बोले- हे राजन्! शिशुपाल जब श्रीकृष्ण से बैर भाव रखने पर भी मोक्ष को प्राप्त हुआ, तब प्रीति करने वाली गोपियों को मोक्ष प्राप्ति हुई तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है। श्रीकृष्ण से प्रेम करके सभी संसार के बन्धन से छूट जाते हैं।

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे परीक्षित! जब श्रीकृष्ण रास में से अन्तर्ध्यान हो गये, तब सब व्रजबालाएं व्याकुल हो गईं। तदन्तर गोपियां मिलकर ऊंचे स्वर से श्री कृष्ण का यश गान करती हुईं उन्हें वन-वन में ढूंढ़ने लगीं और व्याकुल होकर वृक्षों से पूछने लगीं कि प्यारे कृष्ण कहां हैं? जब कृष्ण दिखाई नहीं दिये तो प्रेम से भगवान की लीलायें करने लगीं। एक गोपी पूतना बनी, दूसरी

कृष्ण रूप हो उसका स्तन पान करने लगी। एक गोपी तृणावर्त बनकर श्रीकृष्ण स्वरूप धारण करे दूसरी गोपी को हर ले गई। दो गोपियां राम-कृष्ण बनीं तथा कितनी ही गोपियां गोप रूप बनीं। कोई वृत्सासुर बनीं, कोई बकासुर बनी। उन असुर रूप गोपियों को कृष्ण रूपी गोपी ने पछाड़ दिया। जिस प्रकार श्रीकृष्णजी बुलाया करते थे उसी प्रकार एक गोपी बांसुरी को बजाने लगी। हे राजन्! इस प्रकार लीला करते-२ श्रीकृष्ण के अन्तर्ध्यान की लीला आई तो सब गोपियां भगवान का स्मरण कर व्याकुल हो ढूंढ़ने लगीं। श्रीकृष्ण को खोजती हुईं गोपियों ने वन में श्रीकृष्ण के चरण चिन्ह देखे। चरण चिन्हों से भगवान को ढूंढ़ती हुई वे गोपियां आगे एक स्त्री के चरणों से मिले भगवान के चरण देख दुखित हो कहने लगीं- श्रीकृष्ण के साथ यह कौन स्त्री गई है? निश्चय इसने भगवान की अराधना की है, तभी वे हम सबको छोड़ केवल इसी को एकान्त में ले गये हैं। हे सखियों! भगवान की यह चरणरेणु अत्यन्त पवित्र है, यदि हम इसको मस्तक पर चढ़ावेंगी तो कृष्ण मिल जावेंगे। हम सबको उसके चरण देख खेद होता है। जो भगवान को एकान्त में ले जाए उनका अधरामृत पान कर रही है। फिर आगे बढ़कर कहने लगीं- यहां तो उसके चरण नहीं देख पड़ते, जान पड़ता है कि प्यारी को प्यारे ने कन्धे पर चढ़ा लिया है। देखो यहां फूल तोड़े हैं, यहां कामसक्त

श्रीकृष्ण ने कामिनी के केशों को गूंथा है क्योंकि उसकी चोटी गूंथते समय भगवान को यहां अवश्य बैठना पड़ा है। भगवान जिस स्त्री को अपने साथ ले गये थे, उसने अपने को सबसे उत्तम समझा और अभिमान किया। वह अभिमान में भर कर बोली- हे प्यारे! अब मुझसे चला नहीं जाता। मुझको उठाकर ले चलो। उसके कहने पर श्रीकृष्ण भगवान ने कहा हमारे कन्धे पर बैठ जाओ। ज्योंही राधिका भगवान के कन्धे पर चढ़ने लगी। त्योंही भगवान अन्तर्ध्यान हो गए। तब तो वह बहुत घबराई।

हे राजन्! श्रीकृष्ण को ढूंढ़ती हुईं उन सब गोपियों ने समीप ही प्यारे के वियोग से मोहित और दुःखित उस सखी को देखा। उसने बताया कि श्रीकृष्ण ने प्रथम तो मुझको मान दिया, फिर अभिमान करने से अपमान प्राप्त हुआ। यह बात उस गोपी के मुख से सुनकर सब गोपियां परम विस्मय को प्राप्त हुईं।

राधाजी सब सों मिली, नैनन नीर बहाय।
प्रेम पियासी सब सखी, रहीं कृष्ण गुन गाय।।

फिर उस गोपी को साथ लेकर वे गोपियां वन में भगवान को ढूंढ़ने गईं। आगे अन्धकार को देखकर लौट आईं। जब कृष्ण नहीं मिले तब राधा सहित सब गोपी यमुनाजी के तीर आकर श्रीकृष्ण का गुण गान करने लगीं।

गोपियां बोलीं- हे प्यारे! आपके अवतार लेने से यह ब्रज अत्यन्त सुहावना लगता है, सारे ब्रज मण्डल में आनन्द छा रहा है, परन्तु हम अति कष्ट से आपको ढूंढ़ रही हैं। अब आकर दर्शन दीजिए। आपकी कथा को जो मनुष्य गान करते हैं वे बड़े भाग्यशाली हैं। जो प्रत्यक्ष आपके दर्शन करते हैं उनका तो कहना ही क्या है? हे प्यारे! तुम्हारी प्रेम भरी चितवन और आपकी लीला, मोहित करने वाली आपकी बातें हमारे चित्त में क्षोभ उत्पन्न करती हैं। आप बारम्बार दर्शन दे हमारे मन में कामदेव उत्पन्न करते हो, परन्तु संग नहीं करते। यही तो आपका कपट है। हे प्यारे! अब अपने अधरामृत का पान कराइये।

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! इस प्रकार विलाप करती हुईं गोपियां ऊंचे स्वर में रोने लगीं। उस समय मन मोहित करने वाले कृष्ण गोपियों के बीच प्रकट हुए। अपने प्यारे को आया देखकर वे उठ खड़ी हुईं। किसी ने भगवान का हाथ अपने हाथ में पकड़ लिया, कोई भुजा को अपने कन्धे पर रखने लगी। कोई भगवान का बचाया हुआ पान अपने हाथ में लेने लगी। कोई कामदेव से पीड़ित हो भगवान के चरण कमल अपने स्तनों पर रखने लगीं। हे राजन्! तदन्तर श्रीकृष्ण उन गोपियों को अपने साथ ले यमुनाजी के तीर पहुंचे। वहां उन गोपियों के मनोरथ पूर्ण हुए। पूर्ण कर्म होने पर भी गोपियां भगवान को अपनी ओढ़नी

उतार कर बैठाने लगीं। गोपियां बोलीं- हे महाराज! कितने ही ऐसे हैं जो अपने मान करने वालों को भी उनकी अपेक्षा न करके भजते हैं। कितने ही ऐसे हैं जो भजने वाले और न भजने वाले दोनों को नहीं भजते हैं। इन सब में कौन अच्छा है, और कौन बुरा है? श्रीकृष्ण बोले- हे सखियों! जो परस्पर एक दूसरे को भजते हैं, वे स्वार्थी हैं। वह भजन केवल स्वार्थ के लिये है। जो नहीं भजन करने वालों को भजते हैं वे दयावान और स्नेही हैं। दयालु होकर भजन करने में सत्य है, और स्नेह से भजन करने से प्रेम है। कितने एक पुरुष भजने वालों को भी नहीं भजते फिर न भजने वालों की तो बात ही क्या है? वे चार प्रकार के हैं, एक आत्मा में रमण करने वाले, दूसरे पूर्ण मनोरथ वाले, तीसरे अकृतज्ञ, चौथे गुरु द्रोही।

हे सखियो! मैं इनमें से नहीं हूं। क्योंकि जो मुझको भजने वाले हैं, उनका ध्यान निरन्तर मुझमें बना रहे, इस कारण मैं भजने वालों को भी नहीं भजता। तुमने मेरे कारण बन्धुजनों का परित्याग किया है। तुम सबों का मुझमें निरन्तर ध्यान रहने के कारण मैं अन्तर्ध्यान हो गया और तुम्हारी प्रीति की परीक्षा लेता हुआ तुम्हारे वचनों को सुनता रहा। इस कारण तुमको मुझे दोष लगाना नहीं चाहिए। तुमने जो हमारी सेवा की इससे मैं तुम्हारा ऋणी हूं, यह तुम्हारी सुशीलता से उतरना चाहिए। इसको मैं नहीं उतार सकता।

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे परीक्षित! श्रीकृष्ण के वचन सुन कर गोपियों ने विरह के ताप को त्याग दिया। श्रीकृष्ण ने जब रास रचा तब अपनी योग शक्ति के प्रभाव से दो-दो गोपियों के मध्य में खड़े हो भगवान ने उनके गले में हाथ डाल गाना प्रारम्भ किया। प्रत्येक गोपी यह मानने लगी कि श्रीकृष्ण मेरे ही समीप हैं। उस क्रीड़ा को देखने देवता भी अपनी-अपनी स्त्रियों को लेकर आये। जैसे मेघों में बिजली शोभायमान लगती है, वैसे ही श्रीकृष्ण गोपियों में शोभायमान लगने लगे। हे राजन्! जितनी गोपियां थीं, उतने ही स्वरूप धरकर श्रीकृष्ण ने उनके साथ रास विहार किया। जब वे गोपियां थक गईं तब भगवान ने दया करके अपने हाथों से उनके मुख पोंछे। श्रीकृष्ण जब थक गये तब गोपियों को साथ ले जल में घुसे। हे परीक्षित! गोपियों ने जल उछाल-२ कर भगवान को भिगो दिया। जल क्रीड़ा के अनन्तर तट पर गोपियों के साथ कृष्ण विहार करने लगे। परीक्षित ने पूछा- हे मुने! धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश करने को श्रीकृष्ण ने अवतार लिया। फिर श्रीकृष्ण ने परस्त्री संसर्ग रूप अधर्म क्यों किया? श्रीशुकदेवजी बोले- परमेश्वर में धर्म का उल्लंघन और साहस देखा गया है। सामर्थ्य वाले पुरुषों को दोष नहीं लगता। रामचन्द्र ने अवतार लेकर जैसा कहा वैसा ही किया। इस कारण उसका कहना करना दोनों करें। श्रीकृष्णचन्द्रजी ने अवतार

लेकर भगवद् गीता में जो कहा है उसके अनुसार करें और उन्होंने जो लीला की है उन लीलाओं का केवल ध्यान करें। हे परीक्षित! महात्माजनों को न तो धर्म से कुछ प्रयोजन है, न विरुद्ध आचरण करने से कुछ पाप है। तब ईश्वर का पाप पुण्यरूप कर्मों का सम्बन्ध कैसे हो सकता है? यद्यपि गोपों की स्त्रियां भगवान के पास गईं थीं, तथापि ब्रजवासियों ने अपनी स्त्रियों को अपने पास सोती हुई समझा। इसी कारण गोपों ने उनकी कुछ निन्दा नहीं की। ब्रह्ममुहूर्त में गोपिकायें श्रीकृष्ण की आज्ञा के अनुसार अपने-२ घर गईं। हे राजन्! भगवान की इस रासलीला को सुनने व कहने से काम वासना दूर हो जाती है।

सुदर्शन मोचन और शंखचूड़ वध

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! एक समय सब ब्रजवासी देवयात्रा के लिए देव वन में गये। वहां पहुंच सरस्वती में स्नान कर उन्होंने महादेवजी और अम्बिकादेवी का पूजन किया। तदन्तर गोपों ने तीर्थ व्रत धारण करके रात्रि को सरस्वती के तट पर निवास किया। उसी वन में एक अजगर रहता था। वह अजगर वहां क्षुधा की शान्ति के लिए नन्दजी को ग्रसने लगा। यह देखकर सब ब्रजवासी दौड़े और जलती हुई लकड़ियों से उस सर्प को मारने लगे। जब उसने नन्दजी को न छोड़ा, तब श्रीकृष्ण ने अपने चरण की ठोकर मारी।

चरण लगते ही उसके सब पाप नष्ट हो गये और वह उस शरीर से छूटकर दिव्य देह वाला हो गया। उससे श्रीकृष्ण ने पूछा- हे भद्र! तुम कौन हो? यह सर्पयोनि तुमको कैसे मिली? तब वह सांप बोला- मैं सुदर्शन विद्याधर हूं। अभिमान युक्त होकर मैं सब दिशाओं में घूमा करता था। एक दिन अंगिरा गोत्र वाले कुरूप ऋषियों की मैंने हंसी की। तब उन ऋषियों ने शाप दिया कि तू सर्प हो जा। श्रीकृष्ण के चरण से तेरी सर्पयोनि छूट जायेगी। हे महायोगी! मैं आपकी शरण आया हूं। श्रीकृष्ण की आज्ञा ले सुदर्शन स्वर्गलोक को चला गया। तदन्तर सब ब्रजवासी श्रीकृष्ण का गुण वर्णन करते हुए फिर ब्रज में आ पहुंचे। कुछ दिन व्यतीत होने के अनन्तर श्रीकृष्ण और बलरामजी रात्रि के समय ब्रज की स्त्रियों के साथ विहार कर रहे थे। इतने में वहां शंखचूड़ असुर आ पहुंचा। दोनों भाइयों के देखते हुए वह गोपियों को उत्तर की ओर लेकर चलने लगा। गोपियां श्रीकृष्ण बलराम को पुकारने लगीं। गोपियों को देखकर दोनों भाई शंखचूड़ के पीछे दौड़े। दोनों भाई शीघ्रता से शंखचूड़ के समीप पहुंचे। थोड़ी दूर आकर भगवान शंखचूड़ के सिर तो तोड़कर उस के मस्तक में से मणि निकाल ले आये। श्रीकृष्ण ने उस प्रकाशवान मणि को लाकर सब स्त्रियों के देखते हुए बलरामजी को दी।

रामचन्द्र

S. S. BRIJBASI & SONS
22/1, FATEHPURI DELHI-6

179 कालिया मर्दन

S. S. BRIJBASI & SONS
59, MIRZA STREET BOMBAY-3

अरिष्टासुर वध और कंस की मन्त्रणा

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे परीक्षित! श्रीकृष्ण के ब्रज में निवास करने के कारण वहां निरन्तर उत्सव सा रहता था। एक दिन अरिष्टासुर सन्ध्या समय ब्रज में बैल का शरीर धारण कर अपने खुरों से पृथ्वी खोदता हुआ आया। वृषभ रूपधारी के घोर शब्द को सुनकर गौवों और स्त्रियों के गर्भ गिर पड़े। ब्रजवासियों को भयभीत देखकर भगवान वृषभासुर के सम्मुख गये। तब अरिष्टासुर कुपित होकर खुरों से पृथ्वी को खोदता, रक्त समान लाल आंखें फाड़कर श्रीकृष्ण के ऊपर दौड़कर आया। श्रीकृष्ण ने झपटकर उसके सींग पकड़ लिए और अठारह पग तक उसको पीछे हटाया। जब भगवान ने उसको ढकेल दिया तब वह क्रोध करके फिर सम्मुख आया । भगवान ने उसके सींगों को पकड़ कर पृथ्वी पर दे पटका और चरणों से उसकी छाती को दबाकर, सींगों को उखाड़ लिया। फिर उन्हीं सींगों से मारा, जिससे वह गिर गया और उठ न सका। श्रीकृष्ण ने जब अरिष्टासुर को मार डाला, तब नारद कंस के समीप आकर बोले- वह कन्या तो यशोदा की पुत्री थी और कृष्ण देवकी के तथा बलरामजी रोहिणी के पुत्र हैं। वसुदेवजी ने तुम्हारे भय से, अपने मित्र नन्दराय जी के यहां इनको पहुंचा दिया है और इन्हीं दोनों भाइयों ने तुम्हारें सब अनुचरों को मार डाला है। कंस ने जब यह बात सुनी त्योंही वसुदेवजी को मारने को तलवार हाथ में

ले ली। परन्तु नारदजी ने समझाया। कंस ने हथकड़ी बेड़ी डालकर वसुदेव देवकी को कैद कर लिया और केशी को यह कह वृन्दावन भेजा कि तुम बलराम-कृष्ण को मार आओ। तदन्तर मुष्टिक, चाणूर, शूल, तोशल आदि मंत्रियों को बुला कर कंस कहने लगा- हे वीरो! गोकुल में वसुदेवजी के पुत्र बलराम-कृष्ण हैं उनके हाथ से हमारी मृत्यु है ऐसा विधाता ने बतलाया है। जब वे दोनों भाई यहां आवें तब तुम उनको मार गिराना। तुम अखाड़े के चारों ओर मचान बनवाओ। रंगभूमि की रचना ऐसा उत्तम रचाओ कि जिसको सब नगर निवासी आकर रंगभूमि और मल्लयुद्ध देंखे। फिर महावत की ओर देखकर कहा- हे भद्र तुम कुवलिया पीड़ हाथी को रंग भूमि के द्वार पर खड़ा रखना, जिस समय राम-कृष्ण आवें दोनों को उस हाथी से मरवा डालना। हे मंत्रियों! तुम धनुष यज्ञ प्रारम्भ करो। यज्ञ के योग्य पशुओं को लाकर उपस्थित करो। तदन्तर कंस ने अक्रूरजी को बुलाकर बड़े प्यार से कहा- हे दानव पति अक्रूरजी! मैं तुम्हारे द्वारा अपना एक महत्कार्य करना चाहता हूं। कार्य केवल यही है कि तुम ब्रज में जाओ वहां वसुदेवजी के कृष्ण बलराम दो पुत्र हैं. उनको रथ में बैठाकर शीघ्र यहां ले आओ। नन्द आदि से कहना है कि तुम सब चलकर राजा कंस को भेंट दो और कृष्ण बलदेव से कहना कि धनुष यज्ञ को चलकर देख आओ। यहां आने पर या तो कुवलिया पीड़ हाथी

उनको मार डालेगा, यदि हाथी से बच गये तो मेरे मल्ल उन्हें पछाड़ेंगे। उन दोनों के मरने के उपरान्त मैं यादवों को मार डालूंगा। हे मित्र! फिर यह पृथ्वी निष्कंटक हो जाएगी मैं सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य भोगूंगा। अक्रूरजी बोले- हे राजन्! तुम्हारा विचार बहुत ठीक है। इसी उपाय से आपकी मृत्यु टल सकती है, परन्तु यह हठ न करें कि मैं यह काम कर ही डालूंगा क्योंकि काम का होना प्रारब्ध के अधीन है। तो भी मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूंगा। अक्रूरजी को आज्ञा देकर कंस अपने महलों को गया, अक्रूर अपने घर गये।

केशी और व्योम दैत्यों का वध

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! केशी असुर घोड़े का स्वरूप धर कर आकाश को कम्पायमान करता और सबको डराता हुआ युद्ध करने की इच्छा से आया। गोकुल को दुःखित देख श्रीकृष्ण ने आगे बढ़कर उस असुर को समीप बुलाया। तब वह दैत्य गर्जने लगा और भगवान पर दुलत्ती मारने लगा। श्रीकृष्ण ने उसके प्रहार को बचा कर अपने हाथों से दैत्य के दोनों पिछले पांव पकड़कर चक्र समान घुमा कर फेंक दिया। जब वह सचेत हुआ तब फिर क्रोधित हो श्रीकृष्ण के सम्मुख दौड़ा। तब श्रीकृष्ण ने अपना बांया हाथ उसके मुख में घुसा दिया। भगवान का हाथ स्पर्श होते ही केशी के दांत गिर गए। कृष्णजी की भुजा

केशी के मुख में बढ़ने लगी। भगवान की भुजा से उसका श्वांस बन्द हो गया, तब वह पांव पटकने लगा। अंगों से पसीना निकल आया, आंखें बाहर आ गईं। इस प्रकार वह असुर मर कर पृथ्वी पर गिर पड़ा। देवर्षि नारद श्रीकृष्ण से एकान्त में कहने लगे- हे वासुदेव आप सम्पूर्ण प्राणियों में व्यापक भाव से निवास करते हो। यह बहुत अच्छा हुआ जो आपने इस दैत्य को मार गिराया। आप ही सबके ईश्वर हो और अपनी माया से सम्पूर्ण जगत को रचते हो। आपको हम प्रणाम करते हैं। यह कह कर नारदमुनि प्रणाम कर चले गए।

एक समय भगवान गोवर्धन पर्वत पर गौवें चराते हुए चोर तथा पालक बनकर खेल करने लगे। उस समय ग्वाल रूप में मयदानव का पुत्र व्योमासुर दैत्या आया और चोर बनकर बहुत से ग्वालों को चुरा ले जाने लगा। वह दैत्य उन ग्वालों को ले जाकर एक पर्वत की गुफा में डालकर शिला से उसका द्वार बन्द कर देता था। जब चार पांच ग्वाल शेष रह गये तब श्रीकृष्ण ने उस दैत्य के कपट को जानकर उसे पकड़ लिया। तब दैत्य ने अपना शरीर पर्वत के आकार का बना लिया और छुड़ाने का बहुत उपाय किया, परन्तु छूट न सका। श्रीकृष्ण ने उसको उठाकर पृथ्वी पर दे पटका और गला घोटकर मार डाला तदन्तर गुफा में से गोपों को बाहर निकाला।

अक्रूरजी का गोकुल गमन

श्रीशुकदेवजी बोले- हे राजन्! श्रीअक्रूरजी भोर होते ही गोकुल की ओर चले। अक्रूरजी मार्ग में भक्ति को प्राप्त हो मन में विचारने लगे- मैंने कौन सा शुभ कर्म किया है, कि आज भगवान के दर्शन करूंगा। आज कृष्ण के चरणों का दर्शन होगा। यद्यपि मैं कंस का दूत हूं, तथापि भगवान मुझ पर सन्देह नहीं करेंगे, क्योंकि वे सर्वान्तिर्यामी हैं। हे परीक्षित! अक्रूरजी इस प्रकार विचरते हुए गोकुल पहुंचे। श्रीकृष्ण के चरणों के चिह्न अक्रूरजी ने ब्रज में देखे। उन चिन्हों के दर्शन होते ही रोमांच हो आया, नेत्रों से आंसू बहने लगे, रथ से नीचे उतर कर अक्रूरजी उन चरण चिह्नों में लोटने लगे। तदन्तर ब्रज में पहुंच कर अक्रूरजी ने कृष्ण बलरामजी को देखा। अक्रूरजी स्नेह से विह्वल हो रामकृष्ण के चरणों में दण्ड समान गिर पड़े। भगवान के दर्शनानन्द में अक्रूरजी के नेत्रों से आंसू बहने लगे, अंगों में रोमांच हो आया, मारे प्रेम के कण्ठ रुक गया जिससे अपना नाम भी बताने को भी समर्थ न हुए। तब निज कर कमल से खींचकर श्रीकृष्ण भली भांति भेंटे। तदन्तर श्रीबलरामजी ने अक्रूरजी को छाती से लगाया। फिर बलरामजी ने उनको भोजन करवाया। भोजन कर चुकने पर नन्दजी बोले- हे अक्रूरजी! निर्दयी कंस के जीते हुए आप किस प्रकार जी रहे हो? और नन्दजी ने

भी उनका बड़ा सम्मान किया।

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! अक्रूरजी की थकावट दूर होने के अनन्तर श्रीकृष्ण उनसे बोले- हे तात! अपनी जाति के बन्धुजन कुशल पूर्वक और आरोग्य होंगे, किसी को कुछ क्लेश तो नहीं है? आपके दर्शनों की मुझको बहुत अभिलाषा थी। हे तात! आपका आना किस कारण हुआ, सो कहिए। तब अक्रूरजी ने सब हाल कहा कि कंस यादवों से शत्रु भाव रखता है। वसुदेवजी के मारने का उद्योग किया और जिस प्रयोजन से स्वयं दूत बनाकर भेजे थे और नारदजी ने जो समाचार कंस के आगे कहा था कि कृष्ण बलदेव वसुदेव के पुत्र गोकुल में नन्दरायजी के यहां विराजमान हैं, सो सब वृत्तान्त अक्रूरजी ने श्रीकृष्ण को कह सुनाया। अक्रूरजी के वचन सुनकर कृष्ण और बलरामजी ने हंसकर नन्दजी से कंस की आज्ञा कह सुनाई। तब नन्दजी ने गोपों को आज्ञा दी कि दूध दही, माखन आदि गोरस और भेंट ले लो। कल मथुरापुरी को चलेंगे और राजा कंस को गोरस भेंट देकर महोत्सव देखेंगे। राम-कृष्ण को मथुरा ले जाने अक्रूरजी आये हैं। यह समाचार सुनकर गोपियां अत्यन्त दुःखी हुईं। विरह से व्याकुल, गोपियां आंसू बहाती हुई परस्पर कहने लगीं- हे विधाता! श्रीकृष्ण के दर्शन कराकर फिर उसे हमसे पृथक करता है, यह अच्छा नहीं है। हे सखी! मथुरा की स्त्रियां मनमोहन के मन को मोह

लेंगी। जब वे उन स्त्रियों के हाव-भाव, कटाक्ष आदि से भ्रम जायेंगे, तब हम गोपियों के घर कैसे लौटकर आवेंगे? ऐसे क्रूर कर्म करने वाले निर्दयी पुरुष का नाम अक्रूर नहीं होना चाहिये। क्योंकि हम सबके प्राण प्यारे श्रीकृष्ण को हमारे नेत्रों से दूर लिए जाता है। इस अन्याय को देखकर कोई बूढ़ा भी मना नहीं करता। इस समय कोई विघ्न भी नहीं होता, जिससे अपशकुन विचार कर श्रीकृष्ण नहीं जायें। हे राजन्! इस प्रकार विरही गोपियां लाज को छोड़, हे गोविन्द! हे दामोदर! पुकार कर ऊंचे स्वर से रोने लगीं। सूर्योदय होते ही अक्रूरजी ने रथ को हांका। फिर नन्द आदि सब गोप ग्वालबाल बहुत सी भेंट लेकर गाड़ी में बैठकर श्रीकृष्णजी के पीछे-पीछे चले। उस समय गोपियां मनमोहन के पीछे-पीछे इस विचार से चलीं कि कदाचित श्रीकृष्ण लौट आयें। जब श्रीकृष्ण ने गोपियां बहुत व्याकुल देखीं तो उनको धैर्य दिया।

जब तक रथ की ध्वजा और रथ की धूल उड़ती दीख पड़ती रही तब तक वे गोपियां पुतलियों के समान खड़ी रहीं। तदनन्तर भगवान के लौटने की आशा को छोड़कर अपने घर आईं और संकोच त्याग श्रीकृष्ण के चरित्रों को गाकर दिन बिताने लगीं। हे राजन्! यमुनाजी के समीप अक्रूरजी यमुनाजी के कुण्ड में स्नान करने लगे। जल में अक्रूरजी ने राम-कृष्ण को देखा और कहा कि उनको तो मैं रथ पर बैठा आया था जल में

कैसे आ गये, रथ से उतर तो नहीं आये हैं? इस प्रकार विचार कर जल से बाहर होकर देखा तो रथ पर दोनों भाई बैठे हुए हैं। गोता लगाया तो जल में शेष भगवान को देखा। साक्षात् नारायण का दर्शन कर परम भक्ति से रोमांचित हो प्रेम के कारण अक्रूरजी के नेत्रों में आंसू भर आये। तब अक्रूरजी सतोगुण का आश्रय ले धीरज धर सिर झुकाकर प्रणाम करके हाथ जोड़ गद्गद् वाणी से भगवान की स्तुति करने लगे।

अक्रूरजी ने कहा- हे कृष्ण! नारायण आदि पुरुष अविनाशी हैं तो भी मैं आपको प्रणाम करता हूं। योगीजन आपको परमेश्वर मान कर, साधु आपको अध्यात्म अधिदेव जानकर पूजन करते हैं। हे नाथ सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, आपकी माया के गुण हैं। इन गुणों में ही ब्रह्मा आदि जीव पिरोये हुए हैं, वे गुण माया में, आप में लय हो जाती है, अतः आप ही सर्वदेव मय हो। विपरीत बुद्धि वाला मैं सुख, दुःख को नित्य भोग रहा हूं और अपने मोक्ष रूप आपको नहीं जान पाता हूं। विषय वासना में फंसी हुई बुद्धि वाला मैं मन को रोक नहीं सकता। हे भगवान्! आपके चरण कमलों की शरण में आया हूं। हे अनन्त शक्तिधारी आपको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूं। मुझ शरणागत की आप रक्षा कीजिए, यही मेरी प्रार्थना है।

श्रीकृष्ण का मथुरा में प्रवेश

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! अक्रूरजी को श्रीकृष्ण ने जल में अपना स्वरूप दिखलाकर हर लिया। तब अक्रूरजी भगवान के स्वरूप को अन्तर्ध्यान हुआ देखकर शीघ्र जल से बाहर निकल कर आश्चर्य युक्त होकर रथ के समीप आए। श्रीकृष्ण ने पूछा- हे चाचा! ऐसा जान पड़ता है कि आपने कुछ अद्‌भुत बात देखी है? अक्रूरजी बोले- इस जगत् में पृथ्वी पर, आकाश में, या जल में जितने आश्चर्य हैं ये विश्वरूप आप में विद्यमान हैं, फिर जब आपके दर्शन हुए तब कौन अद्‌भुत मैंने नहीं देखा? फिर अक्रूरजी ने रथ चलाया और तीसरे पहर तक राम-कृष्ण को पहुंचा दिया। रथ पहुंचने के पहले ही सब गोप आदि ब्रजवासी मथुरा के एक बाग में रामकृष्ण की राह देख रहे थे। श्रीकृष्ण ने अक्रूरजी से कहा कि आप अपने घर जाइये, हम यहां विश्राम करने के अनन्तर मथुरापुरी को देखेंगे। अक्रूरजी बोले- हे नाथ! मैं आपके बिना अकेला मथुरा में नहीं जाऊंगा। आप हमारे घर चलकर हमको सनाथ करो। बलराम और अपने सुहृदजनों को भी साथ ले लो। श्रीकृष्ण बोले- मैं बलरामजी को साथ ले तुम्हारे घर आऊंगा, परन्तु प्रथम यादवों से द्रोह करने वाले राजा कंस को मारकर अपने भक्तों का हित करूंगा। तब अक्रूरजी उदास होकर पुरी में प्रवेश कर राजा कंस

को समाचार सुनाकर अपने घर गये। तीसरे पहर के समय श्री कृष्ण, बलराम ग्वालबालों के साथ मथुरा पुरी देखने के निमित्त नगर में घुसे। श्रीकृष्ण और बलराम राजमार्ग से प्रवेश कर बाजार में पहुंचे। नगर की नारियां कृष्ण बलराम की शोभा निहार बड़ी आनन्दित हुईं। वे कृष्ण और बलराम जी के ऊपर फूलों की वर्षा करने लगीं। श्रीकृष्ण ने आगे आते हुए एक रंगरेज धोबी को देख नम्रता पूर्वक उससे राजसी वस्त्र मांगे। श्रीकृष्ण की याचना सुनकर वह धोबी अत्यन्त क्रोध से कहने लगा- "हे मदोन्मत्त! पर्वतों व वन में फिरने वाले और कामरी ओढ़ने वाले तुम गंवार लोग राजसी वस्त्रों को देख कर क्यों ललचा रहे हो? हे मूर्खों! जीने की इच्छा रखते हो तो शीघ्र यहां से चले जाओ।" राजन्! इस प्रकार बकवास करते हुए उस धोबी के सिर को श्रीकृष्ण ने काटकर धड़ से पृथक कर दिया। जब वह धोबी मारा गया तब श्रीकृष्ण तथा बलरामजी ने मनमाने वस्त्र पहन लिए, शेष वस्त्र ग्वालबालों को दे दिए। उसी समय एक दर्जी ने श्रीकृष्ण बलरामजी को यथायोग्य वस्त्र और आभूषण पहनाकर उनका सुन्दर भेष बना दिया। उस दर्जी पर प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने उसको अपनी सारूप मुक्ति दी और इस लोक में सम्पत्ति, बल, ऐश्वर्य, स्मरण, मुक्ति और इन्द्रियों की शक्ति दी। इसके उपरान्त कृष्ण और बलराम सुदामा माली के घर पधारे। उसने दोनों

भाइयों को दण्डवत प्रणाम किया। अनन्तर भगवान के अभिप्राय को जानकर सुन्दर सुगन्धित फूलों की माला बनाकर सबको पहनाई। ग्वालबालों सहित कृष्ण बलराम उन मालाओं को पहन कर बहुत शोभायमान हुए। तब बहुत प्रसन्न हो उन्होंने सुदामा को वरदान दिया। सुदामा माली ने भी यही वर मांगा कि भगवान में हमारी अचल भक्ति रहे। उसको इच्छानुसार वरदान और लक्ष्मी व कीर्ति देकर बलदेवजी को साथ ले श्रीकृष्ण ने वहां से प्रस्थान किया।

कुब्जा की कथा

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! राजमार्ग से गमन करते हुए श्रीकृष्ण ने चन्दन पात्र हाथ में लिए तरुण अवस्था वाली कुब्जा स्त्री को अपने सम्मुख आते देख, हंसकर पूछा- हे वरोरू! तुम कौन हो? और यह चन्दन किसके निमित्त लिए जाती हो? यदि यह उत्तम चंदन तुम हमारे दोनों भाइयों के अंगों में लेपन करोगी तो शीघ्र तुम्हारा भला होगा। यह सुन कुबड़ी बोली- हे सुन्दर! मैं तीन अंगों से टेढ़ी हूं, इस कारण मेरा नाम कुब्जा है। मैं कंस की दासी हूं, प्रति दिन चन्दन घिस कर कंस के लगाती हूं। परन्तु अब आपसे अधिक चन्दन के लगाने को दूसरा कौन पुरुष योग्य है? यह कह कुबड़ी ने दोनों भाइयों के सुन्दर चन्दन लगाया। श्रीकृष्ण ने अत्यन्त प्रसन्न हो, सुन्दर मुख वाली कुबड़ी

के पांवों को अपने पांवों से दबाया और दो अंगुलियों से उसकी ठोढ़ी पकड़ ऊपर को उठाया। तब कुब्जा के सब अंग सीधे और सरल हो गए और श्रीकृष्ण का हाथ लगते ही शीघ्र परम सुन्दरी स्त्री हो गई। फिर श्रीकृष्ण धनुषशाला में पहुंचे। वहां उन्होंने एक अद्‌भुत धनुष देखा जिसे भगवान ने तोड़ डाला। उस धनुष की रक्षा करने वालों ने हाथों में शस्त्र ले श्रीकृष्ण को चारों ओर से घेर लिया। तब श्रीकृष्ण और बलदेव ने क्रोध करके धनुष का एक-एक खण्ड उठा कर क्षणमात्र में उन्हें मार गिराया। फिर धनुषशाला से बाहर निकल कर नगर की शोभा देखते हुए दोनों भाई विचरने लगे। दोनों भाई सूर्यास्त समय गोपों के डेरे पर पहुंचे। अपने धनुष का टूटना, रक्षकों का वध और सेना का मारा जाना सुनकर कंस बहुत डर गया और रात्रि में जागता रहा। सूर्य उदय हुआ जानकर कंस ने कर्मचारियों और मल्लों को बुलाकर मल्ल लीला का महाउत्सव कराया। राजकीय पुरुष रंग भूमि की पूजा करने लगे, तुरही और नगाड़े बजने लगे। माला, पताका, वस्त्र व वन्दनवारों से मचान सजाये। उन मचानों पर नगर निवासी आकर बैठ गये। राजा लोग भी अपने-अपने आसनों पर आ विराजे, कंस भी अपने मुख्य मंत्री तथा मंत्रियों से आवेष्ठित राजाओं के बीच में जो ऊंचा मचान था उस पर अभिमान से आ बैठा। परन्तु उसका चित्त बहुत घबरा रहा था। चाणूर, मुष्टिक आदि लंगोट बांध

शरीर में धूलि मल, ताल ठोंकते अपने उस्तादों के साथ झूमते हुए रंगभूमि में आने लगे। नन्द आदि गोप भी राजा को भेंट देकर एक मंच पर आकर बैठ गये।

मल्ल क्रीड़ा और कंस वध

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! श्रीकृष्ण और बलराम जी मल्लयुद्ध देखने वहाँ गये। जब द्वार पर पहुंचे तो वहां कुवलियापीड़ हाथी खड़ा झूमता हुआ देखा। श्रीकृष्ण गम्भीर वाणी से महावत को ललकार कर बोले- हे महावत! इस हाथी को सामने से हटाकर हमको मार्ग दे और जो नहीं हटावेगा तो अभी यमलोक पहुंचाऊंगा। इस प्रकार झिड़कने पर उस महावत ने कुपित होकर हाथी को श्रीकृष्ण पर हूल दिया। कृष्ण ने उस हाथी की सूंड को पकड़ कर पृथ्वी पर पटक दिया और चरणों के नीचे हाथी को दबा उसके दांत उखाड़ डाले। उन्हीं दांतों से हाथी और महावत के साथियों को मार गिराया। तदन्तर दोनों भाई रंगभूमि में पहुंचे। हे परीक्षित! कुवलियापीड़ हाथी को मरा जान कंस बहुत डर गया। इतने में ही चाणूर बोला- हे नन्दकुमार! हे बलराम! तुम दोनों महावीर हो और युद्ध करने में सामर्थ्यवान हो। हमारे राजा ने तुम्हारा मल्लयुद्ध देखने की इच्छा से तुमको यहां बुलाया है। इस कारण हम और तुम मल्लयुद्ध करके राजा का हित करें। इस बात को सुनकर कृष्ण बोले- तुम और हम सब महाराज कंस

की प्रजा हैं। इस कारण राजा की आज्ञा पालन करने में सबका कल्याण है। परन्तु हम बालक हैं, इस कारण अपने समान बालकों के साथ क्रीड़ा करेंगे। यहां धर्म युद्ध होना चाहिए। मल्लों की सभा में अधर्म होना योग्य नहीं है। चाणूर बोला- तुम न बालक हो, न किशोर हो परन्तु महाबली हो। बलरामजी भी बलवानों में श्रेष्ठ हैं, क्योंकि तुम दोनों ने हजार हाथी के समान बल वाले कुबलियापीड़ गजराज को लीला पूर्वक मार डाला है। इस कारण तुम हम योद्धाओं के साथ युद्ध करो।

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! इस प्रकार बातचीत होने पर श्रीकृष्ण चाणूर से और श्रीबलरामजी मुष्टिक से भिड़े। एक दूसरे को जीतने की इच्छा से एक-एक को खींचने लगे। दांव पेच चलाकर परस्पर एक-दूसरे को रोककर लड़ रहे थे। कुश्ती के दांव पेचों से जिस-जिस प्रकार श्रीकृष्ण और चाणूर लड़ते थे, उसी प्रकार बलरामजी और मुष्टिक युद्ध करते थे। दांव पेच होते-होते श्रीकृष्ण के कठोर अंग प्रहार से चाणूर के अंग टूट गये, जिससे वह बहुत दुखित हुआ। तब चाणूर ने उछल दोनों हाथों की मुट्ठी बांध श्रीकृष्ण की छाती में एक घूँसा मारा। उसके लगने से भी भगवान चलायमान न हुए। इसके उपरान्त भगवान ने चाणूर के दोनों हाथ पकड़कर वेग से घुमाकर पृथ्वी पर पटक दिया। पृथ्वी पर पछाड़ते ही वह क्षण मात्र में मर

गया। इस प्रकार मुष्टिक को बलरामजी ने एक थापी लगाकर मार गिराया। गिरने के समय उसके मुख से रक्त की धार बहने लगी और वह प्राण निकल जाने से पृथ्वी पर गिर पड़ा। तदन्तर कूट मल्ल को अपने निकट दौड़कर आया देखकर बलरामजी ने उसे बांई मुट्ठी से मार डाला। शल, तोशल ने विचार किया कि दण्डवत् प्रणाम करने के ढोंग में पांव पकड़कर पटक देंगे। परन्तु श्रीकृष्ण ने शल को एक लात ऐसी मारी कि उसका सिर फट गया और तोशल को चीरकर दो टुकड़े कर दिये। इनके मरते ही वहां अन्य बचे बचाये मल्ल प्राण बचाकर भाग गये। राम कृष्ण के चरित्र देख सब नगर निवासी प्रसन्न हुये और धन्यवाद देने लगे। जब मल्ल मारे गये और शेष सब भाग गये तब कंस बोला-वसुदेवजी के इन दोनों पुत्रों को यहां से निकाल दो। गोपों को लूटकर नन्द को बांध लो तथा अधम वसुदेव को मार डालो। शत्रु से मिलने वाले उग्रसेन को भी उसके अनुचरों सहित मार डालो। इस प्रकार कंस के बकने पर श्रीकृष्ण क्रोधित होकर ऊंचे मचान पर चढ़ गये। तब कंस ने कृष्ण को आया देखकर अपने आसन से उठकर ढाल तलवार ले ली। खड्ग हाथ में लिये दांई ओर दौड़ने वाले कंस को श्रीकृष्ण ने ऐसे पकड़ लिया जैसे गरुड़ सांप को पकड़ लेता है। उसकी फेंट और सिर के केश पकड़ उसको नीचे रंगभूमि में पटक दिया और ऊपर से आप भी कूद पड़े। सबके

देखते हुए भगवान कंस को पृथ्वी पर घसीटने लगे। हे महाराज! उस समय बड़ा हा-हाकार हुआ। वह कंस आठों पहर श्रीकृष्ण का शत्रु भाव से ध्यान किया करता था इस कारण भगवान के स्वरूप में लीन हो गया। कंस के मारने के उपरान्त उसके आठ छोटे भाई श्रीबलरामजी ने क्षण भर में मार डाले। उस समय आकाश में नगाड़े बजने लगे और देवता प्रसन्नतापूर्वक फूल बरसा कर भगवान की स्तुति करने लगे। इसके उपरान्त देवकी वसुदेव को बन्धन से छुड़ाकर श्रीकृष्ण बलरामजी ने उनके चरणों में सिर रख कर प्रणाम किया। देवकी और वसुदेवजी प्रणाम करते हुए अपने पुत्र को जगत् के ईश्वर जानकर शंका युक्त हो उनसे आलिंगन करके नहीं मिले। किन्तु हाथ जोड़कर उनके सम्मुख खड़े हो गये।

उद्धव का ब्रज में आना

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे परीक्षित! श्रीकृष्ण के प्यारे सखा उद्धवजी थे। उद्धवजी को श्रीकृष्ण एकान्त में ले जाकर कहने लगे- हे उद्धव! आप ब्रज में जाओ। हमारे माता-पिता और गोपियां जो हमारे वियोग में चिन्तित हैं; उनके सन्ताप को दूर करो। तब उद्धवजी स्वामी का संदेश लेकर गोकुल को चले। सूर्यास्त समय उद्धवजी गोकुल पहुंच गये। उद्धवजी को आया जान नन्दजी प्रसन्नतापूर्वक मिले। नन्दजी उद्धवजी से पूछने लगे- हे

उद्धव! कहिये हमारे परम मित्र वसुदेवजी अपने पुत्र आदि सहित कुशल हैं? श्रीकृष्ण हमारी, अपनी माता, ग्वालबाल तथा गोपियों की कभी सुध करते हैं? श्रीकृष्ण का जब हम स्मरण करते हैं, हमारा मन कष्टमय हो जाता है। इसलिए हमारे अंग शिथिल हो जाते हैं। चित्त श्रीकृष्णमय हो जाता है। इस प्रकार नन्दरायजी श्रीकृष्ण की सुधि प्रेम से विह्वल होकर चुप हो गये। यशोदाजी भी आंसुओं की धारा बहाने लगीं। नन्द और यशोदा का श्रीकृष्ण में प्रेम देखकर उद्धव बोले- हे नन्दजी! सम्पूर्ण प्राणियों के मध्य आप दोनों प्रशंसा के योग्य हो क्योंकि नारायण में आपने भक्ति की है। जगत् के प्रधान पुरुष श्रीकृष्ण में क्षणमात्र भी शुद्ध मन को लगा दे, तो वह शुद्ध सत्वमय परम गति को प्राप्त होता है। जब दोनों पुत्रों में आप निरन्तर भक्ति भाव रखते हो तो फिर आपको क्या करना शेष रहा? श्रीकृष्ण ब्रज में आवेंगे। आप दुःखी मत होओ श्रीकृष्ण सबके अन्तःकरण में विराजमान हैं। श्रीकृष्ण आप ही के पुत्र नहीं हैं वरन् सबके पुत्र आत्मा, पिता, माता और ईश्वर हैं। हे राजन्! बात-चीत में सारी रात्रि व्यतीत हो गई। प्रातःकाल नन्दजी के द्वार पर रथ खड़ा देखकर सब ब्रजवासी, कहने लगे यह किसका रथ है?

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! उद्धव को देखकर ब्रज की स्त्रियां विस्मय को प्राप्त हो परस्पर

कहने लगीं कि यह सुन्दर स्वरूपवान श्रीकृष्ण के समान वेष बनाये कौन है? और कहां से आया है? सब गोपियों ने उद्धव को चारों ओर से घेर लिया। फिर वे गोपियां उद्धवजी से कहने लगीं कि हमको जान पड़ता है कि तुम श्रीकृष्ण के पार्षद हो और उनके माता-पिता को प्रसन्न करने की इच्छा से यहां आये हो। यद्यपि श्रीकृष्ण से हमने प्रीति की, परन्तु श्रीकृष्ण हमको छोड़ कर मथुरा चले गये। हे परीक्षित! तदन्तर गोपियां एक भौंरे को देख, उसको प्यारे का भेजा हुआ दूत कल्पनाकर उद्धवजी से कहने लगीं- श्रीकृष्ण ने भी हमारे मन को मोहित करने वाला अपना अधरामृत एक बार पिलाकर हमें छोड़ दिया, आश्चर्य है कि लक्ष्मीजी उनके चरणारविन्दों का कैसे सेवन करती हैं जो श्रीकृष्ण के मीठे-मीठे वचनों से लक्ष्मीजी का भी मन हरण हो गया होगा। अहा! श्रीकृष्ण इस समय मथुरा में रहते हैं। क्या कभी हम दासियों की बातचीत करते हैं? इस प्रकार गोपियों के वचन सुनकर उद्धवजी बोले- हे गोपियो! भगवान में तुमने मन लगाया है, निश्चय ही तुम कृतार्थ हो गईं। सम्पूर्ण लोकों में तुम्हारा यश फ़ैलेगा। दान, व्रत, तप, होम, देव, पाठ, संयम साधनों का फल भक्ति है। ऐसी भक्ति मनुष्यों को भी कठिन है। हे मंगल रूपणियों! तुमको श्रीकृष्ण का सन्देशा सुनाता हूं। भगवान ने कहा है कि मैं सबका उपादान कारण हूं, सो हमारा तुम्हारा किसी प्रकार का

वियोग नहीं। इस कारण तुम मुझसे दूर नहीं हो। मैं तुम्हारी दृष्टि से इस कारण दूर रहता हूं कि तुम्हारा मन मुझ ही में लगा रहे। सम्पूर्ण वृत्तियों को त्याग निरन्तर मेरा ध्यान करती रहोगी तो शीघ्र मुझको मिलोगी।

तब गोपियों ने पूछा- हे उद्धव! श्रीकृष्ण जब मथुरा की स्त्रियों में बैठकर बातें करते तब क्या हम गंवारियों का भी स्मरण करते हैं? क्या कभी उनको उन रात्रियों की भी सुधि आई है जिन रात्रियों में उन्होंने रास में हमारे साथ नाना प्रकार से विहार किया था? और हमने भी प्रेम से उनका सत्कार किया था। अपने दिये हुए शोक से जलती हुए हमको जलाते हुए श्रीकृष्ण कभी यहां आवेंगे अथवा नहीं? मथुरा की ओर हाथ उठाकर गोपियां कहने लगीं- हे ब्रजनाथ! हे गोविन्द! दुःख सागर में डूबते हुए गोकुल का शीघ्र आकर उद्धार करो। गोपियों का संताप मिटाने के अर्थ कितने ही मास उद्धवजी ने ब्रज में वास किया और श्रीकृष्ण की लीला सम्बन्धी कथाओं का गान करके ब्रजवासियों को परम सुख दिया। भगवद्भक्त उद्धवजी ब्रजवासियों को श्रीकृष्ण का स्मरण कराते हुए रमण करते रहे। हे परीक्षित! उद्धवजी गोपियों,. यशोदा और नन्द से मथुरापुरी जाने की आज्ञा लेकर रथ में बैठे। गमन के समय सब ब्रजवासी नाना प्रकार की भेंट हाथ में लिए नेत्रों में आंसू भर कर बोले- हमारे मन की वृत्तियां श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में लगी रहें। हमारी वाणी

उनका नाम लिया करे, हमारा शरीर उनको नमस्कार करता रहे। श्रीकृष्ण में हमारा प्रेम बना रहे। उद्धवजी विदा ले मथुरा में आये और गोपी-गोपों द्वारा दी हुई भेंट उग्रसेन को दीं।

उद्धवजी श्रीकृष्ण से कहने लगे- हे कृष्ण! आपके विरह में गोपी, ग्वाल, गाय, बछड़ा, पशु, पक्षी तथा पेड़ सब दुःखी हैं और आपकी याद करते हैं।

अक्रूर को हस्तिनापुर भेजना

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! एक दिन श्रीकृष्ण काम से सन्तापित हुई कुब्जा के हित की इच्छा कर उसके घर गये। भगवान को देखकर कुब्जा श्रीकृष्ण के समीप आकर आसन बिछाकर चरण प्रक्षालनादि करने लगी। फिर श्रीकृष्ण कुब्जा के शयन मन्दिर में शय्या पर जा विराजे। अनन्तर कुब्जा, स्नान, लेपन, वस्त्र, आभूषण, फूलों की माला, सुगन्ध ताम्बूल और मादक पदार्थ पीकर अपने शरीर को सजाकर लाज भरी मुसकान और बाँकी चितवन से मोहित करती हुई भगवान के समीप आई। उस सुन्दरी को बुलाकर उसके हाथ को पकड़ श्रीकृष्ण उसके साथ रमण करने लगे। उस कुब्जा ने स्तनों के मध्य प्राप्त हुई आनन्द मूर्ति श्रीकृष्ण को हाथों से पकड़ छाती से लगाकर बहुत दिनों का ताप दूर किया। भगवान से कुब्जा ने मांगा कि प्यारे! मेरे घर कुछ दिन रहकर मेरे

साथ आप रमण करो। मैं नित्य एक बार तुम्हारे घर आया करूंगा, इस प्रकार कुब्जा को वरदान दे श्रीकृष्ण अपने घर आये। हे राजन्! जो मनुष्य भगवान की अराधना कर विषय सुखों का वरदान मांगता है, वह मूर्ख है। इसके उपरान्त उद्धव और बलरामजी को साथ ले श्रीकृष्ण अक्रूर के घर गये। अक्रूर जी ने कहा- हे प्रभो! कंस मारा गया, बहुत अच्छा हुआ। आप ही ने इस कुल का उद्धार किया है, आप दोनों के कारण जगत्‌रूप, प्रधान पुरुष हो। हे नाथ! आज हमारे बड़े भाग्य हैं श्रीकृष्ण बोले- हे अक्रूरजी! आप हमारे गुरु व चाचा हो इस कारण सराहनीय हो। हम आपके लड़के हैं। आप हम सबके बीच अति श्रेष्ठ हो। पाण्डवों के कल्याण की इच्छा से उनका समाचार जानने को आप हस्तिनापुर जाओ। पांडु के मरने के उपरान्त कुन्ती माता सहित युधिष्ठिर आदि पाण्डव महादुःखी हैं। उनको धृतराष्ट्र ले आया है। ऐसा सुना है कि वे वहीं हस्तिनापुर में उसके समीप रहते हैं। धृतराष्ट्र पांडु के पुत्रों में समानता नहीं रखता, अपने पुत्र आदि के वश में होकर उनको दुःख दे रहा है। अतः उनका समाचार जानकर लौट आओ। जब वहां का समाचार विदित हो जावेगा तो जिस प्रकार पांडवों को सुख होगा वही यत्न करेंगे।

श्रीशुकदेवजी ने कहा हे परीक्षित! अक्रूरजी हस्तिनापुर गये। वहां उन्होंने धृतराष्ट्र, भीष्म पितामह,

विदुर, कुन्ती आदि को देखा। अक्रूरजी सबके साथ यथायोग्य मिले, सब लोग अपने सुहृदजनों का कुशल अक्रूरजी से पूछने लगे। पांडवों के साथ दुर्योधन आदिकों की जो कुछ आगे करने की इच्छा थी उसको, और दुर्योधन आदि ने जो कुछ अन्याय किया था, सो सम्पूर्ण वार्ता विदुरजी ने अक्रूर जी से कही। अक्रूर को आया देख कुन्ती उसके समीप आकर नेत्रों से आंसू बहाती हुई कहने लगी- हे सौभाग्य! हमारे माता, पिता क्या कभी हमारी याद करते हैं? भाई वसुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण और बलराम जी अपनी फूफी के पुत्रों की क्या कभी सुधि करते हैं? क्या कृष्ण बलराम मुझको और मेरे बालकों को धीरज देंगे? कुन्ती श्रीकृष्ण की स्तुति कर रोने लगी- हे कृष्ण! बालकों सहित मैं आप की शरण आई हूं, रक्षा करो। अक्रूरजी और विदुरजी कुन्ती को समझाने लगे कि तुम इतना शोक क्यों करती हो? गमन करते समय अक्रूरजी राजा धृतराष्ट्र की सभा में गये और जो वचन बलरामजी ने कहे थे, कहने लगे- हे धृतराष्ट्र! पांडु के पश्चात् उनके पुत्रों को गद्दी का अधिकार था, आपको गद्दी छीन लेना उचित नहीं। विषमभाव से बर्ताव करोगे तो लोक में निन्दा होगी और अन्त समय नरकगामी होगे। पांडवों और अपने पुत्रों में समान भाव रखो। मन को अपने वश में करके शांत करो, समदर्शी हो जाओ। धृतराष्ट्र बोले- अक्रूरजी! तुमने जो कल्याणकारी वचन कहे, उनको सुनकर

हमारा मन तृप्त नहीं हुआ। तो भी तुम्हारी सत्य वाणी पुत्रों की प्रीति के कारण मेरे चंचल चित्त में स्थिर नहीं होती। ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं होता। अक्रूरजी धृतराष्ट्र का अभिप्राय जान वहां से लौट मथुरा आये और सब बातों को श्रीकृष्ण बलरामजी से कह सुनाया।

यादवों के लिए द्वारिकापुरी बसाना

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! अस्ति और प्राप्ति कंस की दोनों रानियाँ अपने पिता जरासन्ध के घर चली गईं। वहां उन दोनों ने जरासन्ध से अपने विधवा होने का कारण कह सुनाया। इसको सुनकर जरासन्ध शोक से क्रोधयुक्त हो सम्पूर्ण पृथ्वी को यादवों से हीन कर देने का उद्यम करने लगा। तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर उसने मथुरा को चारों ओर से घेर लिया। जरासन्ध की सेना को आते देख और अपनी मथुरापुरी को व्याकुल जानकर भगवान देशकाल के अनुसार सोचने लगे कि प्रथम इस सेना को मारूं, अथवा केवल जरासन्ध को मार सेना को अपने वश में करूं या सेना सहित जरासन्ध का वध करूं। अन्त में विचारा कि सेना का वध करूं। भगवान इस प्रकार विचार कर ही रहे थे कि उसी समय दो सारथी ध्वजा कबच आदि सामग्री सहित आकाश से उतरे। दिव्य प्राचीन आयुधों सहित रथों को देखकर श्रीकृष्ण

बलरामजी से कहने लगे- हे आर्य! आप ही यादवों की रक्षा करने वाले हो। यादवों को घोर दुःख उपस्थित हुआ है इसी कारण यह रथ और शस्त्र आपके निमित्त आये हैं। श्रीकृष्ण बलरामं शस्त्र धारणकर थोड़ी सी सेना ले दारूक सारथी सहित मथुरापुरी से बाहर निकले। निकलते ही शंख बजाया। कृष्णा-बलराम को समर भूमि में आया देखकर जरासन्ध कहने लगा- हे कृष्ण! तू गुप्त रहने वाला अत्यन्त कपटी है, इस कारण तेरे साथ युद्ध नहीं करूंगा। हे बलराम! यदि तेरी श्रद्धा हो तो मेरे साथ युद्ध कर और स्वर्ग को जा। श्रीकृष्ण बोले- शूरवीर व्यर्थ बकवास नहीं करते परन्तु समर भूमि में अपना पौरुष दिखाते हैं। हे राजन्! जरासन्ध ने श्रीकृष्ण बलराम जी के समीप जाकर उनको सेना सहित घेर लिया। शत्रुओं से अपनी सेना को अति पीड़ित देखकर श्रीकृष्ण ने शारंग धनुष को टंकारा। धनुष खींचकर तीक्ष्ण वाणों के समूह से रथ, घोड़े, हाथी, पैदलों को मारने लगे। मृतकों के शरीर से रक्त की नदियां बहने लगीं जिसे देखकर कायर घबड़ाते थे और शूरवीर प्रसन्न होते थे। हे परीक्षित! बलरामजी ने भी शत्रुओं को अपने मूशला युद्ध से मार-मार कर जरासन्ध की अपार सेना का नाश कर दिया। जैसे मृग को सिंह पकड़ लेता है, जरासन्ध को वरुण पाश और मनुष्य पाश से जब बलदेवजी बांधने लगे तब श्रीकृष्ण ने उसे छुड़वा दिया। जरासन्ध जब श्रीकृष्ण बलरामजी

के बन्धन से छूटा तब अपने मन में लज्जित होकर शर्म खाकर देश को चला गया। शत्रु सेना को मार कर अपनी सेना को साथ लिये श्रीकृष्ण मथुरापुरी में प्रविष्ट हुए। रणभूमि से लाया हुआ असंख्य धन राजा उग्रसेन को अर्पण कर दिया। जरासन्ध फिर इस प्रकार तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर सत्रह बार चढ़ आया और श्रीकृष्ण से रक्षित यादवों ने सत्रह बार मार-मार कर भगा दिया। जब सेना मारी जाती, तब जरासन्ध लौट जाता था। जरासन्ध अठारहवीं बार आने वाला था कि नारदजी का भेजा हुआ कालयवन दिखाई दिया। वह असुर तीन करोड़ मलेक्ष साथ लिए मथुरापुरी पर चढ़ आया। उसने चारों ओर से पुरी को घेर लिया। उस समय बलराम सहित श्रीकृष्ण यह विचार करने लगे कि आज तो कालयवन ने हमको घेर लिया है। कल परसों तक जरासन्ध भी आ जावेगा। यदि हम कालयवन से युद्ध करें और जरासन्ध आ जाये तो अवश्य हमारे यदुवंशियों को मारेगा। इस कारण ऐसा दुर्ग बनाना चाहिए जहां मनुष्य न जा सके, उसमें अपने जाति वाले यादवों को रख कालयवन का वध कराऊंगा। यह सम्मति करके श्रीकृष्ण ने समुद्र के बीच बारह योजन का एक कोट निर्माण किया। उसके अन्दर एक अद्भुत नगर बनाया। उस द्वारकापुरी में विश्वकर्मा की विद्या और चतुराई थी, द्वारिकापुरी में भगवान ने अपने सब मनुष्यों को पहुंचाकर बलरामजी से कहा- हे

भाई! आप यहां मथुरापुरी में रह कर शेष प्रजा की रक्षा करो। तब बिना शंख लिये श्रीकृष्ण मथुरापुरी के बाहर निकले।

कालयवन का भस्म होना

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! मथुरापुरी से बाहर निकले हुए श्रीकृष्ण को देखकर कालयवन कहने लगा कि यह कृष्ण है। नारदमुनि के कहे हुए लक्षणों से युक्त दूसरा नहीं हो सकता है परन्तु यह तो शस्त्रहीन अकेला चल रहा है, इस कारण मैं भी शस्त्र लिए बिना इसके साथ युद्ध करूंगा। कालयवन अपने मन में यह निश्चय कर श्रीकृष्ण को पकड़ने को दौड़ा। भगवान गुफा में घुस गए, पीछे-पीछे वह भी घुस गया। वहां एक और पुरुष सो रहा था उसको देखकर कालयवन अपने मन में सोचने लगा कि निश्चय यह मुझको इतनी दूर लाकर यहां साधु की नाईं सो रहा है। उस सोते हुए पुरुष को कृष्ण मानकर कालयवन ने उसके एक लात मारी। उस पुरुष ने आंखें खोल, चारों ओर देखा तो समीप में कालयवन दीख पड़ा। हे परीक्षित! उस पुरुष की दृष्टि पड़ते ही कालयवन के शरीर में अग्नि प्रकट हुई जिससे उसका शरीर जलकर भस्म हो गया। परीक्षित ने पूछा हे ब्रह्मन्! ऐसे तेजस्वी पुरुष का किस वंश में जन्म हुआ, तथा किस कारण वह गुफा में सो रहा था। शुकदेवजी बोले- हे परीक्षित! वह इक्ष्वाकु

वंश में उत्पन्न राजा मांधाता का पुत्र मुचुकुन्द था। असुरों से भयभीत होकर आदि देवताओं ने अपनी-अपनी रक्षा के अर्थ प्रार्थना की तब मुचुकुन्द ने बहुत दिनों तक देवताओं की रक्षा की। तदनन्तर स्वामी कार्तिकजी को आया देखकर देवता राजा मुचुकुन्द से कहने लगे- हे राजन्! हमारी रक्षा करने में आपको बहुत कष्ट हुआ है। अब जो कुछ चाहो सो मांग लो। तब मुचुकुन्द ने यह वर मांगा कि मैं सोता ही रहूं और जो कोई हमारी निद्रा भंग करे, वह तुरन्त भस्म हो जावे। देवताओं ने कहा ऐसा ही होगा। राजा मुचुकुन्द गुफा में जाकर सो रहा। हे परीक्षित! मुचुकुन्द की दृष्टि से कालयवन के भस्म हो जाने पर श्रीकृष्ण ने राजा मुचुकुन्द को दर्शन दिया। भगवान के दर्शन कर मुचुकुन्द भगवान के तेज से चकित हो पूछने लगा आप कौन हो! आप भगवान अग्नि हैं? मैं आपको विष्णु भगवान ही मानता हूं, क्योंकि आप अपने तेज से इस गुफा के अन्धकार को दूर कर रहे हो। भगवान बोले- हे नरोत्तम! हमको आपका जन्म कर्म व गोत्र सुनने की बहुत अभिलाषा है। सो यह सुनाइये। राजा मुचुकुन्द बोले- पुरुषसिंह! मैं इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न मान्धाता का पुत्र हूं। मुचुकुन्द मेरा नाम है। मैं अपनी इच्छा के अनुसार इस वन में आकर सो रहा था, परन्तु अभी किसी ने आकर मुझको जगा दिया और वह अपने आप से भस्म हो गया। तदन्तर आपके दर्शन हुए। भगवान

बोले- हे राजा मुचुकुन्द! धर्म की रक्षा करने के अर्थ और दैत्यों के नाश करने के लिए ब्रह्मा ने हम से प्रार्थना की तब हमने यदुकुल में वसुदेवजी के घर अवतार लिया है। पूर्वजन्म में जो कलिनेमि दैत्य था, वह कंस के नाम से प्रकट हुआ उसको मारा और साधुओं से वैर मांगने वाले असुरों का वध किया। कालयवन आपकी तीक्ष्ण दृष्टि से जलकर भस्म हो गया। मैं इस गुफा में आपके कारण आया हूं। तदनन्तर राजा मुचुकुन्द श्रीकृष्ण को प्रणाम कर कहने लगे- हे ईश! आपकी कृपा से मैं अनायास राज्य आदि बन्धनों से छूट गया। आपके चरणारविन्द सेवन के बिना मैं कुछ भी वरदान नहीं मांगता। मैं इस जगत् में कर्म फलों के कारण दुःखी हूं। मुझको किसी प्रकार भी शान्ति प्राप्त नहीं होती है। हे शरण देने वाले! अब मैं आपके चरणारविन्दों की शरण आया हूं, मेरी रक्षा करो। भगवान बोले- हे महाराज! आपकी मति अत्यन्त निर्मल है और उदार है। क्योंकि मैंने अनेक वरदानों का लोभ दिया, तो भी आपकी मति चलायमान न हुई। मुझमें अपना मन लगाकर पृथ्वी पर जहां आप की इच्छा हो, वहां विचरो। आपके हृदय में सदा मेरी दृढ़ भक्ति बनी रहेगी। आपने क्षत्रिय धर्म में रहकर जो जीवहिंसा की है सो अब सावधानीपूर्वक तप करो। दूसरे जन्म में आप ब्राह्मण होकर शुद्ध रूप होकर मुझमें प्राप्त हो जाओगे।

श्रीकृष्ण के पास रुक्मिणीजी का दूत भेजना

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! तब भगवान को प्रणाम कर इक्ष्वाकु नन्दन मुचुकुन्द जी गुफा से बाहर निकल आए और कलियुग आ गया, ऐसा निश्चय कर उत्तर दिशा को चले गए। अनन्तर गन्धमधन पर्वत पर पहुंचे, फिर बदरिकाश्रम गये, वहां द्वन्दों को सहकर शान्त चित्त हो, तप करके हरि भगवान की आराधना करने लगे। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने मलेच्छों की सब सेना का संहार किया और उनका धन लेकर द्वारकापुरी पहुंचा दिया। श्रीकृष्ण की आज्ञा से सब धन लेकर मनुष्य द्वारिकापुरी जा रहे थे कि इतने में जरासन्ध सेना लेकर फिर चढ़ आया। श्रीकृष्ण बलरामजी शत्रु सेना को देखकर शीघ्र ही पुरी से बाहर भागे। उन दोनों को भागते देखकर जरासन्ध रथों की सेना ले पीछे दौड़ा। श्रीकृष्ण बलरामजी प्रवर्पण नामक पर्वत पर चढ़ गये। हे परीक्षित! जरासन्ध ने श्रीकृष्ण बलराम को पर्वत पर ढूंढ़ने पर भी जब न पाया तब उसके चारों ओर ईंधन रखकर अग्नि लगा दी। जब उस पर्वत के शिखर जलने लगे और चोटी तक आग दहकी तब श्रीकृष्ण बलरामजी पर्वत के शिखर से नीचे पृथ्वी पर कूदे। जरासन्ध और उसके सेवकों में से किसी ने उन दोनों को न देखा और श्रीकृष्ण बलरामजी द्वारकापुरी

आ विराजे। जरासन्ध भी राम कृष्ण को पर्वत सहित भस्म हुआ जानकर अपनी सेना साथ लिए मगधदेश को चला गया। अनर्तदेश के राजा रेवत ने अपनी रेवती कन्या बलदेवजी को विवाह दी। भगवान भी विदर्भ देश के राजा भीष्म की कन्या रुक्मिणीजी को स्वयंवर में से हर लाये। राजा शिशुपाल और उसके पक्षपाती शल्य आदि राजाओं को जीत सबके देखते श्रीकृष्ण चन्द्र रुक्मिणीजी को इस प्रकार हर ले गये जैसे देवताओं के देखते गुरुजी अमृत हर ले गए थे। परीक्षित ने पूछा- हे ब्रह्मन्! जरासन्ध, शल्य आदि राजाओं को श्रीकृष्ण जिस प्रकार जीतकर रुक्मिणीजी को हर लाए, वह कथा कृपाकर के वर्णन कीजिए।

श्रीशुकदेवजी बोले- हे राजन्! विदर्भ देश का भीष्मक नाम राजा था। उसके पांच पुत्र और एक कन्या थी। एक दिन देवर्षि नारद के मुख से श्रीकृष्ण का गुणानुवाद सुनकर रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को अपने समान जान विवाह करने के अर्थ मन में प्रतिज्ञा की। इधर श्रीकृष्ण रुक्मिणी को बुद्धि लक्षण, उदारता, रूप, शील और गुण से सम्पन्न सुनकर अपने समान स्त्री जान मन में उनके साथ विवाह करने का विचार किया। हे परीक्षित! रुक्मिणीजी के माता-पिता की यही इच्छा थी कि इसका विवाह श्रीकृष्ण से करेंगे। परन्तु भाई ने कहा कि इसके योग्य वर राजा शिशुपाल है। जब रुक्मिणीजी ने अपने भाई का निश्चय सुना

तब मन में उदास होकर एक ब्राह्मण को श्रीकृष्ण को लिवा लाने के लिए द्वारिकापुरी भेजा। श्रीकृष्ण ने उस ब्राह्मण को सिंहासन पर बैठाया और पूजन करने लगे। हे राजन्! जब वह ब्राह्मण भोजन कर चुका तब भगवान ने ब्राह्मण से पूछा- हे द्विजवर! जिस कार्य निमित्त आप यहां पधारे हो, वह कार्य गुप्त न हो तो कहो, जिससे उसके करने का उपाय किया जाय। तब ब्राह्मण ने सब वृत्तान्त कहा। रुक्मिणीजी ने जो प्रेम-पाती भेजी थी वह खोलकर श्रीकृष्णजी को दिखलाई। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का लिखा हुआ प्रेम पत्र पढ़ा। जिसमें उसने लिखा था कि हमारे कुल में विवाह से पहले दिन कुल देवी की यात्रा होती है, जिसमें कन्या को पार्वतीजी के पूजन करने के निमित्त बाहर जाना पड़ता है। उस अवसर पर अम्बिका के मन्दिर से हमको हर ले जाना। यदि मुझ पर कृपा न करोगे तो मैं व्रत करके अपने प्राणों का परित्याग कर दूंगी। पत्री सुनकर ब्राह्मण कहने लगा- हे द्वारकानाथ! यह गुप्त संदेश लेकर मैं आया हूं। आपको जो करना हो करें क्योंकि इस कार्य में विलम्ब नहीं करना चाहिए।

रुक्मिणी हरण

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! श्रीकृष्ण रुक्मिणीजी का सन्देश सुनकर ब्राह्मण से बोले- हे विप्रवर! रुक्मिणीजी का मन मुझ में लगा है, उसी

प्रकार मेरा मन भी रुक्मिणीजी में लग रहा है। रण में राजाओं को जीत कर रुक्मिणी जी को हर लाऊंगा। तदन्तर श्रीकृष्णजी ने दारुक को बुलाकर आज्ञा दी कि शीघ्र रथ जोतकर लाओ। तब वह सारथी रथ जोतकर श्रीकृष्ण के सन्मुख आकर कहने लगा कि महाराज रथ उपस्थित है। रथ को देखते ही श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण को उस रथ पर चढ़ाया, फिर आप चढ़ कर बैठ गये। शीघ्रगामी घोड़ों के द्वारा एक ही रात्रि में विदर्भ देश पहुंच गए। वहां राजा भीष्मक व रुक्मी स्नेह वश होकर चन्देली के राजा शिशुपाल को अपनी कन्या देने के लिए नगर की शोभा और पितृदेव पूजन आदि कर रहा था। राजमार्ग, गली और चौहट्टों में छिड़काव करा दिया, ध्वजा पताका और बन्दनवारों से पुर को शोभायमान किया। हे राजन्! पितर और देवताओं का पूजन करके ब्राह्मणों को भोजन कराया। राज कन्या के निमित्त स्वस्ति वाचन करवाया। अनन्तर कन्या को स्नान कराकर, उसके हाथ में विवाह का कंकण बांध, नवीन वस्त्र पहिनाकर अनेक अलंकारों से सुसज्जित किया। इसी प्रकार दमघोष ने भी अपने पुत्र शिशुपाल के मंगल निमित्त ब्राह्मणों से उचित कृत्य कराया। मतवाले हाथियों का समूह, रथ, पैदल, घोड़े, चतुरंगिनी सेना साथ लेके शिशुपाल कुण्डिनपुर पहुंचा। राजा भीष्मक ने अगवानी कर उसको अच्छी प्रकार सजाये हुए स्थान में जनवासा दिया। उस बारात के साथ शल्व,

जरासन्ध, दन्तवक्र, विदूरथ और पौंड्रक आदि हजारों राजा आये। सब राजाओं ने यह निश्चय कर लिया कि कदाचित कृष्ण आकर रुक्मिणी का हरण करेगा तो सब इकट्ठे होकर उसे मार भगावेंगे। बलरामजी शिशुपाल के पक्षपाती राजाओं का यह उद्यम सुनकर मन में विचार करने लगे कि श्रीकृष्ण जी अकेले गये हैं, वहां कलह अवश्य होगी। वह यह समझ चतुरंगिनी सेना साथ लिए कुण्डिनपुर पहुंचे। रुक्मिणी श्रीकृष्ण के आने की बाट देख रही थी। ब्राह्मण को लौटकर आया न देखकर बारम्बार चिन्ता करने लगी, अहा! मेरे विवाह में अब एक ही रात्रि शेष है और भगवान नहीं आये। इसमें क्या कारण है? सोच-विचार करती हुई रुकिम्णी के बायें अंग, भुजा और नेत्र फड़कने लगे। प्रातः होते ही श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण से कहा कि आप रुक्मिणी जी को हमारे आने की खबर करो। तब ब्राह्मण रनिवास में पहुंचा। रुक्मिणी के पूछने पर ब्राह्मण ने कहा कि श्री यदुनन्दन आ पहुंचे हैं। 'रुक्मिणी को ले जाऊंगा' यह श्रीकृष्ण के वचन भी रुक्मिणी जी को कह सुनाये। श्रीकृष्णचन्द्र को आया जान रुक्मिणीजी बहुत प्रसन्न हुईं। भीष्मक विवाहोत्सव देखने के निमित्त श्रीकृष्ण बलराम को आया सुनकर भगवान के सम्मुख आया। भीष्मक ने उन दोनों भाइयों को सुन्दर स्थान में टिका कर सत्कार किया। विदर्भ देश के निवासी भगवान के मुखारविन्द का पान करने

लगे और कहने लगे रुक्मिणी के योग्य पति श्रीकृष्ण ही हैं और श्रीकृष्ण के योग्य स्त्री रुक्मिणी ही हैं। हे परीक्षित! योद्धाओं से रक्षित रुक्मिणीजी अम्बिकादेवी का पूजन करने को मन्दिर की ओर चलीं। वहां पहुंच हाथ पांव धोकर, आचमन कर, रुक्मिणी से महादेव सहित पार्वतीजी का पूजन करा कर प्रणाम किया। रुक्मिणीजी देवीजी की प्रार्थना करने लगीं- हे अम्बिके! आपको नमस्कार करके मैं यही वर चाहती हूं कि श्रीकृष्ण मेरे पति हों, ऐसी मुझ पर कृपा करो। इस प्रकार प्रार्थना करके, जल, चन्दन, अक्षत, धूप, वस्त्र, माला, पुष्प नाना प्रकार के उपहार से रुक्मिणीजी ने देवी का पूजन किया। तदन्तर उसी भांति से सौभाग्यवती ब्राह्मणियों का पूजन किया। आशीर्वाद प्राप्त करने के बाद रुक्मिणी के रूप को देखकर योद्धा जो रुक्मिणी की रक्षा करने के लिए आये थे, कामदेव से पीड़ित हो मोहित हो गए। रुक्मिणी की उदारता और चितवन को देखकर सारे राजा मोहित हो गए, उनके हाथों से अस्त्र छूट गये। रुक्मिणी जी कोमल चरणों से धीरे-धीरे चले जा रही थीं। जब वे श्रीकृष्ण जी की बाट देखती हुई अपने बांये हाथ से अलकों को उठाये हुए राजाओं की ओर देखने लगीं तो वहीं खड़े हुए श्रीकृष्ण दिखाई पड़े। ज्योंही रुक्मिणी ने रथ पर चढ़ने की इच्छा की त्योंही श्रीकृष्ण उसका हरण कर अपने रथ पर चढ़ाकर निकाल कर ले गए। अनन्तर बलराम जी यदुवंशियों

सहित आकर मिले। उनको साथ ले श्रीकृष्ण धीरे-धीरे चलने लगे। जरासन्ध के आश्रित राजा इस अपमान को न सहकर कहने लगे- अहो! हमको धिक्कार है; जैसे केशरी के भाग को मृग हर ले जाय वैसे ही तुम धनुर्धारियों के यश को नाश कर यह ग्वाला रुक्मिणी को हरण कर लिये जाता है।

रुक्मिणी विवाह

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! इस प्रकार वे सब राजा कोप करके सेना से वेष्टित हो धनुष धारण कर श्रीकृष्ण के पीछे दौड़े। जब यादवों ने शत्रु दल को आते देखा तो वे भी उनके सम्मुख उपस्थित हुए। युद्ध निपुण व राजा यादवों पर वाणों की वर्षा करने लगे। रुक्मिणीजी अपने पति श्रीकृष्ण की सेना को वाणवृष्टि से ढकी देखकर भयभीत और विह्वल नेत्र हो श्रीकृष्ण के मुख की ओर देखने लगीं। तब भगवान बोले- हे सुनयनी! तुम कुछ भय मत करो। हमारी ओर से यादव इन शत्रुओं की सेना का संहार कर देंगे। अनन्तर बलराम आदि शूरवीर यादव शत्रुओं को अपने वाणों से नष्ट करने लगे। रथ, घोड़े, हाथी और योद्धाओं के अनेकों सिर कट-कटकर पृथ्वी पर गिरने लगे। यादवों ने जब इस प्रकार संहार किया, तब जरासन्ध आदि राजा भाग गये। सम्पूर्ण राजा आकर शिशुपाल को समझाने लगे- हे पुरुषसिंह! आप यह उदासी छोड़ दो, प्रिय, अप्रिय

वस्तुओं की स्थिरता सदैव देखने में नहीं आती, आजकल दैव यादवों के अनुकूल हैं, इस कारण उन्होंने जीत लिया। जब हमारा समय आवेगा हम उनको जीत लेंगे। जब मित्रों ने शिशुपाल को समझाया तब शिशुपाल अपने नगर को गया और राजा भी अपने-अपने नगर को चले गये। रुक्मी अपनी बहिन रुक्मिणी का हरा जाना न सहकर एक अक्षौहिणी सेना ले, श्रीकृष्ण के पीछे दौड़ा। रुक्मी ने यह प्रतिज्ञा की कि श्रीकृष्ण को बिना मारे और रुक्मिणी को बिना लौटाये कुण्डिनपुर में प्रवेश नहीं करूंगा। दुर्बुद्धि रुक्मी दुर्वचन कहता हुआ रथ दौड़ा कर, खड़ा रह! खड़ा रह!! कहता हुआ कृष्ण को पुकारने लगा। तदन्तर श्रीकृष्ण के समीप पहुंचकर रुक्मी ने धनुष खींचकर तीनों वाणों से श्रीकृष्ण को ताड़ित किया और कहा- हे यादव कुल कलंक कृष्ण! क्षण मात्र तू ठहर! जैसे कौआ होम की सामग्री लेकर भाग जाता है। ऐसे ही तू मेरी बहिन को चुराकर लिए जाता है। हे छली! मैं तेरे अहंकार को दूर करूंगा। यह सुन कृष्ण ने मुस्करा कर रुक्मी के धनुष को काट-काट वाणों से उसको बेधित किया। आठ वाणों से घोड़ों को, दो वाणों से सारथी को बींध डाला और तीन वाणों से ध्वजा गिराई, तब रुक्म ने दूसरा धनुष लेकर पांच वाण श्रीकृष्णजी के मारे। भगवान ने यह धनुष भी काट डाला। फिर वह तीसरा धनुष लेकर आया, भगवान ने वह भी गिरा

दिया फिर रुक्मी ने परिध, त्रिशूल, खंग, बरछा जो-जो अस्त्र लिये, प्रभु ने सब काट गिराये। जब कोई शस्त्र न चल सका, तब रथ से कूद खंग हाथ में ले मारने को भगवान के सम्मुख झपटा, तब झपट कर आते हुये रुक्मी की ढाल तलवार श्रीकृष्ण जी ने काट गिराई। फिर वे अपनी पैनी तलवार लेकर रुक्मी को मारने को उद्यत हुए। भाई के मारने का उद्योग देखकर रुक्मिणी नेत्रों में आंसू भरकर भगवान के चरणों में गिरकर यह वचन कहने लगीं- हे योगेश्वर! यह मेरा भाई, मारने योग्य नहीं है। तब अपने चरणों में रुक्मिणी को गिरी देखकर भगवान ने रुक्मी को नहीं मारा। अनन्तर रुक्मी को वस्त्र से बांध मूछों समेत सिर मुंड़ाकर रथ के पीछे बांध लिया। इतने में ही रुक्मी की सेना का विध्वंस करके बलरामजी आ गये। रुक्मी की दशा देखकर बलराम जी ने उसको छोड़ दिया। फिर श्रीकृष्ण जी से बोले- हे कृष्ण! यह तुमने अच्छा नहीं किया जो साले को बांधा, इसमें निन्दा होगी क्योंकि सिर मूंछ-दाढ़ी मुड़वाकर कुरूप करना सम्बन्धियों का मरना है। फिर रुक्मिणी से कहने लगे- हे सुशीले! हमको दुःख है कि तुम्हारा भाई विरूप हुआ परन्तु हमको दोष मत देना क्योंकि पुरुष अपने कर्मों का फल भोगता है। हे रुक्मिणी! अज्ञान से उत्पन्न शोक को, तत्व ज्ञान से तजकर स्वस्थ हो जाओ। हे राजन्! तब रुक्मिणी जी ने अपने मन को सावधान किया। अनन्तर रुक्मी ने

शत्रुओं से छूट कर प्रतिज्ञा की अब कुण्डिनपुर नहीं जाऊंगा वरन् यहीं एक नगर बसाऊंगा। ऐसा विचार कर भोजकट नामक नगर बसा यहीं रहने लगा।

हे परीक्षित! इस प्रकार श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को द्वारका में लाकर विधि पूर्वक विवाह किया। विवाहोत्सव पर सब नर-नारी आनन्द में मग्न चित्र विचित्र वस्त्र धारण किये दुल्हा दुलहिन को देने को सुन्दर-सुन्दर वस्त्र लाने लगे। उस समय द्वारकापुरी में ऊंचे-ऊंचे इन्द्र ध्वज, विचित्र माला, रत्न व तोरणों से नगर शोभायमान हो गया। हे राजन्! नगर निवासियों को रुक्मिणीजी सहित श्रीकृष्ण का दर्शन करके बड़ा आनन्द हुआ।

प्रद्युम्न दर्शन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! श्रीकृष्ण का अंश कामदेव शिवजी के क्रोध से भस्म हो गया था। वही कामदेव श्रीकृष्ण के वीर्य से रुक्मिणी से उत्पन्न हो प्रद्युम्न नाम से प्रसिद्ध हुआ। शंबर नामक असुर दस दिन के भीतर प्रद्युम्न का हरण करके समुद्र में डाल अपने घर चला गया। इस बालक को एक मत्स्य निगल गया। उस मत्स्य को धीमरों ने पकड़ लिया और शंबरासुर को भेंट किया। शंबरासुर ने रसोई बनाने वालों को दे दिया, वे लोग रसोई में लाकर उस मत्स्य को जब छुरी से चीरने लगे, तो पेट में बालक दिखाई

पड़ा। उन्होंने वह बालक मायावती को दिया, उसको देख मायावती को शंका हुई। तब नारद मुनि ने आ मायावती को नाम धारिणी रीति से समझाया कि यह तुम्हारा पति कामदेव आ पहुंचा है। यह श्रीकृष्ण जी के वीर्य से उत्पन्न हुआ है, इसी कारण तुम यहां रहती हो। यह कह कर जिस प्रकार शंबरासुर ने उसे समुद्र में डाल दिया था और फिर उसको एक मत्स्य निगल गया, यह सब वृत्तान्त कह सुनाया। मायावती रूप की रति शंबरासुर ने रसोई के काम में रखी थी। अनन्तर मायावती उसको कामदेव जान बड़ा प्रेम करने लगी। हे राजन्! प्रद्युम्न थोड़े ही समय में यौवन अवस्था को प्राप्त हो गया। मनुष्य लोक में अपने पति प्रद्युम्न को लाज भरी मुस्कान से देख कर रति मोहित करने लगी। एक दिन प्रद्युम्न रति से बोले- हे माता! जान पड़ता है कि तुम्हारी मति और हो गई है क्योंकि तुम मातृ भाव छोड़कर स्त्री का सा आचरण करती हो। रति कहने लगी- आप वासुदेव के पुत्र हो, शंबरासुर आपको चुरा ले आया है, मैं आपकी स्त्री रति हूं, आप कामदेव हो। आपका शत्रु शंबरासुर माया जानता है। अतएव दुर्जन है, उनको मोहन आदि माया करके आप मारिये। इस प्रकार कहकर रति ने अपने पति को माया को विनाश करने वाली महामाया विद्या दे दी। तब प्रद्युम्न ने शंबरासुर के निकट असह्य वचनों से उसका तिरस्कार किया और युद्ध करने को उसको बुलाया। तिरस्कार

किया हुआ शंबरासुर अत्यन्त क्रोधित हो लाल आंख किए, गदा लिये बाहर निकला और गदा को फिराया और प्रद्युम्नजी के ऊपर प्रहार किया।

हे राजन्! तब प्रद्युम्नजी ने खंग उठाकर किरीट, कुण्डल और दाढ़ी मूछों सहित शंबरासुर का शीश काट डाला। आकाश से देवताओं ने फूलों की वर्षा कर स्तुति की और आकाश द्वारा प्रद्युम्नजी को द्वारकापुरी पहुंचाया। हे परीक्षित! उनके स्त्रियों से सुशोभित अन्तःपुर में आकाश मार्ग से स्त्री सहित श्रीप्रद्युम्नजी आकर मन्दिर में प्रवेश कर गये। श्यामवर्ण, रेशमी पीताम्बर पहिने, लम्बायमान भुजा, लाल नेत्र, सुन्दर मुस्कान, मनोहर मुख और नीली टेढ़ी अलकावली से शोभायमान मुख वाले प्रद्युम्नजी को देख श्रीकृष्ण जी को आया जान सम्पूर्ण स्त्रियां लाज करके छिप गईं। फिर न्यूनाधिक लक्षण देख यह भी श्रीकृष्ण नहीं हैं, यह निश्चय कर प्रसन्नता पूर्वक वे स्त्रियां रति सहित प्रद्युम्नजी के समीप आईं। तदन्तर रुक्मिणीजी नष्ट हुए अपने पुत्र को स्मरण करके कहने लगीं कि मनुष्यों में श्रेष्ठ यह बालक कौन है? इसमें मेरी प्रीति बढ़ती जाती है और मेरी बाईं भुजा फड़क रही है। इस प्रकार रुक्मिणी जी विचार रही थीं कि श्रीकृष्ण देवकी और वसुदेवजी को साथ लिए वहां आ पहुंचे। यद्यपि श्रीकृष्ण भगवान यह जानते थे कि यह हमारा पुत्र स्त्री सहित आया है तथापि मौन साधकर बैठ गये। तब

उसी समय नारद मुनिजी वहां आये। जिस प्रकार उस बालक को शंबरासुर हर ले गया और समुद्र में डाल दिया इत्यादि सब कह सुनाया। देवकी वसुदेव और श्रीकृष्ण, बलराम तथा रुक्मिणी सब रति सहित प्रद्युम्नजी से मिलकर मग्न हो गए। खोए हुए प्रद्युम्नजी को आया सुन सब द्वारकावासी प्रसन्न हुए।

स्यमन्तक मणि की कथा

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! सत्राजित ने श्रीकृष्ण का अपराध किया था इस कारण उसने स्यमन्तक मणि सहित अपनी कन्या श्रीकृष्ण को दी। परीक्षित ने पूछा- हे ब्रह्मन्! सत्राजित ने श्रीकृष्ण का क्या अपराध किया और स्यमन्तक मणि उसे कहां मिली थी?

श्रीशुकदेवजी बोले- सत्राजित सूर्यनारायण का भक्त था। इस कारण सूर्य ने प्रसन्न हो उसको स्यमन्तक मणि दी। अपने कण्ठ में उस मणि को धारण किए वह द्वारिकापुरी में आया। तेज के प्रभाव से सत्राजित को किसी ने नहीं पहचाना। सब लोग सत्राजित को आता हुआ देख उग्रसेन की सभा में चौपड़ खेलते हुए श्रीकृष्ण के समीप आ कहने लगे- आपके दर्शन करने को सूर्य आ रहे हैं। हे राजन्! श्रीकृष्ण उन लोगों के वचन सुनकर हंसे और कहने लगे कि यह मणि के तेज से प्रकाशवान सत्राजित आ रहा है। तदन्तर सत्राजित ने देव मन्दिर में उस मणि को स्थापन

किया। वह मणि प्रतिदिन चार मन स्वर्ण उगलती थी तथा जिस दिशा में पूजित मणि रहती वहां दुर्भिक्ष नहीं पड़ता, चिन्ता नहीं व्यापती, माया धारियों की माया नहीं चलने पाती।

एक दिन राजा उग्रसेन के निमित्त श्रीकृष्ण ने वह मणि मांगी, परन्तु सत्राजित ने मणि नहीं दी। एक दिन सत्राजित का भाई प्रसेन उस मणि को कण्ठ में बांधे घोड़े पर चढ़ शिकार खेलने गया। वहां एक सिंह ने प्रसेन को मारकर मणि ले ली परन्तु ज्योंही कन्दरा में घुसने लगा त्योंही एक जाम्बवान ने सिंह को मार डाला और मणि ले ली तथा मणि को अपने बालक का खिलौना बनाया।

हे राजन्! प्रसेन को वन से लौटकर नहीं आया देखकर सत्राजित चिन्ता करने लगा उसके न लौटने पर कहने लगा कि प्रसेन वन में शिकार को गया था, सम्भव है कि उसको श्रीकृष्ण ने मारकर मणि छीन ली हो। यह सुनकर लोग भी गुप्त रीति से बातें करने लगे। श्रीकृष्ण अपने को कलंक लगा सुन प्रसेन को ढूंढने निकले। वन में उन्होंने मरे हुए प्रसेन और उसके घोड़े को देखा, आगे एक पर्वत पर मरे हुए सिंह को देखा। वहां ऋक्षराज की अंधकार से भरी हुई एक बड़ी गुफा थी, उसको देख गुफा के बाहर अपने साथियों को खड़ा करके श्रीकृष्ण उसमें घुस गए, वहां मणि से एक ऋक्ष के बालक को खेलता देख उसके समीप खड़े हो

गए। श्रीकृष्ण को देखकर ऋक्षी भयभीत हो पुकारने लगी। पुकार सुनकर जाम्बवान दौड़ा और क्रोध कर कृष्ण को साधारण मनुष्य समझ उनसे युद्ध करने लगा। जब कठोर मुष्टि प्रहार से, बिना विश्राम लिए युद्ध करते हुए दोनों को अट्ठाईस दिन हो गए तथा जब श्रीकृष्ण की मुष्टियों के लगने से जाम्बवान के अंग शिथिल हो गए, तब जाम्बवान शक्तिहीन हो कहने लगा- हे भगवान! मैं जान गया हूं कि प्राणियों के प्राण, ब्रह्मादिकों के भी आप निमित्त कारण और उत्पत्ति कार्य के उपादान कारण हो। इस कारण आप हमारे इष्टदेव हो। हे राजन्! जाम्बवान को ज्ञान उत्पन्न हुआ जानकर भगवान अपना हाथ भक्त के सिर पर धर कर गम्भीर वाणी में कहने लगे- हे जाम्बवान! हम मणि लेने को आये हैं क्योंकि इसके चुराने का हमें कलंक लगा है, उसको इस मणि से दूर करेंगे। इस प्रकार कहने पर जाम्बवान ने मणि सहित अपनी कन्या जाम्बवती सेवा करने को श्रीकृष्ण को दी। कृष्ण के जो साथी गुफा के बाहर बैठे थे, उन्होंने बारह दिन पर्यन्त श्रीकृष्ण की बाट देखी फिर दुःखित हो द्वारिका लौट गए। उन्होंने राज सभा में जाकर सब समाचार कह सुनाया। सभी द्वारिकावासी अत्यन्त दुखित होकर सत्राजित को भला-बुरा कहने लगे और श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए महामाया दुर्गा देवी की शरण में गये। ज्योंही देवी ने आशीर्वाद दिया कि तुम श्रीकृष्ण जी का दर्शन करोगे,

त्योंही जाम्बवती स्त्री को साथ लिए भगवान द्वारका में आ पहुंचे। श्रीकृष्ण को आया देख द्वारकावासी प्रसन्न हुए। फिर श्रीकृष्णजी ने सत्राजित को उग्रसेन की सभा में बुलाया और मणि प्राप्त होने का समाचार कह मणि आगे रख दी। वह अति लज्जित हो, मणि लेकर अपने घर आ गया।

श्रीकृष्ण के साथ विरोध होने से सत्राजित चिन्ता करने लगा कि मैं इस अपराध को कैसे दूर करूं कि मुझ पर कृष्ण भगवान कैसे प्रसन्न हों। तब सत्राजित ने निश्चय किया कि अपनी कन्या सत्यभामा श्रीकृष्ण को समर्पण करूं और मणि भी दूं, इससे सब दोष शांत हो जायेंगे। इस प्रकार निश्चय कर अपनी कन्या व मणि सत्राजित ने श्रीकृष्ण को अर्पण कर दी। श्रीकृष्ण सत्राजित से कहने लगे- महाराज! हम मणि को लेना नहीं चाहते। सूर्य भक्ति से यह मणि आपने पाई है, इस कारण आप ही के पास रहनी चाहिए। हम तो केवल इसके फल के अर्थात् उससे निकले हुए सोने के अधिकारी हैं। अतः इस मणि के द्वारा जितना धन प्राप्त हो, वह धन हमारे यहां भेज देना।

हे परिक्षित! उधर श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति में अक्रूर और कृतवर्मा ने शतधन्वा से कहा कि वह इस समय सत्राजित से मणि क्यों नहीं छीन लेता? क्योंकि सत्राजित ने सत्यभामा का विवाह हमसे तय करने के बाद हमारा तिरस्कार करके कन्या श्रीकृष्ण को विवाह दी। अक्रूर

व कृतवर्मा के बहकावे से शतधन्वा ने सोये हुए सत्राजित का सिर काट डाला। स्त्रियां रोती ही रहीं, परन्तु शतधन्वा सत्राजित को मार मणि लेकर चला गया। सत्यभामा अपने पिता को मरा देख विलाप करने लगीं। अनन्तर सत्राजित के शरीर को तेल के कढ़ाव में रख हस्तिनापुर गई और वहां अपने पिता के मारे जाने का वृत्तान्त श्रीकृष्णजी को सुनाया- हे राजन्! सत्राजित का मरण सुन श्रीकृष्ण बलेदव भी विलाप करने लगे। तदनन्तर सत्यभामा और बलरामजी को साथ ले श्रीकृष्ण द्वारिकापुरी आये और शतधन्वा को मार मणि लेने का विचार करने लगे। शतधन्वा ने भी भयभीत हो प्राण बचाने की इच्छा से कृतवर्मा से सहायता मांगी। कृतवर्मा ने सहायता देना अस्वीकार कर दिया। शतधन्वा उदास होकर अक्रूरजी के पास जा प्राणों की रक्षा की प्रार्थना करने लगा। अक्रूरजी ने उत्तर दिया कि भाई! श्रीकृष्ण का पराक्रम जानकर कौन उनसे विरोध करेगा। तब शतधन्वा बहुत घबराया और मणि अक्रूरजी को सौंप भाग निकला। राम कृष्ण भी अपने श्वसुर के मारने वाले के पीछे दौड़े। जब उसका घोड़ा मिथलापुरी में गिर पड़ा, तब शतधन्वा कांपता हुआ पैदल भागा, भगवान भी उसके पीछे पैदल दौड़े और शतधन्वा का सिर चक्र से काट डाला और मणि ढूंढने लगे। जब मणि नहीं मिली तब कृष्ण बलराम के पास आ कहने लगे- हे भाई! शतधन्वा के

पास मणि नहीं निकली। यह सुन बलरामजी ने कहा कि मणि शतधन्वा ने किसी और के पास रख दी होगी, इस कारण आप द्वारका जाओ और मैं राजा बहुलाश्व को देखने जाता हूं। हे राजन्! श्री बलरामजी को देखकर बहुलाश्व प्रसन्न हो सिंहासन से उतर बलरामजी की पूजा करने लगा। बलदेवजी मिथला में कितने ही वर्ष रहे। उस समय दुर्योधन ने बलरामजी से गदायुद्ध विद्या सीखी। यहां श्रीकृष्ण ने द्वारका में आकर शतधन्वा का वध और मणि न मिलने का समाचार सत्यभामा को सुनाया। सत्यभामा को संदेह हुआ कि शतधन्वा से मणि लेकर भगवान ने बलराम जी को दे दी है।इसके उपरान्त श्रीकृष्ण ने अपने मृतक श्वसुर की परलोक सम्बन्धी क्रियाएं कराईं। शतधन्वा का वध सुन अक्रूर और कृतवर्मा भय से द्वारका से निकल गए। अक्रूजी के निकल जाने पर द्वारकावासियों को भौतिक ताप बार-बार होने लगे। मुनिजन कहते हैं कि एक समय इन्द्र ने जल नहीं बरसाया तब काशिराज ने अपने राज्य में आये हुए अक्रूर के पिता स्वफल्क को अपनी पुत्री गान्दिनी ब्याह दी, तब काशी में वर्षा हुई। अक्रूरजी उन्हीं के पुत्र हैं, इस कारण अक्रूर का वैसा ही प्रभाव है। अक्रूर जहां-२ रहते हैं, वहां-२ वर्षा खूब होती है तथा किसी प्रकार का कष्ट और उपद्रव नहीं होते। यह जान श्रीकृष्ण ने काशी से अक्रूरजी को बुला सत्कार कर कहा, हे चाचा! स्यमन्तक मणि शतधन्वा ने

आपको सौंपी है। सत्राजित के पुत्र नहीं हैं, इस कारण जलपिंड देने व ऋण चुकाने से शेष धन बेटी के पुत्र लेवें ऐसी शास्त्र की आज्ञा है इस प्रकार यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से स्यमन्तक मणि हमारे पुत्रों को ही मिलनी चाहिए तथापि आप अपने ही पास रहने दो, यह आपके पास रह सकेगी परन्तु हमारे बलरामजी को इसके विषय में विश्वास नहीं है इस कारण वह मणि शीघ्र दिखाकर बन्धुजनों के सन्देह को शान्त करो। हे परीक्षित! जब श्रीकृष्ण ने अक्रूरजी को समझाया, तब अक्रूरजी ने मणि घर से ला श्रीकृष्ण को दे दी। श्रीकृष्ण ने मणि बन्धुजनों को दिखाकर अपना कलंक उतार अक्रूरजी को लौटा दी।

सर्वशक्तिमान् सर्वव्यापक भगवान श्रीकृष्ण के पराक्रम से परिपूर्ण यह आख्यान सब पापों, अपराधों और कलंको का मार्जन करने वाला तथा परम मंगलकारी है। जो इसे पढ़ता, सुनता या स्मरण करता है वह सब प्रकार की अपकीर्ति और पापों से छूटकर शांति का अनुभव करता है।

कालिंदी, सत्या और लक्ष्मणा से विवाह

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे राजन्! कुन्ती सहित पांचों पांडव जल गए, यह प्रसिद्ध हो चुका था, इसके उपरान्त द्रुपद के यहां प्रकट हुए पांडवों की सुधिकर उनको देखने को श्रीकृष्ण गए। भगवान को आये देख पांडव एक साथ उठ खड़े हुए। श्रीकृष्ण ने प्रथम युधिष्ठिर और भीमसेनजी को प्रणाम किया फिर अर्जुन से मिले, नकुल सहदेव ने भगवान को प्रणाम किया।

युधिष्ठिर की प्रार्थना पर श्रीकृष्ण वर्षाकाल तक वहीं विराजे। एक दिन अर्जुन के साथ शिकार को गये। वन में व्याघ्र, शूकर, हिरण, खरहा, आदि को वाणों से बींधने लगे। जब अर्जुन को प्यास लगी, तब यमुनाजी पर आए। वहां अर्जुन और कृष्ण जल पीकर बैठे, इतने में ही तट पर एक कन्या को देखा। तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उसके पास भेजा। अर्जुन ने पूछा- हे शोभने! तुम कौन हो? कालिंदी ने कहा- मैं सूर्य नारायण की पुत्री हूं। भगवान को पति बनाने की इच्छा से तप कर रही हूं। कालिंदी नाम से प्रसिद्ध हूं, यहां यमुना जल में पिता ने स्थान बना दिया है, जब तक भगवान पति न होंगे, इस स्थान में वास करूंगी। यह सुन अर्जुन ने श्रीकृष्ण से समाचार कहा। तब भगवान कालिंदी को ले धर्मराज के समीप आये। उस समय पांडवों ने एक नगर बसाने की प्रार्थना की तो श्रीकृष्णजी

ने विश्वकर्मा को बुलाया और पांडवों के निमित्त एक नगर बनवाया।

तदनन्तर श्रीकृष्ण द्वारिका में आये। वहां भगवान ने कालिन्दी के साथ विवाह किया। उज्जैन नगर के राजा विंद और अनुविंद दुर्योधन के आधीन थे। उनकी बहिन मित्रविन्दा ने स्वयंवर में श्रीकृष्ण को वरने की इच्छा की, परन्तु भाइयों ने निषेध किया। हे परीक्षित! तब मित्रविंदा को श्रीकृष्णजी हर कर ले गये। अनन्तर द्वारका में जा विवाह कर लिया। अयोध्या का नग्नजित नाम राजा था, उसके सत्येन नाम कन्या थी। राजा ने प्रतिज्ञा की कि जो पुरुष अत्यन्त दुर्धर्ष सात बैलों को नाथ ले उसको मैं अपनी कन्या विवाहूंगा। इस प्रतिज्ञा को सुन अनेक राजा आये, परन्तु हार मान लौट गए। तब श्रीकृष्ण बड़ी भारी सेना ले अयोध्या में आये। अयोध्या नरेश भगवान का आगमन सुन प्रसन्न हो उठा और आसन पर बैठाकर, चरण धोकर, पूजन करने लगा। नग्नजित की कन्या भगवान को देख योग्य पति जान ईश्वर से प्रार्थना करने लगी कि श्रीकृष्ण मेरे स्वामी होवें। अनन्तर राजा नग्नजित बोला- हे नारायण! मैं तुच्छ क्या सेवा करूं। तब भगवान कहने लगे- राजा नग्नजित! याचना करना बहुत निषिद्ध है, तो भी मैं आप की कृपा मांगता हूं। नग्नजित बोले- हे नाथ! आपसे बढ़कर कौन वर कन्या को प्राप्त होगा, परन्तु मैंने एक प्रतिज्ञा की है कि जो इन सात बैलों को जोते सो हमारी

कन्या को विवाहे। हे यदुनन्दन! मैं चाहता हूं कि बैलों को जोत आप मेरी कन्या के साथ विवाह करो। तब भगवान ने फेंट बांध सात रूप धारण कर बैलों को पकड़ नाथ दिया। राजा ने परम विस्मय को प्राप्त हो श्रीकृष्ण को अपनी कन्या दी। तब भगवान ने उसका पाणिग्रहण किया। जिन राजाओं का पुरुषार्थ बैलों से भंग हो गया था उन राजाओं ने श्रीकृष्ण को मार्ग घेर लिया। तब अर्जुन ने उन राजाओं को क्षण मात्र में भगा दिया। श्रीकृष्ण भगवान दहेज ले द्वारिकापुरी में आकर सत्या के साथ विहार करने लगे। फिर श्रीकृष्ण ने अपनी फूफी की कन्या भद्रा से विवाह किया। अनन्तर मद्रदेश की राजकन्या लक्ष्मणा को भगवान स्वयंवर में से हर लाये। श्रीकृष्ण के हजारों सुन्दर स्त्रियां थीं, जिन्हें भौमासुर को मार उसके बन्दीग्रह से छुड़ाकर भगवान ले आये थे।

श्रीकृष्ण के विक्रम का वर्णन

परीक्षित ने पूछा- हे मुनिवर! श्रीकृष्ण भगवान् ने जैसे भौमासुर को मारा और हजारों कन्याओं को लाये वह वृत्तान्त वर्णन कीजिए। श्रीशुकदेवजी बोले- हे परीक्षित एक समय श्रीकृष्ण और सत्यभामा विहार कर रहे थे। वहां इन्द्र ने आ भगवान से कहा- हे भगवन्! मेरा क्षत्र और अदिति के कुण्डल भौमासुर ले गया और हमारे मणि पर्वत स्थान को भी छीन लिया है। तब इन्द्र

का दुःख दूर करने को श्रीकृष्ण को साथ ले भौमासुर के पुर को पधारे। पहला किला पर्वतों का, दूसरा शस्त्रों का, तीसरा जल का, चौथा अग्नि का, पांचवां वायु का फिर मुर दैत्य की फांसियों से घिरा हुआ पुर भगवान ने, गदा, बाण, चक्र और तलवार से काट डाला। अनन्तर शंख बजाया जिससे शूरवीरों के हृदय कांपने लगे। भगवान ने गदा से भौमासुर के गढ़ को तोड़ा डाला। पांचजन्य शंख के नाद को सुन मुर नामक दैत्य उठ खड़ा हुआ और अपने हाथों में त्रिशूल ले भगवान के सम्मुख दौड़ा। तब भगवान ने लीला पूर्वक अपने चक्र से मुरदैत्य के सिर काट गिराये। सिर कट जाने से प्राण रहित हो वह जल में गिर गया। तब उसके सात पुत्र पिता के मर जाने से कोप करके बदला लेने को उद्यत हुए। ताम्र, अंतरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु नभस्वान और अरुण ये सातों सेनापति को आगे कर संग्राम भूमि में आये। अनन्तर उन मुर दैत्य के पुत्रों के सिर काट उनको यमलोक भेज दिया। हे राजन्! सब सेनापतियों का नाश देख पृथ्वी पुत्र भौमासुर कुपित हो समुद्र से प्रकट हुए। तब गरुड़ पर सत्यभामा सहित विराजमान भगवान को देखकर झपटा और बर्छी चलाने लगा। तब गदाग्रज भगवान ने भौमासुर की सेना को काट, तीखे वाणों से उसके अंग काट, हाथी, घोड़ों को मार, छिन्न-भिन्न कर दिया। जब भौमासुर के हाथी गरुड़जी की मार से व्याकुल हो पीछे नगर में

घुस गये तब नरकासुर ने अपनी सेना को भागते देख एक बर्छी गरुड़जी के मारी परन्तु उसके लगने से गरुड़ व्यथित नहीं हुए। तब नरकासुर ने श्रीकृष्ण के मारने को त्रिशूल लिया, परन्तु त्रिशूल को छोड़ने से पहले भगवान ने अपने चक्र से भौमासुर का सिर काट डाला। जब भौमासुर का मस्तक भूमि पर गिर पड़ा, उस समय दैत्य हाहाकार करने लगे और ऋषि, देवता धन्य-२ कहते हुए श्रीकृष्णजी के ऊपर फूल वर्षाने लगे।

भौमासुर के मरने पर पृथ्वी ने श्रीकृष्ण के समीप आ, कुण्डल वैजयन्तीमाला, वरुड़ का जन्त्र व महामणि, ये वस्तुयें भगवान के समर्पण कीं और स्तुति करने लगी- हे देवेश! मेरा बारम्बार नमस्कार है। जिस समय आप रचने की इच्छा करते हो, तब रजोगुण धारण करते हो, पालन करने को सतोगुण धारण करते हो तथा नाश करने को तमोगुण धारण करते हो। यह भौमासुर का पुत्र आपके चरणों में पड़ा हुआ है, इसकी रक्षा करो, अपना कर कमल इसके मस्तक पर रक्खो। जब इस प्रकार पृथ्वी ने प्रार्थना की तब भगवान उसको अभयदान दे भौमासुर के स्थान पर गये। वहां जा भगवान ने सोलह हजार राजकन्याओं को देखा। सब राज कन्याओं ने मोहित होते हुए मनोवांछित पति को मन से वर लिया। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने उनको पालकी में बिठाकर, द्वारिका भेज दिया और साथ खजाना, रथ,

घोड़े और ऐरावत सफेद रंग के शीघ्रगामी चौसठ हाथी द्वारका को भेजे। एक मुहूर्त में ही सोलह हजार एक सौ आठ राज कन्याओं के घरों में इतने ही स्वरूप धार भगवान ने सबका एक साथ पाणिग्रहण किया। उन रानियों के घरों में सब गृहस्थ के कर्मों का पालन करते हुए भगवान उनके साथ विहार करते थे।

श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का कथोपकथन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! रुक्मिणी के मंदिर में एक समय कोमल शय्या पर श्रीकृष्णजी विराजे थे। रुक्मिणी जी सेवा कर रही थीं। रुक्मिणी की सेवा से परम आनंद को प्राप्त हो भगवान कहने लगे- हे राजपुत्री! तुम्हारे निमित्त आये हुए शिशुपाल आदि राजाओं को छोड़ हमको किस कारण अपना पति बनाया? हे रुक्मिणि! तुमने बिना विचारे मुझ गुण हीन को वर लिया। अब भी तुम किसी उत्तम क्षत्रिय को वर लो जिससे तुम कामनाओं को प्राप्त कर सको। केवल अभिमानी राजाओं का अहंकार दूर करने को मैं तुमको हर लाया था, मैं तो उदासीन हूं। हे राजन्! अपनी रुक्मिणी का अहंकार दूर करने को भगवान इतना कह चुप हो गये। श्रीकृष्ण का ऐसा वचन सुन रुक्मिणी भयभीत हो चिन्ता करने लगीं। कोमल चरण से पृथ्वी को खोदतीं और नेत्रों से आसूं बहाती, दुःखित हो वाणी रुकने से रुक्मिणीजी चुप हो गईं। अनन्तर व्याकुलता

से मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ीं। अपनी प्यारी के प्रेम को देख श्रीकृष्ण द्रवित हो गये तथा चतुर्भुज रूप धर शीघ्र पलंग से उतर पड़े और रुक्मिणी को उठाकर अपने कर कमलों से प्यारी के मुख को पोंछने लगे। हे राजन्! आंसुओं से भरे नेत्रों को पोंछकर रुक्मिणी को भगवान ने उठाकर आलिंगन किया, अनन्तर रुक्मिणी को प्रसन्न करते हुए भगवान बोले- हे रुक्मिणी! तुम मुझको दोष दृष्टि से नहीं देखना, केवल तुम्हारे वचन सुनने की इच्छा से हमने हंसी की थी।

हे परीक्षित! भगवान ने रुक्मिणी को समझाया तब उसे हास्य जान, मुस्कान से रुक्मिणी बोलीं- हे भगवन्! आपने कहा हम तुम्हारे समान नहीं हैं, सो यह ठीक है क्योंकि षडैश्वर्य सम्पन्न कहां आप और माला रूप सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण स्वभाव वाली कहां मैं। आपने कहा- बिना विचार किए तुमने मुझे वर लिया, यह वचन आपका यथार्थ नहीं, क्योंकि जिस निमित्त आपको सब वस्तु प्यारी लगती हैं, उस जगत के आत्म रूप आप हो, आपने कहा कि तुम किसी उत्तम क्षत्रिय को वर लो, सो सब गुणों के आश्रय रूप निरादर करके ऐसी कौन स्त्री है जो नाशवान पुरुष की सेवा करेगी। हे जगदीश्वर! इस लोक और परलोक के मनोरथ पूर्ण करने वाले आपका ही मैंने सेवन किया है और जन्म जन्मांतर आपकी सेवा करूं, यही चाहती हूं। हे प्रभो! आपने कहा कि हम तो उदासीन हैं आपका यह कथन

यथार्थ है। यद्यपि आप निरपेक्ष हैं और मुझमें आसक्ति होना ही मेरे लिए लाभ है। इस जगत की वृद्धि के निमित्त किसी समय अपनी माया की ओर देखते हो यही बड़ा अनुग्रह है। श्रीकृष्ण बोले- हे साध्वी! तुम्हारे वचन सुनने की अभिलाषा ही से मैंने ऐसी हंसी की बात की थी। हे कल्याण स्वरूपिणी! मुझमें भक्ति होने के कारण मोक्ष पर्यन्त तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे। युद्ध में तुम्हारे भाई को हमने कुरूप कर दिया और अनिरूद्ध के विवाह में जुआरियों की सभा में बलरामजी ने उसको मार डाला और तुम मुझको कुछ भी नहीं कहती। ऐसी बातों से तुमने मुझे वश में कर लिया है। जब मेरे पहुंचने में विलम्ब हुआ, तब इस शरीर को त्याग दूंगी, यह बात तुम्हारे बिना और किससे हो सकती है? इस कारण मैं तुम्हारी क्या प्रशंसा करूं। हे परीक्षित! श्री कृष्णाचन्द्र इस प्रकार मनुष्य लीला को समापन करते हुए लक्ष्मी अवतार रुक्मिणी के साथ रमण करते थे।

रुक्मी का वध

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! श्रीकृष्ण भगवान की सोलह हजार एक सौ आठ रानियों से एक लाख इकसठ हज़ार अस्सी पुत्र उत्पन्न हुए जो श्रीकृष्ण भगवान के सामने थे। भगवान को पति पाकर वे रानियां प्रीति से हंसनि चित्तवन सहित प्रसन्न थीं।

दस-२ पुत्रों वाली श्रीकृष्णजी की आठ पटरानियां थीं, उनके पुत्रों के नाम वर्णन करता हूं, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रगुप्त, चारुचन्द्र, विचारु और चारु ये दस पुत्र श्रीरुक्मिणीजी के हुए। भानु, सुभानु, स्वभानु, प्रभानु, भानुमानु, चन्द्रभानु, वृहद्भानु, रतिभानु, श्रीभानु और प्रतिभानु, यह दस पुत्र सत्यभामा के हुए। साम्ब, सुमित्र, पुरुजित शाह्यजित, सनस्त्रजित, निजय, चित्रकेतु, वसुमान, द्रविण और ऋतु, यह सुत जाम्बवती के हुए। वीर, चन्द्र, चित्रगु, वेगवान, वृष, आम, शंकु, शोभायमान, बसु और कुन्त ये नग्नजिती के हुए। श्रुति, कवि, वृष, वीर, सुवाहु, एकभद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सोमक ये दस कालिंदी के हुए। प्रवोष, गात्रवान, सिंहबल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महा, शक्ति, सह, ओज और पराजित यह दस सुत माद्री (लक्ष्मणा) के हुए। वृक, हर्ष, अनिल, गृध, वर्धन, उन्नाद, महाश, पाबन, बन्हि और क्षुधि, यह मित्रविंदा के हुए। संभासजित, वृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिसित, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक, यह दश भद्रा के हुए। रोहिणी रानी के दीप्तमान, तात, तप्त आदि पुत्र हुए। रुक्मी की रुक्मवती नाम कन्या से प्रद्युमनजी से अनिरुद्ध प्रकट हुआ। हे राजन्! इसके पुत्र और पौत्र मिलकर करोड़ों हुए। परीक्षित श्रीशुकदेवजी से पूछने लगे- हे मुने! रुक्म ने अपने शत्रु श्रीकृष्ण के पुत्र को अपनी कन्या

कैसे विवाह दी।

श्रीशुकदेवजी बोले- हे परीक्षित! जब रुक्मि की पुत्री रुक्मवती ने स्वयंवर किया तब सब राजाओं को एक ही रथ से जीतकर प्रद्युम्नजी रुक्मवती को हर लाये। रुक्म यद्यपि वैर रखता था, तथापि बहन को प्रसन्न करने को उसने अपने भानजे को कन्या दी। रुक्मी की चारुमती नाम कन्या का कृतवर्मा के पुत्र ने पाणिग्रहण किया। श्रीकृष्णजी के पौत्र अपने दोहिते श्रीअनिरुद्ध को अपनी पोती रोचनामा विवाह शत्रु के साथ सम्बन्ध करना अधर्म जानकर भी रुक्मि ने स्नेह में फंसकर विवाह कर दिया। अनिरुद्ध के विवाह में रुक्मिणी, श्रीकृष्ण, साम्ब, प्रद्युम्न आदि सब बारात में भोजकटपुर गये थे। जब विवाह हो चुका, तब अहंकारी राजा रुक्मी से कहने लगे- हे रुक्मि! बलराम के साथ पासा खेल लो। राजाओं के कहने पर रुक्मि बलरामजी को बुलाकर जुआ खेलने लगा। बलदेवजी ने पहले सौ, हजार, फिर दस हजार का दाव लगाया, वे दाव रुक्मि ने धांधली करके जीत लिए। उस समय कलिंग का राजा बलरामजी की हंसी करने लगा, तब उसे हलधरजी न सह सके। इसके उपरान्त रुक्मि ने एक लाख का दाव लगाया। उस दाव में बलरामजी जीत गये, तब रुक्मि कहने लगा कि मैं जीता हूं। इससे बलरामजी का क्रोध बढ़ने लगा। अनन्तर कोप करके उन्होंने दस करोड़ का दाव लगाया तब भी वह बलदेवजी

ने जीता परन्तु रुक्मि कहने लगा मैंने जीता है। तब आकाशवाणी हुई कि यह दाव बलरामजी ने जीता है। उस समय रुक्मि आकाशवाणी का निरादर कर बलरामजी की हंसी करता हुआ कहने लगा- तुम ग्वाल हो, तुम लोग पासा खेलना क्या जानो। रुक्मि ने निरादर किया और राजाओं ने हंसी की, तब बलदेवजी ने अति कोपायमान होकर मांगलिक सभा में रुक्मि को मार डाला और कलिंग राजा को पकड़ कर उसके दांत तोड़ डाले। अन्य राजा बलरामजी से भयभीत हो भाग गये। हे परीक्षित! अपने साले के मर जाने पर श्रीकृष्णजी ने न अच्छा कहा, न बुरा। क्योंकि अच्छा कहते तो रुक्मिणी जी अप्रसन्न होतीं और जो अच्छा नहीं कहते, तो बलराम जी अप्रसन्न होते, इस कारण मौन साध लिया।

बाण द्वारा अनिरुद्ध का बंधन

परीक्षित ने पूछा- हे महायोगी! वाणासुर की पुत्री ऊषा ने अनिरुद्धजी से विवाह किया और महादेव का युद्ध हुआ। यह सब आप सुनाइये। श्रीशुकदेवजी बोले- हे परीक्षित! राजा बलि के नौ पुत्र थे, उनमें सबसे बड़ा वाणासुर हुआ। वाणासुर शिवजी का भक्त था। वह प्रथम शोणितपुर में राज्य करता था। एक समय शिवजी ताण्डव नृत्य कर रहे थे, उस ताण्डव नृत्य में वाणासुर ने हजार हाथों से बाजे बजाकर भोलानाथ को

प्रसन्न किया। तब भोलानाथजी ने वरदान मांगने को कहा। वाणासुर ने वर मांगा कि हमारे पुर की रक्षा करो। हे राजन्! तदनन्तर एक समय अहंकारी वाणासुर महादेवजी के चरण स्पर्श कर कहने लगा हे महादेव! आपने मुझे हजार भुजा दी हैं, सो अभी तक आपके सिवाय त्रिलोकी में कोई मुझसे युद्ध करने वाला नहीं है। अब आप मेरी अभिलाषा पूर्ण कीजिए। वाणासुर की बात सुन महादेवजी क्रोधित हो कहने लगे- हे मूढ़! एक ध्वजा मैं देता हूं, जिस समय यह ध्जवा भूमि में गिर जायेगी, उस समय मेरे समान पुरुष से तेरा युद्ध हो नाश हो जायेगा। जब महादेवजी ने इस प्रकार कहा तब वाणासुर प्रसन्न हो अपने घर चला गया। अनन्तर वाणासुर की स्त्री के एक कन्या हुई, ज्योतिषियों ने कन्या का नाम ऊषा रखा।

जब ऊषा सात वर्ष की हुई तब उसके पिता ने उसे कैलाश पर भेज दिया। ऊषा शिव पार्वती के सम्मुख हाथ जोड़कर बोली हे कृपासिन्धु! दया कर मुझे विद्या दीजिए। ऊषा के वचन सुन शिव पार्वती ने उसे पढ़ाना आरम्भ कर दिया। थोड़े ही समय में चौदहों विद्याओं की ज्ञानी हो ऊषा ने बहुत सुख माना। अनन्तर सब वाद्यों का बजाना सीख गई। एक दिन ऊषा पार्वतीजी के साथ वीणा बजा गा रही थी कि शिवजी ने आ पार्वती से कहा- हे प्रिये! मैंने कामदेव को भस्म किया था, उसी को भगवान ने प्रकट कर दिया है, यह कहकर

शिवजी पार्वती को लेकर गंगा पर पहुंचे, वहां प्रेमातिरेक से पार्वती को स्नान करा आभूषण पहनाकर बड़े प्रेम से भवानी का हृदयालिंगन किया। फिर डमरू बजाकर ताण्डव नृत्य करने लगे। जब शिवजी ने अपनी हृदय देवी को रिझाया, तब ऊषा यह चरित्र देख विचार करने लगी कि यदि मेरा स्वामी हो तो मैं इनके ही समान ऐश्वर्य भोगूं। हे परीक्षित! ऊषा की हृदयागति भवानी जान गईं उन्होंने बड़े प्रेम से अपने पास बुलाकर कहा- हे बेटी! तू चिन्ता मत कर, तेरा पति स्वप्न में आकर मिलेगा, तू उसे ढुंढ़वा कर सुखोपभोग लूटना। वर देकर पार्वती ने ऊषा को विदा किया। ऊषा पिता के पास आई। वाणासुर उसको देख प्रसन्न हुआ और उसके लिए एक महल तैयार कराया। ऊषा सहेलियों के साथ रहने लगी। हे परीक्षित! ऊषा बारहवें वर्ष से नवयौवन में परिणित हो गई। पिता ने उसकी रखवाली के लिए बहुत से राक्षस भेज दिए। वे आठों पहर रक्षा करने लगे। हे राजन्! ऊषा पति के लिए नित्य जप, दान और व्रत कर पार्वतीजी की पूजा करती। एक दिन जब वह रात्रि समय सेज पर बैठी सोचने लगी कि न जाने पिताजी मेरा विवाह कब करेंगे। यह कहती हुए ऊषा पति के ही ध्यान में सो गई, स्वप्न में देखती क्या है कि पुरुष कामरूप मोहन स्वरूप पीताम्बर पहने सम्मुख आकर खड़ा हुआ है। उसे देख, मोहित हो लज्जा से सिर झुकाकर रह गई। तब उसने प्रेम रस में सनी

बातें करके हाथ पकड़कर उसको कण्ठ से लगा लिया। इस तरह ऊषा के मन का संकोच हटा दिया। अनन्तर लाज छोड़ परस्पर दोनों सेज पर बैठ हाव-भाव कटाक्ष और आलिंगन चुम्बनादिक द्वारा सुख लेने देने लगे। थोड़ी देर बाद ज्योंही ऊषा ने चाहा कि एक बार और कण्ठ लगाऊं त्योंही निद्रा भंग हो गई और पछताकर रह गई।

ऊषा ने अग्निरुद्धजी को जब नहीं देखा तब, 'हे कन्त! तुम कहां गये', इस प्रकार कहती हुई अत्यन्त लज्जित हो सखियों के बीच व्याकुल हो गई। तब मंत्री की कन्या चित्रलेखा आश्चर्य सहित अपनी सखी से पूछने लगी- हे प्यारी ऊषा! तू किसको ढूंढती है। अभी तो तेरा विवाह भी नहीं हुआ है, फिर तू कन्त कह किसे पुकार रही है। ऊषा बोली हे सखी! श्यामवर्ण, कमल के से नेत्र, पीताम्बर पहने स्त्रियों के मन को मोहित करने वाला, ऐसे एक पुरुष को मैंने स्वप्न में देखा है। उसी प्रीतम को ढूंढ़ रही हूं। अपना अधरामृत पिला, दुःख सागर में पटककर कहीं चला गया। चित्रलेखा बोली- हे ऊषा! मैं त्रिलोकी के पुरुष लिखकर दिखाती हूं, तू अपने चितचोर को पहिचान, फिर मिलाना मेरा काम है। यह कह चित्रलेखा ने देवता, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, पन्नग, दैत्य, विद्याधर, यक्ष और मनुष्यों के चित्र लिखे। शूरसेन व वसुदेव का चित्र लिखा, फिर बलराम और श्रीकृष्ण का चित्र लिखा। अनन्तर

प्रद्युम्नजी का चित्र लिखा। जब चित्रलेखा ने अनिरुद्धजी का चित्र लिखा तो ऊषा सिर नीचा कर अत्यन्त लज्जित हो हंसकर कहने लगी- हे सखी! मेरा चितचोर यही है।

हे राजन्! चित्रलेखा उसको श्रीकृष्ण का पौत्र जानकर आकाश मार्ग द्वारा द्वारिका पहुंची। वहां अनिरुद्धजी को पलंग समेत अपने योगबल से उठाकर शोणितपुर में ले आई और सखी को उसके प्यारे का दर्शन कराया। तब ऊषा अपने गुप्त घर में अनिरुद्ध जी के साथ विहार करने लगी। द्वारपालकों ने वाणासुर से जाकर कहा- हे महाराज आपकी कन्या की कुलंक कुचेष्टा दीख पड़ती है, कन्या सदा कपाट बन्द किये रहती है और कोई पुरुष हंस-२ कर बातें करता है। हे नाथ! हम लोग तो अखंड पहरा देते हैं। कन्या को कलंक लगा सुन दुखित हो ऊषा के मन्दिर में जा पहुंचा। वहां अनिरुद्ध को ऊषा के साथ खेलता हुआ देख वाणासुर अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हुआ। तब अनिरुद्ध वाणासुर को आयुध धारण किये आता देख परिघ उठाकर मारने को उठे। चारों ओर से आए हुए असुरों को मार उन्होंने बाहर भगा दिया। तब वाणासुर ने कुपित होकर अनिरुद्धजी को नागपाश से बांध लिया। अपने पति को बंधा देखकर शोक विह्वल हो ऊषा रुदन करने लगी।

वाणासुर से युद्ध और श्रीकृष्ण को जय प्राप्ति

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! जब अरिरुद्ध का महीनों तक पता न लगा, तो रामकृष्णादि सब चिन्ता करने लगे उस समय नारदजी ने आकर अनिरुद्ध का समाचार कह सुनाया। नारदजी से यह वृत्तान्त सुन यादव लोग श्रीकृष्ण को साथ ले शोणितपुर चले गये। बारह अक्षौहिणी सेना सहित यदुवीरों ने वाणासुर के नगर को घेर लिया। यादवों द्वारा अपने पुर को विध्वंस होते देख वाणासुर क्रोधित हो बारह अक्षौहिणी सेना लेकर युद्ध करने को बाहर निकला। उसकी सहायता करने स्वामी कार्तिक व भूत, प्रेत आदि गणों को साथ ले, बैल पर चढ़ युद्ध करने को श्रीमहादेवजी भी आकर सुशोभित हुए, महा भयानक युद्ध होने लगा। उस समय श्री कृष्णचन्द्र और महादेवजी का, प्रद्युम्न व स्वामिकार्तिकजी का युद्ध प्रारम्भ हुआ। कुभाण्ड और कूपकर्ण का युद्ध बलरामजी के साथ, साम्ब का वाणासुर के पुत्र से, और वाणासुर का युद्ध सात्यकी के साथ होने लगा। ब्रह्मा आदि मुनि, सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा,यक्ष सब विमानों पर बैठकर युद्ध देखने आये। उस समय महादेवजी के अनुचरों को श्रीकृष्ण मार कर भगाने लगे। महादेवजी श्रीकृष्ण के ऊपर अस्त्र चलाने लगे परन्तु श्रीकृष्ण ने सब अस्त्र अपने

प्रत्यस्त्रों से शान्त कर दिये। अनन्तर शिवजी ने ब्रह्मास्त्र चलाया श्रीकृष्णजी ने ब्रह्मास्त्र को शान्त कर दिया फिर शिवजी ने वायु का अस्त्र चलाया जिसे श्रीकृष्ण ने पर्वतास्त्र से शान्त किया। इसके उपरान्त शिवजी ने अग्नि अस्त्र चलाया। तब भगवान ने मेघास्त्र छोड़ शान्त कर दिया। फिर भोलानाथ ने पाशुपत अस्त्र चलाया उसको श्रीकृष्णजी ने नारायण अस्त्र से काट गिराया। अनन्तर श्रीकृष्ण भगवान ने जृम्भणास्त्र चलाया, जिससे शिवजी जंभाई लेने लगे। तब श्रीकृष्ण ने वाणासुर की सेना का संहार करना प्रारम्भ किया। प्रद्युम्नजी के बाणों से स्वामी कार्तिकी के रुधिर बहने लगा। तब यह मोर पर चढ़कर भाग गए। बलरामजी ने मूसल प्रहार से कुभाण्ड और कूपकर्ण गिर पड़े, उनकी सेना तितर-बितर होकर भाग गई। वाणासुर अपनी सेना को भागते देखकर अत्यन्त क्रोध युक्त हो श्रीकृष्ण के सम्मुख आया। अहंकार से उसने पांच सौ धनुष खींचकर एक-२ में से दो-२ बाण चलाये। श्रीकृष्ण ने उसके समस्त धनुष काट डाले और सारथी व घोड़ों को मार रथ को तोड़ अपना शंख बजाया। शंखध्वनी सुनते ही वाणासुर की माता केश खोल नंगी हो पुत्र के प्राणों को बचाने को श्रीकृष्ण के सम्मुख आ खड़ी हो गयी। नग्न स्त्री को देखकर श्रीकृष्ण ने पीठ फेर ली, इतने में वाणासुर रण छोड़ अपने पुर में पहुंचा। अनन्तर शिवजी का तीन सिर और तीन पांव

वाला ज्वर श्रीकृष्ण के सम्मुख आया। श्रीकृष्ण ने उस विषम ज्वर को देख अपना शीत ज्वर छोड़ा। उस समय इन दोनों का युद्ध होने लगा। जब वैष्णव ज्वर ने माहेश्वर ज्वर को दबा लिया तो शिव ज्वर पुकारने लगा और कोई अभय स्थान न पा हाथ जोड़ भगवान के सम्मुख स्तुति करने लगा- हे अनन्त शक्ति वाले स्वामी, जगत की उत्पत्ति स्थिति संहार के कारण, आपको मैं नमस्कार करता हूं। आपके शीत ज्वर से मैं तपायमान हो गया हूं।

श्रीकृष्ण भगवान बोले- हे ज्वर! मैं तुमसे प्रसन्न हूं, तेरा भय दूर हो जाएगा, परन्तु मेरे भक्तों को नहीं सताना। जब भगवान ने इस प्रकार कहा- तब माहेश्वर ज्वर भगवान को प्रणाम कर चला गया। इतने में वाणासुर युद्ध करने को फिर आया। हे राजन्! वाणासुर अपने हजार हाथों में अस्त्र धारण कर भगवान के ऊपर छोड़ने लगा। तब वाणासुर की भुजाओं को भगवान ने चक्र से काट डाला। जब वाणासुर की भुजायें चार रह गईं तब महादेवजी अपने भक्त पर दया कर भगवान की स्तुति करने लगे। हे परब्रह्म! आपके दिए हुए शरीर को पाकर जो अपनी इन्द्रियों को नहीं जीतता और आपके चरणों का भजन नहीं करता, उसको आत्म वंचक जानना चाहिए। यह वाणासुर मेरा भक्त है। मैंने इसको निर्भय वर दिया है। इस कारण वाणासुर पर भी कृपा कीजिए। शिवजी की प्रार्थना

सुनकर भगवान बोले- हे भगवन्! जिस प्रकार कहा उसी के अनुसार मैं आपको प्रसन्न रखूंगा। मैं भी इसको मारना नहीं चाहता, क्योंकि प्रहलाद को मैंने वरदान दिया कि तुम्हारे वंश में उत्पन्न होने वाले को मैं नहीं मारूंगा। इसका अहंकार दूर करने को इसकी भुजाएं काट डाली हैं। इसकी शेष चार भुजाएं अमर होंगी, इसको किसी का भय नहीं होगा। शुकदेवजी बोले- हे परीक्षित! वाणासुर ने अभयदान पाकर श्रीकृष्णचन्द्र जी को प्रणाम किया और दुल्हिन सहित अनिरुद्धजी को रथ में बैठाकर भगवान के सम्मुख लाया। फिर भगवान श्रीकृष्ण ने वाणासुर की दी हुई एक अक्षौहिणी सेना ले और वस्त्र आभूषणों से सुसज्जित ऊषा सहित अनिरुद्धकुमार को आगे कर शिवजी की सम्मति ले, परस्पर प्रणाम कर, शोणितपुर से पयान किया। इस प्रकार श्रीकृष्ण भगवान की विजय व शिवजी के साथ युद्ध होने की कथा को जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर स्मरण करेगा उसकी पराजय नहीं होवेगी।

नृगोपाख्यान

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! एक दिन साम्ब, प्रद्युम्न, चारू, मानु, गद् आदि यादवकुमार विहार करने को उपवन गए। उस उपवन में खेलते-२ जब प्यास लगी, तब जल ढूंढ़ने लगे। वहां एक निर्जल कुएँ में

पर्वत के समान एक बड़े गिरगिट को देख परम विस्मित मन से उसके निकालने के उपाय करने लगे। उस गिरगिट को रस्सों से बांधकर निकालने को जब समर्थ नहीं हुए तब यादवकुमार श्रीकृष्ण के समीप आये और सब वृतान्त सुनाया। सुनते ही कृष्ण वहां आये और उसे देखकर बायें हाथ से निकाल लिया। श्रीकृष्ण का हाथ लगते ही वह तुरन्त सुन्दर वर्ण अद्‌भुत अलंकार वस्त्र व माला धारण किये देव मूर्ति हो गया। भगवान यद्यपि उस गिरगिट को जानते थे, तथापि मनुष्यों में प्रकट करने के अर्थ पूछने लगे- हे महाभाग! आप कौन हो? भगवान ने जब इस प्रकार पूछा तब राजा नृग प्रणाम कर कहने लगा- हे समर्थ! मैं इक्ष्वाकु का पुत्र नृग हूं। जितने आकाश के तारे हैं, उतनी गौओं का मैंने दान किया है। परन्तु एक अपराध मुझसे बन पड़ा, मेरी दान की हुई गऊ मेरी गौओं में मिल गईं और दूसरी बार वह गौ अन्य ब्राह्मण को दान कर दी। उस गौ को ले जाते देख उसका स्वामी कहने लगा कि यह गौ मेरी है, ले जाने वाला बोला गौ राजा ने मुझे दान की है। इस प्रकार दोनों झगड़ने लगे और मेरे पास आ कहने लगे कि यह गौ आपने मुझको दान की है दूसरा बोला कि- यह क्या दान है जो पराई गौ दान कर देते हो। उन दोनों का कथन सुन मुझे बड़ा भ्रम हुआ और धर्म संकट में पड़ उन दोनों से प्रार्थना करने लगा कि तुम में से एक इस गौ को छोड़ दो, जो छोड़ देगा उसको मैं एक लाख

गौवे दूंगा। मैंने यही जाना कि गौ आपकी है, मुझ पर कृपा कीजिए। तब ब्राह्मण कहने लगा हे राजा! मैं तेरा दान नहीं लेता, इस प्रकार कह गौ का स्वामी चला गया और दूसरा बोला कि मैं भी इस गौ के सिवाय दूसरी नहीं चाहता, इस प्रकार कह वह भी चला गया। हे देव! जब मेरा देहान्त हुआ तब यमदूतों ने मुझे यमराज के समीप पहुंचाया। धर्मराज मुझसे पूछने लगे। हे राजा! तुम्हारे दान व धर्म का अन्त मैं नहीं देखता, परन्तु कुछ पाप भी है सो बताइये कि प्रथम पाप का फल भोगोगे अथवा पुण्य फल। तब मैंने कहा- हे देव! प्रथम मैं अपना पाप भोगूंगा। यमराजजी बोले- गिरगिट की योनि में जाओ। इतना कहते ही मैं नीचे गिर पड़ा और अपने को गिरगिट की योनि में पाया। हे केशव! आपके दर्शनों की अभिलाषा मुझे अभी तक लग रही थी। हे नारायण! अब मैं स्वर्ग को जाता हूं। इस प्रकार कह श्रीकृष्ण की परिक्रमा दे, भगवान के चरणों को स्पर्श कर, सबके देखते राजा नृग विमान पर बैठ स्वर्ग को चला गया। अनन्तर श्रीकृष्ण क्षत्रियों की शिक्षा को अपने कुटुम्बियों से कहने लगे, देखो! ब्राह्मण का थोड़ा सा अंश भी अग्नि के समान है जो पुरुषों को पचाना कठिन हो जाता है, मेरे भाइयों! यदि ब्राह्मण तुम्हारा अपराध करे तो भी ब्राह्मणों से द्रोह नहीं करना।

बलदेव का यमुनाकर्षण

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे कुरुवंशभूषण! एक दिन बलदेवजी रथ पर बैठ अपने सुहृदों को देखने को ब्रज गये। गोप और गोपियों से भेंट कर बलरामजी पिता, माता, नन्द, यशोदा को प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद ले बहुत प्रसन्न हुए।

फिर नन्दजी ने प्रसन्न होकर बलराम को गोद में बिठा छाती से लगाया और नेत्रों के जल से बलदेवजी को भिगोने लगे। तदनन्तर बलरामजी ने वृद्धों को प्रणाम किया और छोटों ने बलरामजी को प्रणाम किया। इस प्रकार श्री बलरामजी सम्बन्ध के अनुसार हंसने और हाथ मिलाने व मिलने लगे। जब विश्राम ले चुके तब आसन पर बैठे और कुशल पूछी। उस समय सब गोप, बलरामजी के पास आकर चारों ओर बैठ गये और प्रेम से गद्‌गद् हो अपने बन्धु यादवों की कुशल पूछते हुए बोले- हे बलराम! स्त्री-पुरुष सहित आप लोग कभी हमारी सुधि करते हो? फिर गोपियों ने हंसकर पूछा कि जिनको नगर की स्त्रियां प्यारी हैं, ऐसे श्रीकृष्णजी तो सुखी हैं? क्या वे कभी अपने बांधवों का स्मरण करते हैं? क्या माता पिता को देखने एक बार भी वे यहां आयेंगे?

'हे बलरामजी! हमको अचम्भा होता है कि कृतघ्न श्रीकृष्ण के वचनों को चतुर द्वारिका की स्त्रियां कैसे

गौवे दूंगा। मैंने यही जाना कि गौ आपकी है, मुझ पर कृपा कीजिए। तब ब्राह्मण कहने लगा हे राजा! मैं तेरा दान नहीं लेता, इस प्रकार कह गौ का स्वामी चला गया और दूसरा बोला कि मैं भी इस गौ के सिवाय दूसरी नहीं चाहता, इस प्रकार कह वह भी चला गया। हे देव! जब मेरा देहान्त हुआ तब यमदूतों ने मुझे यमराज के समीप पहुंचाया। धर्मराज मुझसे पूछने लगे। हे राजा! तुम्हारे दान व धर्म का अन्त मैं नहीं देखता, परन्तु कुछ पाप भी है सो बताइये कि प्रथम पाप का फल भोगोगे अथवा पुण्य फल। तब मैंने कहा- हे देव! प्रथम मैं अपना पाप भोगूंगा। यमराजजी बोले- गिरगिट की योनि में जाओ। इतना कहते ही मैं नीचे गिर पड़ा और अपने को गिरगिट की योनि में पाया। हे केशव! आपके दर्शनों की अभिलाषा मुझे अभी तक लग रही थी। हे नारायण! अब मैं स्वर्ग को जाता हूं। इस प्रकार कह श्रीकृष्ण की परिक्रमा दे, भगवान के चरणों को स्पर्श कर, सबके देखते राजा नृग विमान पर बैठ स्वर्ग को चला गया। अनन्तर श्रीकृष्ण क्षत्रियों की शिक्षा को अपने कुटुम्बियों से कहने लगे, देखो! ब्राह्मण का थोड़ा सा अंश भी अग्नि के समान है जो पुरुषों को पचाना कठिन हो जाता है, मेरे भाइयों! यदि ब्राह्मण तुम्हारा अपराध करे तो भी ब्राह्मणों से द्रोह नहीं करना।

बलदेव का यमुनाकर्षण

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे कुरुवंशभूषण! एक दिन बलदेवजी रथ पर बैठ अपने सुहृदों को देखने को ब्रज गये। गोप और गोपियों से भेंट कर बलरामजी पिता, माता, नन्द, यशोदा को प्रणाम कर उनसे आशीर्वाद ले बहुत प्रसन्न हुए।

फिर नन्दजी ने प्रसन्न होकर बलराम को गोद में बिठा छाती से लगाया और नेत्रों के जल से बलदेवजी को भिगोने लगे। तदनन्तर बलरामजी ने वृद्धों को प्रणाम किया और छोटों ने बलरामजी को प्रणाम किया। इस प्रकार श्री बलरामजी सम्बन्ध के अनुसार हंसने और हाथ मिलाने व मिलने लगे। जब विश्राम ले चुके तब आसन पर बैठे और कुशल पूछी। उस समय सब गोप, बलरामजी के पास आकर चारों ओर बैठ गये और प्रेम से गद्‌गद् हो अपने बन्धु यादवों की कुशल पूछते हुए बोले- हे बलराम! स्त्री-पुरुष सहित आप लोग कभी हमारी सुधि करते हो? फिर गोपियों ने हंसकर पूछा कि जिनको नगर की स्त्रियां प्यारी हैं, ऐसे श्रीकृष्णजी तो सुखी हैं? क्या वे कभी अपने बांधवों का स्मरण करते हैं? क्या माता पिता को देखने एक बार भी वे यहां आयेंगे?

"हे बलरामजी! हमको अचम्भा होता है कि कृतघ्न श्रीकृष्ण के वचनों को चतुर द्वारिका की स्त्रियां कैसे

स्वीकार करती होंगी, पर हम कल्पना करती हैं कि विचित्र बातें बनाने वाले श्रीकृष्ण के सुन्दर हास्य से उनका कहा करती होंगी। दूसरी गोपियां बोलीं कि हे गोपियो! उनकी बातों से क्या प्रयोजन है? दूसरी बातें करें। हमारे बिना जैसे उनका समय व्यतीत होता है, ऐसे ही उनके बिना हमारा भी व्यतीत होता है। यह कह श्रीकृष्णचन्द्रजी की बातों का स्मरण करके गोपियां विलाप करने लगीं। बलरामजी ने श्रीकृष्णजी की ओर से आनन्द देने वाले सन्देशों से गोपियों को समझाया। तदनन्तर वहां गोपियां को आनन्द देते हुए चैत, बैशाख, दो मास पर्यन्त निवास किया। पूर्णचन्द्र से शोभायमान यमुना के तीर पर गोपियों के साथ बलरामजी ने रासलीला की। और जल विहार करने के अर्थ यमुनाजी को बुलाने लगे, परन्तु इनको मदमत्त जान यमुना नहीं आई। तब बलरामजी ने कुपित हो अपने हल के अग्र भाग से यमुना को खैंच लिया और कहा कि हे पापिनी! मैंने तुझे बुलाया, तो भी तू नहीं आई। इस कारण हे स्वच्छन्द बहने वाली! मैं तेरे खण्ड-खण्ड कर दूंगा। हे परीक्षितजी! तब भयभीत यमुनाजी कांपती हुए बलरामजी के चरणों में गिर कहने लगीं- हे राम! मैं आपके प्रताप को नहीं जानती थी, मैं आपके शरणागत हूं, आप मुझे छोड़ दीजिए। इस प्रकार प्रार्थना करने पर बलरामजी ने यमुना को छोड़ दिया और गोपियों सहित जल में घुस गये। जब जल विहार

कर चुके, तब बाहर निकले। लक्ष्मीजी ने बलरामजी को दो नीलाम्बर व सुन्दर मालाएं दीं।

राजा पौंड्रक और काशिराज का वध

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे राजन्! श्री बलरामजी जिस समय ब्रज को गये थे उस समय द्वारिका में करुष देश के राजा पौंड्रक ने 'वासुदवे तो मैं हूं' कहकर श्रीकृष्ण के पास दूत भेजा। दूत द्वारका में आया और भगवान को सभा में बैठे देख राजा पौंड्रक का सन्देश कहने लगा—सब प्राणियों पर दया करने के अर्थ मैं ही एक वासुदेव प्रगट हुआ हूं। इस कारण जो तैने अपना मिथ्या नाम वासुदेव रखा है उसे छोड़ दे। हे यादव! तूने मूर्खता से मेरे चिह्न धारण किये हैं, उनको त्यागकर मेरी शरणागत आ, नहीं तो मेरे साथ युद्ध कर। मन्द बुद्धि राजा की बकवास सुन राजा उग्रसेन आदि सभासद लोग हंसने लगे। अनन्तर भगवान ने उस दूत से कहा कि अपने स्वामी से कहना मूर्ख! बनावटी चिह्नों से तू अपनी बड़ाई करता है, उन चिह्नों को मैं तेरे से छुड़वा दूंगा। हे अज्ञानी! उस समय तू मुख छिपाकर समर में मर करके सोवेगा। इस प्रकार श्रीकृष्ण के वचन सुन उस दूत ने उसी प्रकार अपने स्वामी से कह सुनाये। इधर श्रीकृष्णजी रथ पर चढ़ काशीपुरी को गए। उस समय राजा पौंड्रक अपने मित्र के यहां था इस कारण भगवान भी वहां पहुंचे। राजा पौंड्रक श्रीकृष्ण का

उद्योग देखकर दो अक्षौहिणी सेना ले नगर से बाहर निकला। उसका मित्र काशीराज भी तीन अक्षौहिणी सेना ले पीछे से आया।

उस समय श्रीकृष्णजी शंख, चक्र, खड्ग, गदा, धनुष, श्रीवत्स आदि चिह्नों से युक्त, कौस्तुभ मणि धारण किये, बनमाला से शोभायमान अपने समान वेष बनाये मिथ्या वासुदेव को देखकर बहुत हंसे, क्योंकि उसने ज्यों की त्यों नकल उतारी थी। तदनन्तर शत्रु भगवान के ऊपर अस्त्र, शस्त्र चलाने लगे। श्रीकृष्ण भगवान ने हाथी, घोड़े, रथ, प्यादे वाली चतुरंगिनी सेना को गदा, खड्ग, चक्र, बाणों से काट गिराया। इस प्रकार राजा पौंड्रक और काशी नरेश की सेना का संहार कर दिया। उसके उपरान्त श्रीकृष्ण भगवान पौंड्रक से बोले- रे पापिष्ट! दूत के मुख से जो तूने कहलाया था वही अस्त्र अब तुम पर छोड़ता हूं। अरे अज्ञानी! जो तूने मेरा नाम रख लिया है यह तेरी झूठ अभी छुड़ा दूंगा। इस प्रकर तिरस्कार कर तीक्ष्ण बाणों से पौंड्रक को बींध करके भगवान ने चक्र से उसका सिर काट दिया, इसी प्रकार काशी नरेश का भी सिर काटकर गिराया। दोनों को मार कर श्रीकृष्ण भगवान अपनी द्वारिकापुरी में आ बिराजे। फिर काशीराज का पुत्र सुदक्षिण अपने पिता की क्रिया करके 'पिता के मारने वाले को मारकर पितृ ऋण से उद्धार होऊंगा।' इस प्रकार निश्चय करके समाधि लगा महादेवजी का पूजन

करने लगा। महादेवजी प्रसन्न होकर बोले कि वर मांग तो सुदक्षिण ने वर मांगा कि हे शिव! पिता के मारने वाले कृष्ण के वध का उपाय बताइये। भोलेनाथ बोले—तू ब्राह्मणों के साथ दक्षिणाग्नि का पूजन कर, वह तेरे मनोरथों को पूर्ण करेगी। परन्तु इतनी बात है कि जो यह प्रयोग ब्राह्मणों के भक्त पर न किया जाएगा, तो सिद्ध होगा। इस प्रकार महादेवजी की आज्ञा पा उसने नियम धारण किया। तब कुण्डों में से अग्निदेव प्रगट हुआ और द्वारिकापुरी को दौड़ा। कृत्या अग्नि को देख सब द्वारिकावासी भयभीत हो श्रीकृष्णजी पर पहुंच कहने लगे कि- हे त्रिलोकी नाथ! सब पुरी भस्म हुई जाती है, आप इसकी रक्षा करो। मनुष्यों की व्याकुलता सुनकर भगवान बोले, भय मत करो, मैं रक्षा करूंगा। श्रीकृष्ण भगवान ने उसको महादेवजी की कृत्याग्नि जान उसके नाश करने को सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी। तब सुदर्शन चक्र उस अग्नि को पीड़ा देने लगा। हे परीक्षित! चक्र के तेज से मुख मलीन हुआ, वह अग्निदेव लौट गया और काशी में जाकर उसने ऋत्विज और दूसरे लोगों के साथ सुदक्षिणा को और काशीपुरी को क्षणमात्र में भस्म कर दिया। तदनन्तर भगवान के समीप आ खड़ा हो गया। जो मनुष्य भगवान श्रीकृष्ण का यह पवित्र चरित्र सावधान होकर सुनता अथवा सुनाता है वह सब पापों से छूट जाता है।

द्विविध वध

राजा परीक्षित पूछने लगे- हे ब्रह्मन्! बलराम जी के चरित्र सुनने की इच्छा करता हूं, उन्होंने दूसरा कौनसा चरित्र किया? शुकदेवजी बोले- हे महाराज! नरकासुर का मित्र और मयंद का भाई बानर द्विविध नाम से विख्यात था। वह बानर नरकासुर का बदला लेने को देश में उत्पात किया करता था। एक दिन वह बानर रैवत पर्वत पर चला गया। वहां उसने श्रीबलरामजी को स्त्रियों के बीच में बैठे विहार करते देखा। वहां दुष्ट बानर शाखाओं पर चढ़कर किलकारी मारने लगा। उसे देख तरुण स्त्रियां भी हंसने लगीं। अनन्तर बानर भृकुटी चढ़ाने व गुदा दिखाने आदि दुराचरणों से स्त्रियों की अवज्ञा करने लगा। बलरामजी ने क्रोधकर उसके मारने को एक पत्थर फैंका, परन्तु उसने प्रहार बचा, मदिरा कलश उठा लिया और हंसता हुआ बलरामजी की अवज्ञा करने लगा। अनन्तर वह ढीठ मदिरा कलश फोड़, स्त्रियों के वस्त्र को खैंचकर फाड़ने लगा। उसका अन्याय और उपद्रव समझ बलरामजी ने क्रोध कर शत्रु को मारने को हल मूसल धारण किया, तो द्विविध ने भी हाथों से शाल वृक्ष को उखाड़ शीघ्रता से सम्मुख आकर उससे बलराम जी के मस्तक पर प्रहार किया। उस वृक्ष को अपने ऊपर आते देख बलरामजी ने रोक लिया और मूसल घुमा उसको मारा। मूसल

की चोट से बानर का सिर फूट गया और रुधिर बहने लगा। श्रीशुकदेवजी बोले- हे राजन्! राम-रावण के युद्ध में द्विविध एक दिन अर्धरात्रि समय रामचन्द्रजी से बिना पूछे रावण के घर सेना सहित घुस गया, वहां बहुत सी रानियों को पकड़ कर नंगी कर दिया और मारा। तब श्रीरामचन्द्रजी ने उसका यह खोटा कर्म जान सेना से बाहर निकाल दिया। जब द्विविध ने अपनी मोक्ष चाही तब भगवान ने कहा- अरे दुष्ट! हम तेरा मुख देखना नहीं चाहते, परन्तु द्वापर में तेरी मोक्ष होगी। इसी कारण द्विविध को बलरामजी ने मारा।

बलदेव विजय

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे राजन्! जाम्वन्ती का पुत्र साम्ब दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा को स्वयंवर में से हर लाया था। उस समय कौरव कुपित हो कहने लगे यह बालक बड़ा ढीठ है, इसने हमारा अनादर कर कन्या का हरण किया। इस कारण इसको पकड़कर बांध लेना चाहिए। इसको बंधा हुआ सुन यादव आ जायेंगे तो युद्ध में अहंकार दूर होने पर शान्त हो जावेंगे। इस प्रकार कौरव भीष्मजी से सम्मति कर उनको साथ ले कर्ण, शल्य, भूरि, यज्ञकेतु आदि सब साम्ब को बांधने को आये। तब साम्ब भी दुर्योधन आदि को आते हुए देख, धनुष ले अकेला ही खड़ा रहा, तदनन्तर कर्ण आदि 'खड़ा रह' ये कहते हुए वाण चलाने लगे। हे

परीक्षित! वाणों से बिंधा हुआ साम्ब कौरवों के प्रहार को न सह सका। इसके उपरान्त साम्ब ने कर्ण आदि ६ महारथियों को एक साथ छः-छः वाणों से बींध डाला, चार वाणों से चारों घोड़ों को और एक बाण से सारथी को और एक-एक वाण से महारथियों को एक ही साथ बेध दिया। तब ६ महारथी साम्ब के इस पराक्रम को देख सराहने लगे। अनन्तर सबने मिल साम्ब को विरथ किया। चार ने घोड़े मारे और एक ने सारथी और एक ने साम्ब के धनुष को काट डाला। इस तरह बड़े कष्ट से विरथ कर उसको जीता और बांधकर कन्या को ले कौरव पुर में प्रविष्ट हुए और साम्ब से कहने लगे अब तेरा पराक्रम कहां गया? उस समय नारदजी आ गये और कौरवों को समझाया कि श्रीकृष्ण पुत्र से कुछ मत कहो। फिर नारदजी द्वारकापुरी पहुंचे, वहां समाचार सुनाया। हे राजा परीक्षित! नारद मुनि से साम्ब को बंधा सुन यादव कुपित हो उग्रसेन की आज्ञा पाकर कौरवों से युद्ध करने का उद्यम करने लगे। यह देख बलरामजी ने बहुत समझाकर सावधान किया और कौरव व यादवों का विरोध न हो यह इच्छा करते हुए रथ में बैठ ब्राह्मण व वृद्धों को साथ ले गये। हस्तिनापुर पहुंच बलरामजी ने बागों में डेरा किया और कौरवों का अभिप्राय जानने को उद्धवजी को भेजा। उद्धवजी ने वहां आ धृतराष्ट्र को प्रणाम कर, भीष्म, द्रोणाचार्य, बाल्हिक और दुर्योधन को नमस्कार कर बलरामजी का

आगमन सुनाया। बलरामजी का आगमन सुन कौरव प्रसन्न हुए और उद्धव जी का सत्कार कर भेंट हाथ ले बलरामजी के सम्मुख गये। बलरामजी से मिलकर गौ और अर्घ्य समर्पण किया। परस्पर बन्धुजनों की कुशल क्षेम सुनने के अनन्तर बलरामजी ने तेज भरे वचन कहे, 'महाराजाधिराज उग्रसेन ने आपको जो आज्ञा दी है उसको सुन शीघ्र वैसा ही करो।' महाराज ने कहा है कि तुम बहुतों ने मिलकर उस अकेले बालक को अधर्म से जीतकर बांध लिया है, सो सम्बन्धियों से विरोध न हो, इस इच्छा से हमने तुम लोगों का अपराध सहन किया, अब साम्ब को छोड़ दो।' बलरामजी के वचन सुन कौरव क्रोधित हो कहने लगे- बड़े आश्चर्य की बात है कि सेवन करने योग्य मस्तक पर जती अधिकार चाहती है। यादव अब हम ही को आज्ञा करते हैं। अभिमानी कौरव जब तक दुर्वचन कहते रहे, तब तक बलरामजी सुनते रहे, ज्यों ही बलरामजी उत्तर देने को हुए तो कौरव उठ कर चले गये? यह देख बलरामजी क्रोध में भर अपने लोगों से कहने लगे, असाधु कौरव निश्चय ही शान्ति नहीं चाहते। यादवों को रोक और श्रीकृष्ण को समझाया कि इनका कल्याण चाहता हुआ मैं आया सो यह निरादर कर अयोग्य वचन कहकर चले गये। आज मैं पृथ्वी को कौरव हीन कर डालूंगा। इस प्रकार निश्चय कर हलमूशल लेकर बलरामजी उठ खड़े हुए। हल के अग्रभाग से हस्तिनापुर को उठाकर

गंगाजी में डाल देने को दक्षिण की ओर खेंचा। खैंचने से धंसते और गंगाजी में नगर को गिरते देख कौरव घबराये और कुटुम्ब सहित हाथ जोड़ लक्ष्मणा सहित साम्ब को आगे कर सब बलरामजी की शरण आ कहने लगे, हे राम! हम आपके प्रभाव को नहीं जानते थे, अतः हमारा अपराध क्षमा करें। हे भगवान! आप ही इस पृथ्वी को एक मस्तक पर धारण करते हो। हे अविनाशी! आपको नमस्कार है। हम आपकी शरण में हैं, हमारी रक्षा करो। कौरवों ने जब बहुत प्रार्थना की, तब बलरामजी ने प्रसन्न हो अभय दान दिया। तदन्तर दुर्योधन ने अपनी कन्या के दहेज में साठ वर्ष के बारह सौ हाथी, दस हजाार घोड़े, छः हजार सुनहले रथ और एक हजार दासियां दीं। बलरामजी ने दहेज ले बेटा बहू को साथ ले कौरवों से अभिवादन स्वीकार कर प्रस्थान किया। हे राजन्! कौरवों से विदा हो हलधर जी द्वारका आये और सभा में विराजमान हो, कौरवों ने जो बातें कीं सो सब वृत्तान्त कह सुनाया।

माया विभूति वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! नरकासुर को मार श्रीकृष्ण भगवान ने बहुत स्त्रियों को विवाहा, यह सुन देखने की इच्छा से श्रीनारदजी द्वारका चले। वह मन में विचार करने लगे कि यह बड़े आश्चर्य की बात है, कि श्रीकृष्ण ने एक शरीर से एक ही साथ सोलह

हजार स्त्रियों का पाणिग्रहण किया। वहां श्रीकृष्ण की रानियों के मन्दिरों में से एक में नारदजी प्रविष्ट हुए। उसमें मूंगों के खम्भे लग रहे थे और खम्भों की चौकियां वैदूर्यमणि की थीं। रत्न दीपकों से उसमें अन्धकार नहीं आता था। उस भवन में सुन्दर आभूषणों को पहिने हजारों दासियों के साथ श्री रुक्मिणीजी हाथ में चमर लिये पवन झल रही थीं, ऐसे श्रीकृष्ण का नारदजी ने दर्शन किया। नारदजी को देखते ही भगवान तुरन्त उठ खड़े हुए और नारदजी के चरणों में प्रणाम कर हाथ जोड़ अपने आसन पर बिठाया। फिर भगवान ने नारदजी के चरण प्रक्षालन कर चरणोदक मस्तक पर धारण किया और बोले- हे नारद! आपका आगमन मंगलदायक है। आपका हम क्या पूजन करें। सो आज्ञा कीजिए। नारदजी बोले- हे नाथ! आपने जो मेरा सत्कार किया यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि जगत की स्थिति और रक्षा सहित कल्याण करने को आपने अपनी इच्छा के अनुसार अवतार लिया है, अब ऐसी कृपा करो कि आपका स्मरण बना रहे और मैं आपके चरणों का ध्यान करता हुआ विचरा करूं। हे परीक्षित! इसके उपरान्त नारदजी दूसरी रानी के मन्दिर में गये। उसमें भी सत्यभामा और उद्धवजी के साथ चौपड़ खेलते भगवान को देखा। प्रभु ने भक्ति से उठकर आसन बिछाकर अर्घ्य दे नारदजी का पूजन किया और पूछा कि आप कब आये, मुझ सरीखे

पुरुषों से क्या काम हो सकता है? हे ब्रह्मन्! जो कार्य हमारे योग्य हो सो आज्ञा कर हमारा वंश सफल करो। यह सुन नारदजी विस्मित हो तीसरे मन्दिर में गये। उसमें भी अपने छोटे बालकों को खिलाते हुए भगवान को देखा, फिर चौथे में देखा कि श्रीकृष्ण भगवान स्नान कर रहे हैं। अनन्तर किसी मन्दिर में अग्नि होत्र, किसी में पंचयज्ञ, किसी में ब्राह्मणों को जिमाया बचा हुआ प्रसाद भोजन करते, श्रीकृष्ण का दर्शन किया। फिर नारदजी ने देखा कि भगवान किसी में सन्ध्योपासना कर रहे हैं फिर किसी में गायत्री जप कर रहे हैं, किसी में ढाल तलवार लिये विचर रहे हैं, किसी में घोड़े, हाथी और रथ पर घूम रहे हैं और किसी में शयन कर रहे हैं, किसी में स्त्रियों के साथ जल विहार कर रहे हैं। किसी में भगवान ब्राह्मणों को दान कर रहे हैं। किसी में भगवान अकेले ही बैठे माया से अतीत ब्रह्म का ध्यान कर रहे हैं। किसी में विरह की बातें और किसी में मेल मिलाप की बातें कर रहे हैं, किसी मन्दिर में पुत्रों का विवाह कर रहे हैं और अपनी कन्याओं को जमाइयों के साथ भेज रहे हैं। इस प्रकार मनुष्यावतार भगवान की माया देखकर नारदजी भगवान से बोले- हे योगेश्वर! मायावी पुरुष भी जिसको नहीं जान सकते ऐसी आपकी योगमाया को आपके सेवन के प्रभाव से केवल हम जानते हैं, परन्तु परमार्थ स्वरूप को नहीं जानते। हे देव! आपकी लीला को गाता हुआ मैं निरन्तर विचरूं, यह

आज्ञा मुझे दीजिए। श्रीभगवान बोले- हे ब्रह्मन्! मैं धर्म वक्ता और सब लोकों को शिक्षा देने की इच्छा से धर्म का पालन करता हूं, अतएव हे नारद! तुम मोह को प्राप्त न होओ। इस प्रकार श्रीकृष्ण जी से पूजित हो नारदजी भगवान का स्मरण करते वहां से चले गये।

श्रीकृष्ण के पास जरासन्ध द्वारा पीड़ित राजाओं के भेजे हुए दूत का आना

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे राजन्! नित्य भगवान ब्रह्म मुहूर्त में उठ, आचमन कर आत्मा का ध्यान करने लगे, इसके उपरान्त स्नान कर वस्त्र पहिन, सन्ध्योपासनादि कर्म किया। इतने में ही सारथी ने घोड़े जोत रथ लाकर सम्मुख खड़ा कर दिया। तब श्रीकृष्ण सात्यकी और उद्धवजी को संग ले रथ पर चढ़ गये। सब मन्दिरों से निकल पीछे सब एक रूप हो यादवों के साथ भगवान सुधर्मा की सभा में गए। हे परीक्षित! इस सभा में स्थित हुए पुरुषों को भूख, प्यास, जाड़ा-गर्मी, शोक और मोह नहीं व्यापते। वहां आसन पर विराज श्रीकृष्णचन्द्रजी ऐसे शोभायमान लगते थे, जैसे तारामण्डल में चन्द्र। उसी समय एक अनजान मनुष्य आ पहुंचा, ड्योढ़ीवान ने प्रभु की आज्ञा से उसको सभा में पहुंचाया। श्रीकृष्ण को नमस्कार कर वह मनुष्य हाथ जोड़ राजाओं का सन्देशा कहने लगा, जिनको कि जरासन्ध ने कैद कर लिया था। राजाओं को बलात

पकड़ जरासन्ध ने गिरि ब्रज किले में कैद कर रखा था। उनकी ओर से दूत ने आकर प्रार्थना की कि, हे कृष्ण! हम इस संसार से भयभीत हो आपकी शरण में हैं। आपने साधुओं की रक्षा और दुष्टों का नाश करने को अवतार लिया है, हे अर्जित! हम आपकी शरण हैं रक्षा करो।

हे परीक्षित! दूत प्रार्थना कर ही रहा था कि नारदजी प्रकट हुए। उनको देख भगवान, सभासद और अनुचरों सहित उठ खड़े हुए और प्रणाम किया। आसन दे श्रीकृष्ण बोले- हे भगवन्! तीनों लोकों में निर्भय हो आपका विचरना हमको परम लाभदायक है, क्योंकि घर बैठे ही सब समाचार मिल जाते हैं। नारदजी बोले- हे प्रभु! राजा युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ द्वारा आपका पूजन करना चाहते हैं, बिना आपकी सहायता के वह नहीं कर सकते, अतः आपकी सम्मति देना उचित है, आपको वहां चलना चाहिए। आपके चलने से मंगल होगा। जब नारदजी ने यह कहा, तब यादवों ने जरासन्ध को जीतने की इच्छा से युधिष्ठिर के यज्ञ में जाने की सम्मति नहीं दी, अनन्तर श्रीकृष्ण भगवान मुस्कराकर अपने भक्त उद्धवजी से सलाह करने लगे कि कहां चलना चाहिए।

श्रीकृष्ण का इन्द्रप्रस्थ गमन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! उद्धवजी

भगवान का अभिप्राय जान बोले- हे देव! नारदजी ने कहा कि युधिष्ठिर आपका पूजन करना चाहते हैं, सो उसकी भी सहायता करनी योग्य है। सब राजाओं को जीतने वाला राजसूय यज्ञ करके पूजन होगा, इस कारण जरासन्ध को अवश्य जीतना पड़ेगा, ऐसा करने से दोनों काम हो जायेंगे, मेरा तो यही मत है। अनन्तर उद्धवजी यादवों की तरफ देख बोले यह जरासन्ध अन्य बलवानों से मारा जा सके यह सम्भव नहीं है, उसको तो भीम ही मार सकते हैं। उसकी मृत्यु विधाता ने भीम से ही रची है। जो पुरुष यह इच्छा करे कि सेना ले जाकर जरासन्ध को जीते, सो यह युद्ध में जीता जाएगा। जरासन्ध ब्राह्मणों का भक्त है इस कारण भीम ब्राह्मणों का वेष धारण कर इससे युद्ध दान मांगे। तो आशा है कि वह निषेध नहीं करेगा, इस प्रकार भीमसेन जरासन्ध के समीप जाकर द्वन्द्व युद्ध की भिक्षा मांगे और आप उसके साथ हों तो भीमसेन अवश्य जरासन्ध को मारेगा। हे श्रीकृष्णजी! जरासन्ध के मरने से कई कार्य होंगे क्योंकि उसके वध से शिशुपाल आदि सब बलहीन हो जायेंगे, फिर उनका मारना सहज़ हो जाएगा और यज्ञ भी हो जाएगा। इस कारण आप राजा युधिष्ठिर के यहां चलिए। हे परीक्षित! इस प्रकार से युक्ति भरा उद्धवजी का वचन सुन नारदजी यादव और श्रीकृष्ण सबने उद्धव के वचनों को स्वीकार किया। इसके उपरान्त भगवान ने यात्रा के निमित्त अपने सारथी को

आज्ञा दी। पुत्र, दास, दासी और समधी समेत अपनी रानियों को भेजकर बलराम व उग्रसेन से आज्ञा ले श्रीकृष्ण गरुड़ध्वज रथ पर चढ़े, फिर सेना संग ले, नगाड़े, शंख और रणसिंहों के शब्द से शब्दायमान श्रीकृष्ण निकले। उपरान्त श्रीकृष्ण उस राजदूत को प्रसन्न करने को मनोहर वाणी से बोले- तुम राजाओं से जाकर कहो कि मैं शीघ्र ही जरासन्ध को मारूंगा। जब भगवान ने ऐसे कहा तब राजदूत ने जाकर राजाओं से ज्यों का त्यों सब वृत्तान्त सुनाया, सुनते ही राजा भी अपने छूटने की अभिलाषा से भगवान की बाट देखने लगे। अनन्तर श्रीकृष्ण भगवान अनन्त, सोवीरु, मरुस्थल आदि देशों का उल्लंघन कर कुरुक्षेत्र होते हुए इन्द्रप्रस्थ पहुंचे। श्रीकृष्ण का आगमन सुन युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए और सुहृद्वर्ग को साथ ले श्रीकृष्ण के सम्मुख आये और आदरपूर्वक मिले। श्रीकृष्णजी से भीमसेनजी हंसकर मिले, उस समय उनको ऐसा आनन्द प्राप्त हुआ कि नेत्रों में आंसू भर आये। नकुल व सहदेव तथा अर्जुन सब परम हितकारी श्रीकृष्णजी से मिले। अर्जुन ने समान अवस्था के कारण श्रीकृष्ण को छाती से लगाकर प्रणाम किया। इस प्रकार सुहृदय से सत्कार पाकर कृष्ण ने पुर में प्रवेश किया था। सुगन्ध युक्त जल से मार्ग में सब ओर छिड़काव हो रहा, चित्र विचित्र ध्वजायें फहरा रहीं, सोने की बन्दनवार बंध रहीं, मन्दिर पर दीपकों और फूलों की पांती शोभा दे रहीं

और झरोखों से सुगन्धित धुआं निकल रहा, मन्दिर के ऊपर स्वर्ण के कलशों से नीचे चांदी के शिखर बने हुए परम सुहावने थे, मन्दिरों से शोभायमान युधिष्ठिरजी का इन्द्रप्रस्थ नगर देखा। हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों की भीड़-भाड़ से युक्त राजमार्ग में रानियों सहित श्रीकृष्ण को देख कोठों पर चढ़ी हुई स्त्रियां फूल वर्षा कर भगवान का स्वागत करती थीं। श्रीकृष्ण जी के साथ जाती हुए स्त्रियों को देख इन्द्रप्रस्थ की स्त्रियां बातें करने लगीं कि अहो! इन स्त्रियों ने क्या पुण्य किया होगा कि जिनके नेत्रों को भगवान अपनी उदार हंसनि और चितवन की कला में आनन्द देते हैं? पुरवासी जहां-जहां होकर भगवान निकलते हैं, वहां-वहां पान, सुपारी, बताशे, नारियल आदि पदार्थ ले, श्रीकृष्ण के सम्मुख आकर भेंट देते थे। तदन्तर भगवान राजमन्दिर में पधारे, अपने भतीजे को देखते ही कुन्ती बहू द्रौपदी सहित पलंग से उठकर श्रीकृष्ण से मिली। उस समय राजा युधिष्ठिर आनन्द के कारण पूजन की विधि भूल गये। द्रौपदी और अपनी बहन सुभद्रा को प्रणाम करने पर श्रीकृष्णजी ने अपनी फूफी और गुरुजनों की स्त्रियों को प्रणाम किया। अपनी सास की आज्ञा से द्रौपदीजी ने श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण स्त्रियों का पूजन किया और सुन्दर स्थान में निवास कराया। समान अवस्था होने के कारण श्रीकृष्ण अर्जुन की बहुत प्रीति बढ़ गई थी, इस कारण भगवान अर्जुन सहित खाण्डव वन गये। वहां

अग्नि को तृप्त किया, उसमें मय दानव भस्म होने लगा तब उसको बचाया, उसने एक दिव्य सभा रचकर युधिष्ठिरजी को समर्पण की। अर्जुन सहित रथ में विराजे योद्धाओं को साथ ले विहार करते हुए श्रीकृष्णजी युधिष्ठिर को प्रसन्न रखने के लिये कई महीने इन्द्रप्रस्थ में रहे।

जरासन्ध वध

श्रीशुकदेवजी बोले- हे राजन्! एक दिन सभा में युधिष्ठिर भगवान से बोले- हे गोविन्द! राजसूय यज्ञ द्वारा मैं आपके अंश रूप देवताओं का पूजन करना चाहता हूं, आप इसको सिद्ध करो। भगवान बोले- हे युधिष्ठिर! आपने बहुत अच्छा निश्चय किया है, इससे आपकी कीर्ति लोकों में फैल जावेगी। सम्पूर्ण राजाओं की जीत और भूमण्डल को वश में कर सब सामग्री इकट्ठी करके आप यह महायज्ञ करो। हे राजन्! दिग्विजय करने में तो आपको कठिनता न होगी क्योंकि आपके भाई भीमसेन आदि देवताओं के अंश से प्रगट हुए हैं, इनका कोई देवता भी पराभव नहीं कर सकता। श्रीकृष्ण का वचन सुन युधिष्ठिर प्रसन्न हुए और अपने भाइयों को दिग्विजय करने के अर्थ नियत किया। सहदेव को सृञ्जय देश के क्षत्रियों के साथ दक्षिण में, नकुल को मत्स्य देश के क्षत्रियों के साथ पश्चिम में, अर्जुन को केकय देश के क्षत्रियों के संग उत्तर में तथा

भीमसेन को मद्र देश के क्षत्रियों के संग पूर्व में जाने की आज्ञा दी। हे परीक्षित! चारों ने अपने पराक्रम से राजाओं को जीतकर युधिष्ठिर को प्रचुर धन लाकर दिया। सम्पूर्ण दिशाओं के राजाओं को तो जीत गये परन्तु जरासन्ध जीता न गया। तब श्रीकृष्ण ने उद्धवजी का बताया हुआ उपाय बतलाया। हे राजन्! तदनुसार भीमसेन, अर्जुन व श्रीकृष्ण ये तीनों ब्राह्मण का स्वरूप धार गिरिव्रज नामक किले में गये। ब्राह्मण रूप क्षत्रिय ने जरासन्ध के पास जा भिक्षा मांगी और कहा- हे जरासन्ध! हम बहुत दूर से आये हैं। श्रीशुकदेवजी बोले- हे राजन्! बोलचाल स्वरूप और धनुष की प्रत्यंचा के घात से चिह्नित उनको देख क्षत्रिय जान पहिले कहीं देखे हैं, इस प्रकार जरासन्ध विचार करने लगा। यदि ये लोग अपनी आत्मा भी मांगेंगे तो दुस्त्यज आत्मा भी इनको दे दूंगा। यह विचार कर उदार बुद्धि जरासन्ध श्रीकृष्ण अर्जुन और भीम के प्रति कहने लगा- हे ब्राह्मणों! अपना मनोरथ कहो। श्रीकृष्ण बोले- हे राजेन्द्र! जो यह बात आपके मन में है तो हमसे द्वन्द्व युद्ध करो, युद्ध के निमित्त ही हम क्षत्रिय आपके समीप आये हैं, ब्राह्मण नहीं हैं। यह तो भीमसेन है और यह अर्जुन है और इन दोनों के मामा का पुत्र बैरी मैं कृष्ण हूं सो मुझको तुम जानते हो। यह सुन जरासन्ध ऊंचे स्वर से हंसा और क्रोध में आकर बोला- हे मूर्खो! मैं तुमको युद्ध दान देता हूं। हे कृष्ण! तुझ डरपोक से

मैं युद्ध नहीं करूंगा। तू युद्ध में सामने से भागकर अपनी पुरी को छोड़ समुद्र की शरण में जा रहता है और यह अर्जुन अवस्था में न्यून है इस कारण इससे युद्ध न करूंगा। हां, भीमसेन के साथ युद्ध करूंगा। यह कहकर भीमसेन को एक गदा दे, दूसरी आप ले युद्धदान निमित्त, जरासन्ध पुर से बाहर निकला। इसके उपरान्त युद्धभूमि में जा भीमसेन और जरासन्ध परस्पर गदाओं से प्रहार करने लगे, यह दिन में युद्ध करते थे, रात में मित्र भाव से रहते थे। युद्ध में किसी की पराजय न हुई, युद्ध करते सत्ताईस दिन हो गये। हे राजन्! एक दिन भीमसेन श्रीकृष्ण से बोले- हे माधव! जरासन्ध को मैं नहीं जीत सकता हूं। जरासन्ध दो भाग होकर जना है, उन दोनों भागों को 'जरा' राक्षस ने मिला दिया है, इस कारण यह दो खण्ड होने से ही मरेगा, इस बात को जानने वाले हरि ने भीमसेन को अपने तेज से बलवान किया और जरासन्ध को चिरवाने का विचार किया। हरि ने शत्रु का वध कराने का उपाय तृण चीर कर भीमसेन को सैन से जताया कि जैसे मैं तिनके को चीरता हूं, इसी प्रकार तुम इसको चीर डालो। तब भीम ने भगवान के संकेत को समझकर वैरी को पृथ्वी पर दे पटका और उसके एक पांव को अपने पांव के नीचे दबाकर दूसरे पांव को हाथों से पकड़ गुदा के बीच से चीर डाला। अनन्तर श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के पुत्र सहदेव को राज्यतिलक दे, मगध का राजा बनाया। जरासन्ध ने

जिन राजाओं को बन्दी कर लिया था, उन्हें छुड़ा दिया।

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! जब बीस हजार आठ सौ राजाओं ने बाहर निकलकर भगवान का दर्शन किया, तब वे हाथ जोड़ बोले- हे देवेश! इस संसार से दुःखी हुए, आपकी शरण आये हम लोगों की रक्षा करो। अब हम राज्य नहीं चाहते हैं, क्योंकि आयु क्षीण होती है शरीर में रोग कष्ट देता ही रहता है। इस कारण अनेक योनियों में भ्रमण करते हुए हमआपके चरणारविन्दों को न भूल जावें, वही उपाय बतलाइये। राजाओं की इस प्रकार प्रार्थना करने पर भगवान बोले- हे राजाओं! तुमने तेरी भक्ति मांगकर बहुत ही अच्छा किया, तुम सब पदार्थों को नाशवान जान यज्ञों द्वारा हमारा पूजन करो और प्रजा की रक्षा के लिए पुत्रादिकों को उत्पन्न करो। यदि तुम देह आदिक पदार्थों में उदासीन हो मुझमें चित्त लगाओगे तो अन्त समय मुझे प्राप्त हो जाओगे। हे परीक्षित! भगवान ने राजाओं को इस प्रकार आज्ञा दे सबको स्नान आदि कराने के निमित्त अनेक पुरुष व स्त्रियों को नियत किया। स्नान के उपरान्त सहदेव के द्वारा राजाओं के योग्य वस्त्र आभूषण से उनका सत्कार कराया। उन राजाओं ने अपने देश में पहुंच जैसे श्रीकृष्ण ने कारागार से छुड़ाया और जैसा सत्कार किया सब अपनी प्रजा के सम्मुख वर्णन किया। हे परीक्षित! इस प्रकार भीमसेन के हाथ से जरासन्ध का वध कराकर श्रीकृष्ण भीम व अर्जुन के

संग इन्द्रप्रस्थ को लौट आए। अनन्तर युधिष्ठिर को प्रणाम कर सब हाल सुनाया, यह सुन युधिष्ठिरजी प्रेम मग्न हो गये और कुछ बोल न सके।

शिशुपाल वध

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे परीक्षित! जरासन्ध वध सुन युधिष्ठिर प्रसन्न हुए और भगवान से सम्मति ले यज्ञ करने के योग्य काल में वेदवक्ता और सुयोग्य ब्राह्मणों को होता आदि ऋत्विज बनाने के अर्थ वरण किया। द्वैपायन, भारद्वाज, सुमन्त, गौतम, असित, कृपाचार्य आदि ऋत्विज ऋषि आये और पुत्रों सहित धृतराष्ट्र व विदुरजी भी आ सुशोभित हुए। अनन्त ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सब यज्ञ देखने की अभिलाषा से वहां आये। इसके उपरान्त ब्राह्मण स्वर्ग के हलों से यज्ञ भूमि को शुद्ध कर युधिष्ठिरजी को यज्ञ दीक्षा देने लगे। यज्ञ में स्वर्ण की सामग्री और स्वर्ण के पात्र थे, इन्द्र आदिक लोकपाल, ब्रह्मा व शिवजी को साथ लेकर आये। ऋत्विजों ने युधिष्ठिर जी को विधि पूर्वक राजसूय यज्ञ कराया। युधिष्ठिरजी ने सोमवल्ली कूटने के दिन ऋत्विज और मुख्य सभासदों का पूजन आरम्भ किया। वहां यह विचार होने लगा कि पहले किसका पूजन होने योग्य है, इस प्रकार विचार करते-करते अनेक महापुरुष बैठे देख किसी एक का निश्चय न हुआ तब सहदेव बोले—भक्तों के पति, श्रीकृष्ण इस

यज्ञ में पहिले पूजन करने योग्य हैं। कह कहकर श्रीकृष्ण के प्रभाव को जानने वाले श्री सहदेव चुप हो गये। ये वचन सुन सब श्रेष्ठ पुरुष, 'अच्छा कहा, अच्छा कहा', इस प्रकार कह धन्यवाद देने लगे। ब्राह्मणों के वचन सुन युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का पूजन किया। भगवान के चरण कमलों को धोकर चरणोदक ले, स्त्री, भाई, मंत्री व कुटुम्बियों सहित युधिष्ठिर ने मस्तक पर धारण किया। तब सब भक्तजन श्रीकृष्ण का दर्शन कर "श्रीकृष्णायनमः नमो भगवते वासुदेवाय, नमो नारायण, जय हरे जय कृष्ण, जय गोविन्द", इत्यादि उच्चारण कहते हुए फूल वर्षाने लगे। यह देख दमघोष का पुत्र शिशुपाल आसन से उठा और श्रीकृष्ण के गुण वर्णन से क्रोधयुक्त हो भुजा उठा सभा के बीच ईर्ष्या से कठोर वचन कहने लगा कि हे सभापतियो! इस सहदेव का कहना मत करो। क्या यह कृष्ण प्रथम पूजने योग्य हैं? कदापि नहीं। तप करने वाले विद्यावान, व्रतधारी, ज्ञानी, पाप रहित, ब्रह्मनिष्ठ व लोकपालों से पूजित बड़े-बड़े ऋषि लोग विराजमान हैं। इन सबका अपमान कर गोपाल कुल में कण्टक कृष्ण कैसे पूजने योग्य हो सकता है? वर्ण आश्रम व कुल से रहित, धर्मों से बहिष्कृत, गुणों से हीन, यह कृष्ण कैसे पूजा योग्य हो सकता है? इनके कुल को राजा ययाति ने शाप दिया था, इस कारण यह सत्पुरुषों से बहिष्कृत है। ब्राह्मण और ऋषियों से सेवित देशों

को त्याग समुद्र का आश्रय ले, ये लुटेरे प्रजा को कष्ट देते हैं और उनमें वह कृष्ण बड़ा भारी डाकू है। हे परीक्षित! शिशुपाल इस प्रकार वचन कहता रहा, परन्तु श्रीकृष्ण कुछ न बोले। तब उस सभा में बैठे सभी लोग निन्दा सुन कान बन्द करके क्रोध से शिशुपाल को गाली देते हुए सभा से चले गये। हरि की अथवा भक्तजनों की निन्दा सुन जो पुरुष वहां से न उठ जाय तो वह भी नरक में गिरता है। इसके उपरान्त पांडु के पुत्र और मत्स्य, कैकय, सृञ्जय देशों के राजा क्रोध कर शिशुपाल को मारने को उठे। तब शिशुपाल ने भी ढाल तलवार हाथ में ले ली। उस समय भगवान ने विचार किया कि ये हमारा पार्षद है, जो हम इसे न मारेंगे तो यह सबको मार डालेगा यह विचार श्रीकृष्णजी ने उठ क्रोध युक्त हो चक्र से शिशुपाल का सिर काट डाला। शिशुपाल के मरने पर उसके साथ के राजा अपने प्राण बचा वहां से भाग गये। शिशुपाल के शरीर से निकली हुई ज्योति भगवान में लीन हो गई। तीन जन्म पर्यन्त किये बैर से तन्मय बुद्धि वाले शिशुपाल ने भगवान का ध्यान किया इससे वह भगवद् रूप हो गया। इसके अनन्तर युधिष्ठिर ने यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणों और सभासदों को दक्षिणा दी, विधिपूर्वक पूजन किया। श्रीकृष्ण युधिष्ठिरजी का यज्ञ साधन करके कितने ही मास वहीं विराजे। तदन्तर युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर स्त्री, पुत्र व अनुयायियों को साथ

ले, श्रीकृष्णजी द्वारिका आये।

दुर्योधन का मान भंग

परीक्षित ने पूछा- हे राजन्! युधिष्ठिरजी के यज्ञ का महोत्सव देखने को जो राजा आये थे वे सब प्रसन्न हुए। परन्तु दुर्योधन प्रसन्न नहीं हुआ? इसका कारण क्या है? श्रीशुकदेवजी बोले- तुम्हारे पितामह युधिष्ठिर के यज्ञ में प्रेम वश होकर सब बन्धु बान्धव यज्ञ का काम करते थे। भीमसेन रसोई के अधिष्ठाता थे दुर्योधन कोषाध्यक्ष थे, सहदेवजी पूजा के काम में व नकुलजी यज्ञ की सामग्री साधन करने में लग रहे थे, अर्जुन गुरुजनों की सेवा में लग रहे थे, श्रीकृष्ण जी यज्ञ में आने वालों के चरण प्रक्षालन करते थे, द्रौपदी भोजन परोसती थी, कर्णजी दान देने की टहल में लगे थे। सात्यकी, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुर तथा भूरिश्रवा आदि यज्ञ सम्बन्धी कामों में लगे थे। यज्ञ समाप्त होने पर सब गंगाजी में अवभृथ स्नान करने चले। अवभृथ के उत्सव में अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। राजा युधिष्ठिर को आगे किये सेना सहित चले, ऋत्विजों ने पत्नी संयाज और अवभृथ सम्बन्धी आचमन करा द्रौपदी सहित युधिष्ठिर को गंगाजी में स्नान करवाया। उस समय नगाड़े बजने लगे, देवता और मानव सब फूलों की वर्षा करने लगे। स्नान के उपरान्त युधिष्ठिर ने रेशमी धोती पहिन ऋत्विज, सभासद और ब्राह्मण

आदिक लोगों का अलंकार और वस्त्रों से पूजन किया। अनन्तर ऋत्विज सभासद आदि अपने स्थान को चले गये। युधिष्ठिरजी के यज्ञ की प्रशंसा करते-करते सब तृप्त नहीं होते थे, यह देख दुर्योधन का मन चलायमान हो गया और वह कुढ़ने लगा। हे राजन्! एक समय मय की रची हुई सभा में युधिष्ठिर, भाई, बन्धु और श्रीकृष्ण सहित विराजमान थे, उसी समय भाइयों को साथ ले दुर्योधन क्रोध से द्वारपालों को धमकी देता हुआ राज सभा में आया। मय दानव की माया से दुर्योधन ऐसा भ्रमित हो गया कि स्थल पर जल का भान कर वस्त्र समेटने लगा और जहां जल था वहां स्थल के भ्रम से जल में गिर पड़ा। दुर्योधन को गिरा देख युधिष्ठिर के निषेध करने पर भी कृष्ण के सैन से भीमसेन हंसे, उनको हंसते देख स्त्रियां और सब राजा हंसने लगे। अनन्तर दुर्योधन लज्जित हो क्रोधाग्नि से भभकता हुआ सभा से निकल हस्तिनापुर चला गया। उस समय युधिष्ठिर उदास हो गये, परन्तु श्रीकृष्ण को तो भूमि का भार उतारना था इस कारण चुप रहे, यहीं महाभारत का पहला बीज बोया गया था।

शाल्व के साथ युद्धारम्भ

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे राजन्! जिस प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने सौभपति शाल्व को मारा, वह कथा श्रवण करो। शिशुपाल का मित्र शाल्व रुक्मिणी

के विवाह में आया था, वहां जरासन्ध आदि के साथ हार गया था। एक दिन शाल्व ने प्रतिज्ञा की कि पृथ्वी को यादव रहित करूंगा। इस प्रकार प्रतिज्ञा करके केवल धूल की एक मुट्ठी खाता हुआ महादेवजी की अराधना करने लगा। एक वर्ष के अन्त में शिवजी आ बोले कि वर मांग। तब शाल्व ने वरदान मांगा कि देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, सर्प, राक्षस इनसे न मिट सके और जहां इच्छा हो वहां पहुंचावे, ऐसा विमान दीजिए। तब तथास्तु कह महादेवजी ने मय को आज्ञा दी तो उसने लोहे का सौभनाम विमान बना कर शाल्व को दिया। विमान पाकर यादवों के बैर को स्मरण करता शाल्व द्वारकापुरी के घेरकर महल अटारियाँ आदि को तोड़ने लगा। विमान से शस्त्रों की वर्षा करने लगा। हे राजन्! इस प्रकार विमान द्वारा द्वारिकापुरी दुःखित हो गई। अनन्तर प्रद्युम्न अपनी प्रजा को दुःखी देख रथ पर चढ़ हाथी, घोड़े, पैदलों को संग ले बाहर निकले। इसके उपरान्त शाल्व के योद्धाओं और यादवों के साथ युद्ध होने लगा। प्रद्युम्नजी ने शाल्व की माया का क्षण में नाश कर दिया। सेनापति को बेध डाला और सौ बाणों से शाल्व को, एक-एक बाण से प्यादों को, दस-दस से सारथियों और तीन-तीन वाणों से हाथी, घोड़े आदि को ताड़न किया। प्रद्युम्नजी का पराक्रम देख शत्रु की सेना घबराने लगी। मय का बनाया विमान कभी देखने में आता और कभी न आता

था। इससे यादवों को उसका नष्ट करना कठिन हो गया। सेना सहित सौभ विमान में बैठा हुआ शाल्व जहां देख पड़ता वहीं यादव बाण चलाते थे। यादवों के बाणों द्वारा सेना को पीड़ित हुई देख शाल्व घबरा गया। शाल्व के मंत्री द्युमान ने प्रद्युम्नजी पर गदा प्रहार किया और गर्जने लगा। प्रद्युम्नजी का वक्षःस्थल गदा से विदीर्ण हो गया तब दारुक का पुत्र श्री प्रद्युम्न को रण से बाहर ले आया। एक मुहूर्त में जब प्रद्युम्नजी चैतन्य हुए, तब सारथी से बोले- हे सूत! बड़े खेद की बात है, जो मुझको रणभूमि से बाहर निकाल लाये। यादव कुल में आज तक ऐसा कोई नहीं हुआ जो रण छोड़ भागा हो। पिता के सम्मुख जाकर मैं अपनी योग्यता के विषय में किस प्रकार बात करूंगा? मेरे भाइयों की स्त्रियां नपुंसक कह मेरा उपहास करेंगी। रथवान कहने लगा- हे चिञ्जिविन्! अपना धर्म जान मैंने यह किया है, क्योंकि- धर्मशास्त्र में लिखा है रथ में बैठने वाले को जब कष्ट आ पड़े तब सारथी उसकी रक्षा करे। सारथी पर कष्ट पड़ने से रथ में बैठने वाला उसकी रक्षा करे। इस प्रकार का धर्म जान मैं आपको रण से बाहर निकाल लाया।

प्रद्युम्नजी ने कवच पहिन रथवान् से कहा कि द्युमान के निकट ले चलो। प्रद्युम्नजी ने द्युमान को रोक आठ-आठ बाण उसके मारे। चार बाणों से उसके चारों घोड़ों को, एक बाण में सारथी को मार, फिर एक

बाण से उसका सिर काट डाला। जब गदा से सात्यकि और साम्ब आदि यादव, सेना को मारने लगे तब सिर कटे योद्धा विमान में से समुद्र में गिर पड़े। इस प्रकार यादव और शाल्व की सेना का सत्ताईस दिन युद्ध हुआ। श्रीकृष्ण तो इन्द्रप्रस्थ थे, जब यज्ञ हो चुका और शिशुपाल मारा गया, तथा कौरवों तथा पुत्रों सहित कुन्ती से आज्ञा ले मार्ग में अपशकुन देखते हुए श्रीकृष्ण द्वारका आये। यादवों का दुःख देख बलराम जी को द्वारका की रक्षा के निमित्त छोड़ श्रीकृष्ण दारुक से कहने लगे- हे रथवान्! मेरे रथ को शाल्व के समीप पहुंचा दे, यह सौभ विमान का राजा बड़ा मायावी है। आज्ञा होते ही रथवान रथ को हांकने लगा। शाल्व ने श्रीकृष्ण को देख उनके सारथी पर शक्ति फैंकी। उसको देख श्रीकृष्ण ने अपने बाणों से उसके सौ खण्ड कर दिये और सौ बाण शाल्व के मारे और सौभविमान को अपने बाणों से बेधित किया। फिर क्रोधकर शाल्व ने भगवान की बाईं भुजा को बींध दिया तब भगवान के हाथ से धुनष गिर पड़ा। धनुष गिरा देख शाल्व ने ऊंचे स्वर से गर्जकर भगवान को कहा- हे मूर्ख! तू हमारे देखते सखा की स्त्री को हर ले गया और सभा के बीच हमारे मित्र को तूने मार डाला यदि आज तू मेरे सामने रहेगा तो अवश्य तुझे मार डालूंगा। श्रीकृष्ण बोले- हे अधम! तेरी मृत्यु अब निकट आ पहुंची, यह कह भगवान ने क्रोधित हो गदा लेकर

शाल्व को हंसली पर मारी जिसके लगते ही वह रुधिर उगलता हुआ कांपने लगा। फिर अन्तर्ध्यान हो गया। इसके बाद दो घड़ी व्यतीत होने पर एक पुरुष भगवान के पास आकर प्रणाम कर, 'देवकी ने भेजा है', यह कह रोता हुआ बोला- हे कृष्ण! शाल्व आपके पिता को बांध ले गया है। यह सुन भगवान बोले- बलरामजी को जीत शाल्व ने पिता को कैसे बांध लिया होगा? इतने में शाल्व माया के वसुदेव को ले श्रीकृष्ण के समीप लाया और कहने लगा- यह तेरा पिता है। हे मूर्ख! इसको मारता हूं यदि तुझमें शक्ति हो तो इसकी रक्षा कर। इस प्रकार तिरस्कार कर शाल्व ने वसुदेव का सिर काट डाला और उसे लेकर सौभ विमान में जा पहुंचा। भगवान् यद्यपि स्वतः ज्ञान वाले हैं तथापि दो घड़ी शोक में मग्न रहे, फिर सचेत हो शाल्व की माया को जान लिया और वहां न तो दूत देखा और न पिता के शरीर को देखा किन्तु सौभ विमान में विचरते हुए शत्रु को बेध उसके कवच, धनुष और शीश की मणि को काटकर सौभ विमान को चूर्ण कर दिया। अनन्तर भगवान ने मायावीं शाल्व का सर काट लिया। हे परीक्षित! शाल्व के मरने और सौभ बिमान के गिरने पर देवताओं के नगाड़े बजने लगे, तदन्तर शिशुपाल, शाल्व व पौंड्रक आदि अपने मित्रों का बदला लेने दन्तवक्र द्वारका पर चढ़ आया।

दन्तवक्र, विदूरथ वध तथा बलदेवजी द्वारा सूत वध

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन् शिशुपाल, शाल्व और पौंड्रक से मित्र भाव दर्शाता हुआ दन्तवक्र अकेला ही पैदल गदा लिये, शीघ्रता पूर्वक आता दिखाई पड़ा। उसको देख श्रीकृष्ण रथ से उतर पड़े और गदा ले उसको रोक दिया। दन्तवक्र गदा उठाकर भगवान से कहने लगा कि यह बहुत ही अच्छा हुआ, जो तू आज मेरे सम्मुख आया। इस गदा से तुझको मारूंगा। यह कह श्रीकृष्णजी के मस्तक पर गदा मार वह गर्जने लगा। उसके लगने पर भी भगवान कम्पायमान नहीं हुए और अपनी गदा उसकी छाती में मारी। गदा लगते ही दन्तवक्र का वक्षस्थल विदीर्ण हो गया, मुख से रुधिर वमन करता हुआ, वह प्राणों को छोड़ भूमि पर गिर पड़ा।

हे परीक्षित! दन्तवक्र के शरीर से ज्योति निकल श्री कृष्ण में प्रवेश कर गई। भाई के शोक से व्याकुल विदूरथ ढाल तलवार ले श्रीकृष्ण के मारने की इच्छा से आया। श्रीकृष्ण ने सुदर्शनचक्र से उसका सिर काट डाला। इसके उपरान्त यादवों को संग ले भगवान द्वारका में आये। हे परीक्षित! अब बलरामजी के चरित्र कहते हैं। कौरवों, पाण्डवों को एक समान मानने वाले बलरामजी उन दोनों के बीच युद्ध सुन तीर्थ यात्रा के

लिए द्वारका से चले गये। प्रथम प्रभास तीर्थ में स्नान कर देव, ऋषि, पितर व पुरुषों को तृप्त करके ब्राह्मणों सहित बलरामजी सरस्वती के सम्मुख गये। बलरामजी पृथुदक, विन्दुसर, त्रितकूप, सुदर्शन तीर्थ और चक्रवर्ती, पूर्ववाहिनी सरस्वती, यमुनाजी और गंगाजी के अनुवर्ती, तीर्थों में भ्रमण करते हुए नैमिषारण्य क्षेत्र में पहुंचे, जहां ऋषि लोग यज्ञ कर रहे थे। मुनि बलदेवजी को आया देख खड़े हुए और प्रणाम कर पूजन करने लगे। ब्राह्मणों सहित श्रीबलदेवजी सत्कार पाकर विराजमान हुए तो वेदव्यास के शिष्य रोमहर्षण को देखा। वह सूत जाति होने पर भी ऊंचे आसन पर विराजमान था। सूतजी को उच्च आसन पर देख बलदेवजी को क्रोध हुआ और विचार करने लगे कि यह ब्राह्मणों में क्षत्रियों से उत्पन्न हुआ किस कारण से उच्च आसन पर बैठा है? यह कह बलरामजी ने एक कुशा ले उसके अग्रभाग से सूत जी का सिर काट डाला, मुनि लोग खेद को प्राप्त हो, बलदेवजी से बोले हे प्रभो! यह आपने अधर्म किया। जब तक यज्ञ समाप्त न हो तब तक पुराण कथा कहने को हम सबने इस को ब्रह्मासन दिया था और शरीर खेदित न हो, ऐसी इसे आयु भी दी थी। आप इस ब्रह्म हत्या का प्रायश्चित करोगे तभी जगत मर्यादा स्थित रहेगी। बलदेव बोले- मुनियों! लोकों के अनुग्रह की इच्छा से मैं वध का प्रायश्चित करूंगा, जो नियति हो सो मुझको उपदेश करो। और जो आप

लोगों की अभिलाषा हो सो कहो, उसी के अनुसार हम आपका मनोरथ सिद्ध करेंगे। तब ऋषि बोले- हे बलदेवजी! जिस प्रकार तुम्हारे अस्त्र का पराक्रम और मृत्यु की सत्यता है उसी प्रकार आपने जो वचन हमसे कहा वह भी सत्य हो जाये। बलरामजी बोले- पिता पुत्र में भेद नहीं होता, इस कारण इस सूत का पुत्र उग्रश्रवा बल से सम्पन्न हो आपको पुराण सुनावेगा। श्रेष्ठ मुनियों! अब आपका मनोरथ क्या है? ऋषि बोले- इल्व का पुत्र वल्वल दानव पर्व में आकर हमारे यज्ञ को दूषित करता है सो हे बलरामजी! उस पापी को मारो, यही हमारी सेवा होगी। फिर सावधान हो काम, क्रोध को त्याग भरत खण्ड की परिक्रमा करके, एक वर्ष तक तीर्थ करोगे, तब आप पवित्र हो जाओगे।

बलदेवजी की तीर्थ यात्रा

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- बलरामजी ने थोड़े समय बाद त्रिशूल लिये वह वल्वल दैत्य भी देखा। उस दैत्य को देख कर बलरामजी ने हल, मूशल को याद किया और वल्वल दैत्य को अपने हल के अग्र भाग में खींच कर उसके सिर में मूशल मारा। उसका सिर फूट गया रुधिर बहने लगा। वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। उस समय मुनियों ने बलरामजी को आशीर्वाद देकर अभिषेक किया। तब मुनियों से आज्ञा ले बलदेवजी कौशिकी नदी पर आये। फिर प्रयागराज में स्नान व देव, ऋषि,

पितरों का तर्पण कर, पुलहऋषि के आश्रम को गये, वहां से गोमती, गंडकी और विपाशा व शोणनव में स्नान कर गया में पितृ तर्पणादि कर्म कर गंगा और समुद्र के संगम में पहुंचे। महेन्द्राचल पर्वत पर परशुरामजी का दर्शन, सत्यगोदावरी वेणी, पम्पा में जाकर भागीरथी में स्नान किया। इसके अनन्तर स्वामी कार्तिकजी का दर्शन कर और जहां महादेवजी विराजते हैं ऐसे श्रीशैल पर्वत पर जा द्रविड़ देश में वैंकटाचल का दर्शन किया, फिर कामकोष्णी, कांचीपुरी कावेरी में स्नान कर श्रीरंगनाम क्षेत्र में गए, वहां से ऋषि भाद्रि पर्वत हरिक्षेत्र से आये, मथुरा में गये, वहां से सेतुबन्ध रामेश्वर गये, वहां हलधरजी ने दस हजार गौओं का दान किया फिर कृतमाला ताम्रपर्णी नदियों में स्नान किया। फिर मलयाचल कुलाचल पर्वत पर गये, वहां अगस्त्यजी की स्तुति की। अनन्तर अगस्त्य से आशिष पा आज्ञा ले, समुद्र तट पर कन्या नाम दुर्गा देवी का दर्शन किया। तदनन्तर फाल्गुन तीर्थ पर पञ्चाप्सर स्नान कर दस हजार गौओं का संकल्प किया। फिर बलरामजी केरल व त्रिगर्त देश में हो गौकर्ण गये, आर्या द्वैपायनी का दर्शन कर शूर्पारक क्षेत्र में गये, वहां से तापी और पयोष्णी में हो दण्डकवन में आये। उसमें नर्वदा नदी में जा माहिष्मती पुरी में जा स्नान-ध्यानकर मनुतीर्थ में आचमन कर प्रभास क्षेत्र में आये। वहां ब्राह्मणों से कौरवों पांडवों के युद्ध में सब क्षत्रियों का

मरण सुन बलरामजी ने मान लिया कि भूमि का भार उतर गया। संग्राम में भीमसेन और दुर्योधन का गदा युद्ध सुन उनको निवारण करने को कुरुक्षेत्र गये। युधिष्ठिर, नकुल, सहदेव, श्रीकृष्ण और अर्जुन सब बलराम जी को देख प्रणाम कर चुप हो गये, और विचारने लगे कि बलरामजी यहां क्यों आए? इस भय से चुप हो गए। भीमसेन और दुर्योधन को देख बलरामजी बोले- हे दुर्योधन! हे भीमसेन! तुम दोनों समान वीर हो, भीमसेन में बल अधिक है, और दुर्योधन में दांव पेच अधिक हैं। इस कारण तुम दोनों में एक की भी जीत हार नहीं दिखाई पड़ती, अतएव इस युद्ध को शांत करो। हे राजन्! एक दूसरे के दुर्वचन और दुष्टकर्म का स्मरण करने उन दोनों के बलरामजी ने सार गर्भित वचन पर कुछ ध्यान नहीं दिया। देव इच्छा विचारकर बलरामजी द्वारका में आये और उग्रसेन आदि सबसे मिले। अनंतर सम्पूर्ण क्लेशों से रहित बलरामजी नैमिषारण्य में आये, वहां ऋषियों ने उनको सम्पूर्ण यज्ञों से पूजन करवाया। उस अवसर पर बलरामजी ने उनको विशुद्ध ज्ञान दिया। यज्ञ उपरान्त अवभृथ स्नान कर, जाति, बन्धु और मित्रों से युक्त बलराम स्त्री सहित अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए।

सुदामा नामक ब्राह्मण की कथा

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! श्रीकृष्णजी का

एक ब्राह्मण मित्र वैराग्यवान, शान्तचित्त जितेन्द्रिय और गृहस्थाश्रम में रहने पर भी अनायास प्राप्त हुए पदार्थ से निर्वाह करने वाला था। इसी प्रकार उसकी स्त्री तन क्षीण, मन मलीन, दुर्बल अंग वाली थी। एक दिन महा दुखित और भय से कांपती वह पतिव्रता पति के निकट आ कहने लगी- हे ब्रह्मन्! मैंने सुना है कि ब्राह्मण भक्त श्रीकृष्ण आपके मित्र हैं। अतएव आप द्वारका जाओ, वे आपको दुःखित देख धन देवेंगे। स्त्री ने जब ब्राह्मण की प्रार्थना की तब वह 'भगवान का दर्शन होगा यह बड़ा लाभ होगा' इस प्रकार विचार कर ब्राह्मणी से कहने लगा- हे कल्याणी! घर में कुछ भेंट के योग्य हो तो लाओ। तब ब्राह्मणी ने पड़ौसी के घर से चार मुट्ठी चावल मांग एक चीथड़े में स्वामी को दे दिये। सुदामा उनको लेकर श्रीकृष्ण दर्शन किस प्रकार हो यह विचार कर द्वारका पहुंचा। तीन चौकी और तीन ड्योढ़ी पार कर यादवों के घरों के बीच होता हुआ सोलह हजार रानियों के मन्दिर में से एक के मन्दिर में प्रविष्ट हो ब्राह्मण को ऐसा जान पड़ा मानो ब्रह्मानन्द को प्राप्त हुआ हूं। रुक्मिणी की शय्या पर विराजमान भगवान ब्राह्मण को देखते ही उठकर सम्मुख आये और दोनों भुजा पसार आनन्द से मिले, श्रीकृष्ण के आंसू टपकने लगे। अनन्तर सुदामा को पलंग पर बैठाकर पूजन करने की सब सामग्री लाकर ब्राह्मण के चरण धोये और जल अपने सिर पर चढ़ाया। फिर सुन्दर

सुगन्धित धूप, दीप और दीपमाला सहित पूजन कर, ताम्बूल बीड़ा समर्पण कर स्वागत वचन कहे। फटे और मैले वस्त्र पहने व दुर्बल ऐसे सुदामा ब्राह्मण की श्री रुक्मिणीजी चमर से सेवा करने लगीं। भगवान द्वारा उस विप्र का सत्कार देख अन्तःपुर निवासी विस्मित हुए कहने लगे कि इस भिक्षुक ने ऐसा क्या पुण्य किया है जो श्रीकृष्ण पलंग पर स्थित रुक्मिणी को त्याग बलरामजी की तरह मिले। हे राजन्! श्रीकृष्ण और सुदामा एक दूसरे का हाथ पकड़ गुरुकुल की याद कर बातें करने लगे। श्रीकृष्ण बोले- हे मित्र! गुरु दक्षिणा दे जब हम अपने-२ घर आये तब से विवाह किया कि नहीं? इस जगत में गुरु तीन हैं, एक तो पिता, दूसरा अध्यापक, तीसरा आश्रम वासियों को ज्ञान देने वाले ब्रह्मज्ञानी। हे मित्र! यह वृत्तान्त आपको स्मरण होगा कि जब गुरु के घर हम रहते थे तो एक दिन गुरुआनी ने लकड़ी लाने वन में भेजा। लकड़ी निमित्त हम और आप एक महावन में घुसे। थोड़ी देर में वर्षा होने लगी इतने में सूर्य अस्त हो गया, सर्वत्र जल ही जल दीख पड़ने लगा जिससे ऊंचा नीचा कुछ नहीं दिखाई दिया। उस जलमय वन में वर्षा से हम पीड़ित हुए। दिशाओं की सुध न रही कि कौन सी दिशा किस ओर है। तब एक दूसरे का हाथ पकड़े मस्तक पर लकड़ी का बोझ रक्खे विचरने लगे। जब गुरुदेव को इसकी सुध मिली तब ढूंढ़ते हुए सूर्योदय होते ही आये। उस समय उन्होंने

श्लोक पढ़े कि हे पुत्रों! हमारे निमित्त तुमने दुःखित हो हमारी सेवा की, मैं तुमसे प्रसन्न हुआ हूं। लोक परलोक में तुम्हारे मनोरथ सफल होवें, तथा जो वेद पढ़े हैं वे सदैव स्मरण रहें। गुरु के अनुग्रह से ही मनुष्य पूर्ण मनोरथ होकर शान्ति को प्राप्त होता है। सुदामा बोले- हे देव आपके साथ गुरु के घर में रहने से फिर हमको किस बात की इच्छा रहती है, आप जगत के गुरु हैं, लोक शिक्षा के अर्थ आप मनुष्य रूप धारण किए लीला कर रहे हो।

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! भगवान इस प्रकार सुदामा के साथ बातें करते कहने लगे- हे ब्राह्मण! अपने घर से आप मेरे निमित्त क्या भेंट लाये हो? श्री कृष्णजी के इस प्रकार कहने पर लज्जा के कारण सुदामा ने भगवान को तन्दुल नहीं दिये। अनन्तर श्रीकृष्णा सुदामा के आने का कारण जान विचार करने लगे। इस समय यह अपनी स्त्री को प्रसन्न करने की इच्छा से मेरे समीप आया है, इस कारण देव दुर्लभ सम्पत्ति दूंगा। इस भांति विचार कर उन तन्दुलों को 'यह क्या है?' इस प्रकार कह भगवान ने स्वयं ही खींच लिए, उनमें से एक मुट्ठी भरकर भगवान बोले- हे मित्र! सुदामा! आपके तन्दुल मुझको बहुत प्यारे लगे हैं, इनको थोड़ा नहीं जानो, यह तो मेरे सब विश्व को तृप्त कर देवेंगे। इस प्रकार कह एक मुट्ठी चावल खाकर दूसरी मुट्ठी चावलों को ज्योंही

भगवान ने लेने की इच्छा की त्योंही रुक्मिणी जी ने श्रीकृष्ण का हाथ पकड़ लिया और कहने लगीं- हे विश्व आत्मा! एक मुट्ठी चबाकर क्या मुझे भी दे डालोगे। यह कह तन्दुल रुक्मिणीजी ने ले लिए। सुदामा उस रात्रि को श्रीकृष्णजी के मन्दिर में रहा और खान पान करने स्वर्ग प्राप्त होने के समान मानने लगा। दूसरे दिन सूर्योदय होते ही श्रीकृष्ण प्रणाम कर सुदामा को पहुंचाने साथ आये और कहने लगे- कि मित्र आपने भला दर्शन दिया, इस प्रकार ब्राह्मण को प्रसन्न कर पीछे लौट आये। सुदामा आनन्द चित्त हो अपने घर चला। न तो श्रीकृष्ण ने उसको धन दिया और न उसने मांगा, भगवान के दर्शन से सुख पाकर घर को चल पड़ा। चलते समय मन से विचारने लगा- आह श्रीकृष्ण की ब्रह्मण्यता मैने देखी, क्योंकि भगवान मुझ महादरिद्री को छाती से लगाकर मिले, चरण प्रक्षालन व पोंछना और दबाना इत्यादि सेवा कर श्रीकृष्ण ने मेरी पूजा की। यह विप्र धन पाकर मदोन्मत्त हो मुझको भूल जाएगा यह निश्चय कर श्रीकृष्ण ने मुझको धन नहीं दिया। इस प्रकार मन में विचारता हुआ विप्र अपने घर के समीप पहुंचा तो क्या देखता है कि कान्ति वाले भवन चारों ओर शोभायमान हैं, चित्र विचित्र बाग बगीचों में पक्षियों के झुण्ड के झुण्ड सुहावनी बोलियां बोल रहे हैं। उनको देख सुदामा विस्मित हो विचार करने लगा यह क्या माया है, यह तो हमारा स्थान

था, ऐसा कैसे हो गया।

इस प्रकार सुदामा विचार कर ही रहा था कि उसको नर नारी गाते बजाते लिवाने आए। सुदामा की स्त्री पति के आने का समाचार सुनकर प्रसन्न हो शीघ्र ही घर से बाहर निकली, पति को देखते ही उस पतिव्रता के नेत्रों में आंसू भर आये, फिर नेत्र बन्द कर नमस्कार कर मन से आलिंगन किया, सुन्दर भवनों में विराजमान देवी के समान प्रकाशवान, दासियों के बीच शोभायमान अपनी स्त्री को देख सुदामा को आश्चर्य हुआ।

अनन्तर प्रसन्न हो सुदामा अपनी स्त्री सहित घर गया जहां सैंकड़ों मणियों के खम्भे लग रहे थे, दूध के फेन के समान शय्या, स्वर्ण से मढ़े हुए हाथी दांत के पलंग मन्दिर में बिछ रहे हैं और कंचन की डण्डी वाले चमर पंखे धरे हैं। उस मन्दिर में ऐसी समृद्धि देख सुदामा विचार करने लगा कि अकस्मात यह सम्पत्ति कहां से आई, फिर निश्चय किया कि अवश्य मुझको ऐसी सम्पदा श्रीकृष्ण की कृपा दृष्टि बिना कैसे मिल सकती है। उसकी स्त्री ने भी भगवान के भेजे विश्वकर्मा द्वारा वैभव प्राप्त होने का समाचार सुनाया। हे भगवन! आपकी माया मैं भूल न जाऊं, इस कारण आपके चरणों की भक्ति ही मांगता हूं, इस प्रकार सुदामा निश्चय कर धीरे-धीरे विषय वासनाओं को त्याग स्त्री सहित विषयों को भोगने लगा। हे परीक्षित! इस प्रकार

सुदामा भगवत ध्यान से देहाभिमान त्याग थोड़े ही काल में भगवान के धाम को प्राप्त हुआ।

कुरुक्षेत्र की यात्रा

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! एक समय द्वारका में कृष्ण के निवास करते बड़ा भारी सूर्य ग्रहण हुआ। ज्योतिषी पंडितों के द्वारा उस ग्रहण को स्नान, दान, पुण्य करने की अभिलाषा से सब मनुष्य ग्रहण से पहले ही कुरुक्षेत्र पहुंचे। वृष्णि, अक्रूर, वसुदेव, आहुक, प्रद्युम्न, साम्ब आदि सब यादव भी कुरुक्षेत्र में आये। परन्तु सुचन्द्र, शुक्र, सारण सहित यूथपति अनिरुद्ध और कृतवर्मा दोनों द्वारकापुरी की रक्षा करने को वहीं रहे। यादवों ने कुरुक्षेत्र में व्रत व स्नान करके दान किया। फिर परशुरामजी के कुण्ड में मोक्ष स्नान करके भोजन किया, फिर वृक्षों की छाया में बैठ गये, वहां उन्होंने आये हुए पाण्डव तथा नन्दादि ग्वाल व गोपियों को देखा। प्रफुल्लित हृदय से सब लोग परस्पर एक दूसरे को आलिंगन करने लगे। कुन्ती अपने भाई बहिन, भतीजे, माता पिता और भौजाई तथा श्रीकृष्ण को देखकर परस्पर प्रेम की बातें कर आंसू बहाने लगी। अनन्तर वसुदेवजी से कुन्ती बोली- हे भाई! मैं अपने को पूर्ण मनोरथ वाली नहीं मानती हूं, क्योंकि तुम समर्थ होकर भी जब मुझ पर विपत्ति आती है तब मेरी सुधि नहीं लेते हो। यह सुन वसुदेवजी कहने

लगे- हे बहिन! हम लोग दैव के खिलौने हैं इसलिए हमको दोष मत लगाओ। कंस से पीड़ित हो पहले तो हम भाग गये थे परन्तु दैव इच्छा से अब अपने-अपने स्थान पर आये हैं। राजा लोग श्रीकृष्ण दर्शन कर आनन्द में मग्न हो गये। विराट, भीष्मक, नग्नजित द्रुपद तथा महाराज युधिष्ठिरजी के आज्ञाकारी राजा बहुत सी रानियों सहित श्रीकृष्ण को देख आश्चर्य मानने लगे। इसके उपरान्त बलराम-कृष्ण द्वारा सत्कार पा राजा प्रसन्नता पूर्वक उग्रसेन की प्रशंसा करने लगे कि हे महाराज! मनुष्यों में तो आप ही सफल हैं, आपके घर में स्वर्ग व मोक्ष की तृष्णा निवृत्त करने वाले भगवान प्रगट हुए हैं।

हे परीक्षित! राजा प्रेम में मग्न हो रहे थे कि यादवों का वहां कुरुक्षेत्र में आगमन जान नन्दरायजी गोपों सहित श्रीकृष्ण को देखने को आये, उनको देख यादव अत्यन्त प्रसन्न हो, सम्मुख जा गाढ़ आलिंगन करके परस्पर मिले। वसुदेवजी नन्दजी से मिलकर प्रसन्न हुए व गोकुल में आने का स्मरण कर प्रेम से विह्वल हो गये। कृष्ण बलराम नन्द यशोदा से मिल प्रेम से विह्वल हो आंसुओं से कण्ठ रुक जाने के कारण बोल न सके। अनन्तर यशोदा और नन्द, कृष्ण और बलराम को दोनों भुजाओं से भेंट कर आंसू बहाने लगे। दोनों यशोदा माता के चरण दबाने लगे, और धीरज बंधाने लगे। फिर रोहिणी और देवकी, यशोदा से मिलकर

कंठ में आंसू भर बोलीं- हे ब्रजरानी! जिसका बदला इन्द्र के ऐश्वर्य से भी नहीं दिया जा सकता, ऐसी मैत्री को हम कैसे भूल सकते हैं। हे परीक्षित! तदन्तर गोपियां अपने परम प्यारे श्रीकृष्ण से मिलीं, प्रेम भरी गोपियों के समीप उनसे एकान्त में मिल आलिंगन कर कुशल पूछ श्रीकृष्ण बोले- हे सखियो! भक्तों के कार्य साधन करने हम गये थे और वहां शत्रुओं का नाश करने में लग गये जिससे बहुत समय व्यतीत हो गया। यह अकृतज्ञता है, ऐसी आशंका करके हम पर क्रोध तो नहीं आता है? छोड़कर चले गये, यह आशंका करके हमको दोष नहीं देना क्योंकि संयोग वियोग दैव आधीन है। हे गोपियो! मुझमें प्राणियों की भक्ति ही जन्म मरण से छुटाती है, मेरे विषे तुम्हारा स्नेह हुआ है, इस कारण तुम मुझे प्राप्त होओगी। इस प्रकार जब श्रीकृष्ण ने अध्यात्मिक शिक्षा द्वारा उनको समझाया, तब गोपियां भगवान के ध्यान में लीन हो कहने लगीं- हे कमल नाभ! संसार कुएं में गिरे हुए पुरुषों के आश्रय रूप आपके चरणों का यद्यपि हम घर में रहें तो भी हमारे मन में सदा स्मरण बना रहे यही वर मांगती हैं।

श्रीकृष्ण की रानियों से बातचीत

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! इधर तो राजा श्रीकृष्ण की स्तुति कर रहे थे और उधर अन्धक और कौरवों की स्त्रियां इकट्ठी होकर भगवत सम्बन्धी बातें

करने लगीं। द्रौपदी बोली- हे रुक्मिणी! हे जाम्बवती! हे सत्यभामा! कालिन्दी तथा श्रीकृष्ण भगवान की अन्य स्त्रियो! भगवान श्रीकृष्ण ने आप ही लीलाकर जिस प्रकार तुम्हारे संग विवाह किया सो हमसे वर्णन करो। यह सुन रुक्मिणी बोली कि शिशुपाल के साथ मेरा विवाह कराने को जरासन्ध आदि राजा आ उपस्थित हुए तब योद्धाओं के मस्तक पर चरण रख श्रीकृष्ण मुझको ले आये, मैं उन्हीं भगवान के चरणों का पूजन करती हूं। जाम्बवती जी बोलीं- मेरे पिता ने भगवान को अपने इष्टदेव रामचन्द्र नहीं जान सत्ताईस दिन युद्ध किया, फिर यह अपने स्वामी श्रीरामचन्द्रजी हैं, इस प्रकार निश्चय होने पर पिता ने पांवों में पड़ मणि के साथ मुझको भी अर्पण किया। यह सुन द्रौपदी ने कहा कि अहो तुम अतिश्रेष्ठ हो! कालिन्दी बोली- जिन श्रीकृष्ण ने मुझे अपने चरण स्पर्श की इच्छा से तप करती जान, अपने सखा अर्जुन द्वारा मिला कर मेरा पाणिग्रहण किया, उन भगवान की मैं बुहारी देने वाली हूं। मित्रविंदा बोली कि जो भगवान स्वयंवर में राजाओं को जीत द्वारका ले आये, उन श्रीकृष्ण के चरणों की दासी मैं जन्म-जन्म में होऊं। सत्या बोली- राजाओं की परीक्षा लेने पिता ने अत्यन्त बलवान, पैने सींग वाले सात बैल छोड़ रक्खे थे उनको पकड़कर भगवान ने बांध दिया। इस प्रकार मुझको विवाह कर द्वारका ले आये, सर्वदा मैं भगवान की दासी बनी रहूं, यही मेरी

प्रार्थना है। भद्रा बोली- हे द्रोपदी! मेरा चित्त भगवान में आसक्त जान मेरे मामा के पुत्र ने श्रीकृष्णजी को बुलाय मुझे अर्पण किया, जन्म-जन्म में मुझको श्रीकृष्णजी के चरणों का दर्शन होता रहे, यही मैं चाहती हूं। लक्ष्मणा बोलीं- नारद द्वारा गाये हुए भगवान के जन्म कर्म सुन मेरा मन भगवान में लग गया। मेरे पिता वृसत्सेन ने मेरा अभिप्राय जान श्रीकृष्ण की प्राप्ति का यह उपाय किया। मत्स्य यज्ञ रक्षा, खम्भ की जड़ में धरे हुए कलश के जल में मछली की छाया जल में देखना और बेधना ऊपर। ऐसी मछली को श्रीकृष्ण के बिना कौन बेध सकता था? श्रीकृष्ण ने धनुष बाण संधान करके जल में मछली देख उसको बाण से काट के गिरा दिया। उस समय देवताओं के नगाड़े बजने लगे, पृथ्वी पर जय जयकार होने लगा।

हे द्रोपदी! तदन्तर भगवान के गले में मैंने माला पहना दी। राजा उसको सहन नहीं कर सके। भगवान तो उसी समय रथ में मुझ बैठाय, दो भुजाओं से आलिंगन कर, दो भुजाओं में धनुष बाण ले, राजाओं का मान मर्दन कर द्वारिका पधारे। मेरे पिता ने दासियां, योद्धा, हाथी, रथ, घोड़े, बहुमूल्य शस्त्र श्रीकृष्णजी को अर्पण किये थे। हे द्रोपदी! हम आठों पटरानियां इस प्रकार संग त्याग भगवान की दासी हो गईं। तदनन्तर सोलह हजार एक सौ रानियां बोलीं- नरकासुर ने दिग्विजय में हम राज-कन्याओं को जीत के रोक रक्खा

था, श्रीकृष्ण ने समर में भौमासुर और उसके कुटुम्ब को मार हमारे साथ विवाह किया। हम न चक्रवर्ती राज्य चाहती हैं, न इन्द्रप्रस्थ चाहती हैं, हम तो केवल भगवान के चरणों की रज मस्तक पर चढ़ाने की इच्छा करती हैं।

वसुदेव का यज्ञ महोत्सव

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! कुन्ती, द्रोपदी, गांधारी, सुभद्रा आदि तथा गोपियां श्रीकृष्ण की रानियों की भगवान में प्रेम की बातें सुन विस्मित हुईं। इस प्रकार स्त्रियों से स्त्री और पुरुषों से पुरुष बात कर ही रहे थे कि उसी समय श्रीकृष्ण बलराम के दर्शन को मुनि आये। वेदव्यास, नारद, पवन, देवल आदि को आया देख युधिष्ठिर तथा कृष्ण बलराम सबों ने उठ के प्रणाम किया। और आसन दे, अर्घ्य, पुष्प, धूप और चन्दन इत्यादि से उनकी यथा योग्य पूजा करके कहने लगे, ज्ञानीजन केवल दो घड़ी की सेवा से अज्ञान नष्ट कर देते हैं। जो पुरुष देह को ही आत्मा जानते हैं, स्त्री इत्यादिक को ही अपना मानते हैं, और विवेकी महात्माओं को आत्मारूप नहीं समझते वे पुरुष बैल और गर्दभ के समान मूढ़ हैं। हे परीक्षित! श्रीकृष्णजी का वचन सुन चकित हो ऋषि बोले- हे जगद्गुरु! आपकी लीला विचित्र है, क्रिया रहित होते हुए भी आप स्वरूपमय ही से जगत को रचते, पालते व संहारते हो। हमको अपना भक्त जान कृपा करो। मुनि लोग, श्रीकृष्ण से आज्ञा

ले अपने-२ आश्रमों में जाने लगे। तदनन्तर वसुदेवजी मुनियों के निकट आकर कहने लगे- हे मुनिवरो! आप लोगों से मेरी एक प्रार्थना है। जिन कर्मों से कर्मों का नाश होता है सो हमें बता जाइए? वसुदेवजी का यह प्रश्न सुन नारद जी बोले। हे ब्राह्मणो! श्रीकृष्ण को अपना पुत्र जान वसुदेवजी कल्याण साधन करने को हम लोगों के प्रति प्रश्न करते हैं सो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। गंगा तट पर रहने वाला गंगाजी को छोड़ शुद्धि के लिए दूसरे तीर्थ को जाता है। अनन्तर मुनि वसुदेव जी से बोले- सम्पूर्ण यज्ञों के ईश्वर को यज्ञों द्वारा भजन करना, यही उत्तम कर्म बुरे कर्म मिटाने वाला है। हे वसुदेवजी! बुद्धिमान पुरुष यज्ञ और दान करके घर के भोग भोगकर, स्त्री, पुत्र की तृष्णा को छोड़ देवे। हे वसुदेव जी! आप वेद पढ़ के, ऋषि ऋण से और पुत्र उत्पन्न कर पितृ ऋण से उऋण हो चुके हो, अब यज्ञ करके देव ऋण से उऋण हो घर छोड़ सन्यास ग्रहण करो। आप की भक्ति के कारण भगवान आपके घर पुत्र रूप में हुए हैं। वसुदेव जी ने मुनियों का वचन सुन, प्रणाम कर ऋत्विज का काम करने को उन ऋषियों का वरण किया। अनन्तर ऋषि आकर कुरुक्षेत्र में वसुदेवजी को यज्ञों से भजन कराने लगे। अठारह स्त्रियों सहित वसुदेवजी का विधि पूर्वक ऋत्विजों ने अभिषेक किया। उस समय बलराम श्रीकृष्ण भी स्त्रियों सहित शोभायमान हो रहे थे। तदनन्तर वसुदेवजी

ने मुनियों को गौ पृथ्वी कन्या व दक्षिणा दी। पत्नी संयाज और अवभृथ स्नान करा ब्राह्मणों ने वसुदेवजी को आगे ले परशुराम जी के रामकुण्ड में स्नान करवाया। अनन्तर वसुदेवजी ने बांधवों का बहुत धन से पूजन किया, फिर विदर्भ, कौशल्य, कुरु, केकय, सृञ्जय देशों के राजा और सभासद, तथा यज्ञ कराने वालों को पारितोषिक दे सत्कार किया। अनन्तर ये सब भगवान से आज्ञा ले यज्ञ की बड़ाई करते अपने स्थान को गये। कौरव भी यादवों से मिल अपने देश को चले गये। श्रीकृष्ण बलराम व उग्रसेन आदि से सत्कार पाकर स्नेह के कारण श्रीनन्दरायजी गोपों सहित कुछ दिन वहीं रहे। एक दिन वसुदेवजी नन्दरायजी का हाथ पकड़कर कहने लगे- हे भाई! हमारे साथ आपने जो मित्रता की है उसका बदला हम नहीं दे सकते। हे भाई! पहले तो हम असमर्थ रहे और अब लक्ष्मी के मद से अन्धे हो आपसे महात्माओं की ओर देखते भी नहीं। हे परीक्षित! इस प्रकार स्नेह से शिथिल वसुदेवजी आंसू भर नन्दरायजी की मित्रता स्मरण कर रुदन करने लगे। तदन्तर तीन महीने देवकी जी ने आभूषण वस्त्र और अनेक प्रकार की बहुमूल्य सामग्री से बान्धवों समेत नन्दराय को परिपूर्ण कर दिया। अनन्तर यादवों की दी हुए सामग्री को ले नन्दरायजी विदा हुए। बन्धुओं के चले जाने पर यादव लोग वर्षा ऋतु आई देख द्वारिका लौट आये, वहां उन्होंने वसुदेवजी के महोत्सव व तीर्थ

यात्रा में सुहृदजनों का मिलाप आदि समाचार प्रजा को कह सुनाया।

बलराम कृष्ण द्वारा देवकी के पुत्रों का लाया जाना

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! कुरुक्षेत्र यात्रा के बाद एक दिन बलराम कृष्ण वसुदेव को प्रणाम करने गए, तब वसुदेवजी कहने लगे- हे संकर्षण! जगत के कारण साक्षात् ईश्वर आप हो। आपने सूतिका घर में पूर्वजन्म का वृत्तान्त कहा था कि मैं युग-२ में धर्म रक्षा करने को अवतार धारण करता हूं, आप सर्वव्यापक हो। हे परमात्मा! आपकी माया को कौन जान सकता है? हे राजन्, श्रीकृष्ण इस प्रकार पिता का वचन सुन कहने लगे कि हे पिता! हम पुत्रों के विषय में आपने जो निरूपण किया, सो हम यथार्थ मानते हैं। आत्मा एक है, निर्गुण है, अपने रचे हुए सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण से उत्पन्न देहों में अनेक प्रतीत होता है। हे परीक्षित! इस प्रकार भगवान का वचन सुन भेद बुद्धि को त्याग वसुदेवजी मौन हो रहे। तब देवकी कंस के मारे अपने पुत्रों का स्मरण कर कृष्ण बलराम से बोली- हे राम! कृष्ण! आप दोनों को मैं जानती हूं कि आप आदि पुरुष परमेश्वर हो। कंस के मारे हुए पुत्रों को ला मेरी कामना पूर्ण करो। हे राजन्! माता के कहने पर बलराम कृष्ण अपनी योगमाया से

सुतल लोक में गए। वहां बलि ने अपने इष्टदेव को आया देख अति प्रसन्न हो परिवार सहित प्रणाम किया और कहने लगा- सम्पूर्ण जगत को फण पर धारण करने वाले शेष रूप आपको प्रणाम है तथा विश्व को रचने वाले परमात्मा आपको मेरा प्रणाम है। भगवान बोले- हे बलि! स्वायम्भुव मन्वन्तर में ऊर्णा से मरीचि ऋषि के ६ पुत्र हुए। वे सब देवता एक समय श्रीब्रह्माजी को अपनी पुत्री सरस्वती के साथ मैथुन करने को उद्यत देख हंसे, इससे वे हिरण्यकशिपु के पुत्र हुए, इस समय वही देवकी के उदर से प्रगट हुए जो कंस के हाथों मारे गए। अब वे तुम्हारे यहां हैं, उनको देवकी याद करती हैं। इसलिए मातृ शोक दूर करने को ले जाऊंगा। फिर ये शाप से छूट देवलोक को जायेंगे। इस प्रकार कह बलि से पूजित हो उन पुत्रों को अपने संग ले श्रीकृष्ण बलराम ने द्वारिका आ, वे पुत्र माता को दिए। उनको देखते ही स्नेह के कारण देवकी के स्तनों से दूध टपकने लगा। तब उनको छाती से लगाकर बारम्बार उनका माथा सूंघने लगी, आनन्द मान देवकी ने उनको स्तन पान कराया। भगवान के पीने से शेष इस अमृत रूप दुग्ध को पीकर नारायण के स्पर्श से आत्मज्ञान को प्राप्त हो वे छओं बालक भगवान, देवकी, वसुदेव बलराम को प्रणाम कर देवलोक को चले गए। हे परीक्षित! पुत्रों का आगमन गमन देख आश्चर्य युक्त देवकी ने जाना कि यह सब श्रीकृष्णजी की माया है।

सुभद्रा हरण

राजा परीक्षित ने पूछा- हे ब्रह्मन्! राम कृष्ण की भगिनि सुभद्रा जो हमारी दादी थीं उसके साथ अर्जुन का विवाह जानना चाहता हूं। श्रीशुकदेवजी बोले- हे राजन्! अर्जुन एक समय तीर्थ यात्रा करने को पृथ्वी पर विचरते-विचरते प्रभास क्षेत्र में पहुंचे। वहां अर्जुन ने सुना कि मामा की पुत्री सुभद्रा बलरामजी दुर्योधन को देंगे परन्तु वसुदेव आदि की सम्मति नहीं है। यह सुन उसके लेने की इच्छा से अर्जुन सन्यासी बन द्वारका आये। अर्जुन की अभिलाषा चार माह तक द्वारका वासियों व बलरामजी को न जान पड़ी, इस कारण वे सन्यासी का भली भांति सत्कार किया करते थे। एक दिन बलदेवजी ने सन्यासी अर्जुन का निमंत्रण कर, श्रद्धा सहित भोजन दिया, अर्जुन ने भोजन किया। वहां एक सुन्दर कन्या अर्जुन ने देखी जिस पर दृष्टि पड़ते ही अर्जुन के नेत्र प्रफुल्लित हो गए और चलायमान मन सुभद्रा में लग गया। सुभद्रा लाज भरे नेत्रों से अर्जुन की ओर देखने लगी। सुभद्रा का ध्यान करते और ले जाने का अवसर देखते अर्जुन को बलराम आदि के सत्कार से कुछ सुख नहीं हुआ। इसके अनन्तर एक दिन देव यात्रा में रथ पर सुभद्रा ज्योंही बाहर निकली त्योंही देवकी और कृष्ण की सम्मति से अर्जुन ने सुभद्रा का हरण किया। यह समाचार सुन क्रोधित बलरामजी

को सुहृदों सहित श्रीकृष्ण ने चरण पकड़ शांत किया।

वृकासुर का भस्म होना

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- महाराज! भगवान की अद्‌भुत लीला है कि जो जन हरि की पूजा करे सो दरिद्री होय और महादेव को माने सो धनवान्। हरि की कैसी रीति है? महाराज युधिष्ठिर से श्रीकृष्ण ने कहा- युधिष्ठिर! जिस पर मैं अनुग्रह करता हूं, उसका सब धन खोता हूं। इतना कह शुकदेवजी कहने लगे कि महाराज! और देवता की पूजा से मनोकामना पूरी होती है पर भक्ति नहीं मिलती। महाराज! एक समय कश्यप पुत्र वृकासुर तप करने घर से निकला। पथ में नारदजी मिले। नारदजी को दण्डवत् कर हाथ जोड़ दीनता से पूछा महाराज! ब्रह्मा विष्णु महादेव तीनों में शीघ्र वरदाता कौन है? नारदजी बोले वृकासुर! तीनों देवताओं में महादेवजी बड़े वरदायक हैं। इनको न रीझते विलम्ब, न खीजते विलम्ब। शिवजी ने थोड़े तप से प्रसन्न हो सहस्त्रार्जुन को सहस्त्र हाथ दिए और अल्प ही में नाश किया। हे महाराज! इतनी कह नारद तो चले गये और वृकासुर महादेवजी का तप करने लगा। सात दिन में अपने सिर का मांस काट-२ होम दिया, आठवें दिन जब सिर काटने का मन किया तब भोलानाथ ने उस का हाथ पकड़ कहा- तुझसे प्रसन्न हूं जो इच्छा हो वर मांगो। वृकासुर हाथ जोड़ बोला- मुझे ऐसा वर दो

कि मैं जिसके शीश पर हाथ रखूं वह भस्म हो जाये।

हे महाराज! महादेवजी ने उसे मुंह मांगा वर दिया, वर पाकर वह शिवजी के ही सिर पर हाथ धरने चला। उस काल शिवजी आसन छोड़ भागे, उनके पीछे असुर भी दौड़ा। शिव को दुःखी देख विष्णु मोहिनी रूप धरकर उससे बोले- हे असुर राय! तुम उनके पीछे क्यों श्रम करते हो? वृकासुर ने सब भेद कह सुनाया। हे असुरराय! तुमने सयाना होकर धोखा खाया। इस नंगे-धड़ंगे बावले भांग धतूरा खाने वाले की बात सत्य न मानो। ये सदा क्षार लगाये, सर्प लिपटाये, भूत प्रेतों को लिए, श्मशान में रहता है, इसकी बात किसको सांच आवे। यह कह नारायण बोले कि जो तुम मेरी बात मानो तो अपने सिर पर हाथ रख देखो। प्रभु की बात सुनते ही अज्ञानी वृकासुर ने अपने सिर पर हाथ रख लिया और जलकर भस्म का ढेर हुआ। असुर के मरते ही सुरपुर में बाजे बजने लगे और देवता जय जयकार कर फूल बरसाने लगे।

भृगु द्वारा भगवान परीक्षा और ब्रह्म पुत्रों को लाना

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! एक समय सरस्वती के तट पर ऋषि लोग बैठे यज्ञ कर रहे थे, वहां परस्पर विवाद होने लगा कि, ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों में कौन बड़ा है? इसकी परीक्षा करने ऋषियों ने

भृगुजी को पठाया। भृगुजी प्रथम ब्रह्मा की सभा में गये और परीक्षा लेने को स्तुति प्रणाम न किया तब ब्रह्माजी ने भृगुजी पर बहुत क्रोध किया। परन्तु अपने मन में उत्पन्न क्रोध को भृगु को पुत्र समझ रोक लिया। वहां से भृगुजी कैलाश के समीप शिवजी के पास गये, देखते ही शिवजी अपने भाई से मिलने को उद्यत हुए, परन्तु भृगुजी ने कहा- तुम कुमार्गगामी हो, यह सुन महादेव जी को क्रोध उत्पन्न हुआ और त्रिशूल उठाकर भृगुजी को मारने को उद्यत हुए, तब पार्वती जी चरणों में गिर कहने लगीं हे नाथ! यह तुम्हारा भाई है इसको आप क्यों मारते हैं? इस प्रकार गौरी ने शिव को शांत किया। तदनन्तर भृगुजी वहां से चल बैकुण्ठ में गए। भगवान लक्ष्मी की गोद में शयन कर रहे थे, भृगुजी ने जाते ही भगवान की छाती में लात मारी। विष्णु भगवान लक्ष्मी सहित पलंग से उतरे भृगुजी को प्रणाम कर बोले- हे ब्रह्मन्! आसन पर विराजमान होओ। हे तात! आपके चरण कोमल हैं, मेरी छाती कठोर है, आपके चरण से मेरे पाप दूर हो गये। अब मेरे वक्षःस्थल में लक्ष्मी अविचल वास करेगी। हे परीक्षित! नारायण की वाणी सुन भृगु ऋषि मग्न हो गए, भक्ति से उनके नेत्रों में आंसू आ गए। अनन्तर भृगु ने यज्ञ में आकर तीनों देवताओं की जो बात देख आए थे सो सब कह सुनाई। सुनकर आश्चर्य को प्राप्त हो मुनियों ने जान लिया कि विष्णु सब देवताओं में बड़े

हैं। इतना बड़ा अपराध करने पर भी भगवान को क्रोध नहीं आया। हे परीक्षित! मुनि लोग भगवान की सेवा से भगवत रूप को प्राप्त हुए।

शुकदेव जी बोले- हे राजन्! एक समय द्वारिका में एक ब्राह्मणी के पुत्र उत्पन्न होते ही मर गया। तब ब्राह्मण उस मरे हुए बालक को राजद्वार पर रख दीन हो बोला- ''द्वेषी, शठबुद्धि, लोभी, क्षत्रियों में अधम, ऐसे इस राजा के दोष से मेरा पुत्र मर गया है।'' जिस प्रकार पहले बालक को लाकर जो वचन कहे थे, उसी प्रकार दूसरे को, फिर तीसरे को लाकर राजद्वार पर धर ऐसे ही वचन कहता था कि मेरा दोष नहीं। इस राजा के दोष से पुत्र मर जाते हैं। एक दिन अर्जुन भगवान के पास बैठे थे, उस समय वह अपना नवम् सुत ला यही वचन बोला- सो सुन अर्जुन बोले- हे ब्राह्मण! तुम वृथा रोते हो। क्या द्वारिका में कोई धुनषधारी नहीं है? तुम धैर्य धरो मैं रक्षा करूंगा। यह सुन ब्राह्मण कहने लगा कि बलदेव, श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न आदि जिसकी रक्षा करने को समर्थ नहीं हुए उसको तुम कैसे कर सकोगे? अर्जुन बोले- हे ब्राह्मण! मैं अर्जुन नाम का क्षत्रिय हूं। युद्ध में मृत्यु को जीत तुम्हारे पुत्र को ला दूंगा। हे राजन्! अर्जुन से विश्वास को प्राप्त हो, वह अपने घर चला गया। जब स्त्री को प्रसूति समय आया उसने आतुर हो, 'पुत्र की रक्षा करो', अर्जुन को आकर पुकार की। तब अर्जुन ने हाथ पाँव धोकर आचमन कर शिवजी को

प्रणाम- कर दिव्य अस्त्रों का स्मरण कर गांडीव धनुष लिया। नाना भांति के अस्त्रों से प्रसूति का घर बन्द कर वाणों का पिंजरा बना दिया। अनन्तर ब्राह्मणी के बालक हुआ और आकाश में चला गया। तब विप्र श्रीकृष्ण के सम्मुख अर्जुन की निन्दा कर कहने लगा कि मेरी मूर्खता तो देखो मैंने इस नपुंसक की बात को सत्य माना। ब्राह्मण ने जब दुर्वचन कहे तब अर्जुन संयमनीपुरी, इन्द्रपुरी, वरुणापुरी आदि गये परन्तु वह ब्राह्मण पुत्र न मिला। अनन्तर अर्जुन प्रतिज्ञा के असत्य होने पर अग्नि में प्रविष्ट होने लगा, तब श्रीकृष्ण अर्जुन को रोक बोले- मैं तुमको ब्राह्मण पुत्र दिखला दूंगा, श्रीकृष्ण अर्जुन सहित रथ पर चढ़ पश्चिम दिशा को गये। सात पर्वत वाले, सात द्वीप, सात समुद्र, सात लोकालोक, पर्वत को उल्लंघन कर भगवान अंधकार में प्रविष्ट हुए। हे परीक्षित! उसमें शव्य, सुग्रीव, मेघपुरुष, बलाहक, घोड़ों की गति को शिथिल देख भगवान ने सुदर्शन को आगे चलने की आज्ञा दी। अत्यन्त घोर अंधकार को विदीर्ण करके सुदर्शन ने प्रवेश किया। फिर अद्भुत मन्दिर देखा। उसमें बड़ी देह वाले हजार मस्तक, दो हजार नेत्रों, श्यामकण्ठ तथा जिह्वा संयुक्त शेष नाग को देखा। उनके शरीर का आसन बनाये, भगवान को शयन करते देखा। नन्दादि पार्षद, मूर्तिमान, सुदर्शन आदि शस्त्र, पुष्टि, लक्ष्मी, कीर्ति, माया व अष्ट सिद्धियां, सब सेवा में उपस्थित

ऐसे अनन्त भगवान के दर्शन कर श्रीकृष्ण ने अपने स्वरूप को प्रणाम किया और अर्जुन ने भी। तदनन्तर श्रीकृष्ण और अर्जुन को हाथ जोड़े देख भगवान कहने लगे- तुम दोनों को देखने को ब्राह्मण पुत्रों को मैं लाया हूं, सो तुम शीघ्र ही मेरे पास आ जाओ। तुम दोनों श्रद्धेय नर नारायण ऋषि हो, तो भी लोक शिक्षा के अर्थ आचरण करते हो। भगवान भूमा पुरुष ने जब आज्ञा दी तब श्रीकृष्ण अर्जुन द्वारा भूमा पुरुष को प्रणाम कर ब्राह्मण पुत्रों को साथ ले, जिस मार्ग से गये थे उसी मार्ग से द्वारका लौट आये। अनन्तर श्रीकृष्णचन्द्र व अर्जुन ने ब्राह्मण को उसी अवस्था और रूप वाले पुत्र दिये।

श्रीकृष्ण का वंश वर्णन

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे राजन्! सब ऐश्वर्यों से युक्त द्वारिका में विराजमान भगवान ने स्त्रियों के जितने महल थे उतने ही रूप धारण कर उनके साथ रमण किया। हे परीक्षित! भगवान में एक बुद्धि वाली स्त्रियां श्रीकृष्ण का ध्यान करती जड़ की नाईं जो कहती थीं, वो मैं तुमसे कहता हूं। स्त्रियां कहने लगीं- हे टिटहरी। भगवान सो रहे हैं और तू निद्रा रहित हो विलाप कर उनकी निद्रा भंग कर रही है यह अनुचित बात है। हे सखी! क्या हमारे समान भगवान के चितवन से तेरा मन भी बिंध गया है जो पुकार रही है। हे चकवी! तूने

क्यों नेत्र बंद कर लिए हैं? रात में पति को न देखने से रोती है। आप हमारे समान भगवान को प्रसादी माला चढ़ाने की इच्छा करती हैं? अरे समुद्र! क्या तुमको प्रजागार हो गया है, जिससे तू चिल्लाया करता है अथवा तुमको मथकर लक्ष्मी और कौस्तुभमणि निकाल ली है। हे चन्द्रमा! जान पड़ता है तुझको क्षय रोग ने ग्रस लिया है अथवा भगवान की बातों को भूल उसी चिन्ता के मारे क्षीण हो गया है, हे मलयाचल पर्वत! हमने तेरा क्या अनहित किया है, जिससे तू भगवान के अंग में लग कामाग्नि प्रकट करता है। हे कोकिले! तू जीवनदान देने वाली वाणी से भगवान के से वचन बोलती है, आज मैं तेरा हित करूं। हे पर्वत! तू न चलता है न बोलता है, जान पड़ता है किसी का विचार करता है। जैसे कृष्ण के चरण हम हृदय में धारण की इच्छा करती हैं, उसी प्रकार तू अपने शिखर पर धरने की इच्छा करता है, हे नदियो! जैसे श्रीकृष्ण की कृपा कटाक्ष को न पा हम दुर्बल हो गईं ऐसे ही क्या तुम भी दुर्बल हो गई हो। हंस को दूत की कल्पना करके कहने लगीं- हे हंस आओ, दुग्धपान करो, श्रीकृष्ण की वार्ता कहो, आप दूत हो आए हो हम जानते हैं। जब वे गृहस्थियों के उत्तम धर्म का पालन करते थे उस समय भगवान के सोहल हजार एक सौ आठ (१६१०८) रानियां थीं उनमें रुक्मिणी आदि आठ पटरानियां थीं। उनके पुत्रों के नाम पहिले वर्णन कर

चुका हूं। श्रीकृष्ण ने अपनी सब स्त्रियों से दस-दस पुत्र उत्पन्न किए। सबकी संख्या एक लाख इकसठ हजार अस्सी हुई, उनके अठारह पुत्र पराक्रमी व उदार हुए उनके नाम ये हैं- प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तमान, भानु, साम्ब, मधु, वृहद्भानु, बृक, अरुण, पुष्कर, बेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रवाहु, विरूप, कवि और न्यग्रोभ। हे राजेन्द्र! श्रीकृष्ण के पुत्रों में रुक्मिणी के प्रथम पुत्र प्रद्युम्न अपने पिता के समान हुए। प्रद्युम्न ने रुक्म की पुत्री से विवाह किया। उससे अनिरुद्ध हुआ अनिरुद्धजी ने रुक्म की पोती रोचना को ब्याहा उससे अनिरुद्धजी के वज्र हुआ जो मूशल लीला द्वारा संहार हुए यादवों में शेष रहा। उसके प्रतिवाहु नाम पुत्र हुआ, प्रतिवाहु के सुबाहु, सुबाहु के शांतसेन और शांतसेन का सतसेन हुआ। हे राजन्! यदुकुल में प्रगट हुए यादवों की संख्या लाखों वर्षों में भी कही नहीं जा सकती, क्योंकि यादवों के बालकों को पढ़ाने वाले आचार्य तीन करोड़ आठ हजार आठ सौ नियत थे। ऐसा सुना है।

— ० —
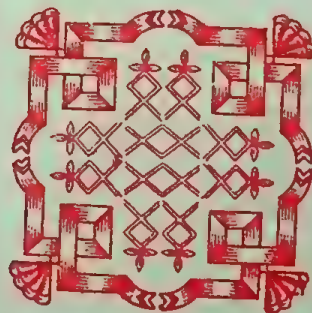
★ ग्यारहवां स्कन्ध प्रारम्भ ★

यदुवंशियों के क्षय का वर्णन और मूसल उत्पन्न होना

शुकदेवजी ने कहा- हे राजन्! श्रीकृष्णचन्द्र ने बलराम सहित दैत्यों का वध कर यादवों के बीच कलह उत्पन्न कर किस प्रकार से भूमि का भार उतारा सो हम कहते हैं। पाण्डु के पुत्र दुर्योधन आदिकों से बहुत कोपित किए गये, जुआ खेलने से राज्य जाता रहा, द्रोपदी का चीर खींचा गया, लाक्षा भवन में पांडवों को बंद कर आग लगा दी गई। तब कौरव पांडवों की सहायता के अर्थ राजाओं का एक दूसरे के हाथ से संहार करा प्रभु ने भूमि का भार उतारा। अपनी भुजाओं से रक्षा किए हुये यादवों के हाथ से राजाओं का संहार कराके जिनका कर्त्तव्य किसी के विचार में नहीं आता ऐसे श्रीकृष्ण ने विचार किया कि अब तक भूमि का भार नहीं उतरा। क्योंकि जो अत्यन्त असह्य है ऐसा यह दानव वंश अभी तक ज्यों का त्यों है। जिस कुल के मैं आश्रय हूं उसकी पराजय और किसी से हो नहीं सकती और यह वैभव पाय बहुत उद्धत हो गये हैं, बिना इनका संहार किए, पृथ्वी का भार उतर नहीं सकता, इससे इनमें परस्पर कलह कराके संहार कराकर शान्ति को प्राप्त हो परमधाम को जाऊंगा। हे राजा, इस प्रकार निश्चय कर भगवान ने जिनके समान कहीं

शोभा नहीं है, अपने देह से पुरुषों के चित्त हर, जिससे मन और को स्मरण न करे, भक्तों की इन्द्रियां और सब संसारी जीवों का अन्धकार दूर करके, उनके अर्थ भूमि पर निर्मल यश विस्तार कर श्रीकृष्ण बलराम अपने परमधाम को चले गये।

यह सुन परीक्षित ने पूछा- हे ब्रह्मन्! यादव तो ब्राह्मण भक्त, दानी और वृद्धजनों की सेवा करने वाले थे उनको किस कारण ब्राह्मणों ने शाप दिया? यह वृतान्त मुझको कहिए। तब शुकदेवजी कहने लगे- हे राजन्! पहले भक्तों को सुख देने के अर्थ पृथ्वी पर मंगल कर्म किये, और यद्यपि आप पूर्णकाम हैं तथापि द्वारिका में नाना भांति की लीला कर भक्तों को सुख दिया। जब श्रीकृष्ण ने इच्छा की, तभी ब्रह्मशाप निमित्त हुआ, क्योंकि जो कर्म भक्तों के पाप नाश करें, ऐसे कर्म करने को जो मुनि बुलाये थे वे भगवान की आज्ञा से पिण्डारक तीर्थ चले गये। श्रीकृष्ण स्वयं काल रूप होने से अपने वंश का संहार करना चाहते थे। विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अंगिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वशिष्ठ और नारद आदि ऋषि श्रीकृष्ण की आज्ञा से पिंडारक में निवास करते थे। एक समय इनके समीप खेल करते यादवकुमार जाम्बवती के पुत्र साम्ब को स्त्री बना ऊंचा पेट कर, वस्त्र ओढ़ाकर पूछने लगे- हे मुनियो! आप सर्वज्ञ हो, यह स्त्री गर्भिणी है, अतएव कृपाकर बताइये इसके पुत्र

होगा अथवा कन्या? हे राजा परीक्षित! जब यादवकुमारों ने पूछा तक कुपित हो मुनि कहने लगे- हे मूर्खो! यह तुम्हारे कुल नाश करने वाले मूसल को उत्पन्न करेगी। यह सुनते ही सब बालक डर गये और शीघ्र साँब का पेट खोला तो उसमें कुलनाशक लोहे का मूसल दीख पड़ा। तब वह बालक कहने लगे- अहो! हम मन्दभागियों ने यह क्या किया? इस प्रकर विह्वल हो यादवकुमार मूसल लेकर आये। जिनके मुख की शोभा मलीन हो गई, ऐसे यादवकुमारों ने उस मूसल को ले जा उग्रसेन को दिया, और सबके सम्मुख यह समाचार कह सुनाया। परन्तु श्रीकृष्ण से कुछ न कहा।

हे परीक्षित! ब्राह्मणों के कोप को सुन तथा उस मूसल को प्रत्यक्ष देख द्वारिकावासियों को विस्मय हुआ और तदन्तर भगवान से बिना पूछे उस मूसल को उग्रसेन ने चूर्णकर समुद्र में फेंकवा दिया और रेतने से जो शेष टुकड़ा बचा उसको भी समुद्र में डाल दिया। उसको कोई मछली निगल गई और चूर्ण समुद्र तरंगों से तीर पर आ लगा तब उसमें एक प्रकार की घास लग गई। धीमरों ने जाल डाल उस मछली को पकड़ लिया, उसको चीरने से उसके पेट से वह लोहे की कील निकल आई। उससे उन्होंने अपने तीर का भाला बना लिया। यद्यपि श्रीकृष्ण सब जानते थे और मिटाने को समर्थ भी थे, तो भी शाप निवारण की इच्छा न की और ब्राह्मणों के शाप को ही मुख्य समझा।

नारद मुनि द्वारा निमि और योगेश्वर के सम्वाद से भगवत्सम्बन्धी वर्णन

शुकदेवजी ने कहा- हे परीक्षित! द्वारिका में श्रीकृष्ण की उपासना में प्रेम करने वाले नारदजी निवास करते थे। क्योंकि कहा है कि जिन भगवान की उपासना में मुक्त पुरुषों को भी उत्कण्ठा होती है, उनको कौन नहीं भजता जिन चरणों की ब्रह्मादिक सेवा करते हैं। एक दिन नारद जी वसुदेव के घर आये, वसुदेवजी ने उनका सत्कार किया और आसन दे, प्रणामकर वसुदेवजी ने पूछा- हे भगवन! जैसे महात्माओं का आगमन दोनों के कल्याण के निमित्त होता है, उसी प्रकार आपका आगमन सर्व प्राणियों के निमित्त है। देवता, जीवों को दृष्टि आदि से सुख दुःख देते हैं आप सरीखे साधु केवल सुख ही देते हैं। देवता कर्म का फल देते हैं और आप तो दीनजनों को सेवा बिना किये भी सर्वोत्तम फल देते हैं। हे ब्रह्मन्! इस प्रकार आपके आने से हम कृतार्थ हो गये। अब आप से हम भगवत्सम्बन्धी धर्म पूछते हैं कि किन धर्मों को सुनके मनुष्य संसार से छूट जाता है? हे मुनि! इस दुःख वाले और भय से भरे हुए संसार से बिना प्रयास मुक्त हो जायँ ऐसे उपदेश करो। शुकदेवजी बोले- हे राजा! इस प्रकार पूछने पर नारदजी ने कहा- हे यादवोत्तम! आप भगवत धर्म पूछते हो, यह आपने बहुत अच्छा किया। यह धर्म सुनने से, स्मरण

करने से, ध्यान से पातकी जनों को पवित्र करता है। अब मैं एक प्राचीन इतिहास कहता हूं। स्वायम्भुवमनु का प्रियव्रत पुत्र हुआ, उसके अग्नोध्र, उसके नाभि के ऋषभेदव हुये। ये भगवान के अंश मोक्ष धर्म कहने को अवतार थे, इनके सौ पुत्र हुए। इनमें श्रीभरतजी श्रेष्ठ हुये। भरत भली-भांति से भोगकर अन्त समय तप करने को चले गये और हरि की पदवी को प्राप्त हुए। शेष निन्यानवें पुत्रों में नव पुत्र इस भारत खण्ड में नौ द्वीपों के स्वामी हुए, और इक्यासी कर्म मार्ग प्रवर्तक ब्राह्मण हुए और जो नौ पुत्र थे वे आत्मज्ञान में तत्पर, दिगम्बर वेश, आत्म विद्या में निपुण हुए। उनके नाम कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रदुध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रमिल, चमस और करभाजन थे। ये जगत को भगवद्रूप देखने लगे, स्थूल, सूक्ष्म को आत्मा से भिन्न देखते सब भूमि पर विचरने लगे। एक दिन ये सब राजा जनक के यज्ञ में आये। इन वैष्णवों को देख सब उठ खड़े हुए और नारायण के भक्त जान निमि राजा ने इनको आसन पर बिठाया और पूजा करी। सनकादिकों के समान उन नव योगेश्वरों को देख, निमि ने कहा- मैं आपको साक्षात् भगवान के पार्षद मानता हूं। भटकते हुये प्राणियों को यह मनुष्य देह क्षण भंगुर होने पर मिलना दुर्लभ है। हे निष्पाप! मैं आपसे पूछता हूं कि कल्याण का साधन क्या है? आप हमको सुनने का अधिकारी समझो तो वैष्णव धर्म वर्णन करो। नारदजी

बोले- हे वसुदेव! इस प्रकार जब जनक ने पूछा तब उन ऋत्विजों से निमि राजा ने नौ प्रश्न किये, प्रथम वैष्णव धर्म, दूसरा परमेश्वर की भक्ति, तीसरा माया, चौथा माया से तरने का उपाय, पांचवां ब्रह्म, छठा कर्म, सातवां अवतार चरित्र, आठवां भक्ति प्राप्ति, नवां युग। इनका उत्तर नवों मुनिवरों ने दिया। प्रथम योगेश्वर बोले- हे राजन्! हरि की उपासना ही भय को दूर करती है। जिसके करने से पुरुष संसार के भय से छूट जाता है। यही मनु आदि का कहा वैष्णव धर्म है। हे परीक्षित! आकाश, पवन, अग्नि, जल, पृथ्वी, नक्षत्रादि, ज्योति, जीव जन्तु, दिशायें, ब्रह्मादिक, नदियां, समुद्र सब भगवत रूप हैं, इस प्रकार अनन्य भाव से उनको प्रणाम करे, ये वैष्णव के लक्षण हैं। पुरुष के भक्ति, भगवान के स्वरूप की स्फूर्ति और घर आदि में वैराग्य ये तीनों भजन के समय एक साथ प्रगट होती हैं। भजन करने से भक्ति आदि बढ़ते-बढ़ते परम भक्ति प्राप्त हो जाती है। निमि ने पूछा- हे ऋषियो! भगवद्भक्त कौन से धर्म पर निष्ठा रखते हैं उनका स्वभाव कैसा होता है? तब हरि योगेश्वर बोले- जो अपने को प्राणीमात्र में ब्रह्मरूप से देखे और ब्रह्मरूप अपने में सब प्राणी मात्र को देखे वह उत्तम वैष्णव कहलाता है। ईश्वर में प्रेम, भगवान के भक्तों से प्रेम, मूर्खों पर कृपा और शत्रुओं की उपेक्षा करे वह मध्यम वैष्णव हैं। जो भेद बुद्धि से प्रतिमा में श्रद्धा, और जीवों

में तथा भक्तों में जिनकी श्रद्धा नहीं, वह प्राकृत वैष्णव कहलाता है। अब उत्तम वैष्णवों के लक्षण कहते हैं। शरीर के धर्म, जन्म-मरण, श्रम, भूख और तृष्णा, भय और आशा, इन सांसारिक धर्मों से मोह न पावे और हरि का स्मरण करे वह उत्तम वैष्णव कहलाता है। जिसको जन्म तप आदि वर्ण आश्रम व जाति अहंकार न होवे वह उत्तम वैष्णव भगवान का प्यारा हो जाता है। नाम कथन करते रहो, पाप नाशक हरि को हृदय से न त्यागे, वही वैष्णवों में उत्तम है।

राजा निमि पूछने लगे- हे भगवन्! मैं विष्णु की माया को जानना चाहता हूं। यह सुन अन्तरिक्ष नाम योगिराज बोले- हे राजन्! जीवों को भोग और मोक्ष देने वाले परमेश्वर ने इन पंच महाभूतों में से ऊंचे नीचे प्रकार के कई देह उत्पन्न किये हैं। भगवान की यही शक्ति माया कहलाती है। जीवों के उपकार के अर्थ शरीर में प्रवेश हुए भगवान मन से और इन्द्रियों के विषयों के विभाग कर जीवों को विषय भोग कराते हैं, यही माया है। तदनन्तर अन्तर्यामी आत्मा प्रकाशित इन्द्रियों से विषयों को भोगता हुआ इस शरीर को आप रूप मानता हुआ जीव इनमें आसक्त हो जाता है। वासना सहित कर्म करने वाला और उन कर्मों के सुख दुःख को ग्रहण करने वाला जीव जगत में भटका करता है, मुक्त नहीं होता। इस भांति गतियों को पाता यह जीव प्रलय पर्यन्त जन्म मरण को प्राप्त होता है, यही

माया है।

निमि ने पूछा- हे महर्षे! यह माया, अजितेन्द्रियों को दुस्तर है। इस कारण देहाभिमानी भी जिस प्रकार तर सके, वही उपाय बताओ। तब प्रबुद्ध नाम चौथे योगेश्वर बोले- हे राजन्! श्रीकृष्ण की भक्ति बिना माया के तरने का उपाय नहीं है, यह जान भक्ति को कहते हैं। स्त्री पुरुष मिलकर सुख मिलने और दुःख नाश करने के कर्मों को करते हैं फिर उनके फल में दुःख ही देखते हैं। कर्म के साधन से धन आदिक सुख नहीं देते। इस लोक के सुख जैसे नाशवान् हैं ऐसे ही कर्मों से प्रकट हुए सुख को भी मिथ्या जाने, क्योंकि वहां अपने समान से ईर्षा, अधिक की निन्दा, स्वर्ग से गिरने का भय, इतने दुःख हैं। इस कारण अपना हित चाहे तो भक्तिपूर्वक गुरुदेव की सेवा करे। भक्तों को आत्मा देने वाले परमात्मा जिन वैष्णव धर्मों से सन्तुष्ट होते हैं, धर्मों को और गुरु को इष्ट जान निष्कपट सेवा करनी सीखे। सब वस्तुओं में मन चंचल न करे, जीवों में मन, वाणी से दया, समान के साथ मित्रता और उत्तम के साथ नम्रता करना सीखे। मृतिका और जल से बाह्य शरीर को पवित्रता, दंभ, अहंकार रहित होने से मन की पवित्रता, धर्म आचरण, क्षमा, वृथा बोलने का त्याग, वेद आदि का पाठ, सरलता, ऋतुकाल में अपनी स्त्री के साथ मैथुन, त्याग, ब्रह्मचर्य अहिंसा सुख, दुःख तथा शीत-उष्ण में हर्ष शोक का न होना यह सब बातें

सीखे। जो शास्त्र भगवान को बताते हैं वह श्रवण करने को श्रद्धा रखे, अन्य की निन्दा न करे, मन को प्राणायाम से रोके, असत्य न बोले, इन्द्रियों का निग्रह करे। दान, तप, सदाचार और गन्ध, पुष्प आदि और स्त्री, पुत्र, गृह, प्राण, सब भगवान को निवेदन करे। साधुजनों का सत्संग कर भगवान के यश को परस्पर कहना सीखे, फिर ईर्षा त्याग प्रीति सीखे, हरि का स्मरण करावे। भगवान के भक्त कभी रोते, कभी हंसते, कभी मग्न हो जाते हैं, कभी नाचते, कभी गाते, कभी भगवान की लीला करते हैं, कभी सुख में मग्न होते और कभी मौन साध लेते हैं। इस प्रकार वैष्णव धर्म सीखकर नारायण परायण हो दुस्तर माया से तरे।

निमि ने पूछा- हे ब्रह्मन् आपने कहा नारायण पारायण हो माया से तरे, सो नारायण के नाम तो तीन हैं- एक नारायण, दूसरा ब्रह्म, तीसरा परमात्मा सो इनमें से निर्विशेष क्या है? तब पिप्पलायन नाम पांचवें योगेश्वर ने उत्तर दिया- हे राजन्! जो इस जगत के उत्पत्ति, पालन तथा प्रलय के कारण हैं सो नरनारायण परम तत्व है। जो स्वरूप स्वप्न जाग्रत और सुषुप्ति इन अवस्थाओं एक रस है सो ब्रह्म है। समाधि में जिसको मुनीश्वर देखते हैं, उसी को ब्रह्म कहते हैं। इस प्रकार तीनों को एक ही तत्व जानना चाहिए। इस तत्व को इन्द्रियां नहीं जान सकती हैं। जड़ पदार्थ रूप मन आदि को वृत्तियों में देखने में आता हुआ आत्म प्रकाश कि जो स्वयं प्रमाण

है, वह भी वाणी रूप होने से आत्म तत्व को साक्षात् नहीं कह सकता। वेद कहते हैं कि स्थूल अणु ब्रह्म नहीं, जो वाणी से कहा जाय सो भी ब्रह्म नहीं इत्यादि इस निषेध की जो अवधि है वही ब्रह्म है। जहां वेद की भी गम्य नहीं, सो ब्रह्म ही न होगा, इसका उत्तर कहते हैं कि ब्रह्म नहीं, ऐसा नहीं। जो कुछ स्थूल सूक्ष्म है, सो सब ब्रह्म ही है, इस कारण सबके भगवान ही हैं। यहां यह प्रश्न है कि एक ब्रह्म बहुत प्रकार के जगत का कारण क्यों है? सो यह कहते हैं ब्रह्म की शक्ति अनंत रूप में प्रथम एक रूप हो पीछे सत, रज, तम, माया के रूप हुए, पीछे क्रिया शक्ति से प्राण रूप हुए फिर ज्ञान शक्ति प्राण रूप हुए फिर ज्ञान शक्ति से महातत्व हुए-फिर अहंकार रूप हुए, जिनमें जीव बंधा है। इसके उपरान्त इन्द्रिय, देवता अनन्तर कर्मों के फल, सुख दुःख अतएव सब ब्रह्म ही हैं। यह जगत तो मरता है उत्पन्न होता है इससे ब्रह्म का भी जन्म मरण होता है, इसके उत्तर में कहते हैं कि यह आत्मा, न जन्मता है, न मरता है। सर्व देश में और सर्व काल में अखण्ड रीति से जो ज्ञान है, उसी का आश्रय आत्मा है।

इन्द्रयादि हरि ही को दीखती हैं, प्राण निर्विकार है। यहां शंका यह है कि मनुष्य आदि में आत्मा सब विकार सा क्यों देखता है? कहते हैं कि जाग्रत अवस्था में इन्द्रियों के दोष से स्वप्न में अहंकार से सब विकारसा देख पड़ता है। जागता है तब सुषुप्ति में आत्मा को सुख

अनुभव हुआ है उसका स्मरण होता है। इस कारण प्रश्न करते हैं कि इसका स्वप्न निर्विकार अनुभव हो तो फिर जन्म मरण क्यों होता है? यदि कहो कि इसकी अविद्या नहीं गई उससे जन्म मरण होता है तो अविद्या कैसे जाय? इसका समाधान ये है कि जब घर, पुत्र धन आदिकों की वासना छोड़ भगवान की इच्छा करने से भक्ति बढ़ती है, उससे सब पाप दूर हो जाते हैं तब मन शुद्ध हो आत्म तत्व को प्राप्त करता है।

निमि बोले- आपने जो भक्ति कही वह कर्म योग के आधीन है। इस कारण मुझे कर्म योग वर्णन करो। यही प्रश्न मैंने पिता के सम्मुख जब सनकादिक आए थे तब किया था। उन्होंने भी उस समय कुछ उत्तर नहीं दिया इसका क्या कारण है? यह सुन अग्नि होत्र नाम छठे योगेश्वर ने कहा कि वेद में जिसके करने की आज्ञा है वह कर्म है, जिसका निषेध है वह अकर्म है और जिसके करने की आज्ञा है वह न करे तो विकर्म है। ये तीनों भेद ही गम्य हैं, तब आप बालक थे, इस कारण आपसे न कहा। वेद का तात्पर्य क्यों नहीं जाना जाता? सो कहते हैं- यह वेद परीक्षा वाद है, वेद में कर्म छुटाने को कर्म कहा है- मूर्ख उसी कर्म को जानता है। जीव विषयी है, लोभी है, उनको स्वर्ग आदि का लोभ दिखाकर कर्म में प्रवृत्ति करते हैं, पीछे निवृत्ति का फल उत्तम है। इस ज्ञान से उन कर्मों को छुड़ाते हैं, यह वेद का तात्पर्य है इस कारण वेदोक्त ही कर्म करे, कर्म के

फल की इच्छा न रखे, सब ईश्वर ही में समर्पण करे, तब मोक्ष रूप सिद्धि को प्राप्त हो। जब ईश्वर प्रसन्न हो तो सद्‌गुरु प्राप्त होते हैं। फिर गुरूओं से पूजा की विधि जाने, तब अपने को जैसे रूचे वैसी मूर्ति बनाकर पूजन करे, सो विधि वर्णन करते हैं कि प्रथम तो स्नान आदि से पवित्र करे, फिर मूर्ति के सम्मुख बैठ प्राणायाम कर देह को शुद्ध करे, तदन्तर हरि का पूजन करे। पाद्य अर्घ्य तथा आचमनीय पात्र उपस्थित कर ध्यान करना, फिर सिर, शिखा, कवच, नेत्र और अस्त्र के मंत्रों से देव के शरीर में न्यास करे, चन्दन फूलमाला, धूप और नैवेद्य से सांगोपांग पूजन करना, स्तुति कर हरि को नमस्कार करे। इस प्रकार जो मनुष्य अग्नि, सूर्य, जल आदि में स्थित हृदय में आत्म रूप ईश्वर की पूजा करेगा सो संसारी बंधनों से छूटकर मोक्ष को प्राप्त हो जायेगा।

नारायण अवतार वर्णन

निमि ने पूछा- हे भगवन्! आपने कहा हरि की मूर्ति को जैसे मन माने, वैसी रचकर पूजन करे; सो मुझे न मूर्ति ज्ञान है, न गुण कर्म का ज्ञान है, जो स्तुति करूं, इस कारण आप उनके अवतार और गुण कर्म कहो। तब द्रुमिल नाम योगेश्वर बोले- पृथ्वी के रज परमाणुओं को कदाचित् गिना जा सके, परन्तु भगवान के गुणों को नहीं गिना जा सकता। इस कारण आपके प्रश्न अनुसार सम्पूर्ण अवतार कहे जायें ऐसा नहीं, तथापि मैं

संक्षेप से कहता हूं। प्रथम बीज पुरुषावतार कहते हैं। पंचमहाभूतों में ब्रह्माण्ड रूप देह को रचकर उसमें लीला करने को आदि देव नारायण ने प्रथम 'पुरुष' नाम पाया। इस जगत् रचना के अर्थ उसके रजोगुण से ब्रह्माजी हुए, पालन करने को सत्वगुण से विष्णु हुए, प्रलय करने को इनके तमोगुण से रुद्र प्रगट हुए हैं। इस प्रकार जिसमें प्रकट हुए ब्रह्मा, विष्णु, महादेव से प्रजा की उत्पत्ति स्थिति, संहार होते हैं, वे आदि पुरुष यही हैं। यह नरनारायणावतार तथा उनके गुण कर्म कहते हैं। दक्ष की कन्या मूर्तिनामा धर्म की स्त्री से 'नर नारायण' नाम अवतार हुआ। परमशक्ति दिखाने वाला एक इतिहास वर्णन करते हैं सो आप श्रवण कीजिए। एक समय नारायण को तप करते देख इन्द्र ने विचारा यह तप करके मेरा पद लेना चाहते हैं, अतः विघ्न करने को कामदेव को भेजा। कामदेव, अप्सरागण, बसन्त व मन्द-मन्द पवन को साथ ले आश्रम में स्त्रियों के कटाक्षों से उनको बेधने लगा। तब नर नारायण ने कहा- हे कामदेव, देवांगनाओ! भय मत करो, हमारा आतिथ्य ग्रहण कर आश्रम को पवित्र करो। अतिथि सत्कार हीन स्थान शून्य कहलाता है। हे महाराज! भगवान के इस प्रकार कहने पर लज्जा सहित काम आदि नारायण से कहने लगे- हे प्रभो! आपके ऐसा कहने में आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि हमारा स्वभाव ही ऐसा है। आपकी सेवा करने वाले बैकुण्ठ में जाते

हैं। परन्तु जो आपकी सेवा करते हैं उनके आप रक्षक हो, इस कारण वे भक्तजन विघ्न के सिर चरण रख आपको प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार भगवान ने काम आदिकों की स्तुति सुन अपने योग बल से अद्भुत श्रृंगार युक्त स्त्रियां उत्पन्न करके कामादिकों के अभिमान दूर करने को दिखाईं और बोले इनमें से तुम किसी एक स्त्री को ले लो। यह सुन देवताओं ने कहा कि हम अति तुच्छ हैं, कहां ऐसी स्त्रियां कहां हम। तब नारायण बोले कि तुम्हारे समान जो होवे उसको ग्रहण करो, तब उन्होंने कहा- हे महाराज! इनमें हमारे समान एक भी नहीं है। तो भगवान बोले- एक तो ग्रहण कर लो तुम्हारे स्वर्ग का भूषण होवेगी। तब भगवान की आज्ञा मान अप्सराओं में उत्तम उर्वशी को ले प्रभु को प्रणाम कर स्वर्ग को चले गए, स्वर्ग में जाकर नारायण के बल का वर्णन किया तब इन्द्र अत्यन्त विस्मित हो महाभय को प्राप्त हुआ। इन्हीं प्रभु ने हंसावतार ले आत्मयोग वर्णन किया, फिर एक दत्तात्रेय, एक सनक आदिक, ऋषभदेव हमारे पिता यह सब विष्णु रूप अपने अंश से जगत कल्याण करने को प्रगट हुए। इन्हीं विष्णु भगवान ने एक समय हयग्रीव अवतार ले, मधु को मार बेदी का उद्धार किया। एक समय प्रलय में मत्स्य रूप धारण कर मुनि, पृथ्वी और औषधियों की रक्षा की और वाराह अवतार धारण कर जल में से पृथ्वी का उद्धार करते समय हिरण्याक्ष वध किया।

तथा मंथन के समय में कच्छप अवतार ले अपनी पीठ पर पर्वत धारण किया और गजेन्द्र को जिन्होंने ग्राह से छुड़ाया, सो भी भगवान का अवतार जानो। भगवान ने पृथक-पृथक अवतार धारण कर इस प्रकार चरित्र किए। एक समय बालखिल्य ऋषि कश्यप जी के लिए काष्ठ लेने वन में जाते थे, वहां गौ खुर के गड्ढे में जल भरा था, उसमें डूबने लगे, तब इन्होंने भगवान की स्तुति की तो वहाँ से आत्म विद्या में तत्पर ऋषि को छुड़ाया और वृत्रासुर के मारने से जो ब्रह्महत्या हुई थी, उससे इन्द्र को छुड़ाया तथा दैत्य के घर में रोकी हुई स्त्रियों को छुड़ाया। नृसिंहावतार धारण कर हिरण्यकश्यप का वध किया। देवासुर संग्राम के बीच अपने अवतारों से देवताओं के निमित्त दैत्यों को मार सब लोकों की रक्षा की और बामन रूप धर बलि से पृथ्वी को ले देवताओं को दी है। क्षत्रिय कुल संहार करने को भृगुवंश में परशुराम अवतार धारण करके पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय रहित किया। रामावतार ले समुद्र में सेतु बांध, रावण का परिवार समेत वध किया। भूमि भार उतारने को बलराम कृष्ण अवतार धारण कर देवताओं से भी न किये जायें, ऐसे कर्म किये। कलियुग के अन्त में कल्कि अवतार धरकर शूद्र राजाओं को मारेंगे। हे राजन्! जगत्पति भगवान के ऐसे अनेक जन्म और कर्म महात्माओं ने वर्णन किए हैं सो यहां संक्षेप से बताए गये हैं।

जयन्त का उपाख्यान

निमि पूछने लगे- हे ब्राह्मण! जिनकी कामना नहीं छूटी, वे पुरुष प्रायः भगवान का भजन नहीं करते, उनकी क्या गति होगी? यह सुनकर आठवें चमनऋषि ने उत्तर दिया, हे राजन्! भगवान के मुख, भुजाओं तथा चरणों से ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए। जन्मदाता ईश्वर का इन वर्णों के बीच जो भजन नहीं करते, वे पुरुष वर्णआश्रम से भ्रष्ट हो नरक में गिरते हैं। इस प्रकार अनेक द्विज व स्त्रियां तथा शूद्रादि जो भगवान को न जानने से भजन नहीं करते हैं, उन पर महात्माजन कृपा करते हैं। यद्यपि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हरि भजन के अधिकारी हैं तो भी वेद के फल श्रुति से मोहित हो भगवान का भजन नहीं करते उन अधजले पुरुषों की आप सरीखे पुरुषों को उपेक्षा करनी चाहिए। जो कर्म करने में कुशल नहीं हैं- ऐसे मूर्ख पण्डित ऐसी बातें कहते हैं कि जिससे मोह उत्पन्न हो। उनको उस फल के भ्रम से कर्म ही में प्रेम होता है, उससे काम, क्रोध, अभिमान आदिक बढ़ जाते हैं। सर्प के समान क्रोधी महा अभिमानी, दुष्ट स्वभाव के कारण भगवान भक्तों पर हंसा करते हैं, जो सदैव स्त्रियों की सेवा करते हैं, ऐसे कामी घर में आसक्त हो विषय में फंसे रहते हैं। मेरे समीप इतना धन है और अब इतना हाथ आवेगा, इससे अमुक कार्य करूंगा। इस प्रकार

ऐसे यज्ञ, पाखण्ड निमित्त करते हैं। द्रव्य, ऐश्वर्य, कुल, विद्या, दान, रूप, बल और कर्मों से उसको गर्व होता है। इससे मन्द बुद्धि, परमेश्वर व उनके भक्तों का अपमान करते हैं। यह मूर्ख वेद के प्रयोजन को नहीं जानते और उन सर्वज्ञ भगवान को नहीं देखते। फिर वे मूढ़ वेद में जो ऋतु समय स्त्री प्रसंग तथा यज्ञ होम के अन्त में कही मदिरा मांस का सेवन कहा है उसके अभिप्राय को सुनते ही नहीं हैं, मूढ़ जन धन को भी अयोग्य काम में लगाते हैं, धर्म न करके धन को शरीर निमित्त गृह आदि में वृथा खोते हैं और मृत्यु को नहीं जानते हैं। जो पुरुष धर्म को नहीं जानते हैं, अपने में सत्पुरुषजन का अभिमान रखते हैं, दूसरों से द्वेष करने वाले और इस मृतक शरीर में पुत्र आदिक, परिवार में स्नेह बांधने वाले ये नरक में गिरते हैं। अज्ञानी जन तत्वज्ञानियों से तर जाते हैं, परन्तु जो न ज्ञानी हैं, न अज्ञानी, ऐसे अपने हाथ से ही आत्मा को हत करते हैं। जो भगवान से विमुख हैं वे घर, सन्तान सम्बन्धी और धन की इच्छा बिना भी त्याग कर नीच योनियों में गिरते हैं।

निमि ने कहा कि सबको त्यागकर भगवान की भक्ति करना योग्य है, ऐसे आपने कहा सो ये भगवान किस समय में, कैसे वर्ण, कैसे आकार वाले, किस नाम से और किस विधि से पूजे जाते हैं? यह प्रश्न सुन भाजन ऋषि बोले- हे राजन्! सतयुग, त्रेता, द्वापर और

S. S. BRIJBASI & SONS
59, MIRZA STREET BOMBAY-3.

18 DATTA TRAYA

कलियुग, चारों युगों में नाना वर्ण नाम, आकार युक्त भगवान अनेक विधि से पूजे जाते हैं। सतयुग में श्वेतवर्ण चतुर्भुज, जटाधारी, वल्कल पहिरे, काले हिरण का यज्ञोपवीत, रुद्राक्ष, दण्ड कमण्डल धारण किये ब्रह्मचारी के वेष में दर्शन देते हैं। उस युग में मनुष्य शांत बैर रहित, सुहृदय, समदर्शी, शम, दम और ध्यान से देवता का पूजन करते हैं, उस समय इन नामों से हरि कहे जाते हैं—हंस, सुवर्ण, बैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त और परमात्मा। त्रेता युग में यज्ञ भगवान रक्त वर्ण चतुर्भुजी, तीन मेखला धारण किये, सुवर्ण केश वाले स्त्रुक व स्त्रुवा आदि धारण करते हैं। जो ज्ञाता मनुष्य हैं, वेद रूप भगवान का त्रेता में पूजन करते हैं और विष्णु यज्ञ, पृश्यिगर्भ सर्वदेव, उरुक्रम, वृणकपि, जलन्त, उरुगाय, ये नाम गाये जाते हैं। द्वापर में वासुदेव श्याममूर्ति पीताम्बर धारण किये श्री वत्स चिन्ह, कौस्तुभ मणि आदि लक्षण धारण करते हैं। हे राजन्! जो पुरुष परमात्मा को जानने की इच्छा रखते हैं वह उस समय राजाओं के लक्षण युक्त वेद मंत्रों से पूजन करते हैं। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध, भगवान हम आप को प्रणाम करते हैं। कलियुग में कृष्णवर्ण, कान्ति से निर्मल, उपांग कौस्तुभ तथा सुदर्शन आदि अस्त्र, पार्षद सुनन्दनादिक नाम कथन और स्तुति आदि प्रधान पूजा से हरि का पूजन और स्तुति करते हैं। इस

प्रकार चारों युग में भगवान का पूजन करते हैं। कलियुग में विशेषता है कि अन्य युगों में ध्यान, यज्ञ, पूजा आदि से फल होता है, सो कलियुग में भजन कीर्तन से ही प्राप्त हो जाता है। इस कारण ज्ञात होता है कि कलियुग में सब प्राणी नारायण परायण होंगे। नारदजी कहते हैं हे वासुदेवजी! निमि राजा से धर्म सुन प्रसन्न हो जयन्ती पुत्र ने नवयोगेश्वरों का पूजन किया। इसके उपरान्त वे अन्तर्ध्यान हो गये और निमि भी उन धर्मों का पालन कर परमगति को प्राप्त हुआ। हे महाभाग! आप भी इन भगवत्सम्बन्धी धर्मों को वैराग्य सहित पा लोगे तो मोक्ष को प्राप्त होओगे, यह तो एक शास्त्र सम्बन्धी पद्धति मैंने वर्णन की है परन्तु आप तो स्त्री पुरुष भगवान के संग से कृतार्थ हुए हो। विष्णु आपके पुत्र हैं, इस कारण आपकी कीर्ति में जगत व्याप्त हो रहा है। दर्शन, आलिंगन, सम्भाषण, शयन, आसन व भोजन से भगवान में पुत्र स्नेह रखने के कारण आपका अन्तःकरण पवित्र है। अतएव आपको अन्तःकरण शुद्ध करने का प्रयत्न करना नहीं पड़ेगा। नारदजी वसुदेवजी को उपदेश करते हैं- हे वसुदेव! आप श्रीकृष्ण में पुत्र बुद्धि न रखो। भगवान तो सबके आत्मा, सबसे परे, अविनाशी हैं भूमि के भार को नाश करने को और साधुओं की रक्षा हेतु अवतार ले लोकों में यश विस्तार करते हैं। शुकदेवजी बोले- यह बात सुन वसुदेव व देवकी ने विस्मय मान मोह त्याग कर

दिया। यह इतिहास जो सावधान हो मन में धारण करे वह पुरुष मोह से छूट जीवन्मुक्त हो जाता है।

भगवान और उद्धव का कथन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- नारदजी तो वसुदेव को उपदेश करके चले गये, इसके उपरान्त सनकादिक व प्रजापतियों सहित ब्रह्माजी, भूतनाथों सहित महादेवजी, इन्द्र तथा देवता ऋषि आदि मिलकर श्रीकृष्ण का दर्शन करने को द्वारिका आये, वहां देवताओं ने श्रीकृष्ण का दर्शन कर परमानन्द माना। इसके अनन्तर नन्दनवन की वाटिकाओं के फूलों की माला से श्रीकृष्ण को आच्छादित करते हुए देवता भगवान की स्तुति करने लगे। हे नाथ! ज्ञानी पुरुष आपका ध्यान मात्र करते हैं। परन्तु दर्शन नहीं पाते और हम साक्षात् दर्शन कर रहे हैं यह हमारा भाग्य है। हे प्रभो! आप इस जगत के उत्पत्ति पालन और प्रलय के कारण रूप हो, क्योंकि प्रकृति पुरुष के आप नियंता हो, यह काल सम्वतसर चक्र रूप है। इसके ग्रीष्म, वर्षा, शरद ये सबका नाश करने को प्रवृत्त है, इसका वेग गम्भीर है, सो आपका ही रूप है इस कारण आप उत्तम पुरुष हो। सोलह हजार स्त्रियां वश में न कर सकीं, इस कारण आप विषयों से लिप्त नहीं हो, अतएव अपनी अमृत कथा रूप नदियां और चरण धोने के जल स्वरूप गंगा त्रिलोकी का पाप धोने को समर्थ है, तथा वेद में कथारूप तीर्थ श्रवण से

पवित्र करता है, और चरणों से उत्पन्न गंगादिक तीर्थ स्नान से पवित्र करते हैं। शुकदेवजी बोले- हे प्रभु! हमने भूमि का भार उतारने की आप से प्रार्थना की थी सो आपने भूमि का भार दूर किया। अवतार लिए आपको एक सौ पच्चीस वर्ष हो चुके, अब कोई कार्य शेष नहीं और आपका कुल ब्रह्मशाप से नाश हो रहा है। इस कारण अपने धाम को चलो। शुकदेवजी कहते हैं- ब्रह्मा आदि ने स्तुति की, तब श्रीकृष्ण उनको प्रसन्न करते हुए कहने लगे- हे देवेश्वर! अभी वह यादवकुल, बल, शूरता और श्री से अति उद्धत है, जो मैं यादवों का संहार किये बिना जाऊं तो मर्यादा सहित यदुवंश का नाश हो जाएगा। इनको संहार कर मैं बैकुण्ठ जाऊंगा। शुकदेवजी बोले- इस प्रकार जब भगवान ने कहा, तब ब्रह्माजी प्रणाम कर देवताओं सहित चले गये। इसके उपरान्त द्वारिका में बड़े उत्पात होने लगे उन्हें देख वृद्ध यादव इकट्ठे हुए उनको एकत्र देख श्रीकृष्ण बोले चारों ओर यहां बड़े उत्पात उठने लगे हैं, और कुल को ब्राह्मणों का शाप लगा हुआ है। अतः हे यादवो! जो जीवन की इच्छा है, तो प्रभास क्षेत्र में चलो, हम सब प्रभास क्षेत्र में स्नान कर दुःखों से तर जायेंगे। शुकदेवजी बोले- हे राजन्! जब श्रीकृष्ण ने आज्ञा दी तब सब यादव चलने का उद्यम करने लगे। हे राजन्! उस समय उद्धवजी भगवान को मस्तक झुकाकर कहने लगे- हे योगेश! ऐसा जान पड़ता है कि

यादवों का संहार कर आप इस लोक को त्यागना चाहते हो। हे केशव! मैं आपको त्यागने को आधे क्षण भी समर्थ नहीं हूं इससे मुझे भी अपने परमधाम ले चलो। इस प्रकार उद्धवजी ने विनती की तब देवकीनन्दन प्यारे भक्त उद्धव से कहने लगे-

हे उद्धव! तुमने जो कहा सब करना है, ब्रह्मा की प्रार्थना से मैंने जिस निमित्त अंशों सहित अवतार लिया है वह सब कर चुका हूं, विप्र शाप से दग्ध यह कुल कलह से नाश हो जावेगा और इस द्वारका को आज से सातवें दिन समुद्र डुबा देगा। जिस दिन मैं इस लोक का त्याग करूंगा उसी समय ये कलियुग इसको दबा लेगा। हे उद्धव! फिर तुम पृथ्वी पर नहीं रहना। यदि रहो तो मोह त्याग मेरे स्वरूप में मन रख समदृष्टि हो, पृथ्वी में विचरो। श्रीकृष्ण ने जब इस प्रकार उद्धव को आज्ञा दी तब तत्व जानने की इच्छा से भगवान को प्रणाम कर वे कहने लगे- हे योगेश्वर! आपने मोक्ष के अर्थ त्याग वर्णन किया। हे सर्व व्यापक! विषयी पुरुषों को यह त्याग कठिन है, अहंकार व ममता से मैं मूढ़ मति हूं, इस कारण हे भगवान! आपके कथन को मैं जिस प्रकार समझ सकूं उसी प्रकार आप शिक्षा दीजिए। यह सुन श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! जो आत्मज्ञान को परमोत्तम मानते हैं वे बिना गुरु के आत्मा का उद्धार करते हैं। इस मनुष्य शरीर में जो सावधान हैं वो मुझको ढूंढ लेते हैं।

दत्तात्रेय के २४ गुरु

इस पर हम एक राजा यदु और अवधूत का सम्वाद कहते हैं। अवधूत वेष, पंडित, गुरु दत्तात्रेय को देख राजा यदु ने पूछा- हे ब्रह्मन्! कुछ भी कर्म नहीं करते ऐसे आपको विलक्षण और निपुण बुद्धि कहां से प्राप्त हुई? दत्तात्रेय बोले- हे राजन्! अपनी बुद्धि करके मेरे गुरु बहुत हैं जिनके द्वारा मैं बुद्धि पाकर मुक्त हुआ हूं। मैंने चौबीस गुरु किये हैं। १-पृथ्वी से क्षमा; उसको सब खोदते हैं परन्तु वह अपने नियम से चलायमान नहीं होती। २-वायु से एक तो प्राणरूप है दूसरी बाहर फिरती है सो प्राण जैसे आहार से प्रसन्न रहते हैं इसी प्रकार मुनि भी रहे, जैसे वायु सर्वत्र बहती है पर कहीं आसक्त नहीं होती। ३-आकाश सब में व्याप्त है और बड़ा है परन्तु घट में छोटा दीखता है, किन्तु घट से आकाश का सम्बन्ध नहीं क्योंकि यह निर्विकार है तैसे ही आत्मा इस देह में है और वही सर्वत्र है। ४-जल अपने स्वभाव ही से निर्मल, स्निग्ध पवित्र करने वाला है; मुनि जन को भी ऐसा होना योग्य है। ५-अग्नि तेजस्वजी है अपने तेज से प्रकाशित है अत्यन्त दुस्सह है इसी प्रकार मुनीश्वर भी हों। ६-चन्द्रमा का मण्डल सदा पूर्ण है नित्य बुद्धि और क्षय कलाओं का है इसी प्रकार आत्मा एक रूप है जन्म मरण आदि देह को होते हैं, आत्मा को नहीं। ७-सूर्य अपनी किरणों से जल

सोखता है और फिर वर्षा में वही जल छोड़ देता है, परन्तु इसमें आसक्त नहीं है, ऐसे ही योगीराज को भी योग्य है, इन्द्रियों से अपेक्षित पदार्थ ग्रहण करे और कोई याचना निमित्त आवे तो तत्काल दे दे। जल आदिक में प्रतिबिम्ब पड़ने से सूर्य अनेक रूप दीखता है। इसी प्रकार आत्मा स्वरूप से भिन्न नहीं, देह आदिकों में व्याप्त होने से अनेक रूप प्रतीत होता है। ८-अब कपोत से शिक्षा ग्रहण की सो कहते हैं- किसी पुरुष को किसी में अति प्रीति, अति आसक्ति नहीं करनी चाहिए, करे तो कपोत की भांति क्लेशित होवेगा। एक वन में कपोत कपोती का जोड़ा था। कपोती गर्भवती हुई और उसने अण्डे दिये। उनमें से सुन्दर बच्चे निकले। एक दिवस कपोत कपोती बच्चों को खेलता छोड़ भोजन की तलाश में गये। लौटने पर देखा कि सब बच्चे एक बहेलिए के जाल में फंसकर छटपटा रहे हैं। कपोती अत्यन्त दुःखित हो जाल में गिर पड़ी। तब मोह से ग्रसित वह कपोल अशान्त चित्त हुआ। ऐसे ही यह मनुष्य सुख दुःख ही में रति मान, परिवार का पालन पोषण करते, कुटुम्ब सहित दुःख ही दुःख पाते हैं।

९-हे यदु! बुद्धिमान को उचित है कि सुख की चाहना न करे, अनायास ही जो प्राप्त हो उसको ग्रहण कर ले, सबसे उदासीन रहे, शरीर के निर्वाह मात्र ही भोजन करें, इस प्रकार अजगर रहता है। १०-अब समुद्र से शिक्षा ली है, सो कहते हैं- योगी को समुद्र के

समान प्रसन्न और गम्भीर रहना चाहिए। ११ से १५-रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, इनमें आसक्त होने से जीव नाश हो जाता है, पतंग, मीन, भ्रम्मर, गज, हिरण नाश को प्राप्त होते हैं। इस कारण इन पांचों विषयों में आसक्त न हो। इन पांचों से ये हमने ग्रहण किया है, मोक्ष के वशीभूत पतंग दीपक पर, मीन अन्न लगे हुए कांटे पर, भ्रमर कमल के फूल पर, हाथी हथनी पर और हिरण बधिक के गाने पर दौड़कर क्लेशित होते हैं उसी प्रकार मनुष्य इन्द्रियों के वशीभूत ही लोक परलोक को बिगाड़ लेते हैं। १६-हे यदु! विदेह नगर में पिंगला नाम की एक वेश्या थी, वह एक दिन सोलह श्रृंगार सजाकर सन्ध्या समय घर के द्वार के बाहर बैठी रही। आधी रात बीत गई, उसने सोचा यह काम भी बहुत कर लिया तब यह विचारने लगी कि वैराग्य, पुरुष की आशा रूपी फांसी को काटने वाला है। मैंने मन को नहीं जीता, इस विदेह नगर में एक मैं ही मूर्ख हूं, साक्षात् अच्युत परमात्मा को छोड़ दूसरे से भोग की इच्छा करती हूं। ये परमेश्वर सबके आत्मा हैं। उनको ही मैं अपना मन दे, मोल ले, उन्हीं के साथ लक्ष्मी के समान विहार करूंगी। दत्तात्रेय बोले- हे राजन्! इस प्रकार निश्चय कर धन व भोग की आशा त्याग, शान्ति को प्राप्त वह पिंगला सो गई। इस आख्यान से हमने फलितार्थ यह ग्रहण किया है कि आशा दुःख रूप है और आशा को त्यागना ही सुख है, जैसे पिंगला वेश्या ने जब कन्त की

आशा छोड़ी तब सुख पूर्वक सोई।

१७-दत्तात्रेय बोले- हे राजा! अब कुर पक्षी से जो शिक्षा ग्रहण की सो कहते हैं- मनुष्यों को जो वस्तु प्रिय है उसको संग्रह करना दुःखदाई है। इस पर एक दृष्टान्त है, एक कुरपक्षी ने मांस पाया, तब उससे बलवान पक्षी मांस छीनने आये तो उसने मांस डाल दिया, तब वे पक्षी उसे छोड़ मांस को चिपट गये, यह महासुखी हुआ। १८-अब बालक से शिक्षा पाई सो कहते हैं कि बालक के समान मुझको भी मान अपमान का सुख दुःख नहीं है। १९-कुमारी से जो शिक्षा ग्रहण की सो कहते हैं- किसी गांव में एक गृहस्थी की क्वारी कन्या के घर भाई, बन्धु, पिता आदि उसको घर में छोड़ कहीं बाहर गये, थे, उनके पीछे उसका सम्बन्ध करने को वर पक्ष के लोग आ गये, तब वह कन्या उनका अतिथि सत्कार करने लगी। हे राजन्! उनको भोजन कराने को यह कन्या एकान्त में बैठ धान कूटने लगी। तब उसकी चूड़ियों का शब्द होने लगा। कुमारी ने जाना कि मैं आप धान कूटने को बैठी हूं, सो यह ठीक नहीं इससे ये लोग मेरे पिता को दरिद्री जानेंगे। यह विचार उस बुद्धिमती ने क्रम पूर्वक एक-२ चूड़ी रहने दी तब शब्द नहीं हुआ। हे यदु! धान कूटती हुई कुमारी से यह उपदेश सीखा कि बहुत जने एक स्थान पर वास करने से कलह करते हैं और दो जने एक साथ रहें तो बातें अवश्य करते हैं। इस कारण कुमारी के कंकण की

नाईं अकेला ही विचरे। २०-अब बाण बनाने वाले से जो शिक्षा पाई सो वर्णन करते हैं, चित्त को परमेश्वर में लगा प्राणों को वश में कर आसन जीते वैराग्य से मन स्थिर कर सावधान रहे। २१-अब सर्प से जो सीखा सो कहते हैं, जैसे सांप सबसे भय मानता हुआ अकेला ही रहता है किसी से सहायता नहीं चाहता, बहुत थोड़ा बोलता है, इसी प्रकार मुनियों को भी योग्य है। २२-अब मकड़ी से जो ग्रहण की सो कहते हैं, मकड़ी अपने मुख में से निकलते हुए तार को मुख से विस्तार कर उसमें विहार कर फिर उसको निगल जाती है, ऐसे ही परमेश्वर इस जगत को बनाकर फिर संहार करते हैं। २३-अब भ्रमरी से जो शिक्षा पाई सो कहता हूं यह प्राणी स्नेह से, द्वेष से अथवा भय से जिस वस्तु में मन को लगाता है, उसी स्वरूप को प्राप्त होता है। २४-हे यदु! जैसे भृंगी जिस कीड़े को पकड़ कर अपने बिल में बन्द कर देती है वह कीड़ा भय के कारण भ्रमरी का ही ध्यान करता-२ भ्रमरी रूप हो जाता है। हे प्रभु! इस प्रकार इतने गुरुओं से शिक्षा ले मैंने मति को ठीक कर लिया है। अपनी देह से जो शिक्षा ग्रहण की सो कहता हूं, सुनो! यह देह हमारा गुरु है क्योंकि इससे हमको वैराग्य और विवेक उत्पन्न हुआ है। इस देह द्वारा मैं तत्वों का विचार करता हूं जिससे मुझे वैराग्य हुआ है इस कारण देह को दुःख रूप जान वैराग्य को प्राप्त हुआ हूं। अब देह की दुर्लभता को दर्शाते हैं- प्रभु ने अपनी

माया से वृक्ष, सर्प, पशु, पक्षी, मत्स्य आदि नाना प्रकार के शरीर रचे। परन्तु उनमें किसी की बुद्धि परमात्मा को अपरोक्ष करने में समर्थ नहीं, ऐसे जान सन्तुष्ट नहीं हुए ब्रह्माजी मनुष्यों के देह को रच आनन्द को प्राप्त हुए। धीर पुरुष के योग्य है, कि देह को अनित्य जान मोक्ष के निमित्त जब लौं मृत्यु न हो तब लौं शीघ्र यत्न कर लेवे क्योंकि मोक्ष रूप परमानन्द की प्राप्ति मनुष्य योनि में ही है। इस प्रकार अनेक गुरूओं से प्राप्त हुई शिक्षा से मैं सबका संग छोड़ अहंकार रहित हो भूमि पर विचरता हूं। श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! गम्भीर बुद्धि दत्तात्रेय इस प्रकार यदु से आज्ञा ले प्रणाम को प्राप्त हो, अपनी इच्छा से जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। हे उद्धवजी! महाराज यदु ने श्री दत्तात्रेय के वचन सुन सबको छोड़ परब्रह्म में चित्त लगाया।

भगवान के प्रति उद्धव का प्रश्न

भगवान कहने लगे- हे उद्धव! मेरे भक्त को उचित है कि निष्काम कर्म करे मेरी भक्ति में तत्पर होवे, आत्म विचार मग्न रहे, कर्म विधि में आदर करे, मुझमें तत्पर हो संयमों का सेवन करे और जब सामर्थ्य हो जाये तब शौचादिक नेम करे। स्त्री, सन्तान, घर, क्षेत्र, स्वजन, द्रव्य आदि में उदासीनता रक्खे और विचारे कि आत्मा सबमें समान है इस कारण सब में अपने ही समान सुख देवे। ज्ञान प्राप्त को कहते हैं गुरु रूप नीचे की अरणि

और उपदेश रूप बीच का मंथन करने का काष्ठ इन तीनों में से उत्पन्न हुआ ब्रह्म रूप अग्नि सुख देने वाला है। ब्रह्म विद्या गुणों के कार्यरूप जगत को और उन गुणों को भी दग्ध कर देती है। फिर काष्ठ रहित अग्नि की नाईं आप भी शान्त हो जाती है इस प्रकार होने से यह जीवात्मा साक्षात आनन्द रूप होता है। हे उद्धव! श्रीमानों के मत अनुसार जीव की पराधीनता नहीं जाती और पराधीनता होने पर मनुष्य को पुरुषार्थ की प्राप्ति नहीं होती। जीव स्वतन्त्र होवे तो उसको दुःख की प्राप्ति संभव नहीं। जो अच्छे कर्म करते हैं, वे सुखी होते हैं। यदि कोई कहे- यह आत्मा अनेक क्यों दिखाई देती हैं? आत्मा तो एक ही सुनी जाती है तो कहते हैं कि इन गुणों के धर्म से जब तक अहंभाव है, तब तक अनेक प्रतीत होती हैं और जब यह माया छूट जाती है तब आत्मा एक ही दिखाई देता है। इस प्रकार प्रवृत्ति मार्ग में दोष है। जो इसका सेवन करता है, वह मोह में पड़कर शोक को प्राप्त होता है। काल, आत्मा, शास्त्र, लोक स्वभाव धर्म ये नाम व गुण तो सम्बन्ध से वर्णन किये परन्तु गुण सम्बन्ध छूटने पर ये मेरे ही स्वरूप हैं इस कारण निवृत्ति मार्ग ही मोक्ष का कारण है। उद्धव ने पूछा- हे भगवन्! आपने यह सिद्धान्त वर्णन किया कि आत्मा एक ही है, उसके गुणों के कार्य रूप देह के सम्बन्ध के हेतु ही जन्म-मरण होता है और अपना स्वरूप जानने से मोक्ष ही प्राप्ति होती है सो इस विषय में यह पूछता है कि शरीर

से उत्पन्न हुए गुणों में वर्तमान जीव-बन्धन से रहित होने पर भी गुणों से बन्धन में आ जाता है अथवा नहीं आता है? आता है तो किस प्रकार से आता है? बन्धन मुक्त कैसे बर्तता है? हे अच्युत! मेरे मन में एक सन्देह है, आप निवारण कीजिए कि एक ही आत्मा शरीरों के सम्बन्ध से अनादि काल से बंधा है और इसी प्रकार निश्चय कर उसकी मुक्ति हो जाती है, मुक्ति में अनित्यता आ जाती है, इस कारण वही आत्मा मुक्त है, ऐसे मानना पड़ता है, तब एक ही समय में बन्धन में आना और मुक्त हो जाना कैसे सम्भव है? सो कहिए।

बद्ध मुक्तादि के लक्षण

श्रीकृष्ण कहने लगे- हे उद्धव! आत्मा बद्ध मुक्त है यह जो हमारा कथन है सो मेरे गुण सम्बन्ध से है, सिद्धान्त से नहीं है। सत्वादिक गुण माया-कल्पित हैं, माया बिना इनका मूल कुछ नहीं है, मैं तो माया का नियन्ता हूं, इस कारण मुझको न बन्धन है, न मोक्ष है। शोक, मोह, सुख, दुःख और जन्म-मरण आदिक संसार भी अज्ञान बुद्धि का ही विवर्त है। हे उद्धव! प्राणियों को मुक्ति देने वाला और बन्धन देने वाला अज्ञान, तीनों मेरी शक्तियां माया रचित हैं, हे उद्धव! जब तक मैं अज्ञान को प्रवृत करता हूं, तब तक जीव को बन्धन प्रतीत होता है, और जब ज्ञान देता हूं, तब मोक्ष की स्फूर्ति होती है। अब बन्धन और मोक्ष में क्या

भेद है? इसका उत्तर देता हूं कि आत्मा और परमात्मा विरुद्ध धर्म वाले होकर एक ही देह में स्थित हैं। एक देह में स्थित जीव ईश्वर में, ईश्वर का धर्म आनन्द और जीव का धर्म दुःख है। जीव नियतपन से रहता है और ईश्वर नियन्तापन से रहता है। इसका दृष्टांत है— शरीर वृक्ष में दो पक्षी निवास करते हैं जो चैतन्य हैं। दोनों में मित्रता है, अपनी इच्छा से स्थित हो गये हैं। इनमें एक तो देह कृत कर्म फल भोगता है, ईश्वर साक्षी हो देखता है, भोग नहीं करता, ज्ञान शक्ति होने से जीव की अपेक्षा बलवान है। ईश्वर सर्वज्ञ है और अपने को तथा जीव को जानता है और जीव अल्पज्ञ है, वह अपने स्वरूप को नहीं जानता। इस कारण जीव अविद्या युक्त है और बद्ध है, ईश्वर माया से युक्त होने पर भी माया के तत्वगुण की वृद्धि के कारण सर्वज्ञ और मुक्त है। ज्ञान की विलक्षणता वर्णन कर जीव-जीव में क्या भेद है सो कहते हैं। पण्डित वे ही हैं जो अपने स्वरूप और परमात्मा को जानते हैं, सो ये यद्यपि देह ही में हैं, तथापि देह से न्यारे हैं, ज्ञान के कारण मोक्ष पाया हुआ जीव संस्कार से देह में रह जाता है। कुबुद्धिजन स्वप्न देखने की नाईं देह में नहीं स्थित होने पर भी देह में स्थित मानते हैं। अब बद्ध व मुक्त का लक्षण कहते हैं सो सुनो। जिसका शरीर अपनी इच्छा से किसी दुष्टजन से पीड़ित हो अथवा पूजित हो, तो जिस पुरुष का मन सुख दुःख से विकार को प्राप्त न हो उसको मुक्त समझना

चाहिए। समदर्शी मुनि किसी की निन्दा स्तुति न करे, लौकिक व्यवहार से पृथक रहे वही मुक्त है, और इसके विपरीत स्वभाव वाला बद्ध है। तथा जो कर्मों में उदासीन रहे, न कुछ विचारे एक आत्मा ही से विचारता रहे इस वृत्ति से जड़ की नाई विचरने वाले को मुक्त समझना चाहिए और इससे विपरीत को बद्ध समझना चाहिए। ये मुक्त पुरुष के लक्षण कहे गये हैं, वे ही मुमुक्षु पुरुष के साधन हैं। हे उद्धव! ज्ञान का मार्ग ही सुगम है, केवल भक्ति् का मार्ग ही सुगम है सो कहते हैं। प्रथम तो श्रद्धा धारण करे, पीछे मेरे चरित्र श्रवण करे, स्मरण करे, वैसी ही लीला करे। धर्म काम मेरे ही निमित्त करे, मेरे ही आश्रय रक्खे। इस प्रकार सत्संग द्वारा प्राप्त हुई भक्ति से मेरे स्थान को पावेगा। यह मैंने अपने को प्राप्त होने का साधन दिखाया है।

तब उद्धवजी बोले- हे प्रभो! साधुजन कैसे होते हैं? श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! जो दूसरे के दुःख को न देख सके, किसी से द्रोह न करे, क्षमावाला हो, सत्य बोले, निन्दा रहित हो, समदर्शी हो, सुख-दुःख में समान हो, सबका उपकार करे, प्राणियों का अपराध सहे, काम करके मति चलायमान हो, इन्द्रियों को जीते, सदाचार में प्रवृत्त हो थोड़ा भोजन करे, शान्त स्वभाव हो, अपने धर्म में स्थित हो मेरा ही स्मरण करे, मन की इच्छा न करे, दूसरों को मान दे, किसी को न ठगे और ज्ञानवान हो, इन लक्षणों से युक्त पुरुषों को साधु कहते हैं। अब

भक्ति के लक्षण सुनो, मेरी मूर्तियों व मेरे भक्त का दर्शन, पूजा, स्तुति, कीर्तन, मेरी कथा सुनने में श्रद्धा जो कुछ मिले सब मेरे को निवेदन, आत्म-समर्पण इत्यादि कर्मों को प्रेम से करने वाला मेरा भक्त कहाता है। मेरे जन्माष्टमी आदि पर्व में पंचोपचार या षोडशोपचार से पूजन करना, प्रतिवर्ष में जो उत्सव आवे तब यात्रा करना, पुष्प आदिकों से पूजन करना, नैवेद्यादिक चढ़ाना, दीक्षा देना, मेरे व्रत धारण करने में श्रद्धा, मेरे निमित्त उपवन, विहार स्थान, नगर और मन्दिर बनवाने, मेरे मन्दिर में बुहारी देना, छिड़काव करना, फिर चौक पुराय, दास की नाईं पूजा करना, अभिमान और दम्भ नहीं रखना, किया उपकार किसी को न दिखाना, मेरे अर्पण किये हुए पदार्थ को अपने काम में न लाना, ये सब साधन मेरी भक्ति उत्पन्न करते हैं। हे उद्धव! प्रथम सत्संग करे जिससे भक्ति उत्पन्न होवे। भव सागर से तरने का दूसरा उपाय नहीं है। साधुओं का मैं ही आश्रय हूं, इस कारण सत्संग से मेरी प्रीति हो जाती है। तुम हमारे सेवक व सुहृद सखा हो और श्रद्धापूर्वक श्रवण करते हो, इस कारण अब यह 'भक्ति' विषय यद्यपि अति रहस्यमय और गोप्य है, तथापि तुम्हारे आगे वर्णन करूंगा।

साधुसंग-महिमा, कर्मानुष्ठान और योग की विधि

श्रीकृष्ण कहने लगे- हे उद्धव! जैसे सत्संग मुझे वश में करता है वैसे ही योग व तत्व विचार, अहिंसा विद्याध्ययन, तप, सन्यास, अग्निहोत्र वश में नहीं कर सकते। दैत्य, राक्षस, मृगादि, पशु, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, विद्याधर और मनुष्यों में वैश्य, शूद्र, स्त्री व अन्त्यज ये सब राजस तथा तामस प्रकृति वाले होने पर भी सत्संग से मुझको प्राप्त हुए हैं। वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मय और विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान्, गजेन्द्र, जटायु पक्षी, तुलाधार, वैश्य, ब्याध, कुब्जा, ब्रज में गोपी आदिक सत्संग से मेरे पद को प्राप्त हुए हैं। केवल भावना से कृतार्थ हो गोपों, गाय यमलार्जुन, मृग, अन्य भी जीव और कालिय नाग, मुझे प्राप्त हुए हैं। उद्धव बोले- हे योगेश्वर! आपने कहा अपने धर्म में सावधान रह कर्म करे, अब कहते हो सब त्याग मेरी शरण हो संसार भय से छूट जाओ। त्याग करना चाहिये अथवा भजन? श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! यह परमेश्वर प्राण व घोष के साथ आधार चक्र में प्रवेश हुआ सूक्ष्म रूप हो यात्रा स्वर, वर्ण अतिस्थूल नाना वेद शाखात्म रूप वाला हो ज़ाता है। जैसे बीज खेत को पा अनेक भांति का होता है, इसी प्रकार यह ईश्वर माया

भक्ति के लक्षण सुनो, मेरी मूर्तियों व मेरे भक्त का दर्शन, पूजा, स्तुति, कीर्तन, मेरी कथा सुनने में श्रद्धा जो कुछ मिले सब मेरे को निवेदन, आत्म-समर्पण इत्यादि कर्मों को प्रेम से करने वाला मेरा भक्त कहाता है। मेरे जन्माष्टमी आदि पर्व में पंचोपचार या षोडशोपचार से पूजन करना, प्रतिवर्ष में जो उत्सव आवे तब यात्रा करना, पुष्प आदिकों से पूजन करना, नैवेद्यादिक चढ़ाना, दीक्षा देना, मेरे व्रत धारण करने में श्रद्धा, मेरे निमित्त उपवन, विहार स्थान, नगर और मन्दिर बनवाने, मेरे मन्दिर में बुहारी देना, छिड़काव करना, फिर चौक पुराय, दास की नाईं पूजा करना, अभिमान और दम्भ नहीं रखना, किया उपकार किसी को न दिखाना, मेरे अर्पण किये हुए पदार्थ को अपने काम में न लाना, ये सब साधन मेरी भक्ति उत्पन्न करते हैं। हे उद्धव! प्रथम सत्संग करे जिससे भक्ति उत्पन्न होवे। भव सागर से तरने का दूसरा उपाय नहीं है। साधुओं का मैं ही आश्रय हूं, इस कारण सत्संग से मेरी प्रीति हो जाती है। तुम हमारे सेवक व सुहृद सखा हो और श्रद्धापूर्वक श्रवण करते हो, इस कारण अब यह 'भक्ति' विषय यद्यपि अति रहस्यमय और गोप्य है, तथापि तुम्हारे आगे वर्णन करूंगा।

साधुसंग-महिमा, कर्मानुष्ठान और योग की विधि

श्रीकृष्ण कहने लगे- हे उद्धव! जैसे सत्संग मुझे वश में करता है वैसे ही योग व तत्व विचार, अहिंसा विद्याध्ययन, तप, सन्यास, अग्निहोत्र वश में नहीं कर सकते। दैत्य, राक्षस, मृगादि, पशु, पक्षी, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, सिद्ध, चारण, गुह्यक, विद्याधर और मनुष्यों में वैश्य, शूद्र, स्त्री व अन्त्यज ये सब राजस तथा तामस प्रकृति वाले होने पर भी सत्संग से मुझको प्राप्त हुए हैं। वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मय और विभीषण, सुग्रीव, हनुमान, जाम्बवान्, गजेन्द्र, जटायु पक्षी, तुलाधार, वैश्य, ब्याध, कुब्जा, ब्रज में गोपी आदिक सत्संग से मेरे पद को प्राप्त हुए हैं। केवल भावना से कृतार्थ हो गोपों, गाय यमलार्जुन, मृग, अन्य भी जीव और कालिय नाग, मुझे प्राप्त हुए हैं। उद्धव बोले- हे योगेश्वर! आपने कहा अपने धर्म में सावधान रह कर्म करे, अब कहते हो सब त्याग मेरी शरण हो संसार भय से छूट जाओ। त्याग करना चाहिये अथवा भजन? श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! यह परमेश्वर प्राण व घोष के साथ आधार चक्र में प्रवेश हुआ सूक्ष्म रूप हो यात्रा स्वर, वर्ण अतिस्थूल नाना वेद शाखात्म रूप वाला हो ज़ाता है। जैसे बीज खेत को पा अनेक भांति का होता है, इसी प्रकार यह ईश्वर माया

को अंगीकार कर प्रपंच रूप हो जाते हैं। यह अनादिक और प्रवृत्ति रूप वृक्ष पुण्य व फल को प्रगट करता है इस वृक्ष के दो बीज हैं सैकड़ों फल हैं, तीन नाल, पांच स्कन्ध, ग्यारह शाखा, तीन त्वचा, दो फल सुख-दुःख हैं, इस वृक्ष में पांच रस होते हैं, दो पक्षियों ईश्वर व जीव का घोंसला है, यह वृक्ष मण्डली पर्यन्त व्याप्त हैं। अब फल भोक्ता का वर्णन करते हैं इसके एक फल 'दुख' को गांव के पक्षी 'कामी गृहस्थी' भक्षण करते हैं और दूसरा फल 'सुख', 'विवेकी संन्यासी' खाते हैं। इससे एक ही परमात्मा मायामय है इतना तत्वार्थ जिसने जान लिया उसने सब जान लिया। इस प्रकार अप्रमत्त हो तुम भी गुरु सेवा करना, उससे प्राप्त हुई भक्ति करके तीक्ष्ण हुए ज्ञान रूपी कुल्हाड़ा से त्रिगुणात्मक इस लिंग शरीर को काट परमात्मा को प्राप्त हो सब साधनों का त्याग कर देना।

हंस का इतिहास

श्रीकृष्ण ने कहा- हे उद्धव! सत, रज, तम तीनों गुण प्रकृति के हैं, आत्मा के नहीं हैं इस कारण सतोगुण को बढ़ा रजोगुण व तमोगुण को नाश करे। सतोगुण की वृद्धि के लक्षण कहते हैं। शस्त्र, जल, देश, काल, कर्म, जन्म, ध्यान, मंत्र, संस्कार ये दस पदार्थ तीनों गुणों के हेतु हैं। इनमें जिनकी वृद्ध प्रशंसा करते हैं, सो पदार्थ सात्विक जानना और जिसकी निन्दा करते हैं सो तापस

जानना तथा जिसको न सराहते न निन्दा करते उसको राजस जानना। इस कारण सतोगुण की वृद्धि को सात्विक पदार्थों का सेवन करे। इससे धर्म उत्पन्न होता है। धर्म से ज्ञान और गुणों के क्षोभ से उत्पन्न हुआ शरीर अपने आश्रय रूप गुणों को, अपने से उत्पन्न हुई विद्या को निवृत्त कर आप ही शान्त हो जाता है। उद्धव बोले- हे कृष्ण! मनुष्य कहते हैं विषय दुःख रूप है, तो फिर जानकर भी पशु की नाईं उसी में प्रवृत्त होते हैं। श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! विचार शून्य मनुष्य में, मैं हूं ऐसी बुद्धि व्याप्त हो जाती है और उस बुद्धि के हेतु सतोगुण के कार्य में दुःख रूप रजोगुण व्याप्त हो जाता है। रजोगुण संकल्प विकल्प उठाते हैं। इससे बुद्धि बिगड़ जाती है, जिससे विषय प्यारे लगते हैं और इससे मोहित हुआ यह पुरुष कर्मों को परिणाम में दुःख रूप जानने पर भी तृष्णा के वशीभूत हो विषयों के अर्थ उन्हीं कर्मों को करता है। परन्तु विचारवान् प्रेम से मुझमें मन लगाता है और आलस्य त्याग, स्वांस रोक, आसन दृढ़कर स्थिर होता है और विषयों से मन खींच मेरे स्वरूप में लगाता है। यह मन लगाना ही मुख्य योग है। उद्धव पूछने लगे- हे केशव! सनक आदिकों के रूप से जिस समय आपने योग कहा था, वह समय, वह रूप मैं जानना चाहता हूं। श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! सनक आदिक पुत्र ने अपने पिता ब्रह्मा से एक समय योग के विषय में प्रश्न किया कि हे प्रभो! मन

रोगादिकों के हेतु विषयों में प्रवेश करता है, अब विषयों के त्याग करने वाला मुमुक्षु इन दोनों का त्याग कैसे करे। श्रीकृष्ण बोले- पुत्रों के पूछने पर ब्रह्माजी विचारने लगे। उस समय ब्रह्माजी की बुद्धि अन्य कार्यों में लगी हुई थी इस कारण उत्तर ध्यान में नहीं आया। अनन्तर ब्रह्माजी ने ध्यान किया कि, तब हंस रूप धार कर मैं सम्मुख आया। हंस रूप धारने का अभिप्राय यह था कि जैसे हंस जल और दूध को पृथक कर देता है ऐसे मैं गुण व मन को पृथक करने में समर्थ हूं, मुझे देख ब्रह्मा को आगे कर सनकादिकों ने प्रणाम किया और पूछा आप कौन हो? तब मैंने कहा- हे मुनियो! यह प्रश्न निरर्थक है। मन, वचन, दृष्टि और दूसरी इन्द्रियों से जो ग्रहण करने में आता है वह मैं ही हूं। हे पुत्रों! गुणों के विषे चित्त प्रवेश करता है और चित्त विषे गुण प्रवेश करते हैं, यह सत्य है। जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति इन अवस्थाओं से रहित जीव आत्म रूप कैसा है? यह अवस्था तीन गुण से होती है सो बुद्धि ही की वृत्ति उपस्थ है, जीव इनसे भिन्न है और सबका साक्षी है। जब अहंकार से संसार बन्धन हैं तब मैं जागता हूं, सोता हूं, यह बुद्धि जब भेद से दूर होवे और आत्मा में दृष्टि हो तब यह अवस्था भी जाती रहे और विषय तथा चित्त का परस्पर त्याग होवे। यह बन्धन देहाभिमान के कारण है। इस प्रकार निश्चय कर वैराग्य से आत्मा में मन लगा संसार की चिन्ता त्याग करे। यह जीव जागते में भोग

करता है सो क्षण मात्र का है, कुछ नित्य नहीं। जगत् के समान भोग करते हैं और सुषुप्ति में यह सब लीन हो जाते हैं, केवल आत्मा ही रहता है। मैंने पहले तो स्वप्न देखा फिर सोया, कुछ ज्ञान न रहा। हे ब्राह्मणो! सांख्य और योग का रहस्य मैंने कथन किया है, तुमको उपदेश करने ही मैं 'विष्णु' आया हूं। मैं योग, सांख्य सत्य वेदादि शास्त्रोक्त धर्म, प्रभाव लक्ष्मी, कीर्ति, जितेन्द्रियत्व इनका स्थान हूं। मैं निर्गुण सबकी प्रिय आत्मा हूं इस कारण मेरे वाक्य पर दृढ़ विश्वास रखो। हे उद्धव! मेरे वचन सुन अपने सन्देह को मिटाकर सनक आदि मुनियों ने भक्ति से मेरी पूजा की, अनन्तर मैं अपने बैकुण्ठ को लौट आया।

साधन के साथ ध्यानयोग का वर्णन

उद्धवजी कहने लगे- हे कृष्ण! ब्रह्म के जानने वाले कल्याण के अनेक साधन बतलाते हैं, उनमें विकल्प करके एक को मुख्यता है। हे स्वामिन्! आप काम रहित भक्ति को मुख्य साधन बताते हो। श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! भक्ति ही उत्तम साधन है। इसको मैंने ब्रह्माजी के प्रति वर्णन किया था। ब्रह्मा ने अपने पुत्र मनु से कही, मनु से भृगु, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्य, पुलहक्रतु आदि सात ब्राह्मणों ने ग्रहण की। उन ब्राह्मणों से उनके पुत्र देव, दानव, यक्ष, मनुष्य, सि द्ध, गन्धर्व, विद्याधर, चारण, किन्नर, नाग, राक्षस,

किम्पुरष आदि ने ग्रहण की। जिन वासनाओं से प्राणियों के शरीर भिन्न होते हैं इन सबों ने अपनी वासना के अनुसार भिन्न-भिन्न भेद का आख्यान किया है। मेरी माया से मोहित अपने कर्म और रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न कल्याण के साधन कहते हैं। मीमांसक धर्म कर्म को वात्सायन आदि काम शास्त्र वाले, योगाभ्यास करने वाले सत्य दम और शम को, राजनीति वाले ऐश्वर्य को, नास्तिक लोग दान व भोग को, अन्य लोग यज्ञ, तप, दान, व्रत, निर्मय तथा यमों को पुरुषार्थ कहते हैं। इन सबको अपने कर्म से जो लोक मिलते हैं। वे सब तुच्छ आनन्द वाले और शोक से व्याप्त हैं। इस कारण, हे उद्धव! मेरी भक्ति उत्तम है, मेरे विषे मन रखने वाले पुरुष को जो सुख हैं वह विषयों में लगे पुरुषों को कहां प्राप्त हो सके हैं। दूसरों को परिच्छिन्न सुख मिलता है और भक्त को तो परिपूर्ण सुख मिलता है। हे उद्धव! जैसे भक्ति मुझे वश में नहीं करती है, जैसे योग सांख्य, धर्म, वेदाध्ययन, तप व दान भी मुझे वश में नहीं करते। अब भक्ति का लक्षण कहते हैं, जिस पुरुष की वाणी गद्‌गद् स्वर वाली हो जाय तथा चित्त द्रवीभूत हो जाय और जो पुरुष किसी समय रोवे, किसी समय हंसे, किसी समय गावे और किसी समय नाचे व भक्ति वाला सब हो वह लोकों को पवित्र करता है, हे उद्धव! इस कारण मिथ्या वस्तु का ध्यान छोड़ मेरी भावना से चित्त को मेरे स्वरूप में रखे,

स्त्रियों का संग त्याग, आत्मा को पहिचान, धीर हो, मेरा ध्यान करे। उद्धव बोले- हे कमल नयन! जो मुष्टित अभिलाषी हो वह कैसे स्वरूप का ध्यान करे। श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! आसन पर विराजमान शरीर बराबर रख बैठे। अपने दोनों हाथ गोद पर रखे नासिका पर दृष्टि रखे फिर पूरक, कुम्भक और रेचक के क्रम से अथवा विपरीत क्रमनदाण मार्ग को शुद्ध करना और इन्द्रियों को खींच धीरे-धीरे अभ्यास करना। प्राणायाम दो प्रकार का है, एक तो ओंकार सहित प्राण से प्रगट करके, ओंकार में घण्टे के शब्द समान उत्तानपाद स्थिर करके।इस तरह प्रणव में घटाना बढ़ाना सन्धान का अभ्यास कर दस प्राणायाम तीनों काल करे। इस अभ्यास से प्राण-वायु एक महीने में हो जाता है। ध्यान करना चाहिए सो कहते हैं- इस देह के भीतर अधोमुख है, उनकी दण्डी ऊपर रहती है। जैसे केले की फली होती है, ऐसे हीं कमल की कली होती है, उसका ध्यान इस प्रकार करे कि वह नीचे नाल वाला और ऊपर मुख वाला, आठ पंखुरियों से संयुक्त है। कर्णिका सहित उसका मन में ध्यान करे, उस कमल कर्णिका में सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि ये तीन देवता हैं। उसमें अग्नि के बीच वृक्ष्यमाणकर ध्यान के मंगल रूप विषय मेरे स्वरूप का ध्यान करना योग्य है। सुन्दर मुख, चार भुजाओं से शोभायमान, सुन्दर कण्ठ व कपोल मन्द युक्त, कानों में मकराकृत कुण्डल, पीताम्बर ओढ़े,

श्यामवर्ण श्रीवत्स सहित लक्ष्मी को वक्षस्थल में धारण किये, शंख, चक्र, गदा, पद्म लिये, वनमाला पहिने, नूपरों से शोभित चरण, कौस्तुभ मणि संयुक्त, दैदीप्यमान मुकुट, कंकण, कटि मेखला, बाजूबन्द धारण किये, प्रफुल्लित मुख व नेत्र, कटि अति सुकुमारि ऐसे मेरे स्वरूप में मन लगा चिन्तवन करना योग्य है। जिस समय मन स्थिर हो जावे तब मुख की ओर से हटाकर उस साक्षात् स्वरूप में मन लगावें। फिर स्वरूप के ध्यान को छोड़ शुद्ध ब्रह्म में आरुढ़ हो किसी का भी ध्यान नहीं करना। इस प्रकार सावधान मन से ध्यान करने वाला आत्मा रूप मुझको ही देखे। जैसे ज्योति में ज्योति मिल जाती है, उसी प्रकार सर्वात्म स्वरूप, अपने आत्मा से मिल निर्वाण पद पर पहुंच जाता है।

अष्ट सिद्धि कथन

श्रीकृष्ण ने कहा- हे उद्धव! इन्द्रियों को जीतने वाले और स्थिर चित्त वाले योगी के समीप सिद्धियां जाती हैं। उद्धव बोले- हे कृष्ण! किस प्रकार की धारणा से कौन सिद्धियां प्राप्त होती हैं और सिद्धियां कितनी हैं? श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! धारण व योग के पारगामी पुरुषों ने सिद्धियां और धारणा अठारह कही हैं, उनमें आठ तो पूर्ण रीति से मुझमें रहती हैं। शेष दस सतोगुण की वृद्धि से प्राप्त होती हैं। अणिमा, महिमा, लघिमा,

प्राप्ति, प्राकाश्य, ईशिता, वशिता और प्राकाम्य! ये आठ सिद्धियां मेरे ही आधीन रहती हैं। अब सत्वगुण की वृद्धि से प्राप्त होने वाली सिद्धियों को कहता हूं- अनूर्मिमत्व, दूर श्रवण दूर दर्शन, मनोजब, कामरूप, परकाय प्रवेशन, स्वछन्द मृत्यु, देवानां सहक्रीड़ानुदर्शन तथा संकल्प, संसिद्धि और अप्रतिहताज्ञा ये दस सतोगुण के बढ़ने से मिलने वाली सिद्धियां हैं। त्रिकालतत्व, अद्वन्द, परिचित्ताद्यभिज्ञता, प्रतिष्ठम्भ और अपराजय ये पांच क्षुद्र सिद्धियां हैं। अब ज्ञान से जो सिद्धि प्राप्त होती है, वह कहता हूं। चित्त को पञ्चमहाभूतों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सूक्ष्म तन्मात्रा के आकार बनाकर उस मत को इस भूत सूक्ष्म रूप उपाधि वाले मेरे स्वरूप में जो धारण करे वह मेरी अणिमा सिद्धि को पाता है। मन की ज्ञानशक्ति वाले महतत्व का आकार दे उस मेरे परम स्वरूप में मन को जो धारण करे वह महिमा सिद्धि को पावे। भिन्न-भिन्न आकाश आदिक भूतों में ही मन लगावें तो भूतों की महिमा सिद्धि को प्राप्त हो। पंचभूतों के परमाणु मेरा रूप है उनमें मन लगावें सात्विक अहंकार तत्वरूप मुझमें एकाग्र मन धरे तो सब इन्द्रियों का अधिष्ठाता होवें। मुझ में ही मन लगाने के प्रकृति से क्रिया शक्तिरूप महत्तत्व होते हैं, जो रूप हैं उनमें मन लगावें तो प्राकाम्य सिद्धि को प्राप्त हो। त्रिगुण माया के नियंता स्वरूप से मन लगावे तो जब जीव और चर अचर शरीर का नियंता होवे सो

ईशिता को पाता है। विराट हिरण्यगर्भ और कारण से चौथे तुरीय ब्रह्म में जो चित्त लगाये तो योगी वशिता सिद्धि को पावे। निर्गुण ब्रह्म में मन रखे तो परमानन्द को प्राप्त होता है। अब गुण हेतु सिद्धि वर्णन करते हैं कि श्वेत द्वीप का स्वामी जो मेरा स्वरूप है उसमें मन लगावे तो उसको भूख प्यास आदि नहीं व्याप्ती है। आकाश रूप प्राण हैं उसमें मन लगा शब्द का ध्यान करे तब आकाश में भूतों की वाणी दूर से ही सुनता है। यह नेत्र सूर्य में मिलावे, मन से मेरा ध्यान करे, तब सूक्ष्म दृष्टि हो दूर ही से देखे। मन को, शरीर को और इन दोनों का अनुकरण करने वाले पवन को, मेरे रूप में लगाकर मेरी धारणा की जाय तो उसके प्रभाव से मनोजब सिद्धि को पावे। मन मेरे विषे धारण धरे, तब मेरे प्रभाव से जैसा रूप करना चाहे वैसा बनाले। जो पराई काया में प्रविष्ट होना चाहे, सो आत्मा का ध्यान धरे तो देह प्राणरूप हो बाहर की वायु में प्रवेश हो, पवन के साथ दूसरे के शरीर में प्रवेश होते हैं। अब स्वच्छन्द मृत्यु की क्रिया कहते हैं, कि योग धारणा करते समय एड़ी से गुदा का द्वार रोके, प्राण वायु को हृदय में ले आवे, हृदय में से उस यक्षःस्थल में मिलावे तदनन्तर कण्ठ में ले आवे तब ब्रह्मरन्ध्र द्वारा इस देह को छोड़ जहां अभिलाषा होवे, चला जाय। जो देवताओं के विहार स्थान में क्रीड़ा करना चाहे तो मेरी सतोगुणी मूर्ति का ध्यान करे, सतोगुणी के अंश से वहां देवांगना आ

जाती है। मनुष्य मुझ में विश्वास करके बुद्धि से मनोरथ करे, तब सत्य संकल्प नाम सिद्धि को पाता है। मैं सबका ईश्वर नियन्ता हूं, स्वाधीन हूं मेरे भाव को प्राप्त हुआ पुरुष कहीं प्रतिहत नहीं होता, सब उसकी आज्ञा भी मानते हैं, यह मनुष्य सर्वगुण हेतु अप्रतिहताज्ञा नाम सिद्ध को प्राप्त होता है।

अब तुच्छ सिद्धियों को कहते हैं- परमेश्वर में मन को लगावे तो शुद्ध अन्तःकरण वाले योगी भी तीनों काल की वस्तुओं को तथा अपने जन्म मरण को जानने की सिद्धि प्राप्त हो। परिचित्ताद्यभिज्ञता सिद्धि भी इसी पूर्वोक्त धारणा से प्राप्त होती हैं। अग्नि, सूर्य आदि के उपघात से रहित हूं, उसमें धारण करे तो मुनि का शरीर अग्नि, सूर्य, जल व विष से हानि को प्राप्त नहीं होता, प्रतिष्टम लाभ सिद्धि हैं। अद्वन्द्व सिद्धि इसी धारणा से मिलती है। श्रीवत्स और शास्त्रों से सजे हुए मेरे अवतारों का ध्यान करे तो वह योगी अपराजय सिद्धि को प्राप्त हो। इस प्रकार पृथक-पृथक योग सम्बन्धी धारणाओं से उपासना करने वाले योगी को सिद्धियां मिल जाती हैं। अनेक प्रकार की धारणाओं में कष्ट बहुत है, इस कारण एक ही धारणा ऐसी करे जिससे प्राप्त हो जावें। सो कहते हैं कि इन्द्रिय, प्राण, मन को दमन कर जीतने वाले योगी को वशिता सिद्धि के प्रकरण में कही हुई मेरी धारणा करने से कोई भी सिद्धि दुर्लभ नहीं रहती। सम्पूर्ण सिद्धियों का स्वामी मैं हूं और

मोक्ष व मोक्ष का साधन, जप तथा धर्मोपदेश करने वाले ब्रह्मा आदि का स्वामी हूं। इस कारण सिद्धियों के प्राप्त होने की इच्छा नहीं रख, मुझको प्राप्त होना यही योग का मुख्य फल है।

महा विभूति कथन

उद्धवजी ने कहा- हे भूत भावन! आप जीवों में अन्तर्यामी रूप से छिपे हो, मन में आप हो, उनके विषय में मैं आपसे पूछता हूं। जो विभूति, भूमि से स्वर्ग, पाताल और दिशाओं में निश्चय की है और जो आपके प्रताप से युक्त हैं, सो कहिए। श्रीकृष्ण कहने लगे- हे उद्धव! सम्पूर्ण पदार्थों का आत्मा मित्र और ईश्वर मैं ही हूं, सर्व की उत्पत्ति स्थिति व प्रलय का कारण मैं ही हूं। गुण वाले पदार्थों में प्रधान जो महत्व है वह मैं हूं। सूक्ष्मों में जीव और दुर्जय पदार्थों में मन मैं हूं। वेदों में ज्ञाता ब्रह्मा मेरा रूप है, मंत्रों में ॐ मंत्र मैं हूं। अक्षरों में आकार मैं हूं, छन्दों में गायत्री मैं हूं, देवताओं में इन्द्र, वसुओं में पव्यवाट वसु, आदित्यों में से विष्णु, रुद्रों में नीललोहित रुद्र, ब्रह्मर्षियों में मनु, देवताओं में नारद, गौओं में कामधेनु, सिद्धेश्वरों में कपिल, पक्षियों में गरुड़, प्रजापतियों में दक्ष, पित्रीश्वरों में अर्यमा, दैत्यों में प्रहलाद, नक्षत्र और औषधियों का स्वामी चन्द्रमा मेरा स्वरूप है। यक्ष राक्षसों का स्वामी कुबेर मेरा स्वरूप है, गजेन्द्रों में ऐरावत जल जन्तुओं का स्वामी वरुण मेरा

स्वरूप है, तपाने वालों में सूर्य मैं ही हूं, मनुष्यों में राजा का स्वरूप मैं हूं, घोड़ों में उच्चैश्रवा मेरा स्वरूप है, धातुओं में स्वर्ण मैं हूं। दण्ड देने वालों में यमराज मेरा स्वरूप है। नागेन्द्रों में शेषनाग, सींग दाढ़ वालों में सिंह और आश्रमों में चौथा आश्रम मैं हूं। हे उद्धव! वर्णों में ब्राह्मण, तीर्थ और प्रवाहित पदार्थों में गंगाजी, जलाशयों में समुद्र, आयुधों में धनुष और धनुषधारियों में महादेवजी का स्वरूप मैं हूं। निवास स्थानों में सुमेरु, दुर्गस्थलों में हिमालय, वनस्पतियों में पीपल का वृक्ष, औषधियों में यव, पुरोहितों में वशिष्ठ, वेदार्थ ज्ञाताओं में स्वामी कार्तिक, उत्तम मार्ग प्रवृत्त करने वालों में वायु, अग्नि, सूर्य, जल, वाणी रूप शोधक पदार्थ, योग अंगों में समाधि, निपुणता में ब्रह्म विद्या मैं हूं। अख्याति अन्यथा ख्याति, शून्याख्याति, असत्ख्याति, अनिर्वचनीयख्याति, इनमें विवाद करने वाले का विकल्प मैं हूं। स्त्रियों में शतरूपा, पुरुषों में स्वायंभुव मनु, मुनियों में नारायण, ब्रह्मचारियों में सनत्कुमार और धर्मों में प्राणी मात्र को अभय देना मेरा स्वरूप है। निर्भय स्थानों में आत्म निष्ठा मेरा स्वरूप है, अभिप्राय को गुप्त रखने में प्रिय वचन और मौन मैं हूं। मिथुन में प्रजापति मैं हूं, तथा जो सावधान है उनका सम्वत्सररूपी काल मैं हूं। ऋतुओं में बसन्त, महीनों में मार्गशीर्ष तथा नक्षत्रों में अभिजित मैं हूं। युगों में सतयुग, धीर पुरुषों में देवल, वेद का विभाग करने वालों में द्वैपायन और

व्यास कवियों में शुक्राचार्य, उत्पत्ति प्रलय, प्राणियों की गति, अगति, विद्या, अविद्या, इनको जानने वालों में वासुदेव मैं हूं। हे उद्धव! भागवतों में तुम मेरा स्वरूप हो। किम्पुरुषों में हनुमान, विद्याधरों में सुदर्शन, सुन्दर वस्तुओं में कमल कोश, दर्भजातियों में कुशा और हरि पदार्थों में गौ घृत, उद्यमी पुरुषों में लक्ष्मी मेरा स्वरूप है। द्यूत खेलने वालों में कपट द्यूत मेरा स्वरूप है। क्षमावान में क्षमा मैं हूं। सत्यवादियों में सत्य, बलवानों में शक्ति मैं हूं। भक्तों में भक्ति, भक्तों के पूजने योग्य वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, नारायण, हयग्रीव, वाराह, नृसिंह, ब्रह्मा इन नव मूर्तियों में वासुदेव नाम उत्तम मूर्ति मैं हूं। गन्धर्वों में विश्वावसु, अप्सराओं में पूर्वचित्त और पर्वतों में स्थिरता मैं हूं। पृथ्वी की अविकृति तन्मात्रा मैं हूं। जल में मधुरता रूप रस, तेजस्वियों में तेज, सूर्य चन्द्र और नक्षत्रों में कान्ति और आकाश में शब्द, ब्रह्माण्ड पुरुषों में राजा बलि, वीरों में अर्जुन मेरा ही स्वरूप है। पदार्थों में स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय मैं ही हूं। चरण, वाणी, गुदा, हस्त, लिंग इनका गमन, भाषण, मलत्याग, ग्रहण, आनन्द ये मैं हूं और त्वचा नेत्र, जिह्वा, श्रोत, नासिका इनका स्पर्श, चितवन आस्वाद, सुनना सूंघना ये कर्म मैं हूं तथा उनके ग्रहण करने की शक्ति मैं हूं। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और तेज से और इनकी तन्मात्रा, अहंकार, महत्तत्व, पुरुष प्रकृति, रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण उनके परे

परब्रह्म ये सब मैं हूं। इन तत्वों की गणना, उनके लक्षणों का ज्ञान और उसका तत्व निश्चय मैं ही हूं। सबका ईश्वर मैं हूं, सब जीव रूप मैं हूं, मैं ही गुणी हूं, मैं ही क्षेत्र व क्षेत्रक हूं अतएव मुझ बिना जीव ईश्वर गुण क्षेत्र क्षेत्रज्ञ इत्यादि भाव कहीं नहीं। जो विभूतियां मैंने कहीं सो मन के विकार वाली हैं, परमार्थ रूप नहीं। आकाश का पुष्प, वाशश का श्रृंग आदि पदार्थ जैसे केवल कथन मात्र है, सत्य नहीं ऐसे ही ये विभूतियां भी कथन मात्र हैं सत्य तो केवल एक परमेश्वर ही है। इस कारण मन, वचन और प्राण इनको जीत मुझमें तत्पर हो बुद्धि मेरे विषेयुक्त करे, क्योंकि ऐसा करने से मनुष्य कृतार्थ हो जाता है।

वर्णाश्रम धर्म का वर्णन

उद्धव पूछने लगे- हे श्रीकृष्ण! मनुष्य आपकी भक्ति किस प्रकार करे, सो सब जैसे जिसको करना योग्य है, आप मुझसे कहो। श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! पहले सतयुग में मनुष्यों का वर्ण हंस रूप था, तब प्रजा जन्म ही से कृत-कृत्य था, इसी से कृतयुग नाम हुआ। उस समय ओम ही वेद था, चारों चरणों से वृषभ रूप धारण करने वाला एक धर्म था। अतएव तपोनिष्ठ लोग मेरी उपासना करते थे। हे महाभाग! इसके उपरान्त त्रेतायुग के प्रवेश में मेरे हृदय से श्वाँस रूप हो वेदत्रयी विद्या प्रगट हुई, उससे होता उद्गाता, अध्वर्य इन सहित यज्ञ

उत्पन्न हुआ सो यज्ञ मेरा स्वरूप है। शम, दम, तप, शौच, सन्तोष, क्षमा, शुद्धभाव मेरी भक्ति, दया, सत्य से ब्राह्मण की प्रकृतियां हैं। तेज, बल, धैर्य, शूरता, क्षमा, उदारता, उद्यम, स्थैर्य, ब्रह्मण्यता, ऐश्वर्य ये क्षत्री की प्रकृतियाँ हैं। आस्तिकता, दान, निर्दम्भ ब्राह्मण की सेवा, द्रव्य संग्रह में अतृप्ति, ये वैश्य की प्रकृतियां हैं। गौवों, ब्राह्मणों और देवताओं की सेवा, प्राप्त वस्तु से मन में सन्तोष करना ये शूद्र की प्रकृतियां हैं। अब आश्रम धर्म में पहले ब्रह्मचारी का धर्म वर्णन करते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के गर्भ से लेकर सब संस्कार हुआ हो। मेखला, मृगचर्म, दण्ड, रुद्राक्ष माला, यज्ञोपवीत, कमंडलु, जटा धारण किये रहे, तेल से स्नान न करे, दन्त धावन न करे, वस्त्र क्षार से न धोवे, आसन को न रंगे, दर्शन धारण करे, स्नान, भोजन, जप, मूत्र, पुरीष जब करे तो मौन रहे। नख, रोम और क्षौर कर्म न करावे और काँख व उपस्थ लिंग के केश दूर न करे और वीर्य स्खलित न होने दे। अग्नि, सूर्य, आचार्य, गौ, ब्राह्मण, गुरु, वृद्ध, देवता की उपासना करे, प्रातः सन्ध्या व मध्याह्न सन्ध्या में मौन हो जप कर आचार्य को मेरा रूप जाने। विषय भोग रहित हो गुरुकुल में वास करे। गृहस्थाश्रम धारण करने वाला पुरुष अपने समान वर्ण वाली अपने से अवस्था में छोटी स्त्री से विवाह करे। अपने से ऊंचे वर्ण की कन्या के साथ विवाह नहीं करे। यज्ञ करना, वेद पढ़ना और दान

करना, ये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों के आवश्यक धर्म हैं। वेद पढ़ाना, दान लेना और यज्ञ कराना ये ब्राह्मण की जीविका है, ब्राह्मण नीच की सेवा कभी न करे। क्षत्रिय आपद् धर्म से युक्त हो,तो भी नीच सेवा न करे। जो वैश्य बिना जीविका दुःख पाता हो, तो शूद्र वृत्ति से जीविका करे। उससे भी आपदा दूर न हो तो चतुरता की क्रिया से जीविका करे, जब आपदा दूर हो जाये तब वृत्ति छोड़ दे। गृहस्थी को योग्य है- ब्रह्म यज्ञ से ऋषियों को सन्तुष्ट करे, श्राद्ध में पित्र यज्ञ करे, होम करके देव यज्ञ करे, अन्न जल से मनुष्यों को तृप्त करे। सबमें मेरी बुद्धि रखे यह पांच यज्ञ नित्य करना योग्य है। कुटुम्ब में आसक्त न हो, मेरा भजन करने में सावधान रहे आत्मा को ही केवल सत्य जाने।

यति धर्म निर्णय

श्रीकृष्ण बोले- अब वानप्रस्थ धर्म कहते हैं। वानप्रस्थ आश्रम में पुरुष पुत्रों के अधीन स्त्री को छोड़ ७५ वर्ष की अवस्था उपरान्त वन में निवास करे। वानप्रस्थी को उचित है कि कन्द मूल फलों से आत्मा को तृप्त करे, तृण पत्ते मृग चर्म पहिरे और केश, नख, रोम, दाढ़ी, मूंछ ये दूर न करावे। तीन काल स्नान करे, पृथ्वी पर सोवे, ग्रीष्म में पंच अग्नि तपे, वर्षा में खुले बैठे, अभ्रावकाष ब्रत करे और शीत में जल में खड़े रहने का व्रत करे। दांत से कतरी वस्तु नहीं खावे। अपनी

आजीविका की वस्तु आप ही ले आवे, संग्रह न रखे। वानप्रस्थी वन में हुए धान्य आदिक से चरु और पुरोडास से होम करें। वन में आश्रम बनाकर रहे। वानप्रस्थी भी अग्नि होत्र, दर्श पूर्ण मास और यज्ञ गृहस्थों की नाईं करे। इस प्रकार अवश्य मोक्ष हो जाय और जो आयु के तीसरे भाग में वैराग्य हो तो संन्यास ले। जब मनुष्य संन्यास लेता है तब देवता स्त्री पुत्र रूप हो विघ्न करते हैं कि यह हमारे स्थान को उल्लंघन कर ब्रह्म को प्राप्त होवेगा। इस कारण स्त्री आदि के प्रिय वचनों का सत्कार न करे, संन्यास धारण करे, कोपीन पहरें, एक दण्ड, एक कमण्डलु रखे, पृथ्वी पर देखकर चरण रखे, छानकर जल पीवे, सत्य बोले, जो मन में शुद्ध जान पड़े सो करे। हे उद्धवजी! मौन रहना वाणी का दण्ड है, प्राणायाम करना मन का दण्ड है ये दोनों होवें वही दण्डी संन्यासी कहलाता है, परन्तु इन दण्डों को न रख केवल बांस की लकड़ी रखने से दण्डी संन्यासी नहीं होता है। एकान्त में रहे, मेरी भावना से चित्त निर्मल रखे। ज्ञान में निष्ठा रख बन्ध और मोक्ष का विचार करे, विषयों से विरक्त रहे तब मुनि उत्तम सुख को प्राप्त हो अपनी इच्छा अनुसार विचरे। अब परमहंस के धर्म वर्णन कहता हूं। विवेकी होने पर भी बालक के समान विचरते हैं, मान अपमान से शून्य रहते हैं, और जहां प्रयोजन बिना वाद होता है वहां पक्ष न करे। किसी मनुष्य से उद्वेग न करे, अपमान किसी का न करे। इस

देह के निमित्त किसी से शुत्रुभाव न करे। परमहंस को समय पर भोजन न मिले तो धैर्य करे, मिल जावे तो प्रसन्न न हो। हे उद्धवजी! यह सब धर्म हमने कहा। जो भक्त धर्म में युक्त हो इस प्रकार करे, वह मुझ परब्रह्म को प्राप्त होता है।

भक्तियोग ज्ञानयोग और क्रियायोग

उद्धव पूछने लगे- हे विश्वेश्वर! मुझ पर दया कर वैराग्य और पुरातन ज्ञान कहो और जिसको ब्रह्मा आदि खोजते हैं, ऐसे भक्तियोग का वर्णन करो। श्रीकृष्ण बोले- प्रकृति, पुरुष, महतत्व, अहंकार, पंचतन्मात्रा, ग्यारह इन्द्रिय, पंच महाभूत और तीन गुण ये अट्ठाईस तत्व ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त सब प्राणियों में व्याप्त हैं। ज्ञान से देखो तो इनमें भी एक परमात्मा को जिस ज्ञान से व्याप्त देखे सो मेरा ज्ञान है। वेद, प्रत्यक्ष, परम्परा की प्रसिद्धि और अनुमान से यह प्रपंच मिथ्या है, अद्वैत ही सत्य है। जैसे यह दृश्य ब्रह्म से भिन्न नहीं है, इस प्रकार इस द्वैत को मिथ्या जान विकल्प से विरक्त होना योग है। जैसे लोक नाशवान है ऐसे इस लोक के कर्मों के परिणाम से सिद्ध होने वाला स्वर्ग से ब्रह्मलोक पर्यन्त सुख भी दुःख रूप है इस प्रकार देखते रहना। अमृत तुल्य मेरी कथा में श्रद्धा हो और मेरा कीर्तन करे स्तुति व पाठों से मेरी स्तुति करे, सब अंगों से मुझको प्रणाम करे, सब प्राणी में मेरी भावना होवे।

हे उद्धव! जो मनुष्य इस प्रकार भक्ति के धर्मों का आचरण करता हुआ आत्मा भी मेरे अर्पण कर देता है उसको मेरी प्रेम लक्षणा भक्ति प्राप्त हो जाती है।

उद्धव जी पूछने लगे- हे शत्रु दमन! यम और नियम कितने प्रकार का है? शम दम किनको कहते हैं? और तितिक्षा व धृति क्या हैं? दान, तप, शौच, सत्य, ॠतु, त्याग, धन, इष्ट, यज्ञ, दक्षिणा क्या हैं? हे श्रीमन्! मनुष्य के बल क्या हैं? हे केशव! भगवदल्लाभ क्या हैं? पराविद्या, परालक्ष्मी व परालज्जा क्या हैं? सुख क्या है? और दुःख क्या है? पण्डित और मूर्ख कौन हैं? सीधा और उल्टा मार्ग क्या? बन्धु कौन है? और घर किसे कहते हैं? धनवान और दरिद्री किसे कहते हैं? कृपण कौन है? यह सुन श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! अहिंसा, सत्य बोलना, पराई वस्तु का हरण न करना, आसक्ति नहीं रखनी, निन्दित कर्मों से लजाना, संग्रह नहीं करना, धर्म पर विश्वास रखना, ब्रह्मचर्य पालन करना, मौन धारण करना, मन को स्थिर रखना, क्षमा करना, निर्भय रहना, ये १२ यम हैं। अन्तःकरण की पवित्रता, जप, तप, होम, श्रद्धा अतिथि सत्कार, मेरी पूजा, तीर्थ यात्रा, परोपकार, सन्तोष और गुरु सेवा यह नियम हैं। मुझमें बुद्धि स्थिर होय सो शम हैं। इन्द्रियों का संयम दम है, दुःख का सहना क्षमा है, जिह्वा और उपस्थ के वेग का सहन करना धैर्य है, प्राणी मात्र से द्रोह त्याग देने को दान कहते हैं। काम का त्याग तप है।

स्वभाव को जिसने जीत लिया वही शूर है। ब्रह्म का दर्शन सत्य है। विद्वानों ने सत्य और प्यारी वाणी को ऋृतु कहा है। कर्मों की अनासक्ति को शौच और त्याग को सन्यास कहा है। मनुष्यों का उत्तम धन धर्म है। यज्ञ मेरी बुद्धि से करे। मेरे ज्ञान का उपदेश ही उस यज्ञ की दक्षिणा है। प्राणायाम से मन को वश में करे वही बल है। मेरा ऐश्वर्य सौभाग्य है। मेरी भक्ति प्राप्त होना परम लाभ है। आत्मा में भेद बुद्धि होना विद्या है। निन्दित कर्मों को त्याग देना लज्जा है, उत्तम गुण होना शोभा है। दुःख सुख का स्मरण न करना यही सुख है। बन्ध मोक्ष को जाने वही पंडित है। भोग सुख की इच्छा दुःख है। देहादिक में अहंकार करे वही मूर्ख है, जिस मार्ग में मुक्ति को पावे वही उत्तम मार्ग है। जहां मन चलायमान हो और संसार में फिर प्रवृत्त करने के मार्ग को कुमार्ग कहते हैं। सतोगुण बहुत हो और रजोगुण तमोगुण न हो वही स्वर्ग है। तमोगुण बहुत हो सोई नरक है और परम बन्धु गुरु है सो मैं हूं। मनुष्य का शरीर घर है, जो गुण से सम्पन्न है। वही धनी है। सदा असन्तोष रखे सोई दरिद्री है। जो इन्द्रियों को न जीत सके वही कृपण है। विषयों में आसक्त न हो जो स्वाधीन है, सो ईश्वर है जो गुणों में आसक्त है, वही परवश है। हे उद्धव! जो प्रश्न तुमने किये वे सब हमने अच्छे प्रकार निरूपण किये।

सब मंगलों का वेद निर्णय

उद्धवजी कहने लगे- हे कमलनयन! ईश्वर स्वरूप आपकी आज्ञारूप वेद विधि निषेधमय है, सो वह विधि वेद विहित और अविहित कर्मों के फल को प्रतिपादन करता है इसी प्रकार उत्तम, अधम भाव से वर्णाश्रमों के भेद को तथा प्रतिलोमज और अनुलोमज द्रव्य, देश अवस्था और काल इनके भेद को तथा स्वर्ग व नरक को गुण दोष रूप ही प्रतिपादन करता है। आपका वचन है कि गुण दोष में भेद दृष्टि न रखनी और विधि निषेध को प्रतिपादन करने वाला वेद भी आप ही का वचन है, अब मनुष्यों का कल्याण कैसे होवे? क्योंकि आपके वचन में परस्पर विरोध है। यह सुन श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! मनुष्य के कल्याण के निमित्त वेद में तीन योग वर्णन किये हैं- ज्ञान, कर्म, भक्ति। इनसे अधिकारी पृथक हैं, इनमें जो कर्मों से विरक्त हैं, फल प्राप्ति की अभिलाषा नहीं रखते, उनको ज्ञान योग सिद्धि का देने वाला है और जिनके चित्त में विरक्त भाव नहीं है, कर्मफल की मन में अभिलाषा है, उसको कर्म योग सिद्धि का देने वाला है। जिसको मेरी कथा में श्रद्धा उत्पन्न हुई हो और न विरक्त हो, न आसक्त हो, उस पुरुष को भक्तियोग सिद्धि का देने वाला है। कर्म तब तक करे जब तक वैराग्य न हो और मेरी कथा श्रवण में श्रद्धा न उपजे। हे उद्धव! अपने धर्म में स्थित

हो कर्म इच्छा को त्याग, यज्ञों द्वारा मेरा भजन करने वाला, निषेध कर्म का आचरण नहीं करने से इसी लोक में रहता है। जब कर्मों में मन न लगे और वैराग्य उत्पन्न हो जावे तब इन्द्रियों को जीते। स्थिरता से, अभ्यास से मन को जीते तब योगी होय। मन को जीतने पर भी चलायमान हो, तब सावधान हो कुछ इच्छा पूर्ण कर फिर अपने वश में करे। अनुवृत्ति द्वारा मन को जीत लेना परम योग कहा है। अब भक्तियोग वर्णन करते हैं। जब मेरी कथाओं में श्रद्धा बढ़ जाय और सब कर्मों में वैराग्य हो जाय तथा विषयों को दुःखरूप जान ले, तो दुःख के परिणामस्वरूप विषयों की निन्दा करता रहे। हे उद्धवजी! प्रथम भक्तियोग वर्णन किया है, सो भक्तियोग से मुनि मेरा भजन करे। मेरा साक्षात्कार हो जाता है, तब अहंकार व ममता रूपी हृदय की गांठ छूट जाती है। हे उद्धव! जो मेरे परम भक्त हैं उनको मैं यद्यपि अनेक वैभव देना चाहता हूं तो भी वे कुछ चाहना नहीं करते। जो मनुष्य मेरे कहे हुए मार्गों में चलते हैं वे परम कल्याण रूप मेरे धाम को प्राप्त होते हैं जिसको ब्रह्म कहते हैं।

तत्व के सम्बन्ध में विभिन्न विचार

उद्धव पूछने लगे- हे जगदीश! शास्त्रों में कितनी संख्या तत्वों की कही है? आपने अट्ठाईस तत्व वर्णन किये हैं, कोई छब्बीस तत्व कहते हैं, कोई पच्चीस बताते

हैं, कोई सात, कोई नव, कोई छः, कोई चार कहते हैं, कितने ही ग्यारह कथन करते हैं, कितने सत्रह व सोलह, कितने तेरह बताते हैं। हे आयुष्मान्! इस प्रकार तत्वों की संख्या जिस प्रयोजन निमित्त ऋषि लोग पृथक-पृथक वर्णन करते हैं सो आप समझाकर कहो। यह प्रश्न सुन श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! तत्वों के सम्बन्ध में ब्राह्मणों ने कहा है उन सब में युक्तियां हैं। माया को स्वीकार किये उपरान्त माया वाले तत्वों की जितनी संख्या कही जाय उतनी ही युक्ति से सिद्ध हो सकती है। जीव ईश्वर में भेद मानने वालों के मत में चौबीस तत्व और पच्चीसवां जीव तथा छब्बीसवां ईश्वर है। इस प्रकार मानने वालों के मत में पच्चीस ही तत्व होते हैं। सत्वमय ज्ञान प्रकृति का गुण है, कर्म रजोगुण का गुण है, अज्ञान सतोगुण का गुण है और स्वभाव यह महत्तत्व स्वरूप है, काल ईश्वर का स्वरूप है, इसी कारण काल स्वभाव भिन्न तत्व नहीं हैं, मैंने जो अट्ठाईस तत्व कहे हैं जिनमें पच्चीस और तीन ये सब मिल अट्ठाईस होते हैं। पुरुष, प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी ये मैंने नौ तत्व कहे हैं। कर्ण, त्वचा, नेत्र, नासिका, जिह्वा ये पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं और वाणी, हाथ, उपस्थ, गुदा ये पांच कर्म इन्द्रियां हैं। हे उद्धव! ज्ञान और कर्म रूप मन ये ११ शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप ये पांच ज्ञान इन्द्रियों के विषय हैं और गति, वचन, मलत्याग, ग्रहण, आनन्द ये

पांच कर्म इन्द्रियों के फल हैं। इस कारण उनको तत्व न मान अट्ठाइस के भीतर नहीं गिनें। किसी के मत में आकाश, वायु, तेज, पृथ्वी यह पांच पदार्थ और दृष्टय जीव, जीव का आधार आत्मा, यह सात तत्व हैं। जिनके छः तत्व हैं, वह पांच पंचमहाभूत और छठे परमात्मा को मानते हैं। जिनके मत में चार तत्व हैं उनमें आत्मा और तेज, जल, पृथ्वी, यही चार तत्व हैं। सत्रह तत्व के मत में पंच महाभूत, पांच शब्दों स्पर्श, रूप, रस, गंध पांच ज्ञान इन्द्रिय एक मन और सत्रहवां आत्मा है। सोलह तत्व के मत से आत्मा ही मन कहा है। तेरह के मत में पंच महाभूत और पंच ज्ञानेन्द्रिय, एक मन जीवात्मा यह है। ग्यारह के मत में पंच महाभूत और पंच ज्ञानेन्द्रिय, एक आत्मा। नौ के पक्ष में पंच महाभूत, प्रकृति, महातत्व अहंकार और पुरुष ये नव कहलाते हैं।

उद्धव ने पूछा- हे कृष्ण! प्रकृति और पुरुष भिन्न हैं तथापि उनका भेद देखने में नहीं आता है। हे कमल नयन! मेरे सन्देह को दूर कीजिए। श्रीकृष्ण बोले- उद्धव! देह और आत्मा के बीच में बहुत विलक्षणता है। कारण यह है देह तो विकारी है और आत्मा विकार रहित है। हे उद्धव! मेरी माया ने नाना भेद ज्ञान रचे हैं यद्यपि इसमें अनेक भेद हैं, तथापि अध्यात्म रूप, अधिभूत और अधिदैव रूप ये तीन प्रकार के कहे जाते हैं। जैसे नेत्र, नेत्रों के गोलक में प्रविष्ट हुआ सूर्य का अंश सो अधिदेव ये तीनों परस्पर में सिद्ध होते हैं, इसी

प्रकार त्वचा, श्रवण, जिह्वा, नासा आदि में जानना, जैसे त्वचा अध्यात्म स्पर्श अधिभूत, वायु अधिदेव, श्रवण अध्यात्म, शब्द अधिभूत, दिशा अधिदेव, जिह्वा अध्यात्म, रस अधिभूत, वरुण अधिदेव,नासा अध्यात्म, गन्ध अधिभूत, अश्विनी कुमार अधिदेव,चित्त अध्यात्म जिनको चित्त से जानिए ऐसा अधिभूत, वासुदेव अधिदैव, मन अध्यात्म, जिनको मनन किया जाय सो अधिभूत, चन्द्रमा अधिदेव, जो बुद्धि अध्यात्म बुद्धि से जानिये सो अधिभूत, ब्रह्मा अधिदेव, अहंकार से जो किया जाए सो अधिभूत, रुद्र अधिदेव। इन अध्यात्म आदि के संघात रूप देह में और आत्मा में अत्यन्त विलक्षणता है। फिर आत्मा में से ये अध्यात्म आदि उत्पन्न हुए हैं इस कारण भी देह और आत्मा के बीच बहुत विलक्षणता है। फिर भी आत्मा अपने स्वतः सिद्ध ज्ञान से इन अध्यात्म आदि सर्व को जानता है और ये सर्व आत्मा को नहीं जानते। यह सुन उद्धव बोले- हे प्रभो! आपसे जिनकी बुद्धि विमुख है वे अपने किये कर्मों से आप ही नीच देहों को ग्रहण करते हैं। अकर्ता का कर्म और नित्य का जन्म-मरण कैसे सम्भव हो सकता है यह मुझको समझाकर कहो। श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धवजी! कर्ममय मनुष्यों का मन पांच इन्द्रियों सहित इस लोक से दूसरे लोक में जाता है और मन से भिन्न आत्मा अहंकार और ममता से मन के पीछे जाता है। कर्मों के द्वारा दूसरे देह में अभिनिवेश होने पर देवतादिक

का देह हो तो हर्ष से, अधर्म हो तो शोक से जीव को देह का विस्मरण होना और उसका अहंकार नष्ट होना, यह आत्मा का मरण है, कुछ देह के समान उसका मरण नहीं होता। हे उद्धव! मन का दूसरे देह के साथ सम्बन्ध होने पर उसमें अहंकार उत्पन्न होता है, मन के अभ्यास से आत्मा में देह का महत्व होता है, यही आत्मा का जन्म है। हे उद्धव! अब सूक्ष्म जन्म-मरण का निरूपण करता हूं जिसको देहाभिमान है उसको कर्म, जन्म-मरण यह सब हैं। परन्तु देहाभ्यास वाले का जन्म-मरण नहीं, अभ्यास वाला अपने कर्म बीज से उत्पन्न होता है। देह का प्रथम उदर में प्रवेश फिर गर्भवास अनन्तर जन्म फिर बाल्य कुमार यौवन और पैंतालिस वर्ष से साठ वर्ष तक मध्य अवस्था उपरान्त वृद्ध अवस्था अन्त में मृत्यु ये नौ अवस्थायें देह की हैं। इन मन से कल्पित ऊंची नीची अवस्थाओं का देहिक अविवेक के हेतु जीव अपने में मान लेता है और ईश्वर की कृपा होने से कोई जीव अवस्था वाला नहीं हो, ऐसे विवेक ज्ञान से इन अवस्थाओं को त्याग भी देता है। यद्यपि जन्म-मरण की अवस्था में मूर्छा आ जाने के कारण अपने देह का जन्म-मरण देखने में नहीं आता, परन्तु पिता का देह मर जाएगा और पुत्र का देह जन्मा है ऐसे विचार करना जन्म-मरण वाले देह का जो द्रष्टा है उसका जन्म-मरण कुछ भी नहीं होता। अब गुण भेद से जो त्रिविध संसार है सो वर्णन करते हैं वहां एक के दो-दो भेद हैं कि

सतोगुण के भेद ऋषि देवता होते हैं, रजोगुण से असुर और मनुष्य होते हैं तमोगुण से भूत व पशु पक्षी आदि प्रगट होते हैं, सो वे अपने कर्मों से भ्रमण करते हैं। अहो! जो आत्मा कर्ता नहीं तो कर्मों का क्या भ्रमण करता है? इसका उत्तर है कि जैसे नाचते और गाते हुए पुरुष को देखकर यह मनुष्य उनके स्वर ताल आदि का अनुकरण करने लगता है अर्थात् देष्टा किया करता है ऐसे ही बुद्धि के गुणों को देखकर यह व्यापार रहित भी आत्मा उन गुणों के प्रभाव से अपने में मानता है अर्थात् अकर्ता होने पर भी कर्मों के बन्धन में आ जाता है। तो निवृति के उपाय का प्रयोजन क्या है? दुष्ट इन्द्रियों से विषयों का भोग मत करो और आत्मा के ज्ञान बिना यह संसार का भ्रम हुआ है, ऐसा जानो, अपना अनिष्ट करे तो भी क्रोधित न हो। उद्धवजी बोले कि- हे वक्ताओं में श्रेष्ठ! नीच पुरुष दुःख दे तो उनका सहन करना तो कठिन देख पड़ता है, यह कैसे सम्भव है सो मुझसे कहिये।

तिरस्कार सहने का उपाय

श्रीकृष्ण कहने लगे- हे उद्धव! इस लोक में कोई भी ऐसा साधु नहीं है, जो दुष्ट वचनों से खेद युक्त मन को सावधान कर सके। ऐसा मैं उपाय कहूंगा कि जिस उपाय से सब दुःखों का सहन हो सके। यहां एक दृष्टान्त कहते हैं। अवन्ती नगरी में एक ब्राह्मण था।

ब्राह्मण खेती और व्यापार करता था और कामी, क्रोधी और लोभी था। इससे कोई प्रसन्न न था। कालान्तर में उसका द्रव्य नष्ट हो गया। धन के ध्यान से वह ब्राह्मण चिन्ता को प्राप्त हुआ। उसने सोचा कि धन ही कष्टों का मूल है। इसलिए भला चाहने वाला धन उपार्जन न करे। इस प्रकार सोचता वह ब्राह्मण संन्यासी हो गया। मन इन्द्रिय और प्राण को वश में कर वह भिक्षुक भूमि पर विचरने लगा। हे उद्धव! इस अभिवृद्धि अवधूत को देख जन अनेक तिरस्कार से उसको दुःख देने लगे उसके पास से कोई विदण्ड छीनते कोई कमण्डलु छीनते। इसने मौन व्रत कर लिया था। दूसरे लोग कहते यह चोर है, कितने लोग कहते इसको बांधो इसको मारो। यद्यपि यह अधम लोगों से तिरस्कार-युक्त हुआ तथापि सात्विक धैर्य से अपने धर्म में रह इस कथा का गान करने लगा। ब्राह्मण बोला- 'यह जन देवता, ग्रह कर्म आत्मा और काल को भी मरे दुःख का कारण नहीं है। मन ही कारण है, जो मन, संसार चक्र को फिराता है। मन को जीते बिना सब व्यर्थ है। दान, स्वधर्म, नेम, आचार, विद्याध्ययन, कर्म, उत्तम व्रत आदि ये सब एक मन को जीतने के उपाय हैं। इससे निश्चय करके परम योग मन का निग्रह ही है उसको दान आदि करने से क्या प्रयोजन। इस कारण किस पर कोप करना? किसी समय अपने दांत से ही अपनी जीभ कट जाए, तब किस पर कोप

किया जाए। जैसे मुख में हाथ डाले, काट खाए, तो मुख का देवता अग्नि, हाथ का देवता इन्द्र है, उनका क्या दुःख है आत्मा को कुछ नहीं लगता। जो प्रकृति से परे हैं उनको किसी भांति भी सुख दुःख का सम्बन्ध नहीं। मैं परमात्मा में चित्त रखकर संसार समुद्र तरुंगा। पूर्व महर्षियों की चेष्टा को धार कर भगवान वासुदेव के चरणों की सेवा कर संसार समुद्र के पार जाऊंगा। श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! इस प्रकार धन नष्ट होने से वैराग्य प्राप्त होने के कारण पृथ्वी पर विचरता हुआ वह मुनि दुष्टों के दुख देने पर भी स्वधर्म से चलायमान न हुआ। इस कारण, हे उद्धव मेरे में लगी हुई बुद्धि से तुम सब प्रकार से मन को रोको। यही योग संग्रह है कि जिससे सुख दुःखादि सब द्वन्द्वों का निराकरण हो जाता है।

सांख्य योग-कथन

श्रीकृष्ण कहने लगे- हे उद्धवजी! अब मैं कपिल आदि पूर्वाचार्यों का सांख्य शास्त्र सुनाऊंगा कि जिसके जानने से मनुष्य सुख दुःख आदिक की भ्रान्ति छोड़ देता है। सतयुग में दृष्टा और दृश्य सब एक ही रूप थे प्रलय में कोई भेद भाव नहीं था। ऐसे सतयुग में भी भेद की स्फूर्ति न होने से सब ईश्वर रूप ही जाना जाता था। फिर केवल ब्रह्म ही अपने माया के कारण दृश्य और दृष्टा दो प्रकार का हुआ। इससे जो दृष्ट पदार्थ है वह

कार्य कारण रूप प्रकृति है, और जो दृष्टा है वह पुरुष कहलाता है। पुरुष रूप मैं हूं, सो मेरे देखने से प्रकृति से सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण, प्रकट हुए। पहले इन तीनों से महत्तत्व उत्पन्न हुआ। जब महत्तत्व विकार को प्राप्त हुआ तब अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकार तीन प्रकार का है, सात्विक अहंकार, राजस अहंकार, तामस अहंकार। यही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इन्द्रिय, मन तथा देवताओं का कारण है, जीव और देह की ग्रंथिय ही है। तामस अहंकार से शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध से सूक्ष्म भूत प्रगट हुईं। तेज से अहंकार से ग्यारह इन्द्रियां और वैकारिक अहंकार से ग्यारह देवता उत्पन्न हुए। यह अहंकार चिदाभास से व्याप्त होने के कारण जड़ व चैतन्य की ग्रंथि कहलाता है। देवता और मन का प्रकाश स्वभाव है, इस कारण उनका वैकारिक (सात्विक) अहंकार का कार्य माना है। इन्द्रियों का प्रवृत्ति का स्वभाव होने से उनको राजस अहंकार का कार्य माना है। पंचमहाभूतों का आवरण स्वभाव होने से तामस अहंकार का कार्य माना है। मेरी प्रेरणा से इन सबने अपने भक्ति प्राप्त होने के कारण मेरा आश्रय रूप एक अण्ड उत्पन्न किया। जल में स्थित उस अंड में शरीर से रूप धार मैं स्थित हुआ। वहां मेरी नाभि से कमल हुआ और कमल में ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ब्रह्माजी ने तप करके लोकपाल सहित भूलोक भुवर्लोक और स्वर्गलोक को रचा। स्वर्गलोक देवताओं का स्थान

हुआ, भुवलोक भूत आदिकों का हुआ, भूलोक मनुष्य और ज्ञानी लोगों का स्थान हुआ, इन तीनों लोकों से परे मह लोक हैं, और ब्रह्माजी ने नाग तथा असुरों का निवास स्थान पृथ्वी के नीचे बनाया है। त्रिगुणात्मक कर्म करने से जो गतियां होती हैं वे त्रिलोकी में हैं इस प्रकार भिन्न-भिन्न लोक रचे हैं। महलोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक में योग संन्यास ज्ञान से गति प्राप्त होती है बैकुण्ठ गति भक्तियोग करके मिलती है। मेरी सृष्टि जब तक इसका अन्त आये तब तक पिता पुत्र रूप से चलती है। यह ब्रह्माण्ड है, जब इसके समीप मेरा स्वरूप भूतकाल पहुंचने लगता है तब पीडयमान हो सब नाश को प्राप्त होते हैं। जैसे उत्पन्न हुए हैं, उसी क्रम से नाश हो जाते हैं। शरीर अन्न में लीन हो जाता है, अन्न बीज में लय होता है। बीज पृथ्वी में, पृथ्वी गन्ध में, गन्ध जल में, जल रस में, रस तेज में, तेज रूप में, रूप वायु में, वायु स्पर्श में, स्पर्श आकाश में, आकाश शब्द तन्मात्रा में और इन्द्रियां देवताओं में लीन हो जाती हैं। वे सब देवता मन में, मन अपने देवता सहित सात्विक अहंकार में और अहंकार महत्तत्व में लीन होता है। महत्तत्व अपने कारण रूप गुणों में, गुण माया में, माया काल में, काल ज्ञानरूप महापुरुष में और पुरुष आत्मा रूप जन्म रहित मुझमें लय होता है। तब आत्मा एक शुद्ध विकल्प रहित अपने ही आनन्द में स्थिर होकर रहता है, इस प्रकार यह

सृष्टि का प्रकार कहा।

सत्वादि गुण का वृत्ति निरूपण

श्रीकृष्ण कहने लगे- हे उद्धव! अब जो जो गुण करके वह पुरुष जैसा हो जाता है सो वर्णन करता हूं। शम, दम, क्षमा, विवेक, तप, सत्य, दया पहला और पिछला स्मरण, सन्तोष, त्याग, वैराग्य, आस्तिक्य बुद्धि, अनुचित काम में लज्जा, दान, आत्मा से रति यह सतोगुण की वृत्तियां हैं। स्वर्गादिक की इच्छा, यज्ञादिक, व्यापार, मद, लोभ, गर्व, धनादिक की इच्छा, भेद बुद्धि, विषय भोग, युद्धादिकों का उत्साह, जग प्रीति, हास्य, वीर्य बल का उद्यम, ये रजोगुण की वृत्तियां हैं। क्रोध, लोभ, मिथ्या, हिंसा, याचना, दम्भ, श्रम, कलह, शोक, मोह, दुःख, दीनता, निद्रा अथवा आलस्य, आशा, भय और जड़ता ये तमोगुण की वृत्तियां हैं। हे उद्धव! मैं और मेरी यह बुद्धि है; इसमें मन, शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, इन्द्रिय और प्राण यह सात्विक राजस और तामस हैं। इनसे जो कार्य हैं उनको सन्निपात जनित कार्य कहना योग्य है। क्योंकि तीनों गुणों के मिले कार्य हैं। मैं शान्त हूं, कामी हूं, क्रोधी हूं इस प्रकार व्यवहार तीनों गुणों का सन्निपात कहलाता है। जब यह पुरुष धर्म, अर्थ, काम में स्थित हो तब जानना कि तीनों गुणों की एकता है। धर्म सात्विक, अर्थ राजस, काम तामस। जिस काल

निष्कपट भाव से मूर्ति में, पृथ्वी में, अग्नि में, सूर्य में, जल में, हृदय में और ब्राह्मण में द्रव्य द्वारा भक्ति से निष्कपट होकर अपने गुरु रूप मेरी पूजा करे। प्रथम दन्तधावन फिर स्नान, वेदोक्त और तंत्रोक्त मंत्रों से मृत्तिका लेकर करे। इसके उपरान्त वेद विहित सन्ध्योपासनादि करे, फिर मेरी पूजा करे, मन का संकल्प मुझमें रखे। अब प्रतिमा का भेद कहते हैं—काठ की, धातु की, मिट्टी की, चन्दन की, चित्र की, रेत की, मानसी, मणिजड़ित यह मूर्तियां आठ प्रकार की कही हैं। हे उद्धव! चल और अचल भेद से मूर्ति दो प्रकार की हैं, चलमूर्ति तो शालिग्राम आदि, अचल मूर्ति ठाकुर द्वारे में स्थापना की जाती हैं। पूजन में स्थिर मूर्ति के आवाहन विसर्जन करे। स्थिर प्रतिमा में भी आवाहन विसर्जन कही गई है, मिट्टी और चन्दन की प्रतिमा में तथा चित्र की प्रतिमा में मार्जन करे, स्नान नहीं। अब सकाम निष्काम भेद से करके कहते हैं। सकाम भक्त को योग्य है कि सुशोभित पदार्थों से मूर्ति की पूजा करे और निष्काम भक्त तो जैसे बन जाय वैसे ही चन्दन आदि पदार्थ से पूजा करे। हृदय में मेरी पूजा करे, तब मनोमय पदार्थों से ही करे। हे उद्धव! स्नान, अलंकार यह सब प्रतिमा में मुझको प्रिय हैं। अग्नि में घी सहित हवि से होम करे। सूर्य में अर्घ्य उपस्थान करे, जल में तर्पण कर, सुगन्ध फूल, धूप, अन्न आदि समर्पण करे। अब पूजा का प्रकार कहते हैं कि

पवित्रता पूर्वक पूजन सामिग्री रखे, फिर पूर्व अथवा उत्तर को मुख करके कुशा का आसन बिछाकर प्रतिमा को सम्मुख करके स्थिर हो पूजा करे। प्रथम तो न्यास करे, फिर मूल मंत्रों से न्यास की हुई मेरी प्रतिमा को हाथ से स्पर्श करे, फिर उसको तुलसी फूल से शोधन करे। फिर उस प्रोक्षणी पात्र के जल से पूजा का स्थान पूजन पदार्थ व अपने ऊपर जल छिड़के। पाद्य और अर्घ्य और आचमन के अर्थ तीन पात्रों से जल छिड़ककर, अर्घ्य पाद्य आचमन के द्रव्यों से पूरित करे। तीनों पात्रों का हृदय मंत्र शिखा के मंत्रों से तथा गायत्री से अभिमंत्रित करे। इसके उपरान्त देह को कोष्ठगत वायु से शोधन करे, मूलाधार अग्नि में जलावें, ललाट स्थित चन्द्रमण्डल में अमृत आवाह्न करे, वहां हृदय कमल में स्थित जीवकला श्रीनारायण जी की मूर्ति है, उसका ध्यान कर प्रणव के आकार, उकार और मकार का ध्यान करे। दीपक के प्रकाश स्वरूप को भगवान करके जब देह व्याप्त हो, तब उस देह में पूजन कर तन्मय होय, इसके उपरान्त आवाहन कर प्रतिमा स्थापन करे, फिर न्यास करने के अनन्तर मेरा पूजन करे। तदनन्तर आवाहन से प्रतिमा में पाद्य आचमन अर्घ्य आदि सब उपचार करे, धर्म आदिक नवशक्ति से मुझे आसन दे। आठ दल वाला कमल बनावे, केशर से उज्जवल कर्णिका में वैदिक तांत्रिक मार्गों से मेरा पूजन करे। वह आसन सुखशय्या है, उसके चार कोण

हैं, चार पाँव हैं, वहां धर्म, ज्ञान, ऐश्वर्य, आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य ईशान इन चारों कोणों में रखे। तदनन्तर सुदर्शन चक्र, पाँचजन्य शंख, गदा, खड्ग, बाण, धनुष, हल, मूशल, कौस्तुभ, माला, श्रीवास्त आदि आयुधों की पूजा करे। सुदर्शन आदि आयुधों की आठ दिशाओं में और कौस्तुभ आदि की वक्षः स्थल में पूजा करे। नन्द, सुनन्द, गरुड़, प्रचण्ड, महाबल, कुमुद, कुमुदेक्षण आठ पार्षदों की आठों दिशाओं में पूजा करे।

चार कोणों में दुर्गा, विनायक, व्यास और विश्वसेन का पूजन करे, वाम भाग में गुरुओं का और इन्द्र आदि लोकपालों का चारों दिशाओं का पूजन करना, इस प्रकार सबकी अपने-अपने स्थान पर भगवान के सम्मुख और अर्घ्य आदि से पूजन करना, जो अपने में सामर्थ्य हो तो चन्दन, अगर, खस, कपूर, केशर, कस्तूरी आदि से सुगन्धित जल करके, मंत्र पढ़, प्रतिदिन स्नान करना 'स्वर्णधर्मानुवाक' महा पुरुष, विद्यापुरुष, सूक्त इन्द्र 'नरो नेमधिता' आदि सामवेद के मंत्र पढ़कर मेरा पूजन करे। फिर यथोचित रीति से वस्त्र, यज्ञोपवीत, आभरण, मकराकृत कुण्डल, माला, सुगन्ध, लेपन आदि का प्रेम सहित मेरा श्रृंगार करे। पाद्य, आचमन, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य ये मुझको अर्पण करे। यदि वैभव हो तो नैवेद्य निमित्त नाना सामग्री बनावे, गुड़, मिश्री, खीर आदि घी, पूरी, पूआ, लड्डू, हुलआ, दही

आदि भोग लगावे। पर्व में उत्सव में व नित्य फुलेन से अभ्यंग उबटन दर्पण दन्त धावन स्नान अन्नादि पाक सामिग्री गान नाच ये सब करना योग्य है। यदि न हो सके तो पर्व में अवश्य करे।

परमार्थ निर्णय

श्रीकृष्ण कहने लगे- हे उद्धव! अन्य के कर्म की निन्दा न करे। मनुष्य दूसरों की निन्दा अथवा प्रशंसा करने वाला भ्रष्ट हो जाता है। जो पदार्थ आदि अन्त वाले हैं, सब मिथ्या है, यह ज्ञान हो जाय, तब उसको संग छोड़ विचरना योग्य है। उद्धवजी बोले- हे भगवान आपके कथानुसार आत्मा प्रकाश रूप है और देह जड़ है ऐसा निश्चय मान लिया जाय तो बतलाइये, जन्म मरण किसका होता है। यह प्रश्न सुन श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! तुम्हारा कथन सत्य है तथापि आत्मा के अज्ञान कारण जब तक देह इन्द्रिय और प्राण का सम्बन्ध रहे तब तक संसार मिथ्या होने पर भी अज्ञानी को दिखाई दिया करता है। शोक, हर्ष, भय, क्रोध, लोभ, मोह, काम और मरण यह सब अहंकार से हैं। आत्मा के धर्म नहीं। देह, इन्द्रिय, प्राण और मन का अभिमान कर यह आत्मा ही उनके मध्य में स्थित जीव है, इन्हीं गुण कर्म से पुरुष बंध रहा है। इसी कारण ईश्वर के अधीन हो संसार में दौड़ते फिरते हैं। ज्ञान का स्वरूप विवेक है और विवेक वेद, स्वधर्म, अपना अनुभव, गुरु का

प्रति भी कहे। जब यह मनुष्य सब काम छोड़ मुझको आत्म समर्पण कर देता है तब उसका कल्याण करने की मेरी इच्छा होती है उसी से मोक्ष को प्राप्त होता है।

शुकदेवजी बोले- जब श्रीकृष्ण ने इस सफल योग मार्ग का स्वरूप दिखाया तब उद्धवजी हाथ जोड़ सम्मुख स्थित रहे और आंसुओं की धारा बहाते कण्ठ रुक जाने के कारण कुछ बोल नहीं सके। हे राजन्! फिर उद्धव जी स्थिर हो कहने लगे- हे ब्रह्मादिकों के उत्पन्न कर्त्ता! मैंने जो मोह का आश्रय लिया था, सो आपके समागम से जाता रहा। हे महायोगिन्! आपको प्रणाम है। मुझे इतनी शिक्षा दीजिए कि मेरी आपके चरणों में दृढ़ प्रीति होवे। श्रीकृष्ण बोले- हे उद्धव! मेरी आज्ञा है- तुम बदरिकाश्रम को जाओ, क्योंकि अलकनन्दा तीर्थ में स्नान व आचमन करके शुद्ध होओगे। हे उद्धवजी तुम्हारे पाप अलकनन्दा के दर्शन से ही धुल जावेंगे, तुम वहां वल्कल पहन, वन-फल खाकर, निर्वाह करना, सांसारिक सुख की इच्छा नहीं करना तथा इन्द्रियों को वश कर शीत उष्ण सहन कर शांत ज्ञान विज्ञान युक्त समाधि में बुद्धि स्थिर करना। श्री शुकदेवजी बोले- हे राजन्! इस प्रकार श्रीकृष्ण के कहने से उद्धव भगवान के चरणों में मस्तक नवाकर आंसुओं से भगवान के चरण का अभिषेक कर वियोग से अधीर हो स्वामी की पादुका शिर पर धर प्रणाम करके बदरिकाश्रम को चले गये और भगवान ने जिस प्रकार उपदेश किया था

उसी के अनुसार तप कर हरि की गति को प्राप्त हुए।

यदुकुल का अन्त

राजा परीक्षित कहने लगे- हे मुने! उद्धवजी के वन जाने के उपरान्त श्रीकृष्ण ने द्वारिका में क्या किया। अपना कुल नष्ट हो गया तब भगवान ने अपने शरीर को किस प्रकार त्याग किया। यह सुन शुकदेवजी बोले- स्वर्ग में सूर्य के मण्डल आदि, भूमि में भूकम्प आदि, अन्तरिक्ष में दिग्दाह आदि उत्पातों को देख सुधर्मा सभा में विराजमान श्रीकृष्ण यादवों से कहने लगे- हे यादवो! अनेक भयंकर उत्पात द्वारका में हो रहे हैं इस कारण स्त्री, बालक और वृद्ध इनको तो शंखोद्धार तीर्थ भेज दो और हम प्रभास क्षेत्र जायेंगे वहां स्नान से पवित्र हो, उपवास कर, स्नान कर, चन्दन और पूजा की सामग्रियों से देवताओं का पूजन करेंगे। श्रीकृष्ण का वचन सुन वृद्ध यादव कहने लगे- 'जो आज्ञा' ऐसे कह नावों द्वारा समुद्र उतर सब प्रभास क्षेत्र को चले गए। श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार उपदेश दिया था, उसी के अनुसार सबने प्रभास क्षेत्र में वास किया। इससे अनन्तर प्रभास क्षेत्र में नष्ट बुद्धि यादवों ने मदिरा का पान किया, जिससे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। श्रीकृष्ण की माया से मोहित मदिरापान से अतिगवयुक्त यादवों की परस्पर कलह उत्पन्न हो गई। फिर क्रोधित होकर मरने मारने को उद्यत यादव समुद्र तट पर धनुष, शंख,

गदा, तोमर और षष्ठियों से युद्ध करने लगे। जब बाण क्षीण हो गए और टूट गए और अस्त्र शस्त्र सब नष्ट हो गए, तब ये समुद्र तट पर लगा हुआ कुश मुट्ठियों से उखाड़ने लगे। उससे यादव अपने-अपने शत्रुओं को मारने लगे और जब उनको श्रीकृष्ण ने मना किया तब बलराम को शत्रु मान मारने की बुद्धि से शस्त्र ले आये। हे कुरुनन्दन! इसके अनन्तर दोनों भाई कुपित हो उन ऐरों को लेकर मारने लगे। इस प्रकार जब अपना सब कुल नाश हो गया और श्रीकृष्ण शेष रहे, तब श्रीकृष्ण ने माना कि अब भूमि का भार उतर गया। बलरामजी ने समुद्र तट पर जा योग को धारण कर अपने स्वरूप को परब्रह्म में लगाकर मनुष्य देह को त्याग दिया। बलरामजी का देह त्याग देख श्रीकृष्ण पीपल वृक्ष का आश्रय ले मौन साध पृथ्वी पर बैठ गए, उस समय भगवान ने चतुर्भुज रूप धारण किया उस समय जरा नाम व्याध ने जिसने मूशल के अवशेष लोहे के खण्ड से बाण बनाया था, मृग के समान आकार वाले श्रीकृष्ण को अज्ञान से मृग समझ बींध डाला। यह व्याध पहले से नहीं था, किन्तु उसी समय भगवान की इच्छा के अनुसार अगंद स्वर्ग से व्याध के स्वरूप में आए और बाण मार अपने पिता बाली के ऋण से मुक्त हुए। फिर वह अपराधी बधिक प्रणाम करता हुआ श्रीकृष्ण के चरणों में गिर कहने लगा- हे मधुसूदन! आप मुझ पापी के अपराध को क्षमा करें।

हे बैकुण्ठनाथ! मुझ मृग लोभी को आप शीघ्र मारो। यह सुन श्रीकृष्ण बोले- हे जरा! तू भय मत कर, तूने यह कार्य मेरी इच्छा से किया है। इस कारण स्वर्ग जा। तब वह बधिक आज्ञा पाकर भगवान की तीन परिक्रमा दे, विमान में बैठ स्वर्ग को चला गया। इसके अनन्तर दारुक नाम सारथी भगवान को ढूंढ़ता वहां आया। पीपल के वृक्ष के नीचे भगवान को देख दारुक नेत्रों में जल भर, रथ से उतर भगवान के चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा- हे प्रभो! आपके दर्शन बिना मेरी दृष्टि नष्ट हो गई। मुझको इस समय न तो किसी दशा की सुध है और न शान्ति दिख पड़ती है। वह इस प्रकार कह रहा था कि रथ, घोड़ों समेत आकाश को उड़ गया। इसके उपरान्त श्रीकृष्ण के आयुध भी चले गये, यह देख सारथी आश्चर्य करने लगा। तब जनार्दन सारथी से कहने लगे कि हे सूत तुम द्वारका जाओ और हमारे बान्धवों से यादवों का परस्पर मरण, योगमाया द्वारा बलराम का स्वर्ग गमन और मेरी दशा जो देख रहा है सो कहना और यह भी कह देना कि तुम अब अपने बन्धुजन सहित द्वारका में मत रहो। क्योंकि उसको समुद्र डुबा देगा। इस कारण तुम सब अपनी सामग्री और हमारे माता-पिता को साथ ले अर्जुन से रहित हो इन्द्रप्रस्थ चले जाओ और तुम तो ज्ञान में निष्ठा रख इच्छा रहित हो, मेरे धर्म को धारण कर, मेरी माया की रचना जान शान्ति को प्राप्त होओ। जब श्रीकृष्ण ने इस

प्रकार आज्ञा दी, तब वह भगवान की परिक्रमा दे प्रणाम कर मलीन चित्त हो द्वारका चला गया।

श्रीकृष्ण का अपने धाम जाना

श्रीशुकदेवजी ने कहा- हे राजन्! दारुक के जाने के उपरान्त ब्रह्माजी, पार्वती सहित शिवजी, इन्द्रादिक देवता, सनकादिक मुनि, मरीचि आदि प्रजापति, पितर, सिद्ध गन्धर्व, विद्याधर, महानाग, चारण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, अप्सरा, गरुड़, लोक निवासी, पक्षी, मैत्रेय आदि ब्राह्मण सब भगवान का प्रस्थान देखने श्रीकृष्ण का कीर्तन गान करते हुए आये। हे राजन्! ये सब विमानों से फूलों की वर्षा करने लगे। तदनन्तर भगवान ने ब्रह्मा व इन्द्रादिकों को अपने-अपने लोक में ले जाने को आये देख मन को बुद्धि में लगाकर अपने नेत्र बन्द कर लिए फिर उसी देह से बैकुण्ठ चले गए। उस समय देवलोक में नगाड़े बजने लगे, फूलों की वर्षा होने लगी और भगवान के पीछे पृथ्वी पर से सत्य, धर्म, धैर्य, कीर्ति, लक्ष्मी सब चले गये। दारुक द्वारिकापुरी में जा वसुदेव उग्रसेन के चरणों में गिर पड़ा। आंसुओं की धारा से चरण सींचने लगा। तदनन्तर उसी सारथी ने सबके नाश होने का समाचार सुनाया उसको सुन वसुदेव आदि सबके हृदय में महा व्याकुलता उत्पन्न हुई। फिर श्रीकृष्ण के वियोग से विह्वल हो वहीं आ पहूंचे जहां अपने बान्धव मरे पड़े थे। देवकी, रोहिणी

और वसुदेव अपने पुत्र श्रीकृष्ण बलराम को न देख शोक से अचेत हो गये और अपने प्राण छोड़ दिये। हे राजन्! स्त्रियां अपने पतियों की देह का आलिंगन कर चिताओं में भस्म हो गईं। बलरामजी की रानियां अपने पति को, श्रीकृष्ण की रानियां श्रीकृष्ण के मृतक शरीर को और श्रीकृष्ण के पुत्रों की स्त्रियां अपने पति प्रद्युम्न आदि के शरीर का आलिंगन कर अग्नि में प्रविष्ट हुईं तथा रुक्मिणी आदि भगवान की स्त्रियों ने भी अग्नि में प्रवेश किया। अर्जुन ने अपने सखा श्रीकृष्ण के विरह में भगवान के सुन्दर मुक्ति के वचनों का स्मरण कर उससे अपनी आत्मा को शांत किया। जिनकी सम्पत्ति नाश हुई और आप भी नाश हो गये ऐसे मरे हुए बान्धवों की अर्जुन ने पिंडदान आदि क्रिया कराई। हे राजन्! भगवान की त्यागी हुई उस पुरी को, श्रीकृष्ण का मन्दिर छोड़, शेष सबको समुद्र ने डुबा दिया। श्रीकृष्ण मन्दिर को छोड़ देने का कारण यह है कि भगवान उस मन्दिर में सदा विराजमान रहते हैं। मरने से शेष रहे स्त्री, बालक, वृद्धजनों को अर्जुन इन्द्रप्रस्थ ले गये वहां वज्रनाभ का राज्याभिषेक किया। हे राजा परीक्षित! फिर तुम्हारे पितामह युधिष्ठिर आदि अर्जुन के मुख से यादवों का मरण सुनकर आपको वंशधारी जानकर महाप्रस्थान को चले गये।

— ० —

★ बारहवां स्कन्ध प्रारम्भ ★

भविष्य वंश वर्णन

परीक्षित जी पूछने लगे- हे मुने! श्रीकृष्ण जब बैकुण्ठ गये तब पृथ्वी पर किसका वंश चला? श्रीशुकदेवजी ने उत्तर दिया- हे राजा! वृहद्रथ के वंश के अंत में पुरञ्जय नाम राजा होगा जिसका वर्णन नवम स्कन्ध में हो चुका है। उसका मंत्री पद्योत को सिंहासन पर बिठावेगा। उसके पालक नाम पुत्र होवेगा। पालक से विशाखयूप, विशाखयूप के राजक, राजक के मन्दिवर्धन पुत्र होगा, ये पांचों पद्योनाम से प्रसिद्ध राजा होके एक सौ अड़तीस वर्ष तक पृथ्वी पालन करेंगे। फिर शिशुनाग राजा होगा, शिशुनाग के काकवर्ण, काकवर्ण के क्षेमधर्मा, क्षेमधर्मा के क्षेत्रयज्ञ, क्षेत्रयज्ञ के विधिसार, विधिसार के अजातशत्रु, अजातशत्रु के दर्भक, दर्भक के अजय, अजय के नन्दिवर्धन और नन्दिवर्धन के महानन्दी नामक पुत्र होगा। हे राजन्! ये शिशुनाग वंश के राजा दस लाख तीन सौ आठ वर्ष कलियुग में पृथ्वी का पालन करेंगे। हे महाराज! फिर महानन्दी के वीर्य से शूद्र के गर्भ से नन्द राजा होगा। वह महापद्म क्षत्रियों का नाश करने वाला होगा। इससे लेकर फिर सब राजा अधर्मी होंगे और उस नन्द के सुमाल्य आदि आठ पुत्र होंगे, वे सब सौ वर्ष तक पृथ्वी का पालन करेंगे। फिर नन्द राजाओं को चाणक्य नाम

का ब्राह्मण नाश कर देगा, तब इनके पश्चात मौर्य कलियुग में राज्य करेंगे। मौर्यों में चन्द्रगुप्त राज्याधिकारी बनेगा, उसके वारिसार पुत्र होगा। वारिसार के अशोकवर्धन, अशोकवर्धन के सुयश, सुयश के संगत, संगत के शालिशूक, शालिशूक के सोमशर्मा, सोमशर्मा के शतधन्वा, शतधन्वा के वृहद्रथ होगा। ये मौर्य वंश के दस राजा एक सौ सैंतीस वर्ष कलियुग में राज्य भोगेंगे। इसके उपरान्त वृहद्रथ को सेनापति पुष्पमित्र स्वामी को मार राज्य करेगा। वही शुंग में पहला राजा होगा। उसका बेटा अग्निमित्र, अग्निमित्र का सुज्येष्ठ, सुज्येष्ठ का बसुमित्र, बसुमित्र का भद्रका, भद्रका का पुलिंद, पुलिंद का घोष, घोष का वज्रमित्र, वज्रमित्र का भागवत और भागवत का सुत देवभूति प्रसिद्ध होगा। यह दस शुंग नाम से विख्यात होंगे, जो एक सौ बारह वर्ष राज्य करेंगे। तदनन्तर हे राजन्! यह भूमि कण्व राजाओं के अधीन होवेगी। देवभूतिका मंत्री वसुदेव पर स्त्री रमण कराने वाले कामी देवभूति को मार राज्य करेगा। उसका बेटा भूमित्र का नारायण, नारायण का सुशर्मा होगा। ये कणववंशी चार राजा तीन सौ पैंतालीस वर्ष राज्य करेंगे। इसके अनन्तर सुशर्मा को उसका सेवक आंध्र जाति बली नाम स्वामी सुशर्मा को मार कुछ समय राज्य करेगा। फिर उसका भाई कृष्ण राजा होगा उसका सुत श्रीशांतकर्ण, श्रीशांतकर्ण का पौर्णमास होगा, उसका

सुत लम्बोदर, लम्बोदर का विकल, विकल का मेघस्वाती, मेघस्वाती का अटमान, अटमान का अनिष्टकर्मा, अनिष्टकर्मा का हालेय, हालेय का तलक, तलक का पुरीषभीरु, पुरीषभीरु का सुनन्दन, सुनन्दन का चकोर और चकोर के आठ सुत होंगे जिनमें अन्तिम शिवस्वाति होगा। उस शिवस्वाति के गोमती और गोमती के पुरीमान, पुरीमान के मेदशिरा, मेदशिरा के शिवस्कन्द, शिवस्कन्द के यज्ञश्री, यज्ञश्री का विजय, विजय का चन्द्रविज्ञ, चन्द्रविज्ञ का सलोमधि होगा। हे कुरुनन्दन! ये तीस राजा चार सौ छप्पन वर्ष राज्य करेंगे। इसके अनन्तर अवभुति नाम नगरी में सात राजा आभीर जाति के होंगे। उनके पीछे दस गर्भदी राजा होंगे फिर कंक जाति के सोलह राजा होंगे। तदनन्तर आठ यवन राजा, चौदह तुरक राजा होंगे, उनके पीछे दस गुरण्ड राजा होंगे, फिर ग्यारह मौन राजा होंगे, इनमें ये आभीर आदि पैगुरण्ड साठ राजा, दस सौ निन्नानवें वर्ष राज्य करेंगे और ग्यारह मौन राजा तीन सौ वर्ष राज्य करेंगे, उनके उपरान्त किलकिला नाम नगरी में भूतनन्दन राजा होगा, उसके उपरान्त वंगिरी होगा, वंगिरी के पीछे शिशूनन्द, शिशूनन्द के पीछे यशोनन्दि और यशोनन्दि के उपरान्त प्रवीरक राजा होगा। इस प्रकार यह एक सौ छः वर्ष राज्य करेंगे। शिशूनादि आदि के तेरह पुत्र बाल्हिकनाम राजा होंगे, इसके अनन्तर एक दूसरा पुष्पमित्र राजा होगा, उसके दुर्मित

पुत्र होगा।

अनन्तर उन्हीं बाल्हिक वंशियों में सात कोशल के और कुछ वेदूर देश तथा कुछ निषिध देश के राजा, यह उन देशों के नाम से प्रसिद्ध राजा एक ही समय में खण्ड-खण्ड के स्वामी हो राज्य करेंगे। मगध देश के मागध वंशियों में श्वस्फूजि राजा होगा, जो पुरंजय नाम से प्रसिद्ध होवेगा। यह पुरञ्जय ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य रहित शूद्र वर्ण की प्रजा प्रस्थापन करेगा और क्षत्रियों का विध्वंस कर पद्मावती पुरी में बस हरिद्वार से प्रयाग तक राज्य करेगा। फिर सौराष्ट्र देश, उज्जैन, आभीर, शूर अर्बुद और माल्य देश निवासी द्विज यज्ञोपवीत आदि क्रिया न कर संस्कार हीन हो जायेंगे। सिन्धु व चन्द्रभागा के तट के देशों में और कोंतीपुरी तथा कश्मीर आदि देशों में शूद्र, म्लेच्छ और भ्रष्ट व तेजहीन राजा राज्य भोगेंगे। हे परीक्षित! ये सब एक ही समय में अधर्मी, मिथ्या बोलने वाले, अल्पदाता, महाक्रोधी, स्त्री, बालक, गौ, द्विज, क्षत्रिय, वैश्य को मारने वाले, पराई स्त्री व पराये धन में लालसा वाले, अल्पबली और अल्प आयु प्रगट होवेंगे। इनके देशों में रहने वाले और उन्हीं के समान आचार वाले क्लेशों से और राजाओं के किए उपद्रवों से दुःखी होके नाश हो जावेंगे।

—०—

कलियुग वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! इसके उपरान्त काल के प्रभाव से दिन धर्म, साम्य, शौच, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मरण शक्ति का नाश हो जावेगा। कलियुग में जिसके पास धन होगा वही बलवान, गुणवान, आचारवान और बुद्धिमान कहा जायेगा तथा बलवान धर्मात्मा व न्यायी कहावेगा। न्यायाधीशों को धन न देने से न्याय में पराजय होगी, अधिक बात करने वाले को पण्डित मानेंगे। जो धन हीन होगा, उसको चोर आदि कहेंगे और पाखण्डी व कपटी को साधु कहेंगे। जो जलाशय कुछ दूर होगा, तीर्थ समझा जाएगा, कुटुम्ब का पालन पोषण करना ही चतुराई माना जावेगा, धर्म केवल यश के निमित्त किया जावेगा। इस प्रकार दुष्टों से जब भूमण्डल व्याप्त हो जावेगा, तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनमें जो बलवान होगा वही राजा होगा और लोभी, निर्दयी, डाकुओं और राजा द्वारा स्त्री और धन छीने जाने के भय से प्रजा पर्वतों व वनों में जा छिपेगी और वहां शाक, कन्दमूल फल, मधु, माँस, फूल को खाकर पेट भरेगी और अकाल वर्षा तथा राजा के कर से प्रजा को क्लेश होगा। बीस तीस वर्ष की परम आयु गिनी जायेगी। कलियुग के प्रभाव से शरीर छोटे हो जायेंगे। अन्न, औषधियां क्षीण हो जायेंगी, शमी के वृक्ष रह जायेंगे,

वर्षा थोड़ी होगी इस प्रकार मनुष्य शर्महीन हो जावेंगे और कलियुग जब पूरा होने को आवेगा, तब सम्भल ग्राम में विष्णु यश नामक ब्राह्मण के घर विष्णु का कल्कि अवतार होगा और अणिमादिक ऐश्वर्यों से तथा गुणों से युक्त वह कान्तिवान, देवदत्त घोड़े पर चढ़, खंग ले राजाओं का वेश धारे डाकुओं का संहार करेंगे। दुष्टों का विनाश हो जावेगा और लोगों के मन निर्मल हो जावेंगे और सत्वगुण मूर्ति भगवान के हृदय में रहने से उनकी सन्तानों की सृष्टि बढ़ने लगेगी और उनके शरीर भी बड़े होने लगेंगे। धर्म के प्रति कल्कि भगवान जब अवतार लेंगे, तब सतयुग प्रवृत्त होगा और प्रजा के सन्तान भी सतोगुणी होगी। जब चन्द्रमा सूर्य और बृहस्पति एक संग कर्क राशि में पुष्य नक्षत्र पर आते हैं तब सतयुग प्रवृत्त होता है। आपके जन्म से राजा नन्द के राज्याभिषेक पर्यन्त कलियुग के पन्द्रह सौ दस वर्ष होवेंगे। सात ऋषियों के बीच दो तारे पुलह और केतु देख पड़ते हैं, उन दोनों के मध्य में रात्रि समय अरुन्धती के नक्षत्र सहित सप्त ऋषि मनुष्यों के सौ वर्ष पर्यन्त प्रत्येक नक्षत्र पर रहा करते हैं, हे परीक्षित! ये सप्त ऋषि तुम्हारे जन्म समय क्षमा नक्षत्र पर थे सोई इस समय हैं। जब श्रीकृष्ण परमधाम को सिधारे, उसी समय कलियुग ने प्रवेश किया। अब सप्तर्षि जब मघानक्षत्र से निकल पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र पर जावेगा तब कलियुग वृद्धि को प्राप्त होगा। कलियुग के एक हजार दो सौ दिव्य वर्ष व्यतीत

कलियुग वर्णन

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! इसके उपरान्त काल के प्रभाव से दिन धर्म, साम्य, शौच, क्षमा, दया, आयु, बल और स्मरण शक्ति का नाश हो जावेगा। कलियुग में जिसके पास धन होगा वही बलवान, गुणवान, आचारवान और बुद्धिमान कहा जायेगा तथा बलवान धर्मात्मा व न्यायी कहावेगा। न्यायाधीशों को धन न देने से न्याय में पराजय होगी, अधिक बात करने वाले को पण्डित मानेंगे। जो धन हीन होगा, उसको चोर आदि कहेंगे और पाखण्डी व कपटी को साधु कहेंगे। जो जलाशय कुछ दूर होगा, तीर्थ समझा जाएगा, कुटुम्ब का पालन पोषण करना ही चतुराई माना जावेगा, धर्म केवल यश के निमित्त किया जावेगा। इस प्रकार दुष्टों से जब भूमण्डल व्याप्त हो जावेगा, तब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इनमें जो बलवान होगा वही राजा होगा और लोभी, निर्दयी, डाकुओं और राजा द्वारा स्त्री और धन छीने जाने के भय से प्रजा पर्वतों व वनों में जा छिपेगी और वहां शाक, कन्दमूल फल, मधु, माँस, फूल को खाकर पेट भरेगी और अकाल वर्षा तथा राजा के कर से प्रजा को क्लेश होगा। बीस तीस वर्ष की परम आयु गिनी जायेगी। कलियुग के प्रभाव से शरीर छोटे हो जायेंगे। अन्न, औषधियां क्षीण हो जायेंगी, शमी के वृक्ष रह जायेंगे,

वर्षा थोड़ी होगी इस प्रकार मनुष्य शर्महीन हो जावेंगे और कलियुग जब पूरा होने को आवेगा, तब सम्भल ग्राम में विष्णु यश नामक ब्राह्मण के घर विष्णु का कल्कि अवतार होगा और अणिमादिक ऐश्वर्यों से तथा गुणों से युक्त वह कान्तिवान, देवदत्त घोड़े पर चढ़, खंग ले राजाओं का वेश धारे डाकुओं का संहार करेंगे। दुष्टों का विनाश हो जावेगा और लोगों के मन निर्मल हो जावेंगे और सत्वगुण मूर्ति भगवान के हृदय में रहने से उनकी सन्तानों की सृष्टि बढ़ने लगेगी और उनके शरीर भी बड़े होने लगेंगे। धर्म के प्रति कल्कि भगवान जब अवतार लेंगे, तब सतयुग प्रवृत्त होगा और प्रजा के सन्तान भी सतोगुणी होगी। जब चन्द्रमा सूर्य और बृहस्पति एक संग कर्क राशि में पुष्य नक्षत्र पर आते हैं तब सतयुग प्रवृत्त होता है। आपके जन्म से राजा नन्द के राज्याभिषेक पर्यन्त कलियुग के पन्द्रह सौ दस वर्ष होवेंगे। सात ऋषियों के बीच दो तारे पुलह और केतु देख पड़ते हैं, उन दोनों के मध्य में रात्रि समय अरुन्धती के नक्षत्र सहित सप्त ऋषि मनुष्यों के सौ वर्ष पर्यन्त प्रत्येक नक्षत्र पर रहा करते हैं, हे परीक्षित! ये सप्त ऋषि तुम्हारे जन्म समय क्षमा नक्षत्र पर थे सोई इस समय हैं। जब श्रीकृष्ण परमधाम को सिधारे, उसी समय कलियुग ने प्रवेश किया। अब सप्तर्षि जब मघानक्षत्र से निकल पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र पर जावेगा तब कलियुग वृद्धि को प्राप्त होगा। कलियुग के एक हजार दो सौ दिव्य वर्ष व्यतीत

हो जाने पर सतयुग जब आएगा तब आप ही मनुष्यों के मन में आत्मा का प्रकाश हो जायेगा। हे परीक्षित! चन्द्रवश में राजा शांतनु का भाई देवर्षि और सूर्यवंश में राजा इक्ष्वाकु के कुल में उत्पन्न राजा मरु ये दोनों योगबल के प्रभाव से कलाप ग्राम में विराजमान हैं। ये दोनों कलियुग के अन्त में भगवान से शिक्षा पाकर फिर लौटकर इस भूमि पर पहले के समान वर्ण और आश्रम के धर्मों का विस्तार करेंगे। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये इसी क्रम से पृथ्वी पर प्राण धारियों के मध्य वर्तते रहते हैं।

युग धर्म वर्णन

शुकदेवजी ने कहा- हे परीक्षित! यह संसार असार है, इसमें मनुष्य कृमि आदि की तरह जीते और मरते हैं। पृथु, पुरुरुवा, नहुष, भरत, मान्धाता आदि जन्मे और अन्त में मृत्यु में विलीन हो गये। यह सुन परीक्षित ने पूछा- हे भगवान! कलियुग के दोषों को मनुष्य किस प्रकार से दूर कर सकते हैं। प्रथम तो युगों के धर्म प्रलय और कल्प का प्रमाण कहो फिर विष्णु की गति कहो। शुकदेव जी बोले- हे राजन्! सतयुग में धर्म चार चरण वाला है- सत्य, तप, दया और दान। सतयुग के मनुष्य सन्तोषी, दयावान, मित्रभाव रखने वाले, शांत, जितेन्द्रिय, दुःख सहने वाले, समदर्शी और परमार्थी और परिश्रमी होते हैं। त्रेता में धीरे-धीरे मिथ्या भाषण,

हिंसा, असन्तोष और कलह इन चार अधर्म के चरणों से धर्म के चारों चरण से चौथा भाग क्षीण हो जाता है। त्रेता में मनुष्य तप-निष्ठ न अति हिंसक और न अति लम्पट, धर्म अर्थ काम में लगे हुए वेदत्रयी माने जाते हैं और ब्राह्मण वर्ण में जितने अधिक हैं ऐसे होते हैं। द्वापर में असंतोष, हिंसा, मिथ्या भाषण और द्वेष इन चार चरणों के निमित्त तप, दया, सत्य और दान इन धर्मों के चार चरणों में से आधा भाग क्षीण हो जाता है। द्वापर में यशस्वी, शीलवान, वेदाध्ययी मनुष्य धनाढ्य और ब्राह्मण क्षत्रिय जिनमें प्रधान ऐसे मनुष्य होते हैं। कलियुग में अधर्म बढ़ने से धर्म के चारों चरणों का चौथा भाग रह जाता है। सो भी धीरे-धीरे क्षीण हो नाश हो जाता है। कलियुग में मनुष्य लोभी, दुराचारी और दयाहीन कलह करने वाले व तृष्णा वाले होंगे। शूद्र व दास जिनमे मुख्य माने जावेंगे। स्त्रियां छोटे शरीर की व्याभिचारिणी और बहुत सन्तान पैदा करने वाली दुष्ट स्वभाव की होंगी, देश में चोर बहुत, वेद दूषित हो जायेंगे, राजा प्रजा के भक्षण करने वाले, ब्राह्मण लोग कामी और स्वार्थी, ब्रह्मचारी आचार और शौच रहित, भिक्षा मांगने वाले कुटुम्बी तपस्वी वन छोड़ गांव में निवास करेंगे, सन्यासी धन लोभी होंगे। कलियुग में मैथुन के कारण से मित्र भाव करने वाले पुरुष स्त्री के सम्बन्धियों से प्यार करेंगे। हे परीक्षित! जब पृथ्वी पर अन्न नहीं रहेगा तब दुर्भिक्ष व राजकर से

क्लेश युक्त प्रजा सदा चिंतित रहेगी। लोभ एक छदाम के निमित्त मित्रता छोड़ परस्पर लड़ेंगे। भगवान की पूजा नहीं करेंगे और व्रत केवल दिखाने को करेंगे। मनुष्यों के चित्त में विराजकर भगवान, चित्त से उत्पन्न हुए सब दोषों को हर लेते हैं। जो मनुष्य भगवान का श्रवण, कीर्तन, पूजन, ध्यान और सत्कार करते हैं भगवान उनके हृदय में विराजकर दस हजार जन्म के पापों को दूर कर देते हैं। हे राजन्! इस कलियुग में केवल श्रीकृष्ण का कीर्तन करने से ही मनुष्य बन्धनों से छूट परमधाम को जाता है सतयुग में भगवान का ध्यान करने से, त्रेता में यज्ञों द्वारा पूजन करने से, द्वापर में भगवान की पूजा करने से जो फल मिलता है वह फल कलियुग में केवल भगवान के नाम संकीर्तन से ही मिल जाता है।

परमार्थ निर्णय

शुकदेवजी ने कहा- हे राजन्! अब कल्प और प्रलय का वर्णन करता हूं। चार हजार युग का एक दिन ब्रह्मा का होता है उसी को कल्प कहते है जिसमें चौदह मनु राज्य करते हैं। चार हजार युग वाली ब्रह्मा की रात्रि होती है उसे प्रलय कहते हैं। इस प्रलय में स्वर्ग मृत्यु पाताल लय हो जाते हैं। इस प्रलय का नाम नैमित्तिक प्रलय है। ब्रह्मा जी की आयु के द्विपरार्व का जब अन्त होता है तब महत्तत्व अहंकार और तन्मात्रा इन सातों

प्रकृतियों का प्रलय होता है। हे राजन्! तब सौ वर्ष पर्यन्त मेघ नहीं बरसेगा, जिससे पृथ्वी अन्नहीन हो जायेगी और प्रजा भूख से एक का एक भक्षण करने लगेगी। इस प्रकार सहज में प्रजा नाश हो जाएगी। फिर प्रलयकाल का सूर्य समुद्र के और पृथ्वी के रसों को खेंच लेगा, फिर संकर्षण के मुख से जो प्रलय अग्नि है सो वायु के वेग से भभक कर इस शून्य भूमण्डल को सातों पाताल समेत भस्म कर देगा। इसके उपरान्त प्रलय की पवन सौ वर्ष से भी अधिक काल पर्यन्त चलेगी, उस समय आकाश धूम्रवर्ण हो जाएगा। फिर मेघों के समूह सौ वर्ष पर्यन्त वर्षा करेंगे तब ब्रह्माण्ड के भीतर का सत् जगत् जलमय हो जाएगा। जल के रस को तेज निगल जाएगा, तेज के रूप को वायु, पवन के स्पर्श गुण को आकाश, आकाश के शब्द गुण तामस से, अहंकार इन्द्रियों को वृत्तियों के साथ राजस अहंकार, इन्द्रियों के देवताओं को सात्विक अहंकार निगल जाएगा। इन तीनों अहंकारों को महत्तत्व निगल जाएगा, महत्तत्व को सत्व आदि गुणों की माया निगल जायेगी, यह माया लय नहीं होती। अब आत्यन्तिक प्रलय वर्णन करते हैं, मोक्ष ही आत्यन्तिक प्रलय है। बुद्धि इन्द्रियां और विषय जो ग्राहक, साधन और ब्रह्म ही प्रतीत होता है। हे राजन्! जब बुद्धि ब्रह्म से पृथक नहीं तब जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति कैसे पृथक हो सकती है? यह जगत् परब्रह्म में उत्पन्न

होता है और प्रलयकाल में नष्ट हो जाता है। सब अवयवी वस्तुओं का कारण भूत जो अवयव है वही वास्तव में सत्य है। ब्रह्म बिना जगत् की प्रतीति नहीं होती और जगत बिना ब्रह्म की, इस कारण जिनका आदि और अन्त है वह सब ही यथार्थ असत्य है। इस कारण ब्रह्म में आरोपण किए हुए कारण व आदि धर्म भी आरोपित हैं, वास्तविक नहीं हैं। आत्मा के प्रकाश के बिना अणुमात्र भी प्रकाशवान है, ऐसा नहीं कहा जा सकता और यदि वह प्रपंच आत्मा के बिना अणुमात्र भी प्रकाशवान् हैं ऐसा निरूपण किया जाय तो वह प्रपंच विद्रूप आत्मा के समान स्वयं प्रकाश होगा। घटाकाश पर छिन्न और महाकाश पर अपरिच्छिनन होने पर भी जैसे दोनों में भेद नहीं, अहंकार रूप उपाधि वाले रूप के भेद के हेतु एक रस भगवान को लोक और वेद की भाषाओं से आकाश आदि नामों से वर्णन करते हैं। ब्रह्म से उत्पन्न अहंकार ब्रह्म करके प्रकाशित होने पर भी ब्रह्म के अंश द्वारा जीव ब्रह्म का ज्ञान होने में प्रतिबन्ध करता है, यह अहंकार जिस काल विचार करके नष्ट हो जाता है उसी काल जीव ब्रह्म स्वरूप को पहचानता है। हे राजन्! जिस काल से अहंकार के बंधन का छेदन कर जीव आत्मा का अनुभव करता है, उसको कवि लोग आत्यन्तिक प्रलय हुआ कहते हैं। अब नित्य प्रलय कहते हैं। सूक्ष्मवेता विद्वान कहते हैं कि ब्रह्मादिक सब प्राणियों की उत्पत्ति और प्रलय

क्षण-क्षण में होती रहती है, इसी को नित्य प्रलय कहते हैं। हे राजन्! जो पुरुष अनेक प्रकार के दुःख दावाग्नि से कष्ट पा इस संसार समुद्र के पार उतरना चाहें उनको पुरुषोत्तम की लीला रूपी रसायन के बिना इस संसार से पार होने का दूसरा उपाय नहीं है।

परब्रह्मोपदेश

श्रीशुकदेवजी कहने लगे- हे परीक्षित! मैं मर जाऊंगा, ऐसी पशु बुद्धि छोड़ दो। इस देह से न तो आप उत्पन्न हुए और न नाश होओगे। यह आत्मा तो अजर, अमर और अनादि है, न कभी मरता है, न मरेगा। तत्वज्ञान से देह का लय होने पर जीव ब्रह्म हो जाता है। मन आत्मा के देह गुण और कर्मों को उत्पन्न करता है और मन को माया उत्पन्न करती है, इसी माया हेतु जीव जन्म-मरण लेते हैं। जब तक तेल सकोरा बत्ती और अग्नि ही संयोग बना रहता है, तब तक दीपक रहता है। ऐसे ही जब तक देह का कर्म मन चैतन्य और जन्म मरण आदि संयोग हैं तब तक संसार है। यह देह ही रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण करके जन्म-मरण धारण करता है। दीपक का नाश होने पर जैसे पंचमहाभूत रूप तेज नष्ट नहीं होता है ऐसे ही संसार नाश होने पर आत्मा नष्ट नहीं होती। हे राजन्! इस प्रकार बुद्धि से भगवान का ध्यान कर देह आदि में स्थित आत्मा को अपने आत्मा में विचार करोगे तो तक्षक तुमको भस्म नहीं करेगा। जो

मैं हूं सो परमपद रूप ब्रह्म ही है और जो ब्रह्म है सो मैं ही हूं, इस प्रकार विचार कर ब्रह्म में आत्मा को रखोगे तो तक्षक नाग को किसी प्रकार नहीं देखोगे, न इस देह को देखोगे और न आत्मा से भिन्न। हे तात! जगत के आत्मा हरि की लीलाओं के विषय में जो प्रश्न किया था वह सब उत्तर सहित मैंने वर्णन किया अब आप आगे क्या सुनना चाहते हो?

सर्प यज्ञ

सूतजी कहने लगे- श्रीशुकदेवजी के मुख से यह उपदेश सुन परीक्षित ने मुनि के चरणों में मस्तक नवाकर प्रश्न किया- हे मुने! आपने मुझे आदि अंत रहित परब्रह्म का चरित्र सुनाया जिसको सुन मैं कृतार्थ हो गया। हे भगवन्! तक्षक आदि मृत्यु के कारणों से अब मुझे भय नहीं रहा। हे ब्रह्मन्! जो मुझे आज्ञा हो तो वाणी रोककर वासना रहित चित्त को भगवान से लगा, प्राणों का परित्याग कर दूं। ज्ञान और विज्ञान की निष्ठा से मेरा अज्ञान नाश हो गया। सूत जी बोले- हे शौनक! इस प्रकार प्रार्थना कर परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी का पूजन किया, तब शुकदेवजी राजा की पूजा स्वीकार कर विदा मांग मुनियों सहित चले गये। श्रीशुकदेवजी के चले जाने पर गंगाजी के तट पर कुशों के आसन पर उत्तर दिशा की ओर मुख किए राजा परीक्षित ने भी बुद्धि से अपने मनको प्रत्यागात्मक में

लगा परमात्मा का ध्यान किया तब वह राजा ब्रह्मरूप हो वृक्ष के समान लीन प्राण हो गया। हे ब्राह्मणो! क्रोधी ब्राह्मण पुत्र का पठाया हुआ तक्षक परीक्षित को काटने चला आ रहा था, मार्ग में उसने कश्यप मुनि को देखा, कश्यप जी परीक्षित के समीप जा रहे थे जो विष को उतारने में प्रवीण हैं, तब तक्षक ने विषहारी कश्यप को धन से तृप्त कर वहां जाने से रोक दिया और यथेच्छरूप धारण करने वाले तक्षक ने परीक्षित के समीप जा उन्हें डसा। ब्रह्मस्वरूप राजर्षि परीक्षित का शरीर विषाग्नि से जलकर भस्म हो गया। उस समय पृथ्वी, आकाश और दिशाओं में बड़ा हा-हाकार होने लगा। राजा जन्मेजय अपने पिता को तक्षक से डसा सुन अति क्रोधित हो ब्राह्मण को बुलाकर सर्प सत्र द्वारा सर्पों का हवन करने लगा। उस यज्ञ की अग्नि में बड़े-बड़े सर्पों को जलता हुआ देख तक्षक भय के मारे व्याकुल हो इन्द्र की शरण में गया। परीक्षित पुत्र जन्मेजय ने अपने यज्ञ में तक्षक को न देख ब्राह्मणों से कहा कि तक्षक यहां आकर क्यों नहीं भस्म हुआ। तब ब्राह्मणों ने कहा- हे राजेन्द्र! अपनी शरण गये हुए तक्षक की रक्षा इन्द्र करता है और इन्द्र ने उसको अपने समीप बिठा रखा है, इस कारण वह भस्म नहीं हुआ। यह वचन सुन जन्मेजय ने ऋत्विजों से कहा- हे ब्राह्मणो! ऐसा है तो इन्द्र समेत तक्षक को अग्नि में क्यों नहीं गिरा देते हो, यह वचन सुन ब्राह्मणों ने इन्द्र समेत तक्षक को

आहुति मंत्र पढ़ आवाहन किया। ब्राह्मणों के मंत्रों के आकर्षण से तक्षक और इन्द्र अपने स्थान से चलायमान हुए। उस समय दोनों बहुत घबरा गये, इन्द्र को विमान व तक्षक सहित आकाश से गिरते देख बृहस्पति ने जन्मेजय से कहा- हे राजन्! तक्षक के डसने से पिता का मरण सुन तक्षक पर इतना कोप करना योग्य नहीं क्योंकि जीवों का जीवन मरण अपने कर्मों से होता है। यह हिंसायुक्त यज्ञ यहीं समाप्त कर दो। सूत जी बोले- जब बृहस्पतिजी ने कहा जब राजा जन्मेजय ने सर्प यज्ञ वहीं समाप्त कर बृहस्पति जी की पूजा की।

वेदशाखा प्रणयन

श्री सूत जी बोले- हे ब्रह्मन्! ब्रह्माजी के हृदयाकाश में पहले नाद उत्पन्न हुआ जो कि कानों पर हाथ रखने से सुनने में आता है। जिस नाद की उपासना कर योगी, अध्यात्म, अधिभूत, अधिदेव तीनों मलों को दूर कर मुक्ति को प्राप्त होते हैं। उस नाद से प्रकाश हुआ, जिसकी उत्पत्ति किसी प्रकार जानने में न आवे ऐसा अव्यक्त तीन अक्षर ओंकार हुआ जो परब्रह्म का जानने वाला है। अपने आश्रयरूप सर्वव्यापक ओंकार है। उस ओंकार के आकार, उकार, मकार ये तीन वर्ण हैं, तीनों के सत्व, रज, तम ये तीन गुण और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद यह तीन नाम। भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक ये तीनों अर्थ और जाग्रत, स्वप्न और

सुषुप्त ये तीन वृत्तियां धारण की हैं। ब्रह्माजी इन्हीं वर्णों के अक्षरों के से समूह रचे, सोलह स्वर, पच्चीस स्पर्श वर्ण, (क से म तक) चार अन्तस्थ (य र ल व) चार उष्माण (श ष स ह)। फिर ब्रह्माजी ने उन्हीं अक्षरों से होता, अध्यर्व आदि चार ऋत्विजों के कर्म वर्णन करने को 'भूभूर्वः स्वः' इन व्याहृति और ओंकार सहित चारों वेदों को रचा, फिर अपने पुत्र मरीचि आदि ब्रह्म ऋषियों को वेद पढ़ाये और इन ब्रह्म ऋषियों ने अपने पुत्रों को पढ़ाया। कलियुग में लोग अल्पायु, हीन, पराक्रमी और मंदबुद्धि वाले होने लगे, उनको देख ऋषियों ने वेद का विभाग किया।

हे ब्रह्मन्! इस वैवस्वत मन्वन्तर में भगवान ने धर्म की रक्षा को ब्रह्मा, शिव आदि लोकपालों की स्तुति करने से अपने अंश कलाओं से पाराशर मुनि के वीर्य से सत्यवती के गर्भ में वेदव्यास अवतार ले वेद के चार विभाग किये। एक वेद में से ऋगु, यजु, साम और अथर्वण मंत्रों को निकाल चार संहिताएं रचीं। इसके उपरान्त वेदव्यास ने अपने चार शिष्यों को बुला एक-एक संहिता दे दी। पैल को बहुत नाम ऋग्वेद की संहिता दी, यजुर्वेद की संहिता वैशम्पायन को दी, सामवेद की संहिता जेमिनि को, और अंगरिस को अथर्वण की संहिता पढ़ाई। पैल मुनि ने संहिता की दो शाखा कर इन्द्र प्रमिति और वाष्कल अपने दोनों शिष्यों को दी। वाष्कल ने अपनी संहिता के चार विभाग कर

बोध्य, याज्ञवलक्य, पराशर और अग्नि मित्र इन चारों को पढ़ाई। इन्द्रप्रमित ने मांडूकेय ऋषि को पढ़ाई, मांडूकेय ने देवमित्र को, देवमित्र ने सौभरि आदि ऋषियों को पढ़ाई। मांडूकेयपुत्र शाकल्य ने अपनी संहिता के पांच विभाग किये और वात्स्य, मुद्गल, शावाय, गोखल्य और शिशर नाम शिष्यों को पढ़ाई। शाकल्य के जतुकर्ण्य शिष्य ने अपनी संहिता के चार भाग किए और निरुक्त नाम ग्रंथ रच, पलाक, पज, वैताल और विराजमान चार शिष्यों को पढ़ाया। वाष्कल ने पुत्र बाष्कलि ने सब संहिताओं की शाखाओं में से बालखिल्य नाम संहिता बना बालयनि, भज्य और कासार शिष्यों को पढ़ाई। वैशम्पायन के शिष्य चरकाध्वर्य थे, उनके द्वारा गुरु वैशम्पायन को ब्रह्म हत्या का पाप लगा, तब उसकी निवृत्ति के अर्थ गुरु के पलटे प्रायश्चित किया, उस प्रायश्चित के समय वैशम्पायन शिष्य याज्ञवल्क्य बोले- हे भगवन्! इन अल्प दृढ़ शिष्यों को ब्रत से कौन लाभ होगा? यह प्रायश्चित मैं अकेला ही करूंगा? यह सुन वैशम्पायन कोप कर बोले- तू मेरे आगे से चला जा, तू ब्राह्मणों का अपमान करने वाला शिष्य है। इस कारण तुझसे कुछ प्रयोजन नहीं तूने जो कुछ पढ़ा है, उसको तुरन्त त्याग दे, ऐसा कठोर वचन सुन याज्ञवल्क्यजी ने पढ़े हुए यजुर्वेद के मंत्रों को उगल दिया और चल दिए। उस समय उन मुनियों ने यजुर्वेद के मंत्रों के ग्रहण की अभिलाषा की

परन्तु वचन ग्रहण करना ब्राह्मणों को उचित नहीं है, इस कारण उसने तीतर का रूप धर यजुर्वेद के मंत्रों को चुन लिया, उसी दिन से यजुर्वेद की तैत्तिरिया शाखा प्रसिद्ध हुई। इसके उपरान्त गुरु से अधिक वेद विद्या प्राप्त की इच्छा से याज्ञवल्क्य सूर्यनारायण की बक्ष्यमाण रीति से स्तुति करते हुए बोले- हे सूर्य! त्रिलोकी के अधीश्वरों से पूजित आपके चरणों का मैं सारगर्भित यजुर्वेद के मंत्रों की प्राप्ति की इच्छा से भजन करता हूं। स्तुति से प्रसन्न हो सूर्यनारायण ने घोड़े का रूप धर यजुर्वेद के मंत्र दिये। याज्ञवल्क्य ने इन मंत्रों में से पन्द्रह शाखायें प्रगट कीं। सूर्य ने अपनी केशावली से मंत्र निकाले। इस कारण वाजसेनेयीं नाम हुईं। उन शाखाओं को कण्ड और माध्यन्दिन आदि ऋषियों ने ग्रहण किया। जैमिनी ने सुमन्तु पुत्र को और सुन्वान पौत्र को एक-एक संहिता पढ़ाई। सुकर्मा, जैमिनी के शिष्य ने सामवेद के अनेक मंत्रों में संहितायें बना एक सहस्त्र शाखा रची। हिरण्यनाम, कोशल्य, पोष्पंजि और वेद पाठ आवत्य, सुकर्मा के तीनों शिष्यों ने उन संहिताओं को ग्रहण किया। इनमें पांच सौ शिष्य सामवेद पढ़े थे। पौष्पचि व त्वौगाक्षि, मांगलि, कुल्य कशीद और कुत्ति, पांच शिष्यों ने सौ-सौ संहिताओं को ग्रहण किया। हिरण्यनाम के कृत शिष्य ने अपने शिष्यों को चौबीस संहिता पढ़ाई और जो संहितायें शेष रहीं वह आवन्त्य ने अपने शिष्यों को पढ़ा दीं।

पुराण लक्षण वर्णन

सूतजी ने कहा- सुमन्तु ने अपनी संहिता अपने कबंध शिष्य को पढ़ाई, कबन्ध ने दो विभाग करके पथ्य और वेददर्श दो शिष्यों को पढ़ाई। वेददर्श ने अपनी संहिता के चार भाग कर शौल्कायनि, ब्रह्मवलि, मोदोष और पिप्पलायन चार शिष्यों को दी और पथ्य ने तीन भाग करके कुमुद, शुनक और जाजलि चेलों को पढ़ाई। शुनक के वभ्रु और सैन्धवायन दो चेलों ने संहिता पढ़ी। सैन्धवायन आदि के सावर्णि आदि चेले अथर्ववेद के आचार्य कहे गए। अब पुराणों के आचार्य वर्णन करता हूं। वेदव्यासजी ने पुराणों की छः संहिता रच मेरे पिता रोमहर्षण को पढ़ाई, रोमहर्षण से पढ़ त्रय्यारुणि कश्यप, सायर्णि अकृतब्रण वैशम्पायन और हरीत ये छः पौराणिक हुए। मैं इनका चेला हुआ और सबसे एक-एक संहिता पढ़ी। पुराणों की चार मूल संहिताओं को कश्यप, मैं, सावर्णि और अक्रतव्रत, हम चारों ने मेरे पिता से पढ़ी। अब पुराणों के लक्षण कहता हूं सर्ग, विसर्ग, ब्रत्ति, रक्षा। मन्वन्तर, वंश, वंश में होने वाले राजाओं के चरित्र, निरोध, मुक्ति, हेतु और अपाश्चय आदि दस लक्षण जिसमें हों उसको विद्वान पुराण कहते हैं। अब सर्ग आदिक लक्षण कहते हैं- माया के गुण से महत्तत्व, महत्तत्व से तीन प्रकार का अहंकार और अहंकार से देवता, इन्द्रियां व पंचतत्व की

उत्पत्ति होती है, उसी को सर्ग कहते हैं। परमेश्वर ने जिनको रचना शक्ति दी है ऐसे इन महत्तत्वादि में से और एक बीज में से उत्पन्न होता हुआ दूसरे बीज की तरह प्रवाह रूप से चलते हुए स्थावर जंगमरूप प्रपंच को विसर्ग कहते हैं। जंगम प्राणियों के स्थावर प्राणी आहार हैं, उनमें मनुष्य का शास्त्र वचनों से जो आजीविका का विधान है वह वृत्ति कहलाती है। युग युग में पशु, पक्षी, मनुष्य, ऋषि व देवताओं के अवतार ले भगवान लीला करते और पाखंडियों को मार जगत की रक्षा करते हैं। मनु, मनु के पुत्र इन्द्र, सप्तऋषि और हरि का अंशावतार ये छः मिलकर मन्वन्तर कहलाते हैं। ब्रह्मा से उत्पन्न हुए राजाओं को भूत, भविष्य, वर्तमान काल की संतान को वंश कहते हैं उनके चरित्रों को वंशानुचरित्र कहते हैं। माया से उत्पन्न हुए नित्य, नैमित्तिक, आत्यान्तिक चार प्रकार के जगत के प्रलय को विद्वान विरोध कहते हैं। अविद्या के हेतु कर्म करने वाले 'अनुशयी' और उपाधि को मुख्य मानने वाले को 'अव्याकृत' कहते हैं। वासनायें सृष्टि आदि होने में कारण रूप होती हैं। इस कारण उन्हें ऊति कहते हैं। जो जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति इनमें जीववृत्ति वाले, मायामय, विश्वतैजस और प्राज्ञ में प्रविष्ट है उस ब्रह्म को उपाश्रय कहते हैं। गर्भाधान से मरण पर्यन्त देह सम्बन्धी अवस्थाओं में अधिष्ठानयन से ब्रह्मयुक्त भी हैं और पृथक भी हैं। जब सत, रज, तम की वृत्तियों को त्याग

पुरुष का मन शान्त हो, तब यह अपने शुद्ध रूप को जान आवागमन रहित हो जाता है। पूर्वोक्त लक्षणों से छोटे बड़े पुराण पहिचाने जाते हैं, जो संख्या में अठारह हैं। ब्रह्म पुराण, पद्म पुराण, विष्णु पुराण, शिव पुराण, लिंग पुराण, गरुड़ पुराण, नारद पुराण, भागवत् पुराण, अग्नि पुराण, स्कन्द पुराण, भविष्य पुराण, ब्रह्मवैवर्त पुराण, मार्कण्डेय पुराण, वामन पुराण, वाराह पुराण, मत्स्य पुराण, कूर्म पुराण, ब्रह्माण्ड पुराण ये अठारह महापुराण कहलाते हैं।

मार्कण्डेय कथा

शौनकजी कहने लगे- हे सूत! मृकण्ड के पुत्र मार्कन्डेय को लोग चिरजीवी कहते हैं, तो जगत प्रलय में मार्कण्डेयजी कैसे अवशेष रह सकते हैं? क्योंकि मार्कण्डेय इसी कल्प में हमारे वंशविषे प्रकट हुए। कोई यह भी कहते हैं कि मार्कण्डेय अकेले प्रलय समुद्र में घूम रहे थे, वहां वट के पत्र में एक बालक सोते देखा, सो प्रलयकाल में वट पत्र कैसे रह गया? श्रीसूतजी बोले- हे महापुरुषो! मार्कण्डेय ने जब गर्भाधान आदि संस्कारों के क्रम से यज्ञोपवीत संस्कार पाया तब ब्रह्मचर्य व्रत धार वेद पढ़ तप में लग गए, फिर मार्कण्डेय धर्म को बढ़ाने को भगवत आराधना करने लगे। सायं और प्रातः भिक्षा ला गुरु को दिया करते और गुरु आज्ञा से मौन साध एक बार भोजन करते। इस प्रकार मार्कण्डेय

जी ने दस करोड़ वर्ष भगवान की आराधना कर मृत्यु को जीत लिया। यह देख ब्रह्मा, भृगु, महादेव, दक्ष आदि देवता पितर और सब प्राणी विस्मय को प्राप्त हुए। मार्कण्डेयजी को छः मन्वन्तर, १७०४ युगों की चौकड़ी का बहुत काल व्यतीत हो गया। इस सातवें मन्वन्तर में मार्कण्डेयजी के तप को देख पुरन्दर नाम सातवें इन्द्र ने शंकायुक्त हो उनके तप में विघ्न किया। भंग करने को गन्धर्व, अप्सरा, कामदेव, बसन्त ऋतु, मलयाचल की वायु, लोभ और मद को भेजा। वे सब मिल हिमालय के उत्तर में मार्कण्डेयजी के आश्रम में गए, कामदेव ने मुनि को डिगाने के सब काम किए परन्तु वह सफल न हुआ। जब काम मुनि के तेज़ से भस्म होने लगे तब भयभीत हो भागने लगे। गणों सहित काम को तेज रहित देख इन्द्र को विस्मय हुआ। इस प्रकार तप अध्ययन और संयमों से मन को वशीभूत किए हुए मार्कण्डेय मुनि पर अनुग्रह करने को नर नारायण प्रकट हुए। नर नारायण का दर्शन कर मुनि ने आदर से खड़े दोनों को साष्टांग प्रणाम किया। फिर उनको आसन पर बिठाय, चरण धोय, अर्घ्य दे, चन्दन धूप और पुष्पमाला से पूजन कर बोले- हे प्रभो! इस विश्व की रक्षा के अर्थ आप नाम स्वरूप धारण करते हो। आप सृष्टि की रक्षा करने में प्रसिद्ध हैं, ऐसे ही जगत के संहार करने में भी आप विख्यात हैं। स्थावर जंगम के रक्षा करने वाले ईश्वर आपके चरणों

का मैं भजन करता हूं। हे ईश! जिन प्राणियों को चारों ओर से भय है, उनके लिए आपके चरण की प्रीति से अधिक और कोई दूसरा नहीं समझते। ब्रह्मा भी आपकी भृकुटी काल से अतिशय भयभीत रहता है, उसके रचे हुए भयभीत हों तो इसमें क्या आश्चर्य है? हे भगवान! भक्त लोग ही ईश्वर रूप मानते हैं परन्तु रजोगुण को ईश्वर रूप नहीं मानते, इसी कारण पुरुष आपकी इस नारायण नाम शुद्ध मूर्ति को और भक्त जीवों की इस नर नाम शुद्ध मूर्ति को भजते हैं। तुम्हारा ज्ञान वेद में है, तुम्हारे विषय ब्रह्मा महादेव आदि देवता भी स्वरूप ज्ञान होने की आशा से सांख्य योग आदि के द्वारा यत्न करते हुए भी मोहित होते हैं, जिनका स्वभाव सांख्यवादी लोकों के बाद के भेद के अनुसार है और ज्ञान देहादिक संघात से गुप्त है ऐसे महापुरुष तुम्हें नमस्कार करता हूं।

सूतजी कहने लगे- मार्कण्डेय के स्तुति करने पर नारायण बोले- हे मार्कण्डेयजी! आप हमारी अनपायनी भक्ति द्वारा सिद्ध हुए हो। आपके नैष्ठिक ब्रह्मचर्य कर्म से हम प्रसन्न हुए वर देने को आए हैं, आप वर मांगो। मार्कण्डेय बोले- हे भय भंजन! मुझे किसी वरदान की अभिलाषा नहीं, आपने दर्शन दिया यही मुझे वर मिल चुका तथापि जिस माया करके यह लोक सब वस्तु में भेदभाव जानता है, मैं वही माया देखना चाहता हूं। नर नारायण यही वर देकर बदरिकाश्रम चले गए। उनके

चले जाने पर मार्कण्डेयजी भगवत्माया के देखने का चितवन करने लगे और अग्नि, जल, सूर्य, पृथ्वी, पवन, आकाश, आत्मा तथा और भी दूसरे स्थान में भगवान का ध्यान करने लगे। एक दिन सन्ध्याकाल पुष्पभद्रा के तट पर मार्कण्डेयजी बैठे थे उस समय अति प्रचन्ड पवन चलने लगी। इसके पीछे महाविकराल काली काली घटा उमड़ने लगीं, बिजली कड़कने लगी और बादल मोटी जल धारा वर्षाने लगे इनके अनन्तर तरंगें उठने लगीं, पृथ्वी डूबने लगी, उस समय जान पड़ता था कि चारों समुद्र घिर आए हैं, जल, पवन और दमकती हुई दामिनी से जगत् को बाहर भीतर से व्याकुल देख और पृथ्वी को जल में डूबी हुई देख मार्कण्डेय मन में घबराने लगे। इतने में समुद्र ने सम्पूर्ण पृथ्वी को डुबो दिया। भूमि, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, नक्षत्र और दिशाओं सहित त्रिलोकी जलमय हो गई केवल मार्कण्डेयजी शेष रहे। वे अपनी जटाओं को छिटकाए, जड़अन्ध की तरह जल पर भ्रमण करने लगे। मार्कण्डेय जी को जल में एक शंख वर्ष व्यतीत हो गया। जब उस महा प्रलय के समुद्र में भटकते-भटकते एक टापू देखा, उसमें फूल-फलों से शोभायमान एक वट का वृक्ष दृष्टि आया, वहां वट के पूर्व उत्तर के कोण की शाखा में पत्र के दोने में सोता हुआ कान्ति से अन्धकार को दूर करता हुआ श्यामवर्ण, सुन्दर, तीन मुखवाला, तीन रेखाओं से युक्त ग्रीवा वाला, परम विशाल वक्षस्थल, सुन्दर

नासिका और सुन्दर भौंह वाला बालक देखा। अपने दोनों हाथों से दाहिने चरण के अंगूठे को थामे मुख से पीते उस बालक को देख मार्कण्डेय जी विस्मित हुए और संदेहित हो पूछने को उसके निकट गए। मार्कण्डेय जी जैसे ही पूछने के निमित्त झुके कि बालक ने श्वांस लिया तो श्वांस के साथ मुख के मार्ग द्वारा उसके उदर में पहुंच गए। वहां भी जगत प्रलय पहले के समान दीख पड़ा, उसको देख विस्मित हो मोहित हो गए। आकाश, स्वर्ग, भूति, नक्षत्र, समुद्र, द्वीप, खंड, दिशा, देवता, दैत्य, वन, देश, नदियां, पुर, खान, किसानों के गांव, गोकुल, आश्रम वर्ण और इन सबकी जीविका को देखा। पंच महाभूत व इनसे रचित पदार्थ काल और दूसरा भी जो कुछ व्यवहार का कारण है, वह सब उस बालक की सत्ता से सत्ता वाला प्रतीत होता है ऐसा उन मुनि ने देखा। फिर घूमते-घूमते हिमालय पहुंचे वहां पुष्पभद्रा नदी और अपना आश्रम व उसमें रहने का विचार किया। परन्तु मन में यही शंका थी कि यह क्या माया है? यह विचार कर ही रहे थे कि बालक ने ऊपर को सांस लिया तो मुख में से बाहर उसी प्रलय के जल में आ गिरे। फिर वह टापू, वट वृक्ष और बालक वट के पत्ते पर शयन करता हुआ देखा, उस बालक ने भी तिरछी चितवन से मुनि की ओर देखा। तब बालक को देख क्लेश युक्त मार्कण्डेय भगवान को आलिंगन करने को सम्मुख आये और हृदय से लगाने को थे कि

बाल रूप साक्षात् ईश्वर अन्तर्ध्यान हो गए। माया लोप हो गई मार्कण्डेय मुनि अपने आश्रम में पहले की तरह स्थित हो गए।

सूतजी कहने लगे- मार्कण्डेय नारायण निमित्त इस माया के वैभव का अद्भुत चरित्र देख नारायण की आराधना करने लगे। एक दिन शिव-पार्वती ने पुष्पभद्रा पर मार्कण्डेय को देखा। पार्वती जी मुनि को देख बोलीं- हे भगवन्! अंग, इन्द्रिय और मन जिसके निश्चल हो गए हैं, ऐसे इस ब्राह्मण को देखो। इसके तप का फल इसको दे दीजिए। महादेवजी बोले- हे पार्वती! भगवान की भक्ति प्राप्त होने के कारण यह ब्रह्मर्षि किसी सुख की इच्छा नहीं रखता, यह मोक्ष सुख को भी नहीं चाहता, तथापि इसके साथ बातचीत तो अवश्य करेंगे। यह कह शिवजी मार्कण्डेय के समीप गए। मार्कण्डेय आत्मा और जगत को नहीं देखते थे, इस कारण महादेव और पार्वती के शुभागमन को उन्होंने नहीं जाना। तब महादेव अपनी योगमाया कर मुनि के हृदयाकाश में प्रविष्ट हुए। महादेव का हृदय में प्रकाश देख मार्कण्डेय ने आगे देखा तो पार्वती और गणों सहित शिवजी खड़े हैं। तब मार्कण्डेय मुनि ने मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और कहा- हे विभो! आप अपने प्रभाव से पूर्ण काम हो और जगत के सुखकारी हो। इससे मैं आपका क्या सत्कार करूं, आप निर्गुण शान्त सत्व के अधिष्ठाता, सबसे सुखदाता,

रजोगुण व तमोगुण धारण करने वाले हो सो मैं आपको प्रणाम करता हूं। महादेव प्रसन्न हो बोले- हे मुनि तुम इच्छित वर मांग लो। जो ब्राह्मण साधु सन्त संग रहित, दया रखने वाले, एकान्त भक्त, वैर रहित व समदर्शी हैं; उनको लोकों सहित लोकपाल और देवता प्रणाम करते हैं। जल में क्या तीर्थ नहीं है? मूर्ति में क्या देवता नहीं हैं? परन्तु वह तुरन्त फल नहीं देते और आप लोग तो दर्शन मात्र से पवित्र करते हो। इस प्रकार शिवजी के गूढ़ धर्ममय वचनों को श्रवण करके मार्कण्डेय मुनि तृप्त नहीं हुए और बोले- अहो यह ईश्वरलीला देह धारियों के जानने में कठिन है कि आप स्वयं अपनी शरण में रहने वाले को नमस्कार कर उनकी प्रशंसा करते हैं। जैसे नट दूसरा रूप धारण करके अपने दास आदि को प्रणाम करता है और दीन वचन कहता है, उससे उस नट की महत्वता में किसी प्रकार का दोष नहीं लगता, ऐसे ही आपको भी दोष नहीं लगता। हे भूमन, आपका दर्शन मुझको मिल चुका है। इसलिए आपसे मैं एक वरदान मांगता हूं। भगवान में और भगवत भक्तों में तथा आप में मेरी सदा निश्चल भक्ति बनी रहे। तब शिवजी बोले- हे महर्षि! आपके सब मनोरथ पूर्ण होंगे। इस प्रकार वरदान देकर महादेवजी पार्वती जी से मार्कण्डेय मुनि के चरित्र तथा भगवत्माया के वैभव की वार्ता करते हुए चले गये। हे शौनक! मार्कण्डेय जी के चरित्र को जो पुरुष सुनेगा अथवा

सुनावेगा उनको कर्मवासान नहीं व्यापेगी।

विष्णु स्वरूप वर्णन

शौनकादिक कहने लगे- हे सूतजी! तंत्र के जानने वाले जन, भगवान की पूजा में जिस भांति कल्पना करते हैं, उसी क्रिया योग के जानने की इच्छा है। आप इस विद्या के जानने वाले हैं, सो कृपा करके आप हमको बतलाइये। सूत जी कहने लगे विष्णु का विराट रूप उतने ही प्रमाण में है जितना मनुष्य। सात बिलस्त का मनुष्य होता है और सात ही बिलस्त विराट भी हैं। भगवान की प्राण कौस्तुभ मणि है। उनकी माला ही गले की वनमाला है। तीन अक्षर का ओंकार यज्ञोपवीत है। सांख्य और योग उनके कुण्डल हैं। ब्रह्म लोक उनका मुकुट है। सत्वगुण उनकी शेष शैया है। प्राण उनकी गदा है। तेज सुदर्शन चक्र है। आकाश उनका करस्थ कृपाण है। अन्धकार ढाल है, काल शारंग चाप है और कर्म तुरीण है। इन्द्रियां शरण हैं और मनोरथ है। पंचतन्मात्रा उस रथ का बाहरी भाग है वह अनेक रूप धरते हैं, इससे रूप के अनुसार ही उनकी पूजा होनी चाहिए। पूजा का स्थान सूर्य मण्डल और गुरुमंत्र आत्मा की पूजा है। इस प्रकार भगवान की पूजा करने से पाप नाश हो सकता है और पूजा कल्मषों का ध्वंस करने के लिए उत्तम साधन है। भग शब्द से जो छः गुण का अर्थ लगाते हैं यही उनका कमल है,

धर्म उनका चंवर है। बैकुण्ठ उनके रहने के मंदिर, तीनों वेद, बैनतेय वाहन और लक्ष्मी शक्ति है। पंचरात्र उनके पार्षद हैं और आठो सिद्धियां प्रतिरूपी हैं। हे शौनक! वासुदेव, बलराम, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध चारों मूर्तियों से नारायण प्रकट हैं, इन्हीं मूर्ति से उनकी आराधना करनी चाहिए। यही उनके मूर्ति आयुध और उपासना का निष्कर्ष है। वह अपनी माया से इस जगत को रचते पालते और संहार करते हैं। एक होकर भी तीन नामों से भिन्न-भिन्न देखते हैं। भक्ति करने वाले के घर में स्वयं निवास करते हैं। हो पार्थ सखा! हे यादव गुरु! हे दुष्टों के नाशक! हे गोविन्द! हे कृष्ण! आप हम सेवकों का परित्राण करें। हे शौनक! जो पुरुष प्रातःकाल स्नानादि से शुद्ध होकर भगवान का ध्यान करेगा उसे हृदय में ब्रह्म दिखाई पड़ेगा।

१८ पुराणों के श्लोकों की संख्या

श्री सूतजी ने कहा- ब्रह्मा, वरुण, इन्द्र, रुद्र और मरुत देवता जिन भगवानों की स्तुति करते हैं, वेदों के गाने वाले जिनका गान किया करते हैं, ध्यान में स्थित हो कर योगीजन जिनको देखा करते हैं। देवता, असुरगण जिनका आदि अन्त नहीं जान सकते, ऐसे देवों को मेरा बारम्बार प्रणाम है। जो मंदराचल को धारण कर सुखी हुए थे वे कूर्म भगवान की श्वांस वायु तुम्हारी रक्षा करे। दस हजार श्लोकों का ब्रह्म पुराण,

पचपन हजार श्लोकों का पद्म पुराण, तेरह हजार श्लोकों का विष्णु पुराण, चौबीस हजार श्लोकों का शिव पुराण, अठारह हजार श्लोकों की श्रीभागवत पुराण, पच्चीस हजार श्लोकों का नारद पुराण, नौ हजार श्लोकों का मार्कण्डेय पुराण, पन्द्रह हजार चार सौ श्लोकों का अग्नि पुराण, चौदह हजार पांच सौ श्लोकों का भविष्य पुराण, ग्यारह हजार श्लोकों का लिंग पुराण, अठारह हजार श्लोकों का वाराह पुराण, इक्यासी हजार एक सौ श्लोकों का स्कन्ध पुराण, दस हजार श्लोकों का वामन पुराण, सत्रह हजार श्लोकों का कूर्म पुराण, चौदह हजार श्लोकों का मत्स्य पुराण, उन्तीस हजार श्लोकों का गरुड़ पुराण और बाईस हजार श्लोकों का ब्रह्माण्ड पुराण है। अठारहों पुराण के श्लोकों की गिनती चार लाख है।

हे शौनक! ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदि में श्रीमद्भागवत का प्रादुर्भाव किया इसका ज्ञान देवर्षि नारद ने ब्रह्माजी से प्राप्त किया। वेदव्यास जी ने नारद से सीखा अनन्तर शुकदेवजी ने अपने पिता वेदव्यास से यह ज्ञान प्राप्त किया। श्रीमद्भागवत ही एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें भक्ति ज्ञान एवं वैराग्य की पवित्र मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही है। सम्पूर्ण वेदान्तों के साररूप श्रीमद्भागवत के रस रूप अमृत से तृप्त हुए पुरुष को अन्यत्र प्रीति नहीं होती है। जैसे नदियों में श्रीगंगाजी, देवताओं में विष्णु भगवान, वैष्णवों में सदा शिवजी

तथा क्षेत्रों में काशी क्षेत्र परमोत्तम हैं, इसी प्रकार पुराणों में अत्युत्तम श्रीमद्‌भागवत परम पुनीत है। ऐसे ही श्रीमद्‌भागवत को जो भक्तजन पढ़कर शुद्ध मन से विचररता है, वह पुरुष इस भवसागर से पार उतर कर परमधाम को जाता है।

हे शौनक! अन्त में जिनके नाम संकीर्तन से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं ऐसे परमाराध्यदेव हरि भगवान का स्मरण करते हुए हम इस कथा को समाप्त करते हैं।

— ० समाप्त ० —

— श्रीमद् भागवत महापुराण सम्पूर्ण —

★ श्रीमद्भागवत स्तुति ★

जय भगवती भागवत-माता।

व्यास विनिर्मित-भगवद्वाणी, ब्रह्मानन्द प्रदाता।

परमानन्द-सुधारस धारा, विमल-विराग विवेक विचारा।।

भगवत्तत्व रहस्य अपारा, ज्ञानमयी विज्ञान विधाता।

जय भगवती भागवत-माता। १।

शुक्र आनन, बिगलित सुखखानी, ताप त्रय नाशिनीभवानी।

कामधेनु दुख हर कल्याणी, जन्म-मृत्यु भय हर सुखदाता।।

जय भगवती भागवत-माता। २।

विषय-विलास मोह-मद हरनी, अति पावन-मंगल-मृदु-करनी।

कलिमल कलुषहारा भव तरनी, रसिक-हृदय-पीयूष-प्रदाता।।

जय भगवती भागवत-माता। ३।

सुर नर मुनि मन मानष तोषिणि, धर्ममयी सन्तन तन पोषिणि।

शोक-कोप-विभ्रम भय-शोषिणि, भुक्ति मुक्ति तव-सेवकपाता।।

जय भगवती भागवत-माता। ४।

सद्गति-सत्संगति-मति, दैनी, ज्ञान-भक्ति-सत्कर्म त्रिवेनी।

अमर मोक्षदा-स्वर्ग नसैनी, अमर-उभय लौकिक-तुम-माता।।

जय भगवती भागवत-माता। ५।

****